विश्व की अनोखी कृति

श्री जिन गुणगान

(अपनी जिनवाणी/अरिहंत, ग्रंथ, संत गुणगान)

(SHREE JIN GUNGAN)

सम्पूर्ण जानकारी हेतु स्केन करें

Website : www.jindharma.com
App : JINDHARMA

मार्गदर्शन/प्रेरणा

प.पू. मुनि श्री १०८ भावसागर जी महाराज

आशीष छांव – महासमाधि धारक, सर्वश्रेष्ठ साधक,बाल ब्रह्मचारी संघ नायक मूकमाटी रचयिता परम पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

आशीर्वाद – प. पू. आचार्य श्री 108 समयसागर जी महाराज

कृति – श्री जिन गुणगान

प्रसंग – प.पू. मुनि श्री 108 विमलसागर जी महाराज
प.पू. मुनि श्री 108 अनंतसागर जी महाराज
प.पू. मुनि श्री 108 धर्मसागर जी महाराज के
27 वें मुनि दीक्षा दिवस पर

प्रेरणा/मार्गदर्शन – प.पू. मुनि श्री 108 भावसागर जी महाराज

संकलन – पं. राजकुमार जी शास्त्री, सागर मो. 8120226691

संस्करण – 3 मई 2025

ग्राफिक्स – दीपक जैन मो.: 9981331700

शास्त्रदान राशि – अपनी क्षमता अनुसार

पुण्यार्जक

1. श्री विकास जैन – श्रीमती रानू जैन (खेरिया वाले)
आदर्श नगर, आगरा (उ.प्र.)
2. श्री धन्यकुमार जैन – श्रीमती सुनीता जैन
बाहुबली इनक्लेव, दिल्ली
3. श्री संजय जैन – श्रीमती रेणु जैन
ए-97 ऋषभ विहार, दिल्ली
4. श्रीमती मधु जैन, विवेक विहार, दिल्ली
5. श्री राजकुमार जैन– श्रीमती मधु जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली
6. श्री सुधांशु जैन, दिल्ली
7. श्रीमती प्रेमवती जैन हिसार (हरियाणा)

मुद्रक – आकृति प्रिन्टर्स, मो. 9981331700

भावाभिव्यक्ति

बहुत सी पूजन, स्तुति, स्तोत्र, आरती आदि की पुस्तकें प्रकाशित हुई है लेकिन इस कृति में इनके साथ भजन, स्वाध्याय हेतु परिभाषायें एवं जरुरी जानकारियां दी गयी हैं। जिससे विदेश में रह रहे, बड़े-बड़े शहरों में सर्विस कर रहे लोग घर पर पूजन, पाठ, स्तुति करके पुण्यार्जन करें। इसलिए यह विशेष रूप से उनको ध्यान में रखकर बनायी गई है। इस कृति में मार्गदर्शन मुनि श्री 108 पूज्यसागर जी, मुनि श्री 108 विमलसागर जी, मुनि श्री 108 अनंतसागर जी, मुनि श्री 108 धर्मसागर जी, निर्यापक मुनि श्री 108 वीरसागर जी, मुनि श्री 108 विशालसागर जी, मुनि श्री 108 धवलसागर जी, मुनि श्री 108 अचलसागर जी, मुनि श्री 108 अतुलसागर जी, मुनि श्री 108 भावसागर जी, ऐलक श्री 105 तन्मयसागर जी आदि का प्राप्त हुआ। अन्य कार्य में बहुत सारे लोगों ने सहयोग किया है जिनमें प्रमुख है ब्र. भरत भैया (धर्मोदय साहित्य), ब्र. अखिलेश भैया जी खुरई, आदीश्वर जैन बैंगलुरु, ब्र. पीयूष भैया जी ललितपुर, प्रदीप पाटनी ''रत्नाकर'' जयपुर, रोहित जैन (सी.ए.) मंडला, पुष्पक दिवाकीर्ति, गौरव जैन सी.ए., अतिशय जैन इन्दौर, सम्यक कोठारी, मनन सेठ, हर्षित सितावत, पदम खेंदावत, चाहत मुगांणिया, पावन, प्रांशु, सौम्य उकावत, रियल पारसोलिया घाटोल (राजस्थान), सौरभ (गोलू) मोदी, अतुल चौधरी, राहुल (जिमी) सिंघई, रोहित सिंघई पारसमणी कम्प्यूटर्स समय सराफ खिमलासा, अजय चौधरी, दीपेश सहेले पठारी, सार्थक बजाज देवरी, पंकज जैन शिक्षक बीना, पं. शौर्य जैन शास्त्री देवरी, चंदन जैन, अनंत बाझल, शांतनु चौधरी सिवनी आदि ने सहयोग दिया है। इस कृति के निर्माण में कई लोगों की मेहनत लगी है, सभी सहयोगी जिनके कार्य को हम भुला नहीं सकते। अनुभवी, कर्मठ, जुझारू, निष्ठावान और सशक्त कार्यकर्त्ताओं का हम आभार व्यक्त करते हैं जिनके सहयोग के बिना इस कृति को पूर्ण नहीं किया जा सकता था। हम उन लोगों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करना चाहते है जिन्होंने जाने-अनजाने में ही सही लेकिन इस कार्य के संपूर्ण होने में अपना योगदान दिया। यदि कुछ त्रुटियाँ हों तो अवगत करायें जिससे आगे सुधार किया जा सके।

गुरु चरणानुरागी

विशिष्ट सहयोगी, विशेष पुण्यार्जक एवं प्राप्ति स्थान

1. नरेश जैन (गोपाल एग्रो प्रोडक्ट, सी.एम. मसाले), राजनादगांव मो.: 9425238271
2. अनिल जैन (तिवरी) आदि ट्रेडर्स नागपुर (महा.) मो.: 9422114180
3. इंजी. संजीव नायक देवरी जिला-सागर म.प्र. मो. 9893991244
4. प्रदीप पाटनी ''रत्नाकर'' जयपुर मो.: 9829015819
5. सौरभ चौधरी (पनागर) जबलपुर (म.प्र.) मो.: 9131206286, 9981858987
6. रोहित जैन (सी.ए.) मंडला (म.प्र.) मो.: 9425165058
7. प्रयास जैन मडंला (म.प्र.) मो.:9770025738
8. राजीव जैन (वसाहरी वाले) बीना जिला-सागर (म.प्र.) मो.: 9826557771
9. विवेक जैन सिंगापुर मो.: 6590171724
10. अभिषेक चौधरी, नागपुर मो.: 9422126415
11. मनोज कुमार जैन (पनागर वाले) समय ट्रेडर्स, भोपाल (म.प्र.) मो.: 9131779026
12. रवि कुमार जैन, पारस ग्लास हाउस सागर (म.प्र.) मो.: 9630688505
13. भरत जैन, उदय नगर इन्दौर (म.प्र.) मो.: 9926041963
14. सुमित जैन सोमी (बैंक) सिवनी (म.प्र.) मो.: 9407014510

(अन्य जानकारी (क्यू.आर.कोड एवं वेबसाइड) से प्राप्त करें)

विशेष पुण्यार्जक :

श्रीमती ममता - श्री तेज कुमार गंगवाल, श्री प्रीयेश कुमार-श्रीमती गरिमा
मिष्ठी, मिविका गंगवाल फ्लोर फूड्स एल.एल.पी. इन्दौर (म.प्र.)
ब्र. निधि दीदी बीना, ब्र. रोशनी दीदी खिमलासा
ब्र. अखिलेश भैया जी खुरई
इंजी. संजीव कुमार श्रीष कुमार,
स्व. राजीव कुमार श्रेयांश नायक, शिवानी गारमेंटस् देवरी जिला-सागर (म.प्र.)

सम्पादकीय प्राकथन

अनादिकालीन संसार परपरा का उच्छेद भव्य आत्मा ही कर सकता है। अर्हन्त भगवान की भक्ति से यह जीवन निर्वाण एवं तीर्थंकर जैसे पद को भी प्राप्त कर लेता है। संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए अर्हत् भक्ति एक ससक्त कारण है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी रत्नकरण्डक श्रावकाचार ग्रन्थ में लिखते है कि –

''देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनी परिचिनुयादादृतो नित्यम्॥''

अर्थात् अर्हन्त भगवान की जो प्रतिदिन अगाध श्रद्धाभक्ति से पूजा करता है वह इस लोक एवं पारलौकिक उपलब्धियों को प्राप्त कर लेता है एवं काम रूपी व्याधि को भी भस्म कर देता है अतः जिनेन्द्र भक्ति, पूजन अति फलदायी होती है।

इन्द्रादिक एवं चतुर्निकाय के देव भी निरन्तर अर्हत् भगवान की पूजा नंदीश्वर, पंचमेरु एवं अकृत्रिम चैत्यालयों में अनवरत करते ही रहते हैं जिन पूजन, भक्ति, अर्चना का सातिशय पुण्य फल प्राप्त होता है।

अर्हन्तभक्ति का उल्लेख महान् आचार्य समन्तभद्र स्वामी जी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में इस कारिका में किया –

''अर्हच्चरणसपर्या महानुभावं महात्मनामवदत्।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे॥''

अर्थात् हर्ष से प्रसन्न एक मेंढ़क ने राजगृह नगर में एक पुष्प के द्वारा भगवान महावीर के समवशरण में उनकी पूजा का भाव बनाया था वह पूजा कर नहीं पाया तथा काल कवलित हो गया जिसके प्रभाव मात्र से वह स्वर्ग में जाकर देव हो गया कितना उत्कृष्ट फल प्राप्त होता है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार ग्रंथ में इतना तक लिखा है कि श्रावक का मुख्य कर्त्तव्य भगवान की पूजा और दान है।

उपरोक्त आगमोक्त प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि अर्हन्त भगवान की भक्ति हमें परम्परा से मोक्षरूपी लक्ष्मी प्रदान करती है।

एतदर्थ ही परम पूज्य आचार्य प्रवर श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के आज्ञानुवर्ती शिष्य मुनि श्री 108 विमलसागर जी महाराज जो 8,6,5,4, 3,2 उपवास कर चुके है। जिनकी वाणी मधुर है जो ध्यान, स्तोत्र पाठ,जाप, स्वाध्याय में रत रहते है। मुनि श्री 108 अनंतसागर जी महाराज, मुनि श्री 108 धर्मसागर जी महाराज। जिन्होंने अनेक कवितायें प. पू. आचार्य श्री जी की लिखी है जो अधिकांश मौन रहते है। एवं मुनि श्री 108 भावसागर जी महाराज संसार के भूले भटके प्राणियों को मोक्षमार्ग की ओर सन्निकट करने का सफल प्रयास कर रहे हैं। एवं मुनि श्री 108 भावसागर जी महाराज के मन में उनके अन्तस् में बड़ी करुणा टपकती रहती है वे समाज को, श्रावकों को कुछ नया देना चाहते हैं। कुछ ऐसे अनछुए पहलू होते हैं जिनके ऊपर मुनि श्री 108 भावसागर जी महाराज की दृष्टि पहुँचती रहती है।

वे समय परिस्थिति एवं द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव को दृष्टिगत करते हुए लोगों तक कुछ प्रेरेक, कल्याणप्रद, विषय परोसना चाहते हैं मुनि श्री कुछ नया सा अन्वेषण करते रहते हैं और जब वह समाज के बीच आता है तब लगता है यह कितना उत्कृष्ट महान् कार्य है। महाराज श्री का सतत् यह भाव बना रहता है कि कुछ नवीन जानकारी उपलब्ध कर मार्ग प्रशस्त किया जाये, कुछ रूढ़ि एवं निस्सार बातों का परम्पराओं का निरसन हो एवं सही मार्ग प्रशस्त हो। महाराज श्री ने इस दिशा में जो काम किए हैं वे प्रशंसनीय, उपयोगी एवं स्तुत्य हैं जैसे '**आहारदान महादान**' के माध्यम से नई जानकारी उपलब्ध होना यह इतना अच्छा काम हुआ कि अनेकों संघों में इस पुस्तक की मांग एवं उपयोगिता बढ़ी, श्रमण परम्परा में इसका स्वागत हुआ।

इसी प्रकार सूतक-पातक जैसे जटिल विषय को महाराज श्री ने अनेक प्रमाणिक ग्रन्थों का रिफरेन्स देकर समुचित विषय संग्रहित किया जो अद्वितीय काम था। इसी प्रकार भ्रूणहत्या के दुष्परिणाम का कथन भी किया गया जिससे अज्ञानी एवं दिशाहीन लोगों को मार्गदर्शन तो मिला ही है अच्छी बातों का अनुशरण भी हुआ।

मुनि श्री अनेकों विषयों के बारे में सोचते रहतें हैं तथा उन्हें क्रियान्वित भी करते हैं।

इसी दिशा में यह कार्य भी अपने आप में नया तथा अत्यन्त उपयोगी है।

महाराज श्री के पास कुछ ऐसे श्रावक श्राविकायें एवं युवक आते हैं एवं कतिपय विदेश में रहने वाले लोग भी महाराज के पास आते हैं तथा महाराज के पास अपनी बात रखते हैं कि महाराज श्री हमारे हाथ में एक ऐसा ग्रन्थ हो जिससे हम अपने दैनन्दिनी संबंधी समस्त धार्मिक क्रियायें सम्पन्न कर सकें जैसे अभिषेक, शांतिधारा, दैनिक पूजन, स्वाध्याय, पाठ, भक्ति, आरती, भजन, प्रतिक्रमण, सामायिक, ध्यान, स्त्रोत, स्तुति, विधान सब कुछ हासिल कर सकें एवं जिसमें जैनधर्म की मूलभूत बातों का भी समावेश हो तब मुनि श्री भावसागर जी महाराज ने इस विषय पर चिन्तन मनन किया और इस दूरूह कार्य को पूर्ण करने में लग गए।

यह ग्रन्थ अपने आप में इतना महत्त्वपूर्ण, उपयोगी है जिसकी हम परिकल्पना नहीं कर सकते थे। अनेकों जिनवाणी संग्रह प्रकाशित हैं किन्तु आपके हाथ में जो संकलन है यह अपने आप में अद्वितीय है। इसमें प्रत्येक विषय को शामिल किया गया है। श्रावक एवं श्रमण परम्परा के लिए यह महत्त्वपूर्ण उपयोगी ग्रन्थ है।

मुनि श्री भावसागर जी की साधना, आराधना, क्षयोपशम, तपश्चर्या, इसके साथ-साथ संसार के दुःखी प्राणियों के प्रति उनकी करुणा छलकती रहती है सब कुछ उत्कृष्टतम है अपने गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा समर्पण तो देखते ही बनता है एवं ज्येष्ठतम, श्रेष्ठतम मुनियों के प्रति भी अगाध श्रद्धा एवं विनयभाव देखते ही बनती है एवं विद्वानों श्रावकों के प्रति अपूर्व वात्सल्य भाव रहता है इतना ही नही विश्व के प्राणीमात्र के प्रति उनका सद्भाव उनके कल्याण की भावना हमेशा बनी रहती है और यही विश्व कल्याण की भावना तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव में कारण होती है। मुनिवर के वैराग्य का उदाहरण उनके परिवार से ही देखने में आता हैं। मुनि श्री अनंतसागर जी जो प.पू. मुनि श्री भावसागर जी महाराज के गृहस्थ जीवन के सगे अग्रज हैं जिनकी सरलता, सहजता, सजगता अर्हनिश उपदेश देती रहती है। एक क्षण भी उनका व्यर्थ नहीं जाता है अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी हैं। इतना ही नहीं महाराज श्री के ग्रहस्थ जीवन के भतीजे भी ऐलक श्री तन्मयसागर जी महाराज बने। वैराग्य की यह संस्कारशाला पूर्वजन्म का सफल संयोग ही है।

गुरुवर की कृपादृष्टि मेरी ओर भी बनी रहती है मैं भी उनके निर्देशानुसार

कुछ अच्छा करते रहने का प्रयास करता रहता हूँ यह उनकी कृपादृष्टि है निर्ग्रन्थ दिगम्बर संत की कृपा से सब कुछ अच्छा ही होता है एवं मोक्ष मार्ग तो प्रशस्त होता ही है। मैं मुनिवर से सन् 2005 से अतिशय क्षेत्र बीना वारहा चातुर्मास से जुड़ा तो जुड़ता ही गया। मैंने मुनिवर से बहुत कुछ सीखा और बहुत कुछ पाया।

प्रस्तुत ग्रन्थ का आलेखन करके संशोधन, प्रूफ रीडिग, सम्पादन आदि का कार्य मुझे करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने पूर्ण प्रयास करके ग्रन्थ को सर्वोत्कृष्ट बनाने में जो भी कार्य किया वह सब गुरु कृपा ही है। काम तो सब मुनि श्री का ही है मैं तो एक आकिंचन मात्र ही हूँ लेकिन मुनिराज ने मुझे इस योग्य समझा यह मुनि श्री की ही कृपा है।

इस कृति में अनेक आचार्यों, मुनिराजों, विद्वानों, कवियों आदि की रचनायें ली गई है उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करते है। इससे कृति में और रोचकता आ गई है।

सुधि पाठकजन यदि कहीं त्रुटि परिलक्षित होती है तो सुधार करें, पढ़ें और हमें अवगत करायें ऐसा निवेदन है।

गुरु चरणों में, मुनि चरणों में, संघ चरणों में अनेकों बार अनंत बार नमोस्तु।

इत्यलम्

गुरु चरणार्बिन्द चंचरीक
पं. राजकुमार जैन शास्त्री
54, शांति रेसीडेन्सी मकरोनिया सागर (म.प्र.)
मो. 8120226691

तीर्थंकर के समवशरण में स्त्री, बाल एवं वृद्ध अन्तमुर्हुत में 20 हजार सीढ़ियाँ चढ़कर सुखपूर्वक पहुँचते हैं। समवशरण में जीवों को निद्रा, मरण, प्रसव, शोक रागादिक नहीं होते हैं।
(मुनि सुव्रतनाथाय काव्य 10/45)

कहाँ क्या है?

क्र.	पाठ		पृष्ठ संख्या
	1 अभिषेक विधि		
1	मंगलाष्टक-स्तोत्र	-	1
2	अभिषेक विधि	-	4
3	अभिषेक प्रेरणा	-	10
4	अभिषेक स्तुति	-	12
5	अभिषेक गीत	-	13
6	अभिषेक करावजो रे...	-	14
7	अभिषेक से लाभ	-	14
8	अभिषेक पूजनादि सावधानियाँ	-	15
9	शांतिधारा-1	-	18
10	बृहत् शान्तिधारा-2	-	19
11	ऋद्धिशान्तिधारामन्त्रः-3	-	21
12	शान्तिधारा-4	-	24
	2 आरती		
1	ले के कर में कंचन थाल	-	30
2	चौबीसों भगवान	-	31
3	श्रमणचक्र आरती	-	32
4	जिनवाणी आरती	-	33
5	पंच परमेष्ठी आरती	-	35
6	श्रुतपंचमी आरती	-	35
7	आ. श्री विद्यासागर जी बुंदेली आरती	-	36
8	जय जय गुरु की बोल	-	37
9	तुम भी करो हम भी करे	-	37
10	ओम जय गुरुवर कष्ट हरो	-	38
11	दीपक ही दीपक जलायेंगे	-	39
12	जय जय गुरुवर भक्त पुकारे	-	39
13	गुण रत्नाकर	-	39
	3 गंधोदक की महिमा		
1	गंधोदक भजन	-	40
2	गंधोदक की महिमा-1	-	41
3	गंधोदक की महिमा-2	-	42

	4 पूजन		
1	विनय पाठ	-	43
2	पूजा पीठिका	-	45
3	समुच्चय पूजन	-	49
4	नवदेवता पूजन	-	53
5	लघु देव,शास्त्र, गुरु पूजा	-	56
6	विसर्जन पाठ	-	63
7	आ. श्री ज्ञानसागर जी पूजा	-	64
8	आ. श्री विद्यासागर जी पूजा	-	69
9	महावीर जयन्ती पूजन		72
10	अक्षय तृतीया पूजन	-	76
11	महावीर निर्वाण पूजन	-	81
12	श्रुतपंचमी पूजन-1	-	85
13	रक्षाबंधन पूजन-1	-	90
14	जिनवाणी सरस्वती पूजन	-	94
15	श्रुत पंचमी पूजा-2	-	99
16	रक्षाबन्धन पूजा-2	-	104
17	वीर शासन जयन्ती एवं दीपावली पूजन-		108
18	दशलक्षण धर्म पूजा	-	114
19	रत्नत्रय पूजा	-	119
20	पंचमेरु जिन पूजा	-	121
21	दीपावली पर्व पूजन	-	125
22	श्री गौतम गणधर पूजन	-	132
23	परम्पराचार्य वन्दन अर्घ्य	-	140
24	आचार्य श्री समय सागर जी पूजन		735
	5 विधान		
1	श्री सम्मेद शिखर विधान	-	144
2	श्री शांतिनाथ विधान लघु	-	157
3	श्री निर्वाण क्षेत्र विधान	-	163
4	श्री विद्यागुरु बुंदेली विधान	-	173
5	श्री गणधर विधान	-	186
	6 सामायिक		
1	सामायिक का महत्त्व	-	197

2	सामायिक विधि-1	-	197
3	सामायिक विधि-2	-	198
4	भावना द्वात्रिंशतिका -1	-	200
5	सामायिक पाठ (लघु)2	-	203
6	सामायिक पाठ-3	-	205
7	भावना बत्तीसी-4	-	207
	7 प्रतिक्रमण		
1	लघु प्रतिक्रमण	-	212
2	दार्शनिक प्रतिक्रमण	-	213
3	प्रतिक्रमण पाठ-छन्दोबद्ध	-	222
4	श्रावक प्रतिक्रमण	-	224
5	सामायिक एवं प्रतिक्रमण	-	226
	8 भावना		
1	भावना	-	240
2	समाधि भावना-1	-	240
3	समाधि भाषा-2	-	243
4	समाधि भावना-3	-	243
5	भावना दिन रात मेरी	-	244
6	वैराग्य भावना	-	245
7	रत्नाकर पञ्चविंशतिका-	-	247
8	मंगल भावना-1	-	251
9	बारह भावना-1	-	252
10	बारह भावना-2	-	253
11	बारह भावना-3	-	256
12	बारह भावना-4	-	260
13	बारह भावना-5	-	263
14	बारह भावना-6	-	264
15	मेरी भावना	-	265
16	आत्मतत्त्व भावना पाठ	-	266
17	आत्म भावना	-	269
18	आलोचना पाठ-1	-	270
19	आलोचना पाठ-2	-	272
20	दोष आलोचना	-	274

21	आत्मालोचना	-	274
22	अपनी आलोचना	-	277
23	प्रायश्चित पाठ	-	279
24	आत्म स्वरूप चिंतन	-	280
25	समाधिमरण पाठ-1	-	281
26	शुभ भावना	-	287
27	मृत्यु महोत्सव	-	288
28	समाधि भावना-1	-	291
29	समाधि भावना-2	-	292
	9 स्तुति		
1	चौबीस तीर्थंकर स्तुति	-	293
2	प्रार्थना-1	-	297
3	प्रार्थना-2	-	297
4	प्रार्थना-3	-	298
5	भरतेश गाथा	-	298
6	इष्ट प्रार्थना	-	301
7	दर्शन स्तुति-1	-	302
8	दर्शन स्तुति-2	-	303
9	दर्शन स्तुति-3	-	304
10	प्रभु स्तुति	-	305
11	देव स्तुति-1	-	306
12	देव स्तुति-2	-	307
13	पार्श्वनाथ स्तुति	-	308
14	जिनवाणी स्तुति-1	-	308
15	जिनवाणी स्तुति-2	-	309
16	जिनवाणी स्तुति-3	-	309
17	जिनवाणी स्तुति-4	-	310
18	जिनवाणी स्तुति-5	-	310
19	आ.श्री विद्यासागर जी स्तुति	-	311
20	आ.श्री विद्यासागर जी स्तुति	-	314
21	गुरु स्तुति-1	-	315
22	धर्म आराधना	-	315
23	गुरु स्तुति-2	-	316

24	दर्शन पाठ-1	–	317
25	दर्शन पाठ-2	–	318
26	पंच मंगल पाठ	–	319
27	पंचकल्याणक गीत	–	327
28	समवशरण रचना	–	327
29	गर्भकल्याणक स्तवन गीत	–	329
30	सोलह स्वप्न दर्शन गीत	–	329
31	स्वप्न फल गीत	–	330
32	सल्लेखना में धर्म रक्षा गीत	–	331
33	जन जागृति गीत	–	333
34	अहिंसा गीत	–	334
35	दुःखहरण जिनदेव स्तुति	–	335
36	संकटहरण पार्श्वनाथ विनती	–	337
37	आचार्य स्तवन	–	339
38	नन्दीश्वर द्वीप स्तवन	–	341
39	नवेदव स्तवन	–	345
40	श्री सम्मेदशिखर जी स्तुति	–	347
41	ज्ञानविद्या यशोगान	–	348
42	रक्षाबंधन कथा गाथा	–	351
43	निर्वाणकाण्ड -1	–	358
44	निर्वाण काण्ड-2	–	359
45	परिषहजय गीता	–	362
46	क्षमा वंदना	–	366
47	श्रुतधारकों का क्रमिक काल	–	367
48	चलो करे हम तीर्थ वंदना	–	368
	10 भक्ति पाठ		
1	कौन सी भक्ति कब करना	–	373
2	सिद्धभक्ति	–	376
3	चैत्यभक्ति	–	378
4	चारित्रभक्ति	–	384
5	निर्वाणभक्ति	–	387
6	योगि भक्ति	–	392
7	नंदीश्वर भक्ति	–	394

8	पंचमहागुरु भक्ति	–	404
9	शान्ति भक्ति	–	405
10	समाधिभक्ति	–	408
11	आचार्य भक्ति	–	410
12	ईर्यापथ भक्ति	–	412
13	आचार्य वंदना	–	416
	11 भजन		
1	हम उन्हीं के हो गये	–	418
2	सिद्ध नाम सत्य है	–	418
3	जब जीवन का अंत हो	–	419
4	चलो चिड़िया हुआ	–	420
5	गुरुदेव अपना जलवा	–	421
6	बेला अमृत गया	–	421
7	परम दिगंबर मुनिवर देखे	–	422
8	अरिहंतों की प्रतिमाओं का	–	423
	12 स्तोत्र		
1	श्री पार्श्वनाथ मन्त्रात्मक स्तोत्र	–	424
2	उपसर्गहर पार्श्वनाथ स्तोत्र	–	425
3	महावीराष्टक	–	426
4	सुप्रभात स्तोत्र	–	427
5	गोमटेश अष्टक	–	429
	13 महिमा		
1	जिनदर्शन की महिमा	–	431
2	जिन मंदिर में दान की महिमा	–	432
3	दान की महिमा-1	–	434
4	धन का सदुपयोग	–	434
5	दान के श्रेष्ठ क्षेत्र	–	435
6	दान की महिमा-2	–	435
7	भक्ति की महिमा	–	439
8	णमोकार मंत्र का माहात्म्य	–	440
9	णमोकारा मंत्र की महिमा	–	442
10	देवदर्शन प्रशंसा	–	446
11	अष्टाह्निक पर्व की महिमा	–	447

12	नंदीश्वर द्वीप की विशेषता –	448
13	अकृत्रिम चैत्यालय –	449
	14 महत्वपूर्ण विषय	
1	उच्चारण विधि –	452
2	मूर्ति पूजा का उद्देश्य –	469
3	परेशानियाँ से बचाती है नित्य पूजा–	470
4	देव दर्शन–विधि –	471
5	जिन दर्शन की महिमा –	473
6	मंदिर जाने का फल –	474
7	जिन पूजन (जीवन का महोत्सव)–	475
8	पूजन द्रव्य की श्रेष्ठता –	476
9	जिनेन्द्र गुणगान –	477
10	समाज का दर्पण मंदिर –	478
11	आराध्य के प्रति समर्पण ... –	480
12	संकट मोचन विनती –	481
13	पुण्य बढ़ाने के साधन –	482
14	मंदिर में उपकरण दान का फल –	482
15	आत्म विकास के बिन्दु –	482
16	मानवीय गुण धर्म –	483
17	कुछ अच्छी बातें –	484
18	सूक्तियाँ –	486
19	सामंजस्य का सूत्र –	487
20	श्रावक के मुलगुण –	489
21	भूत–वर्तमान–भविष्य–विदेहक्षेत्र तीर्थंकर	490
22	अनुष्ठान में गोत्र परिवर्तन विधि –	491
23	आरती का अर्थ –	491
24	रावण द्वारा जिनेन्द्र देव की पूजा	492
25	पूजन में आभूषण से लाभ –	494
26	मुकुट पहनने से फायदा –	494
27	तिलक लगाने से फायदा –	494
28	सोने–चाँदी के पात्र श्रेष्ठ –	494
29	मंगल कलश की महिमा –	495
30	पुण्याह का वाचन कब और क्यों–	495

31	तीर्थंकर चक्रवर्ती कैसा हार पहनते है	495
32	चँवर ढुराने से फायदा –	496
33	चतुदर्शी के उपवास का फल –	496
34	निर्वपामीति स्वाहा –	497
35	अरिष्ट ज्ञान –	497
36	अतिचार –	501
37	रात्रि भोजन से नुकसान –	504
38	बिना छने जल से नुकसान –	507
39	सप्त व्यसन –	509
40	स्वप्न और उनका फल –	515
41	सङ्गति –	517
42	जिन वंदना से श्रेष्ठ कुछ नहीं –	521
	15 ध्यान	
1	चरणों का ध्यान/ –	522
2	चौबीस तीर्थकर का ध्यान –	522
3	ह्रीं का ध्यान –	523
4	स्वस्तिक का ध्यान –	523
5	ऊँ का ध्यान –	524
6	सम्मेदशिखर वंदना–1 –	526
7	सम्मेदशिखर भाव वंदना–2 –	528
8	श्री सम्मेद शिखरजी के अर्घ –	531
	16 भेद प्रभेद	
1	कर्मों की अवस्थायें –	535
	17 जाप मंत्र	
1	जाप हेतु 108 गुरु मंत्र –	546
2	5 व्रतों की 25 भावना जाप –	549
3	अपरिग्रहव्रत पोषक पांच भावना जाप	550
	18 चालीसा	
1	श्रुतस्कंध भक्ति चालीसा –	551
	19 स्वाध्याय	
1	शास्त्र स्वाध्याय प्रारंभ करने का मंगलाचरण	556
2	रत्नकरण्डक श्रावकाचार –	557
3	इष्टोपदेश –	568

4	वृहद् द्रव्य संग्रहः	–	572
5	समाधितंत्रम्	–	576
6	छहढाला	–	584
7	भक्तामर स्तोत्र	–	595
8	कल्याण मंदिर स्तोत्र-1	–	602
9	कल्याण मंदिर हिन्दी-2	–	608
10	एकीभाव स्तोत्र	–	616
11	विषापहार स्तोत्र	–	620
12	श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्रम्	–	623
13	तत्त्वार्थ सूत्र	–	637
	20 कविता		
1	माता पिता और गुरु चरणों में	–	649
2	ये कागज की नाव	–	649
3	तू एकाकी है	–	650
4	मेरे गुरु का स्वरूप	–	651
5	निराशा भाग जायेगी	–	652
6	घाव	–	653
7	मुक्तक	–	653
8	मोक्ष का द्वार	–	654
9	उस दिन को कर याद	–	655
10	अकड़	–	656
	21 विशेष जानकारियाँ		
1	णमोकार मंत्र		657
2	माला में 108 दाने का महत्व		658
3	अभिषेक से फायदा		659
4	हवन क्यों किया जाता है		659
5	धूप से हवन करने का महत्व एवं फल		660
6	तीर्थंकर का बल		661
7	केवली मोक्ष स्थल		661
8	अनुयोग		662
9	सम्यग्दर्शन की महिमा		663
10	ऋद्धिधारी मुनियों के दृष्टांत		664
11	स्वाध्याय से लाभ		664

12	तीर्थंकर महावीर को मोक्ष गये इतने वर्ष	666
13	गुरु उपासना के अतिचार	666
14	नमस्कार के पॉच भेद	666
15	अन्तराय कर्म और भेद	667
16	मिथ्यादृष्टि/सम्यग्दृष्टि देव मरण के समय का विचार	667
17	जैन पूजाओं में प्रचलित अशुद्ध पाठ	669
18	अष्ट द्रव्य कैसे चढ़ाये	670
19	पूजन में धोती दुपट्टा क्यों	671
20	गर्भगृह में शुद्धि जरुरी	671
21	मंदिर में वेदी की प्रदक्षिणा क्यों	671
22	मंदिर में घंटा क्यों बजाया जाता है	672
23	विसर्जन क्या होता है	672
24	पूजा के पर्यायवाची	673
25	जाप का फल	673
26	प्रथम देवदर्शन विधि जन्में बालक की	673
27	सोलह सुख	674
28	व्रती एवं महाव्रती का अंतिम संस्कार	674
29	व्रत ऐसे करें एवं संकल्प एवं उद्यापन	675
30	सोलह स्वप्नों का फलादेश	681
31	विवाह के सप्त वचन	681
32	पूजन ऐसी लय में पढ़ें	683
33	सूक्तियाँ	698
34	तीर्थंकर के पंचकल्याणकों की तिथियां	702
35	अन्य पर्वों की तिथि पर करने योग्य पूजा	704
36	मेरा भारत महान क्यों	705
	22 सूतक की सबसे अच्छी जानकारी	
1	सूतक पातक	707
2	सूतक पातक का जैन आगम में उल्लेख	707
3	सूतक पातक विवरण	708
4	सूतक-पातक का वैज्ञानिक कारण	709
5	सूतक संबंधी शास्त्रों के प्रमाण	710
6	सूतक पातक में ऐसे गिने पीढ़ियाँ	714

(अभिषेक पाठ)

मंगलाष्टक-स्तोत्र

आचार्य श्री माघनन्दि कृत

(हिन्दी अनुवाद- मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज)

[अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र-महिताः, सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्री सिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥]

श्रीमन्नम्रसुरासुरेन्द्र मुकुट-प्रद्योत- रत्नप्रभा - ,
भास्वत् पाद-नखेन्दवः प्रवचनाऽम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरुवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥1॥

जिनके चरण कमल के नख सब, राशि उस उज्ज्वल चमक रहे,
देव असुर मुकुटों की मणियों से, शोभित हो विलस रहे।
वे अरिहन्त सिद्ध आचारज, पाठक मुनि अविकारी हो,
पंच परम परमेष्ठी प्रतिदिन, हमको मंगलकारी हों॥1॥

सम्यग्दर्शन - बोध - वृत्तममलं, रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति - श्री नगराधिनाथ - जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्ति सुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयः श्रयालयः[1],
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 2॥

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण, निर्मल रत्नत्रय पावन है,
मोक्षप्रदायी यही धर्म है, मुक्तिपुरी का साधन है।
जिनआगम जिनप्रतिमा जिनवर, के आलय अघकारी हों,
पंच परम परमेष्ठी प्रतिदिन, हमको मंगलकारी हों॥3॥

नाभेयादि-जिनाः[2] प्रशस्तवदनाः[3] ख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वर प्रभृतयो, ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु- लाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशति

पाठान्तर - १. श्यालयं २. नाभेयादिजिनाः ३. प्रशस्तवदना-

स्त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 4॥

ऋषभदेव से महावीर तक, तीर्थंकर चौबीस महा,
बारह चक्री नौ नारायण, प्रतिनारायण नवक रहा।
नौ बलभद्र जगत् विख्यात, पुरुष शलाका इन्हें कहो,
त्रेसठ ये सब महापुरुष भी, हमको मंगलकारी हो॥3॥

ये सर्वौषधि-ऋद्धयः सुतपसां[1], वृद्धिङ्गताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्ग महानिमित्तकुशलाशऽचाष्टौ वियच्चारिणः[3]।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो, ये बुद्धि ऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 4 ॥

सर्वोषधि ऋद्धिधारी मुनि, तप ऋद्धि के भी धारक,
क्रिया विक्रिया चारण ऋद्धि, बुद्धि ऋद्धि के भी साधक।
तप ऋद्धि भी बल ऋद्धि भी, रस ऋद्धि शिवकारी हो,
सप्त ऋद्धियों से शोभित मुनि, हमको मंगलकारी हो॥4॥

कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः[2], सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे, नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 5॥

अष्टापद से ऋषभदेव जी, महावीर पावापुर से,
गिरनारी से नेमिप्रभु जी, वासुपूज्य चम्पापुर से।
शेष बीस तीर्थंकर श्रीजी, गिरि सम्मेद विहारी हो,
मोक्षभूमियाँ चौबीसों की, हमको मंगलकारी हो॥5॥

ज्योतिर्व्यन्तर - भावनामरगृहे, मेरौ - कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्य शाखिषु तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु।
इष्वाकार-गिरौ च कुण्डल-नगे, द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 6 ॥

ज्योतिष व्यन्तर भवनवासियों, वैमानिक आवासों में,
मेरू कुलाचल चैत्य वृक्ष औ, वक्षारों रूप्याचल में।

पाठान्तर - १ सुतपसां २ सज्जिन पतेः ३. विधाश्चारणाः

इष्वाकार मानुषोत्तर हो, तेरह अठ गिरिधारी हो,
अकृत्रिम सब चैत्यालय भी, हमको मंगलकारी हो ॥6 ॥

सर्पो हारलता भवत्यसिलता, सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि, प्रीतिं विधत्ते रिपुः ।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः, किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः, कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 7 ॥
सर्प हार बन जाये माला, असि विष अमृत है बनता,
शत्रु मित्र सा प्रेमी बनता, देव स्वयं वश है होता।
बहुत कहें क्या रत्न वृष्टि भी, नभ से नित सुखकारी हो,
जैन धर्म का है प्रभाव वह, हमको मंगलकारी हो ॥7 ॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां, जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो, यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमासम्पादितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं,कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ 8 ॥
कल्याणक जो गर्भ समय पर, जन्म समय तीर्थंकर के,
दीक्षा ज्ञान महा कल्याणक, सुर नर पूजित पद जिनके।
देवों द्वारा मोक्ष समय की, पूजा विस्मयकारी हो,
पाँचों कल्याणक श्री जिन के, हमको मंगलकारी हो ॥8 ॥

इत्थं श्री जिन मङ्गलाष्टकमिदं सौभाग्य - सम्पत्करम्[1],
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणामुषः।
ये श्रृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनै, धर्मार्थ कामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय रहिता निर्वाण लक्ष्मीरपि॥ 9 ॥
इस प्रकार सौभाग्य प्रदायी, मंगल अष्टक जो पढ़ता,
कल्याणक पूजा विधान के, अवसर पर भी है पढ़ता।
अरु प्रभात में सुनता भी जो, धर्म अर्थ कामान्वित हो,
मोक्षपुरी को गमन करे वह, सबको मंगलकारी हो ॥9 ॥

॥ इति श्री मंगलाष्टक स्तोत्रं समाप्तम्॥

पाठान्तर : 1 सपत्प्रदं, सम्पत्करं धर्मोवस्य नभोऽपि तस्य सततं रत्नैः परंवर्षति (पद्मनन्दि पंचविंशतिका 191)

अभिषेक विधि
(आचार्य श्री माघनन्दि जी कृत)

(हिन्दी अनुवाद- मुनि श्री प्रणम्यसागर जी)

वसन्ततिलका छन्द

श्रीमन्-नता-मर-शिरस्तट-रत्नदीप्ति,
तोयाव-भासि-चरणाम्बुज-युग्म-मीशम्।
अर्हन्त-मुन्नत -पद-प्रद - माभि-नम्य ,
तन्मूर्ति-षूद्य-दभिषेक-विधिं-करिष्ये ॥1 ॥

(संस्कृत)

नित्य नम्र सुर मुकुटों की, रत्न दीप्ति से दीपित हैं,
जिनके चरण कमल जल जैसे, तरल प्रकाशित पूजित हैं।
शिवपददायी अरिहन्तों को, याद करूँ जिनरूप वरूँ,
उनकी ही जिन प्रतिमाओं का मंगल श्री अभिषेक करूँ ॥1 ॥

(प्रातः कालीन देव वन्दना में पूर्व आचार्यों के अनुक्रम से समस्त कर्मों के क्षय के लिए भाव पूजा, स्तवन, वन्दना सहित श्री पंच महागुरु भक्ति का मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।)

(एक कायोत्सर्ग अर्थात् नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें।)

(अभिषेक प्रतिज्ञा)

याः कृत्रिमास् तदितराः प्रतिमा जिनस्य,
संस्नापयन्ति पुरूहूत-मुखा-दयस्ताः।
सद्भाव-लब्धि-समयादि-निमित्त योगात्,
तत्रैव-मुज्जवल-धिया कुसुमं क्षिपामि ॥2 ॥
कृत्रिम अकृत्रिम जिन प्रतिमा, जिनवर की हैं जहाँ कहीं,
मुख्य इन्द्र से उनकी होती, नितप्रति ही अभिषेक विधि।
अहो परम सौभाग्य हमारा, काल लब्धि वश से आया,
पुष्पांजलि क्षेपण करने को, जिनवर निकट चला आया ॥2 ॥

(अभिषेक प्रतिज्ञायै पुष्पांजलि क्षिपेत्)

(श्रीकार लेखन)

इन्द्रवज्रा छंद

श्रीपीठ-क्लृप्ते-विशदाक्ष तौघैः, श्री प्रस्तरे पूर्ण-शशाङ्क -कल्पे।
श्रीवर्तके चन्द्र-मसीति वार्तां, सत्यापयन्तीं श्रियमा लिखामि ॥3 ॥

तीन जगत् में पावन पर्वत, जो सुमेरु हैं शाश्वत हैं,
उसके पाण्डुक वन में देखो, रखी शिला भी पाण्डुक है।
अक्षत सी वह शशि सम शोभे, जिनवर कारण श्री युत जो,
उस पर श्री लिखकर के मन में, करूँ प्रतिज्ञा विधि युत हो ॥3 ॥

ऊँ ह्रीं श्रीकार लेखनं करोमि।

(जिस चौका पर अभिषेक का संकल्प किया है, उस पर अक्षतों से 'श्री' लिखें)

अनुष्टुप

(पीठ स्थापना)

कनकाद्रि निभं कम्रं, पावनं पुण्य कारणम् ।
स्थापयामि परं पीठं, जिन-स्नपनाय भक्तितः ॥4 ॥

स्वर्ण रजत उत्तम धातु का, जो पावन सिंहासन है,
अधर विराजे श्रीजिन फिर भी, नाम धरे सिंहासन है।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, थाप रहा उस आसन पे,
श्री जिनवर जी की प्रतिमा को, लाऊँगा सिर आसन पे ॥4 ॥

(यह पढ़कर श्री से सुशोभित चौका पर सिंहासन अथवा अभिषेक पात्र रखें)

ऊँ ह्रीं श्रीपीठ स्थापनं करोमि।

वसन्ततिलका

(अभिषेक हेतु प्रतिमा स्थापना)

भङ्गार - चामर-सुदर्पण-पीठ-कुम्भ,
ताल-ध्वजा-तप-निवारक-भूषिताग्रे।
वर्धस्व-नन्द जय-पाठ पदा-वलीभिः,
सिंहासने जिन! भवन्त-महं श्रयामि ॥5 ॥
वृषभादि-सुवीरान्तान् जन्माप्तौ जिष्णुचर्चितान।
स्थापयाम्यभिषेकाय भक्त्या पीठे महोत्सवम् ॥5 ॥

चामर दर्पण आसन कलशा, झारी मंगल द्रव्य रहे,
ध्वजा वीजना तथा छत्र भी, आसन आगे शोभ रहे।
जयवन्तों जिनदेव सदा ही, जय-जयकार करो उर धार,
सिंहासन पर आप पधारों, पाप कर्म का कम हो भार ॥5 ॥

ओं ह्रीं श्री धर्म तीर्थाधिनाथ भगवन्निह स्नपन पीठे सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ।

वसन्ततिलका

(4 कलश स्थापना)

श्रीतीर्थ कृत्स्नपन-वर्य विधौ सुरेन्द्रः,
क्षीराब्धि-वारिभि-रपूरय-दुद्ध कुम्भान्।
यॉंस्ता[1]-दृशा-निव विभाव्य यथा र्हणीयान्,
संस्थापये कुसुम-चन्दन-भूषिताग्रान् ॥6 ॥

अनुष्टप छंद

शात कुम्भीय कुम्भौघान्, क्षीराब्धेस् तोय पूरितान्।
स्थापयामि जिन स्नान, चन्दनादि सु चर्चितान् ॥6 ॥

श्री जिन के जन्माभिषेक की, विधि हुई जो देवों से,
वैसी ही प्रतिमाभिषेक विधि, वैभव भक्ति भावों से।
स्वर्ण कलश में क्षीरोदधि का, प्रासुक जल लेकर आया,
चन्दन केसर कुसुम विभूषित, चार कलश में भर लाया ॥7-8 ॥

ओं ह्रीं चतुः कोणेषु चतुः कलश स्थापनं करोमि।

(यह पद पढ़कर चार कोनों में चार कलश स्थापन करें)

वसन्ततिलका **(अर्घ्य)**

आनन्द-निर्भर,- सुर- प्रमदादि -गानै,
र्वादित्र-पूर- जय-शब्द-कल- प्रशस्तैः ॥
उद्गीय -मान- जगतीपति कीर्ति मेनां,
पीठस्थलीं वसु-विधार्चन-योल्लसामि ॥9 ॥

आनन्दित हो सुर खचरी भी वनिता करतीं मंगलगान,
वादित्रों जय-जय तालों से, सब करते जिनवर सम्मान।

पाठान्तर :- 1 तांस्ता

पुण्यफला अरिहन्ता की यह, पुण्य कीर्ति का महाप्रभाव,
वसु–विधि अर्घ्य समर्पित जिनवर, बना रहे पूजन का भाव ॥9 ॥

ओं ह्रीं स्नपनपीठ स्थिताय जिनाय अर्घ्यं........।

(यह पढ़कर अर्घ चढ़ावें तथा वादित्र या घण्टा आदि का शब्द करते हुए जय-जयकार करें)

(अभिषेक)

कर्म-प्रबन्ध-निगडै-रपि हीन-ताप्तं,
ज्ञात्वापि भक्ति-वशतः परमादि-देवम्।
त्वां स्वीय-कल्मष-गणोन्मथ-नाय देव।
शुद्धोदकै-रभि-नयामि महा-भिषेकम् ॥10 ॥

कर्म बंध से रहित आप हो, परम शुद्ध बाहर भीतर,
जान रहा हूँ फिर भी प्रभुवर, भक्ति भाव से होकर तर।
अपने मन का कालुष धोने, आप्त देव का न्हवन करूँ,
भाव शुद्धि से शुद्ध उदक से, निज–उर जिनवर छवि धरूँ ॥10 ॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं इवीं इवीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्र-तर-जलेन जिन-मभिषेचयामि स्वाहा।

तीर्थोत्तम-भवै-नीरैः, क्षीर-वारिधि-रूपकैः।
स्नपयामि सुजन्माप्तान्, जिनान् सर्वार्थ सिद्धि दान् ॥11 ॥

(निम्न मंत्र पढ़ते हुए सभी लोग अभिषेक करें)

ओं ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामि[1] स्वाहा।

(यह मंत्र 9 या 108 बार पढ़कर अभिषेक करें।)

मलिनी

सकल भुवननाथं तं जिनेन्द्रं सुरेन्द्रैर -
भिषवविधिमाप्तं स्नातकं स्नापयामः।
यदभिषवन-वारां बिन्दुरेकोऽपि नृणां,
प्रभवति हि विधातुं भुक्ति-सन्मुक्ति-लक्ष्मीम् ॥12 ॥

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं इवीं इवीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं झं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं ह्रः यः सः क्षां क्षीं

पाठान्तर - 1. स्नपयामीति स्वाहा

क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः द्रां द्रीं नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः इति बृहच्छान्ति-मन्त्रेणाभिषेंक करोमि।

(मंदिर के मूलनायक एवं जिन भगवान की प्रतिमा का, चौबीसी का अभिषेक शांतिधारा करें उनका अर्घ्यं चढ़ाये)

लघु शांतिधारा मंत्र

(अभिषेक पश्चात् अर्घ्य)

पानीय-चन्दन- सदक्षत-पुष्प-पुञ्ज,
नैवेद्य- दीपक - सुधूप - फल- व्रजेन।
कर्माष्टक - क्रथन-वीर- मनन्त-शक्तिं,
सम्पूजयामि महसा महसां निधानम् ॥13 ॥

जल चन्दन अक्षत पुष्पों का, चरुवर दीप धूप फल ले,
आठों का इक अर्घ्य बनाकर, जिनवर सम्मुख कर-कर ले।
अष्ट कर्म से रहित बनूँ मैं, और बनूँ तुम सम भगवान्,
यही भाव से अर्घ्य चढ़ाता, शीघ्र मिले जिनगुण की खान ॥13 ॥

ओं ह्रीं अभिषेकान्ते श्री वृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घ्यं.........।

हे तीर्थपा निज यशो धवली कृताशाः,
सिद्धौष धाश्च भव-दुःख महा-गदानाम्।
सद् भव्य हृज्जनित पंक कबन्ध कल्पा,
यूयं जिनाः सतत शान्तिकरा भवन्तु ॥14 ॥

इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्

(जिनबिम्ब परिमार्जन)

नत्वा मुहु-र्निज-करै-रमृतोप-मेयैः,
स्वच्छै-र्जिनेन्द्र तव चन्द्र करा वदातैः।
शुद्धां-शुकेन विमलेन नितान्त-रम्ये,
देहे स्थितान् जल-कणान् परिमार्जयामि ॥15 ॥

जिन बिम्बों का वस्त्र से, परिमार्जन आनन्द।
कौन कह सके धरा पर, कितना पुण्य प्रबंध॥

पाठान्तर - 1. स्नपयामीति स्वाहा

जिन प्रतिमा जिन सारखी, करो नित्य तुम ध्यान,
हुआ होएगा इसी से, आतम का कल्याण ॥15॥
ओं ह्रीं अमलां शुकेन जिन-बिम्ब परिमार्जनं करोमि।

(अभिषेक स्तुति)

हमने प्रभुजी के चरण पखारे ।।टेक ॥
जनम जनम के संचित पातक, तत्क्षण ही निरवारे ॥ हमने ....
प्रासुक जल के कलश श्रीजिन, प्रतिमा ऊपर ढारे ॥ हमने......
वीतराग अरहंत देव के, गूँजे जय जयकारे ॥ हमने ....
चरणाम्बुज स्पर्श करत ही, छाये हर्ष अपारे ॥ हमने ......
पावन तन मन नयन भये सब, दूर भये अँधियारे ॥ हमने ....

(पुनः जिनबिम्ब यथास्थान विराजमान करना)

स्नानं विधाय भवतोऽष्ट, सहस्त्र नाम्ना-
मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम्।
जिघृक्षु-रिष्टि-मिन तेऽष्ट तयीं विधातुं,
सिंहासने विधिवदत्र निवेशयामि ॥16॥
धन्य हुआ मैं आज जिनेश्वर, करके पावन श्री अभिषेक,
एक हजार आठ नामों से, उच्चारण करता सविशेष।
मन वच तन की शुद्धि संभाले, अठ विधि पूजा करने आज,
सिंहासन पर पुनः आपको, संस्थापित करता जिनराज ॥16॥
ओं ह्रीं श्री सिंहासनपीठे जिन-बिम्बं स्थापयामि।

(जिनबिम्ब स्थापना का अर्घ्य)

जल गंधाक्षतैः पुष्पैश् चरु दीप सु धूपकैः।
फलैर्रघै र्जिनमर्चेज्जन्मदुःखा पहानये ॥17॥
जल चन्दन अक्षत तथा पुष्प चरु औ दीप।
धूप फलों के अर्घ्य से, जिन चरणों के समीप ॥17॥
ओं ह्रीं श्री पीठं स्थित जिनाय अर्घ्यं......।
नत्वा परीत्य निज नेत्र ललाट योश्च।

व्याप्तं क्षणेन हरतादघ संचयं मे ॥
शुद्धोदकं जिनपते! तव पादयोगाद्।
भूयाद् भवा तपहरं, धृत मादरेण ॥18॥
मुक्ति श्री वनिता करोदक मिदं, पुण्याङ्कुरोत्पादकम्।
नागेन्द्र त्रिदशेन्द्र चक्रपदवी, राज्याभिषे कोदकम्॥
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-दर्शनलता-संवृद्धि-सम्पादकं।
कीर्ति श्री जय साधकं तव जिन, स्नानस्य गन्धोदकम् ॥19॥
अति सुगन्धित जिन देह से, संस्पर्शित जल जान।
जिन गंधोदक सिर धरूँ, धन्य बना दिन-मान ॥18-19॥
ओं ह्रीं श्री जिन गन्धोदकं स्व नेत्र ललाटे धारयमि।
इमे नेत्रे जाते, सुकृत जल सिक्ते सफलिते।
ममेदं मानुष्यं, कृति जनगणा देयम भवत्॥
मदीयाद् भल्लाटा दशुभतर कर्माटन मभूत्।
सदेदृक् पुण्यौधो मम, भवतु ते पूजन विधौ ॥20॥

(सबसे पहले दिगम्बर पिच्छीधारी साधु हो तो उनको गंधोदक दें वरिष्ठता के क्रम से फिर प्रतिमाधारी को दें फिर अन्य व्यक्ति ग्रहण करें)

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

तीर्थक्षेत्र पर अभिषेक के पश्चात् गंधोदक वाला वस्त्र धूप में सुखाकर अपने नगर में लाये और प्रासुक जल में भिगोकर गंधोदक बनाकर दे सकते है।

चिंतवन करें :

- हे प्रभू! यह गंधोदक हमें रोग-शोक से मुक्त करे।
- आपके समान गुणवान भगवान बनाए।
- हमारे सभी पापों का क्षय करे।
- हमारे ह्रदय में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा रहे।
- प्राणीमात्र का मंगल हो, कल्याण हो, शांति हो।
- सभी स्वस्थ हो, सभी के कर्मों का क्षय हो, दुःखों का क्षय हो।

अभिषेक प्रेरणा

विद्योदधि छन्द (१६-१३/१४ मात्रिक)

रचियित्री: आर्यिका श्री १०५ मृदुमति माता जी

त्रिभुवन के ईश्वर जिनवर का, मंदिर बना विशाल रे।
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥ध्रुव॥
प्रतिदिन दर्शन पूजन कर लो, वंदन करो त्रिकाल रे॥ध्रुव॥
कूट कँगूरे दुग्ध फेन सम, जिन्हें देख जन मान हरें,
ध्वज समूह की पंक्ति देखते, जिन मंदिर का ज्ञान करें।
महाविभव का कारण मंदिर, देखो छवि मनहार रे,
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥1॥
त्रिभुवन की सर्वोच्च सम्पदा, सभी देखने आते हैं,
विद्याधर-सुर वधुओं द्वारा, पुष्प बिखेरे जाते हैं।
ऋषि मुनियों से सेवित वंदित, जैन भवन का द्वार रे,
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥2॥
भवन आदिक सुरियों द्वारा, सदा गीत गाये जाते,
नाना मणि की प्रचुर कांति से, पृथु गवाक्ष मन को भाते।
नृत्य गान से वाद्य यंत्र से, गूँजे नित झनकार रे,
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥3॥
सिद्धयक्ष गंधर्व आदि के, कर में वीणा शोभ रही,
संगीतों के धीर नाद से, मधुर गूँज मन लोभ रही।
भू से नभ तक दिग्दिगन्त तक, आपूरित रव तार रे,
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥4॥
चंचल मालाओं से शोभित, अलि सम घूँघर वाले केश,
वाद्यों की सुर ताल लयों में, नाचें सुरियाँ धर नववेश।
नुपूर नाद मनोहर लगता, नर्तकियाँ हुशियार रे ,
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥5॥
छत्र व्यजन भृंगार कलश ध्वज, स्वस्तिक दर्पण सित चामर,
वसु विध मंगल द्रव्य शतक वसु,रहें निकट में प्रति जिनवर।

बिन निर्मित मंदिर में शत वसु, जिन प्रतिमा सुखकार रे,
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥6॥
देवदारु कर्पूर अगुरु की, चंदन तरु की धूप बनी,
मेघ युक्त उत्तुंग गगन में, फहराती नित ध्वजा तनी।
नीचे धूप सुगंधी व्यापे, ऊपर केतु निहार रे,
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥7॥
यक्ष देव सित छत्र हाथ ले, जिनवर पर छाया करते,
दुग्ध सदृश चामर जिनेन्द्र पर, यक्षेन्द्रों द्वारा ढुरते।
भामण्डल जिनवर के पीछे, रवि से बढ़ छवि धार रे,
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥8॥
बिन निर्मित चैत्यालय शोभा, समवशरण सी प्यारी है,
समवशरण धनपति से निर्मित, कृत्रिम रचना न्यारी है।
कृत्रिम और अकृत्रिम मंदिर, 'मृदुता' से उर धार रे,
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥9॥
त्रिभुवन के ईश्वर जिनवर का, मंदिर बना विशाल रे।
जल्दी आकर कर लो भक्तो, जिनेन्द्र पर जलधार रे॥ध्रुव॥

अभिषेक आरती

अमृत से गगरी भरो कि न्यवन प्रभु आज करेंगे।
खुशी-खुशी मिल के चलों कि न्हवन प्रभु आज करेंगे॥
सब साथी मिल कलश सजाओ, मंगलकारी गीत सुनाओ।
मन में आनन्द भरो कि न्हवन प्रभु आज करेंगे॥
इन्द्र-इन्द्राणी हर्ष मनावें, प्रभु-चरणों में शीश झुकावे।
प्रभुजी की छवि निरखो कि न्हवन प्रभु आज करेंगे॥
सुवर्ण-कलश प्रभु उद्धति धारा, अंगे न्हावे जिनवर प्यारा।
स्वामी जगत निरखो कि न्हवन प्रभु आज करेंगे॥
है खुकारी सब दु:खहारी, सेवा जिनकी प्यारी प्यारी।
लेकर 'सरस' को चलो कि न्हवन प्रभु आज करेंगे॥

अभिषेक स्तुति

रचयिताः मुनि श्री 108 सुव्रतसागर जी महाराज

(लय- जीवन है पानी की बूँद...)

प्रासुक जल से जिनवरजी का न्हवन कराओ रे।
कलशों से धारा हाँ-हाँ-२, सब-रोज कराओ रे॥
प्रासुक जल से......... ॥
ये अरिहंत जिनेश्वर हैं, परमपूज्य परमेश्वर हैं।
परम शुद्ध काया वाले, जगतपूज्य धर्मेश्वर हैं॥
कलशों के पहले हाँ हाँ-२, सब शीश झुकाओ रे...।
प्रासुक जल से .... ॥1 ॥
देव रतन के कलशा ले, नीर क्षीरसागर का ले।
बिम्बों के अभिषेक करें, बिम्ब अकृत्रिम छवि वाले॥
बिम्बों की महिमा हाँ-हाँ-२, सब मिलकर गाओ रे ।
प्रासुक जल से .... ॥2 ॥
रतन कलश भी पास नहीं, क्षीर सिन्धु का नीर नहीं।
भाव भक्तिमय हम आये, प्रासुक लेकर नीर सही॥
ढारो रे कलशा हाँ हाँ-२, सब पुण्य कमाओ रे...।
प्रासुक जल से........... ॥3 ॥
भगवन् कोई न छू सकते, किन्तु बिम्ब तो छू सकते।
वो भी बस अभिषेक समय, इन्हें शीश पर धर सकते॥
मौका ये पाके हाँ-हाँ-२, सब होड़ लगाओ रे...।
प्रासुक जल से .... ॥4 ॥
फिर प्रक्षालन भी कर दो, श्रद्धा से गंधोदक लो।
गंधोदक से रोग सभी, तन मन के अपने हर लो॥
झूमो रे नाचो हाँ हाँ-२, जयकार लगाओ रे...।
प्रासुक जल से .... ॥5 ॥
प्रासुक जल की यह धारा, समझो ना केवल धारा।
कर्त्ता दर्शक 'सुव्रत' के, कर्मों को धोती धारा॥
धारा जल धारा हाँ हाँ-२, सब करो कराओ रे...।
प्रासुक जल से .... ॥6 ॥

अभिषेक गीत

रचयिताः मुनि श्री 108 सुव्रतसागर जी महाराज

जल्दी-जल्दी चलो रे मंदिर, अपना फर्ज निभाने को।
प्रासुक जल से भरो कलशियाँ, प्रभु का न्हवन कराने को॥
जो अभिषेक कराके मैना, पति का कुष्ट मिटाई थी।
जिसके द्वारा श्रीपाल ने, कंचन काया पाई थी॥
जिससे हुए सात सौ सुंदर, वो ही गाथा गाने को।
प्रासुक जल से....
जिस अभिषेक को करके सुरगण, करें महोत्सव स्वर्गों में।
कृत्रिमा-कृत्रिम बिम्ब पूजकर, करें पर्व जिन-भवनों में॥
देवों जैसे करके नमोऽस्तु, आये शीश झुकाने को।
प्रासुक जल से....
श्री जिन का अभिषेक न्हवन कर, दुख कष्टों का कीच हटे।
ऋद्धि-सिद्धि की बात कहें क्या? मैली आतम चमक उठे॥
रोग शोक भय संकट हर के, वीतरागता पाने को।
प्रासुक जल से....
जिन-अभिषेक महापुण्यों से, बड़भागी कर पाते हैं।
देह शुद्ध कर लेकर कलशे, श्री जी का न्हवन कराते हैं॥
पाप नशा के पुण्य कमा के, भाग्य कमल महकाने को।
प्रासुक जल से.......
हमने अपना फर्ज निभाया, भक्त पुजारी बनने का।
तू भी अपना फर्ज निभाले, हम को निज सम करने का॥
'सुव्रत' को आशीष मिले बस, आतम 'विद्या' पाने को।
प्रासुक जल से.......

अभिषेक करावजो रे...

रचियित्री: आर्यिका श्री 105 पूर्णमति माता जी

आवजो, आवजो, आवजो, जिन मंदिर में आवजो रे... ।
सारा भक्ता ने लावजो रे, अभिषेक करावजो रे... ॥
पावन करलो हृदय कलशिया, श्रद्धा के जल से भरी,
शांतिनाथ की दिव्य छवि से, शांति की धारा झरी।
आवजो, आवजो, आवजो थाल श्रीफल ना लावजो रे... ।
अभिषेक करावजो रे, प्रभु न्हवन करावजो रे... ॥1 ॥
सिंहासन पे प्रभु जी विराज्या, करलो दर्शन सभी,
हाथ जोड़ कर नयन मूँद लो, कट जाये कर्म सभी।
आवजो, आवजो, आवजो मिल श्रीफल ना लावजो रे...
अभिषेक करावजो रे, प्रभु न्हवन करावजो रे... ॥2 ॥
सब भक्तों के भाग्य जगे हैं, आज प्रभु जी मिले,
श्री जिनवर की परिक्रमा से, मुरझाई कलियाँ खिलें।
आवजो, आवजो, आवजो निज शीश झुकावजो रे...
अभिषेक करावजो रे, प्रभु न्हवन करावजो रे...

अभिषेक से लाभ

1. **विघ्नों का नाशक–** जिन अभिषेक से विघ्नों का नाश होता है। आचार्य रविषेण कृत पद्मपुराण में कथन मिलता है कि सीता महादेवी बलभद्र राम की पट्टरानी थी। उसकी दाई आँख फड़कने लगी। उसने आगत विघ्न का यह निमित्त है ऐसा जान अयोध्या के जिनालयों में मंदिरों में विघ्ननिवारक शांति अभिषेक, वृहद अभिषेक कराये। पूर्व भव में मुनियों के लिये अपवाद लगाने रूप तीव्र निकाचित पाप कर्मोदय से उसे वनवास तो हुआ किन्तु जिनाभिषेक के प्रभाव से वन में भी उसके विघ्न टलते

रहते, वन में भी उसको सहायता मिलती रही और शीघ्र मामा का आश्रय पा विघ्नों पर विजय पाई थी।

2. **मंगलदायक–** जिनाभिषेक मंगलदायक होता है। जो प्रातः अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो जिन भगवान का अभिषेक करते हैं उसका पूरा दिन मंगलमय बीतता है। पापों का क्षय होता है, सुख, शांति और समृद्धि को प्राप्त होता है। आदि पुराण में वर्णन आता है कि भरत चक्रवर्ती को जब 16 अशुभ स्वप्न आये, उन्होंने उस अशुभ की निवृत्ति के लिये जगह-जगह मंदिरों में शांति, अभिषेक करवाया, जो कि सबके लिए मंगलदायक था।

गन्धोदक का रहस्य–

गंधोदक दो शब्दों से मिलकर बना है। गंध और उदक। गंध का अर्थ है सुगंधित और उदक का अर्थ है जल। अर्थात् सुगंधित जल गंधोदक कहलाता है और तीर्थंकर भगवान के 34 अतिशयों में सुगंधित शरीर होना भी एक अतिशय है। तो जो जल तीर्थंकर के शरीर के स्पर्श से या न्हवन से सुगंधित हो जाता है उसे गंधोदक कहते है।

अभिषेक पूजनादि करते समय ध्यान रखें

❈ वस्त्र-शरीर-मन शुद्ध हो इसका विशेष ध्यान रखें।

❈ अपना शरीर खुजलाने, हाथ से जमीन छू जाने आदि पर हर बार हाथ धोकर पवित्रता बनाए रखने हेतु यह अत्यावश्यक है। (अभिषेक के लिए कलश में रखे जल का अन्य कार्यों में उपयोग न करें)।

❈ अभिषेक के लिए प्रतिमाजी को गले से पकड़कर न उठाएँ। अपने ढँके हुए सिर पर श्रद्धा- भक्ति- आदर पूर्वक लाएँ/ ले जाएँ। यथास्थान विराजमान करें। कपड़ा लगा कर प्रतिमा जी न उठाएँ/लाएँ/ले जाएँ।

❈ प्रक्षाल (मार्जन) सावधानी से करें ताकि प्रतिमाजी गीली न रहें।

❈ प्रक्षाल के बाद प्रतिमाजी को यथास्थान विराजमान कर अर्घ्य चढ़ाने के बाद अपने से धर्म में वरिष्ठजनों (मुनि-आर्यिका-व्रती- श्रावक यदि हों तो) को गंधोदक देकर के ही स्वयं गंधोदक ग्रहण करें। जल व गंधोदक में नाखून न डूबें, या चम्मच से लें।

❈ ध्यान रखें गंधोदक आँख-कान-नाक में न जाए। यह अपवित्र नवमल

द्वारों में गिने जाते हैं। गंधोदक अपनी नाभि से नीचे भी न लगाएँ। इससे गंधोदक की अवमानना का दोष लगता है। गंधोदक में दोबारा अंगुलियाँ न डुबोएँ।

❈ ठोने पर अष्टदल कमल अंकित करें। (यह द्रव्य मन का प्रतीक है।)

❈ पुनः खड़े हों, जिस भगवान की वेदी पर आप वंदना कर रहे हैं उस वेदी के मूलनायक का अर्घ चढ़ाएँ। चावल नीचे न गिरें। प्रत्येक वेदी के मूलनायक होते हैं। मंदिर के मूलनायक अलग होते हैं उनके ही नाम से मंदिर की ख्याति-प्रसिद्धि होती है।

❈ सभी जगह अर्घ चढ़ाकर एक ओर खड़े होकर नौ बार णमोकार का जाप करें। प्रभू की सहज भक्ति करें, गुणों का ध्यान कर भावना रखें कि- हम भी कर्मों का क्षय कर आपकी तरह ही सिद्ध भगवान बनें। जो आपका वर्तमान है वैसा ही हमारा भविष्य हो। सभी के कल्याण, मंगल की कामना करें। सभी स्वस्थ हों, निरोग हों, सभी के कर्मों का क्षय हो, दुःखों का क्षय हो, बोधिलाभ हो, सद्‌गति की प्राप्ति हो, समाधिमरण हो, सभी को आपके सदृश अनंत गुणों की संपदा प्राप्त हो।

❈ फिर बैठ कर व्यवस्थित रीति से नमस्कार करें तथा शेष सभी वेदियों पर भी इसी तरह वंदना करें।

❈ वंदना के बाद आपको पूजा करना हो, स्वाध्याय करना हो, जाप-ध्यान करना हो तो अवश्य करें।

❈ मंदिर से बाहर निकलने से पहले प्रभू से अवश्य प्रार्थना करें- प्रभू हम घर जा रहे हैं, पुनः-पुनः आपकी अलौकिक, वीतरागता का दर्शन हो। आप ही हमारे आराध्य हो, मैं गृहस्थी के जंजाल में पड़ गया हूँ। प्रभू आप ही हमें सद्‌बुद्धि देवें, रक्षा करें। आप सदा ही हमारी श्रद्धा में रहें, हमारा ध्यान आप में रहें। कहीं भटक जाऊँ, संसार के कार्यों में उलझ जाऊँ, यदि प्रमादवश आपको भूल जाऊँ तो आप हमें जगा देना, सम्हाल देना। हम आपके हैं, आप हमारे हैं। आप सदैव हमारे ध्यान में रहें।

❈ दिन भर में मोबाईल पर या सामने मिलने वालों से बातचीत करने से पहले जय जिनेन्द्र अवश्य बोलें, संकोच न करें।

शांतिधारा-1

रचयिताः मुनि श्री १०८ प्रणम्यसागर जी

ऊँ नमः सिद्धेभ्यः ऊँ नमः सिद्धेभ्यः ऊँ नमः सिद्धेभ्यः। श्री वीतरागाय नमः। श्री जिनशासनाय नमः। श्री अनेकान्त धर्माय नमः। अरिहंता मंगलं भवतु सिद्धा मंगल भवतु साहु मंगल भवतु आर्हतधर्मो मंगल भवतु।

ऊँ नमोर्हते भगवते श्री मते श्री (मंदिर के मूलनायक भगवान का नाम) ऋषभनाथ तीर्थंकराय, समवशरण शोभिताय, द्वादशगण-परिवेष्टिताय, परमौदारिक शरीर पवित्राय, अनन्त चतुष्य सहिताय, शुद्धज्ञान चेतनाय, ऋषि-आर्यिका-श्रावक-श्राविका प्रमुख चतुः संघोपसर्ग हराय श्री शान्तिनाथाय घातिकर्म रहिताय, अघातिकर्म रहिताय, **अपवादभयं** अपहर-अपहर, **अकालमृत्युं** अपहर-अपहर, **अतिकामं**अपहर-अपहर, **क्रोधादिकषायं** अपहर-अपहर, **अग्निवायुभयं** अपहर-अपहर, **देव-मनुष्य-तिर्यंक् कृतोपसर्ग** अपहर-अपहर, **प्राकृतिकोपसर्गं** अपहर-अपहर, **सर्वदुष्टभयं** अपहर-अपहर, **सर्वक्रूर रोगं** अपहर-अपहर, **सर्व शूलरोगं** अपहर-अपहर, **सर्व कुष्ठरोगं** अपहर-अपहर, **सर्वपशुरोगं** अपहर-अपहर, **सर्व वृक्षपुष्परोगं** अपहर-अपहर, **भूकम्पभयं** अपहर-अपहर, **अतिवृष्टिभयं** अपहर-अपहर, **अनावृष्टि भयं** अपहर-अपहर, **सर्वदुर्भिक्षभयं** अपहर-अपहर, **सर्वोदरमस्तक व्याधिं** अपहर-अपहर, **सर्वांगव्याधिं** अपहर-अपहर, **व्यन्तरादिबाधां** अपहर-अपहर, **सर्वासाता वेदनायं** अपहर-अपहर, **सर्वकर्मरोगं** अपहर-अपहर।

हे पार्श्व तीर्थनाथ! सर्वेषां (शांतिधारा कर्त्ता का नाम) शातिं कुरु-कुरु **सर्वजनानन्दनं** कुरु-कुरु,सर्व **भव्यानंदनं** कुरु-कुरु, सर्व **गोकुलानन्दनं** कुरु-कुरु, सर्व **लोकानन्दनं** कुरु-कुरु। श्री वर्धमान भगवान्। सर्वेषांस्वस्तिरस्तु, कल्याणमस्तु, जयोस्तु, दीर्घायुरस्तु, वीरवंशवृद्धिरस्तु, ऐश्वर्याभिवृद्धिरस्तु। ऊँ ह्रीं श्री सिद्धपरमेष्ठिने श्री ऋषभ-अजित-चन्द्रप्रभ-वासुपूज्य-शांतिनाथ-मुनिसुव्रतनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-वर्धमानस्वामिने चतुः षष्टिऋद्धिसमन्वित-मुनये अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य जिनचैत्यालय नवदेवताभ्यो नमः।

ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐ अर्हं अ सि आ उ सा अनाहत विद्यायै णमो अरहंताणं ह्रौं

सर्व विघ्न शान्ति जिनशासन प्रभावनां कुरू-कुरू। (9 बार मंत्र पढ़ें)

सम्पूजकानां प्रतिपालकानमां यतीन्द्र सामान्य तपोधननानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥

बृहत् शान्तिधारा-2

ॐ नमः सिद्धेभ्यः, श्री वीतरागाय नमः। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय-द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते। ॐ ह्रीं क्रौं मम पापं खण्डय खण्डय जहि-जहि दह-दह पच-पच पाचय पाचय। ॐ नमो अर्हं झं झ्वीं हं सं झं वं ह्वः पः हः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः द्रां द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते। (व्यक्ति का नाम) शान्तिधाराकारकाणां इष्टकार्यसिद्धयर्थं सर्वविघ्ननिवारणार्थं श्रीमते भगवते अर्हते सर्वज्ञ- परमेष्ठि- परमपवित्राय नमो नमः। शान्तिधाराकारकाणां श्री शान्तिनाथतीर्थंकर पादपद्मप्रसादात् सद्धर्म-श्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु सद्धर्मस्वशिष्य पर शिष्य वर्गाः प्रसीदन्तु नः।

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगाय मृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रव विनाशनाय सर्वारिष्टशान्तिकराय। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः मम सर्वविघ्नशान्तिं तुष्टिं पुष्टिं च कुरु कुरु स्वाहा। ममसर्वापवाद-शत्रुविघ्नोप-सर्गकामक्रोधपापवैराणि सर्वचौरदुष्टराजसर्प वृश्चिकसिंहादिभयानि च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। अतिवृष्टिं-अनावृष्टिंप्रकृति- प्रकोपं भूकंपं अग्निवायु-सम्बन्धिसर्वानिष्ट भयानि च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। सर्वात्मघातंपरघातंक्षामडामरं सर्वपरमंत्रस्य-दुष्प्रभावं च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। सर्वशूलकुक्षि,अक्षिकण्ठकटिजानु-शिरो रोगान् आन्त्रादिमन्थर (मोतीझिरा) सन्निपात-सर्वज्वररोगान् च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। अष्टादशकुष्ठ-चर्मरोगान् मधुमेहमहावात जलोदर भगन्दररोगान् असाध्यरोगान् च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। सर्वशीतलाश्वासकासक्षयरोगान्-उदर-हृदयशूलपक्षाघातसर्वापस्माररोगान् च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। अतिसार-संग्रहणीसंक्रामकरोगान्कण्ठग्रन्थि (थायराइड) अर्शस् (बवासीर) वृक्क (किडनी) रोगान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि।

उच्चनिम्नरक्तचाप (ब्लड्प्रेशर) अग्निमातृ (हरपिस) विद्रधि (कैंसर) रोगान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। पंचकोटि,षष्टिलक्ष,नवति,नव,सहस्र,पंचशत,चतुरशीति, संख्याप्रमितमानसिकवाचनिक शारीरिकसर्वरोगान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। सर्वनर-गजाश्वगोमहिषाजमारिं सर्वशस्य-धान्य-वृक्षलता-गुल्मपत्रपुष्पफलमारिं सर्वराष्ट्रदेशविश्वमारिं च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। सर्वक्रूरवेतालशाकिनीडाकिनी-भयानि सर्ववेदनीयमोहनीया दिकर्माष्टकं च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। (व्यक्ति का नाम) शान्तिधाराकारकाणां अशुभकर्मजनितदुःखानि दुष्टजनकृतान् मंत्रतंत्रदृष्टिमुष्टिछल छिद्रदोषान् च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। सर्वदुष्ट-देवदानवयोगिनीनरसिंह व्याघ्रादिजीव कृतदोषान् सर्वाष्टकुलीनागजनितविषभयानि च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। सर्वसिंहाष्टापदादि-स्थावरजंगमवृश्चिकसर्पादि-कृतदोषान् सर्वशत्रुकृतमारणोच्चाटनविद्वेषणमोहन-वशीकरणादिदोषान् च छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। शान्ति धाराकर्त्तणां चक्रविक्रम सत्त्वतेजोबलशौर्यशान्तीः पूरय पूरय। सर्वजीवानंदनं कुरु कुरु। चतुर्विध-संघानंदनं कुरु कुरु। सर्वयजमानानंदनं सर्वराजजनानंदनं च कुरु कुरु। सर्वगोवृषभादि-स्थलचरानंदनं कुरु कुरु। सर्वमयूरादिनभचरानंदनं च कुरु कुरु। सर्वमत्स्यादि-जलचरानंदनं कुरु कुरु। सर्वग्रामनगर-खेट कर्वटमटम्ब-द्रोण मुख-संवाहना नदनं कुरु कुरु।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु व्याधिव्यसनवर्जितं।
अभयं क्षेममारोग्यं स्वस्तिरस्तु विधीयते॥

एतत्पंचपरमेष्ठिभक्तिप्रसादात् मम (व्यक्ति का नाम) सर्वपरिवारस्य श्रीरस्तु। शान्तिरस्तु। तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु। धनधान्यसमृद्धिरस्तु। सुखमस्तु। सद्धर्मश्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभि-वृद्धिरस्तु। कल्याणमस्तु।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं बड़े बाबापुरुदेवेभ्यो नमो नमः।
सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवाञ्जिनेन्द्रः॥

❇ अभिषेक के बाद शांतिधारा की जाती है यदि अभिषेक ज्यादा लोग कर रहे है तो जय जय भंगवते सदा... या श्री जी का अभिषेक करे... यह पाठ करना चाहिए।

❇ शांतिधारा वृहत् ही प्रतिदिन करना चाहिए यदि किसी कारणवश समय नहीं है तो लघु शांतिधारा करना चाहिए।

❇ शांतिधारा के बाद छत्र अर्पण, चवँर अर्पण, आरती करना चाहिए।

ऋद्धिशान्तिधारामन्त्रः-3

ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं, अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। ॐ ह्रीं अनादि-सिद्धमंत्र-पूजन-भक्ति प्रसादात् ...... शान्तिधाराकर्तॄणां सर्वशान्तिर्भवतु स्वाहा।

1. ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो जिणाणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौ ह्रः अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा ऋद्धिमन्त्रभक्तिप्रसादात् सर्वेषां शान्तिर्भवतु विसूचिका-ज्वरादि-रोग-विनाशनं भवतु।
2. ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं शिरोरोगविनाशनं भवतु।
3. ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं नासिकारोगविनाशनं भवतु।
4. ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं अक्षिरोगविनाशनं भवतु।
5. ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं कर्णरोगविनाशनं भवतु।
6. ॐ ह्रीं अर्हं णमो कोट्ठबुद्धीणं ममात्मानि विवेकज्ञानं भवतु।
7. ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं हृदयरोगविनाशनं भवतु।
8. ॐ ह्रीं अर्हं णमो पादानुसारीणं परस्परविरोधविनाशनं भवतु।
9. ॐ ह्रीं अर्हं णमो संभिण्णसोदाराणं श्वासरोगविनाशनं भवतु।
10. ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयंबुद्धीणं कवित्वं पाण्डित्यं च भवतु।
11. ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धीणं प्रतीवादिविद्याविनाशनं भवतु।
12. ॐ ह्रीं अर्हं णमो बोहियबुद्धीणं अन्यगृहीतं श्रुतज्ञानं भवतु।
13. ॐ ह्रीं अर्हं णमो उजुमदीणं दारिद्रयविनाशनं भवतु।
14. ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीणं बहुश्रुतज्ञानं भवतु।
15. ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीणं सर्ववेदिनो भवन्तु।
16. ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं स्वसमयपरसमयवेदिनो भवन्तु।
17. ॐ ह्रीं अर्हं णमो अंट्ठगमहाणिमित्तकुसलाणं जीवितमरणादिज्ञानं भवतु।

18. ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउव्व-इड्ढिपत्ताणं कामितवस्तु-प्राप्तिर्भवतु।
19. ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं उपदेशप्रमितज्ञानं भवतु।
20. ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं नष्टपदार्थचिन्ताज्ञानं भवतु।
21. ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणांण आयुष्यावसानज्ञानं भवतु।
22. ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामीणं अन्तरिक्षगमनं भवतु।
23. ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं विद्वेषप्रतिहतं भवतु।
24. ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं स्थावरजंगमकृतविघ्नविनाशनं भवतु।
25. ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं विरुद्धवचः स्तम्भनं भवतु।
26. ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं विरुद्धसेनास्तम्भनं भवतु।
27. ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्ततवाणं विरुद्ध-अग्निस्तम्भनं भवतु।
28. ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं विरुद्धजलस्तम्भनं भवतु।
29. ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरतवाणं विषरोगादिविनाशनं भवतु।
30. ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणपरक्कमाणं असाध्यव्याधिविनाशनं भवतु।
31. ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं दुष्टमृगादिभयविनाशनं भवतु।
32. ॐ ह्रीं अर्हं णमोऽघोरगुणबंभयारीणं भूतप्रेतादिभयविनाशो भवतु।
33. ॐ ह्रीं अर्हं णमो आमोसहिपत्ताणं अपरस्मारप्रलापनचिन्ताविनाशो भवतु।
34. ॐ ह्रीं अर्हं णमो खेल्लोसहिपत्ताणं सर्वापमृत्युविनाशो भवतु।
35. ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं जन्मान्तरवैरभावविनाशो भवतु।
36. ॐ ह्रीं अर्हं णमो विडोसहिपत्ताणं गोगजाजमहिषमारीविनाशो भवतु।
37. ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं मनुष्यामरोपसर्गविनाशो भवतु।
38. ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणबलीणं मानसिकोपद्रवविनाशो भवतु।
39. ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचिबलीणं वाचनिकोपद्रवविनाशो भवतु।
40. ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीणं कायिकोपद्रवविनाशो भवतु।
41. ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं अष्टादशकुष्ठगण्डमालादिकविनाशनं भवतु।
42. ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवीणं सर्वशीतज्वरविनाशनं भवतु।
43. ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवीणं समस्तोपसर्गविनाशनं भवतु।
44. ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमियसवीणं सर्वव्याधिविनाशनं भवतु।
45. ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं अक्षीणर्द्धिर्भवतु स्वाहा।

46. ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणबुद्धिरिसीणं राजपुरुषादिभयविनाशो भवतु।

47. ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसिद्धायदणाणं धनधान्यसमृद्धिर्भवतु।

48. ॐ ह्रीं अर्हं णमो भयवदो महदि-महावीर-वड्ढमाण-बुद्धिरिसीणं रत्नत्रयं समाधिसुखं च भवतु।

ॐ णमो भगवदो वड्ढमाणस्स रिसहस्स जस्स चक्कं जलंतं गच्छइ आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जुए वा विवादे वा रणंगणे वा थंभणे वा मोहणे वा सव्वजीवसत्ताणं अपराजिदो भवदु मे रक्ख रक्ख स्वाहा वर्धमानमन्त्रेण सर्वरक्षा भवतु स्वाहा।

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगाप मृत्युविनाशनाय सर्वपरकृतक्षुद्रोपद्रव-विनाशनाय सर्वक्षामडामर विघ्न विनाशनाय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः सर्वशान्तिं तुष्टिं पुष्टिं च कुरु कुरु स्वाहा। ॐ हूं क्षूं फट् किरिटिं किरिटिं घातय घातय परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्र खण्डान् कुरु कुरु परमुद्रां छिन्धि छिन्धि परमन्त्रान् भिन्धि भिन्धि क्षां क्षः वः वः हूं फट् स्वाहा।

पूर्वोक्त-मन्त्राणां पूजन-भक्तिप्रसादात् ऋष्यार्यिकाश्रावक-श्राविकाणां ..... शान्तिधाराकर्तृणां च सर्वपापविनाशनं भवतु। रत्नत्रयं भवतु। सद्धर्म प्रभावना भवतु। सुगतिगमनं समाधिमरणं च भवतु। सर्म्पूणकल्याणमंगलरूप मोक्ष-पुरुषार्थश्च भवतु।

आयुर्वल्ली विलासं, सकलसुखफलैर्द्राघयित्वाऽऽश्वनल्पं।
धीरं[1] वीरं[2] गरीरं[3], निरुपममुपनयत्वा-तनोत्वच्छकीर्तिम्॥
सिद्धिं वृद्धिं समृद्धिं, प्रथयतु तरणिः स्फूर्यदुच्चैः प्रतापं।
कान्तिं शान्तिं समाधिं, वितरतु जगतामुत्तमा शान्तिधारा॥

॥ इतिबृहच्छान्तिधारा ॥

शान्तिधारा-4

ॐ नमः सिद्धेभ्यः[3] श्री वीतरागाय नमः[3]। ॐ शान्ति[3] ॐ णमो अरहंताणं... धम्मो सरणं पव्वज्जामि। ॐ ह्रौं अनादि सिद्ध महामंत्र पूजन भक्ति प्रसादात् सर्व शान्तिर्भवतु स्वाहा। ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्रीमत् पार्श्वतीर्थंकराय शुक्लध्यान पवित्राय श्रीमद् रत्नत्रय रूपाय दिव्यतेजोमूर्तये प्रभामण्डल मण्डिताय द्वादशगण सहिताय अनंत चतुष्टय सहिताय समवसरण केवलज्ञान लक्ष्मी शोभिताय अष्टादश दोष रहिताय षट् चत्वारिंशत् गुण संयुक्ताय परमेष्ठी परम पवित्राय सम्यग्ज्ञानाय स्वयंभुवे सिद्धाय बुद्धाय परमात्मने परम सुखाय त्रैलोक्य महिताय अनंत संसार चक्र परिमर्दनाय अनंतज्ञान दर्शन वीर्य सुखस्पदाय त्रैलोक्य वशंकराय सत्य ब्रह्मणे उपसर्ग विनाशनाय घातिकर्म क्षयंकराय अजराय अभवाय ऋषि आर्यिकाश्रावकश्राविकाणां प्रमुख चतुः संघउपसर्ग विनाशकाय देवाधिदेवाय नमो नमः पूर्वोक्त मंत्राणां पूजन भक्ति प्रसादात् ऋषिआर्यिकाश्रावकश्राविकाणां सर्वक्रोधमानमायालोभहास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुरुषनपुंसक वेद विनाशनं भवतु। मिथ्यात्व राग द्वेष मोह मात्सर्य असूर्या ईर्ष्या विभाव विकार विषाद प्रमाद कषाय विकथा विनाशनं भवतु। सर्व पंचेन्द्रिय विषय इच्छा स्नेह आशा रौद्र आकुलता व्याधि दीनता पाप दोष विरोध विनाशनं भवतु। सर्वममकार-विकल्पनिद्रतृष्णाधितापदुःखवैरअहंकारसंकल्प विनाशनो भवतु। सर्वाहार भय मैथुन परिग्रह संज्ञा विनाशनो भवतु। सर्व उपसर्ग विघ्नराज चोर दुष्ट मृग इहलोक परलोक अकस्मात् मरण वेदना अशरण अत्राण भय विनाशनो भवतु। सर्व क्षय रोग कुष्टरोग ज्वरादि रागादि रोग विनाशनो भवतु। सर्व नर गज गो महिष धान्य वृक्ष गुल्म पत्र फलमारीं राष्ट्रमारीं देशमारीं विश्वमारीं विनाशनो भवतु। सर्व मोहनीय ज्ञानावरणीय दर्शवानरणीय वेदनीय नाम गोत्रायन्तराय कर्म विनाशनं भवतु। ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेष-दोषकल्मषाय दिव्यतेजो मूर्तये श्री शांतिनाथाय शांतिकराय सर्वविघ्न प्रणाशनाय सर्व रोग अपमृत्यु विनाशनाय सर्व परकृच्क्षुद्र उपद्रव विनाशनाय सर्वक्षामडामर कृतविघ्नविनाशनाय सर्वारिष्ट शांतिकराय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः सर्व शांतिं कुरु कुरु तुष्टिं पुष्टिं च कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं अ सि आ उ सा अनाहत विद्यायै

णमो अरिहंताणं ह्रौं सर्व शांति र्भवतु स्वाहा[3] ऊँ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं इवीं इवीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय-द्रावय नमोऽर्हते भगवते स्वाहा। ऊँ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सर्व कर्म विमुक्ताय अष्ट गुण समृद्धाय सर्वशांति र्भवतु। ऊँ ह्रीं अर्हन्मुखकमल निवासिनी पापमल क्षयंकरि श्रुतज्वाला सहस्र प्रज्वलिते सरस्वती तव भक्ति प्रसादात् मम पाप विनाशनं भवतु। ऊँ क्षां क्षीं क्षूं क्षौं क्षः क्षीरवर धवलेअमृत संभवे वं वं ह्रूं ह्रूं सरस्वती तव भक्ति प्रसादात् सुज्ञानं भवतु। ऊँ णमो भयवदो वड्ढमाणस्य रिसहस्य जस्स चक्कं जलंतं गच्छइ आयासं पायालं लोयाणं भूयाणं जये वा, विवादे वा, रणांगणे वा, थंभणे वा, मोहणे वा, सव्व जीव सत्ताणं अपराजिदो भवतु वर्धमान मंत्रेण सर्व रक्ष रक्ष भवतु। ऊँ क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः नमोऽर्हते सर्व रक्ष-रक्ष ह्रूं फट् सर्व रक्षा भवतु स्वाहा।

ऊँ उसहाइ जिणं पणमामि सया, अमलो विमलो विरजो वरया।
वर कप्पतरु सय कामदुहा, मा रक्ख सया पुरु विज्जणिही ॥1॥
अट्ठेवय अट्ठसया, अट्ठसहस्साय अट्ठकोडीओ।
रक्खं तुम्म सरीरं, देवासुर पणमिया सिद्धा ॥2॥

ऊँ अ ह्रां सि ह्रीं आ ह्रूं उ ह्रौं सा ह्रः जगदापद विनाशनाय ह्रीं श्री शांतिनाथाय नमः सर्व शांतिं कुरु कुरु। ऊँ ह्रीं श्री शांतिनाथाय अशोकतरु सत्प्रातिहार्य मंडिताय अशोक तरु प्रातिहार्य शोभन पद प्रदाय ह्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शांतिकराय नमः सर्व शांतिं कुरु कुरु। ऊँ ह्रीं श्री शांतिनाथाय सुरपुष्पवृष्टि सत्प्रातिहार्य मंडिताय सुरपुष्पवृष्टि शोभन पद प्रदाय भ्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शांतिकराय नमः सर्व शांतिं कुरु कुरु। ऊँ ह्रीं श्री शांतिनाथाय दिव्यध्वनि सत्प्रातिहार्य मंडिताय दिव्यध्वनि शोभन पद प्रदाय म्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शांतिकराय नमः सर्व शांतिं कुरु कुरु। ऊँ ह्रीं श्री शांतिनाथाय चामरोज्ज्वल सत्प्रातिहार्य मंडिताय चामरोज्ज्वल शोभन पद प्रदाय र्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शांतिकराय नमः सर्व शांतिं कुरु कुरु। ऊँ ह्रीं श्री शांतिनाथाय सिंहासन सत्प्रातिहार्य मंडिताय सिंहासन शोभन पद प्रदाय घ्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शांतिकराय नमः सर्व शांतिं कुरु कुरु। ऊँ ह्रीं श्रीशांतिनाथाय भामंडल सत्प्रातिहार्य मंडिताय भामंडल शोभन पद प्रदाय ह्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शांतिकराय नमः सर्व

शांतिं कुरु कुरु। ऊँ ह्रीं श्रीशांतिनाथाय दुंदुभि सत्प्रातिहार्य मंडिताय दुंदभि शोभन पद प्रदाय स्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शांतिकराय नमः सर्व शांतिं कुरु कुरु। ऊँ ह्रीं श्रीशांतिनाथाय छत्रत्रय सत्प्रातिहार्य मंडिताय छत्रत्रय शोभन पद प्रदाय ख्म्ल्व्र्यूं बीजाय सर्वोपद्रव शांतिकराय नमः सर्व शांतिं कुरु कुरु। ऊँ ह्रीं श्री शांतिनाथाय प्रातिहार्याष्टसहिताय बीजाष्ट मंडन मंडिताय सर्वविघ्न शांतिकराय नमः सर्व शांतिं कुरु-कुरु। ऊँ ह्रां ह्रीं ह्रं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रं ह्रः अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो ह्रीं नमः सर्व शांतिं कुरु-कुरु। ऊँ ह्रीं अर्हं णमो अरहंताणं णमो जिणाणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अप्रतिचक्रे फट् विचकाय झ्रौं झ्रौं स्वाहा। ऋद्धि मंत्र भक्ति प्रसादात् सर्वेषां शांति र्भवतु।

ऊँ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं सर्वशांतिर्भवतु।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं....।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो कोट्ठबुद्धीणं....।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो पदाणुसारीणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो संभिण्णसोदाराणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो सयंबुद्धाणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धाणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो बोहियबुद्धाणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो उजुमदीणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो विउलमदीणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वियाणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वियाणं....।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठांगमहाणिमित्तकुसलाणं....।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो विउव्वइड्ढिपत्ताणं....।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं...।
ऊँ ह्रीं अर्हं णमोचारणाणं...।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणाणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामीणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्ततवाणं....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरतवाणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणपरक्क माणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमोऽघोरगुणबंभचारीणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आमोसहिपत्ताणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणबलीणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचबलीणं....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं.....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवीणं.....।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवीणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमिइसवीणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणबुद्धिरिसस्स...।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूणं सर्वशांतिर्भवतु...।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसिद्धायदणाणं मनोवाञ्छितसिद्धिर्भवतु। ॐ ह्रीं अर्हं णमो भयवदो महदि महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीणं समाधि सुखं भवतु अष्टचत्वारिंशद् (चतुःषष्ठी) ऋद्धि- मंत्र पूजन भक्ति प्रसादात् चतुः संघानां सर्वशांतिर्भवतु तुष्टिः पुष्टिश्च भवतु। ॐ सम्प्रति काल श्रेयस्कर स्वर्गावतरण जन्माभिषेक परिनिष्क्रमण केवलज्ञान निर्वाणकल्याण विभूषित महाभ्युदयाः श्री ऋषभाजित संभवाभिनंदन सुमति पद्म सुपार्श्व चन्द्रप्रभ पुष्पदंत शीतल श्रेयोवासुपूज्य विमलानंत धर्म शांति कुंथुअर मल्लि मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व वधर्ममान परमदेव पूजन भक्ति प्रसादात् सर्वशांतिर्भवतु। ॐ ह्रीं त्रिलोकद्योतनकराय अतीतकाल संजाता निर्वाण सागर महासाधु विमलप्रभ श्रीधर सुदत्त अमलप्रभ उद्धर अंगिर सन्मति सिंधु कुसुमांजलि शिवगण उत्साह ज्ञानेश्वर परमेश्वर विमलेश्वर यशोधर कृष्णमति ज्ञानमति शुद्धमति श्रीभद्र अतिक्रांत शांताश्चेति चतुर्विंशति भूत परमदेव पूजन भक्ति प्रसादात् सर्वशांतिर्भवतु। ॐ ह्रीं भविष्यत् कालाभ्युदया प्रभवाः श्री महापद्म सुरदेव सुपार्श्व स्वयंप्रभ सर्वात्मभूत देवपुत्र कुलपुत्र उदङ्क प्रोष्ठिल जयकीर्ति मुनिसुव्रत अर निष्पाप निष्कषाय विपुल निर्मल चित्रगुप्त समाधिगुप्त स्वयंभू अनिवर्तक जय विमल देवपाल अनंतवीर्यश्चेति चतुर्विंशति भविष्यत् परमदेव पूजन भक्ति प्रसादात् सर्वशांतिर्भवतु। ॐ ह्रीं त्रिकालवर्ती परम धर्माभ्युदयाः सीमंधर युगमंधर बाहु सुबाहु सुजात स्वयंप्रभ वृषभानन अनंतवीर्य सुप्रभ विशालकीर्ति वज्रधर चन्द्रानन भद्रबाहु, भुजंगम ईश्वर नेमप्रभ वीरसेन महाभद्र देवयशाजित वीर्याश्चेति पंच विदेह क्षेत्र विद्यमानविंशति तीर्थंकरपरमदेव पूजन भक्ति प्रसादात् सर्व शांति र्भवतु।

पूजिता भरताद्यैश्च, भूपेन्द्रैर्भूरि-भूतिभिः।
चतुर्विधस्य संघस्य, शांतिं कुर्वन्तु शाश्वतीम्॥
विघ्नौघाः प्रलयं यांति, शाकिनी भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥
दुर्भिक्षादिमहादोषनिवारणपरम्पराः।
कुर्वन्तु जगतः शांतिं, जिनश्रुत मुनीश्वराः॥
यत्संस्मरण मात्रेण, विघ्ना नश्यंति मूलतः।
कुर्वन्तु जगतः शांतिं, जिनश्रुतमुनीश्वराः॥

पदार्थान् लभते प्राणी, यत्प्रसादात् प्रसादतः।
कुर्वन्तु जगतः शांतिं, जिनश्रुत मुनीश्वराः॥
यत्सुखं त्रिषु लोकेषु, व्याधि व्यसन वर्जितं।
अभयं क्षेममारोग्यं, स्वस्तिरस्तु विधीयते॥

श्रीशांतिरस्तु शिवमस्तु जयोऽस्तु नित्यमारोग्यमस्तु सर्वेषां तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु समृद्धिरस्तु कल्याणमस्तु सुखमस्तु अभिवृद्धिरस्तु अविघ्नमस्तु कर्मसिद्धिरस्तु इष्ट संपत्तिरस्तु निर्वाण पर्वोत्सवाः संतु पापानि शाम्यंतु पुण्यं वर्धताम् संयमवर्धताम् तपोऽभिवृद्धिरस्तु समाधिमरणं प्राप्तिर्भवतु कल्याण मस्तु। ऊँ ह्रीं अर्हं णमो संपूर्ण कल्याण मंगलरूप मोक्ष पुरुषार्थश्च भवतु। संपूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्र सामान्य तपोधनानां देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः।

छत्र अर्पण क्रिया

छत्रत्रयं तव विभाति शशांक कांत,
मुच्चैः स्थितं स्थगित भानुकर प्रतापम्।
मुक्ता फलप्रकर जाल विवृद्ध शोभम्,
प्रख्या-पयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्॥
ओं ह्रीं जगच्छान्तयर्थं अष्टप्रातिहार्यमध्ये छत्रत्रयं स्थापयामि।

(यहाँ पर श्री जी पर छत्र सुशोभित करें।)

चँवर अर्पण क्रिया

कुंदावदात चल चामर चारु शोभम्,
विभ्राजते तव वपुः कल धौत कान्तम्।
उद्यच्छशांक शुचि निर्झर वारिधार,
मुच्चैस्तटं सुर गिरेरिव शात कौम्भम्॥
ओं ह्रीं आरोग्यार्थ अष्टप्रातिहार्यमध्ये चतुष्षष्ठी चँवर स्थापयामि।

(यहाँ पर श्री जी के समक्ष चँवर ढुरावें)

32 इन्द्र 64 चँवर ढुराते है अतः पुरुष महिला जितने मंदिर में प्रतिदिन आते है अपने-अपने हाथों में चमर लेकर ढुरायें

आरती :- ले के कर में कंचन थाल

(मूकमाटी रचयिता प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज की)
रचयिता :- मुनि श्री 108 भावसागर जी महाराज
तर्ज :- ले के पहला पहला ......

ले के कर में कंचन थाल, जिसमें दीप अनेक प्रजाल,
पुण्यवर्धन महोत्सव मनायें सब समाज ।
धन्य गुरूश्री विद्यासागर, संयम साधना के रत्नाकर,
किया धर्म का प्रचार, गूंजे चहूँ दिश जय-जयकार
पुण्यवर्धन महोत्सव ....
ज्ञान गुरू के परम शिष्य थे, उनके जैसे जग में शायद कोई थे,
उनसे लीनी दीक्षा धार, ज्ञान गुरू की कृपा अपार ।
पुण्यवर्धन महोत्सव ......
मुखड़े पें सोहे थी, तपस्या की ज्योति, नयना लुटाते थे हर पल ममता के मोती,
शत्रु मित्र थे एक समान, नहीं राग द्वेष का नाम ।
पुण्यवर्धन महोत्सव .
मिश्री सी वाणी तेरी अमृत घोले, तन को मिटाकर, मन के हिय पट खोले,
तेरी महिमा अपरम्पार, गागर है सागर सार ।
पुण्यवर्धन महोत्सव .
आचार्य श्री जी मंगलकारी, जन-जन की तुमने जिंदगी सवारी।
तारे दे व्रत, नियम चार, किया भविजन का उद्धार ।
पुण्यवर्धन महोत्सव ......
कैसे गुरूवर की महिमा गायें सूरज को कैसे दीप दिखायें,
आया था जो तेरे दरबार हो गया उनका बेड़ापार ।
पुण्यवर्धन महोत्सव ......
आप जिये गुरू सत्ततर साल, इक - इक साल के दिन हो गये हजार
हो हजार सत्ततर साल, पुण्य वर्धन महोत्सव है कमाल।
पुण्यवर्धन महोत्सव ......

जब तक नभ में चाँद - सितारें, युग युग में गूंजे यशगान तुम्हारें,
है यह प्यासे मन की चाह, गुरूवर दिखलायें सद् राह।
पुण्यवर्धन महोत्सव ......

आरती- श्री चौबीसों भगवान

रचयिताः मुनि श्री 108 सुव्रतसागर जी महाराज

श्री चौबीसी की आरती उतारो मिलके।
चौबीसों भगवान् को निहारो मिलके॥
वृषभ अजित शम्भव अभिनंदन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनचंद्र।
पुष्पदंत शीतल श्रेयांसजिन, वासुपूज्य प्रभु विमल अनंत॥
धर्म शांति कुंथू अर मल्ली, मुनिसुव्रत नमि नेमि महान्।
पार्श्व वीर प्रभु चौबीसों हों, मंगलमय मंगल भगवान्॥
श्री चौबीसी की आरती उतारो मिलके।
चौबीसों भगवान् को निहारो मिलके॥
निर्मोही निर्ग्रन्थ सभी हैं, किन्तु मोह लें सब संसार।
रहे दिगम्बर पूर्ण निरम्बर, फिर भी जिनके ग्रंथ हजार॥
धर्म चक्र की धुरी यही तो, धारें तारणतरण जहाज।
भू नभ अंबर से ऊँचे पर, करें भक्त के दिल पर राज॥
श्री चौबीसी की आरती उतारो मिलके।
चौबीसों भगवान् को निहारो मिलके॥
भूल- भुलैया भव की भँवरे, जिनमें हो हमसे भी भूल।
किन्तु हमें ना आप भुलाना, दे देना चरणों की धूल॥
तुमसे तुमको माँग रहे हम, भर-भर झोली दो वरदान।
'सुव्रतसागर' करें नमोऽस्तु, भक्त आरती करें प्रणाम॥
श्री चौबीसी की आरती उतारो मिलके।
चौबीसों भगवान् को निहारो मिलके॥

कोई काम करना हो तो उसके सैकड़ों रास्ते होते हैं
और न करना हो तो हजारों बहानें

श्रमण चक्र आरती

रचियित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

तर्ज - झुमका गिरा रे ......
(तर्ज - प्रभु नाम जपने से नवजीवन .....)

गुरु आरति कर लो रे, यह श्रमण चक्र दरबार है।
श्रद्धा से झूमो रे, मुनिराजों का दरबार है॥
शत वसु गुण गाओ रे, गुरु महिमा अपरम्पार है।
गुरु आरति कर लो रे ॥ध्रुव॥
पंच कोटि लख तेरान्नव मुनि, अट्ठान्नवे हजार हैं,
दो सौ छह ऊपर मुनि भज लो, प्रमत्त गुण आधार हैं।
पर वन्दन कर लो रे, गुरु विनय मोक्ष का द्वार है॥
गुरु आरति कर लो रे ..... ॥1॥
दो करोड़ मुनि लक्ष छियान्नव, निन्यानवे हजार हैं,
एक शतक त्रय ऊपर पूजो, अप्रमत्त गुण धार हैं।
चरणों में झुक लो रे, गुरु श्रद्धा तारणहार है॥
गुरु आरति कर लो रे ..... ॥2॥
दो सौ निन्यान्नव उपशामक, मुनि अपूर्व गुणथान में,
क्षपक पाँच सौ अट्ठान्नव यति, रहें इसी गुणथान में।
गुरु की जय बोलो रे, गुरु करते नित उपकार हैं॥
गुरु आरति कर लो रे ..... ॥3॥
दो सौ निन्यान्नव उपशामक, अनिवृत्तिक गुणथान में,
क्षपक पाँच सौ अट्ठान्नव भी, रहें इसी गुणथान में।
श्रद्धा से पूजो रे, गुरु रत्नत्रय भण्डार हैं॥
गुरु आरति कर लो रे ..... ॥4॥
दो सौ निन्यान्नव उपशामक, साम्पराय गुणथान में,
क्षपक पाँच सौ अट्ठान्नव भी, रहें इसी गुणथान में।
पापों को धो लो रे, गुरु विद्या गंगा धार हैं॥

गुरु आरति कर लो रे ..... ॥5॥
दो सौ निन्यान्नव उपशामक, साधु रहें उपशान्त में,
सर्व कषायों का उपशम कर, रहते श्रमण निजात्म में।
सब ध्यान लगाओ रे, छवि वीतराग मनहार है॥
गुरु आरति कर लो रे ..... ॥6॥
क्षपक पंचशत अट्ठान्नव मुनि, क्षीणमोह गुणथान में,
मोहनीय राजा को जीता, संतों ने निज ध्यान में।
सब शीश नवाओ रे, गुरु करते भव से पार हैं॥
गुरु आरति कर लो रे ..... ॥7॥
आठ लाख मुनि सहस अठान्नव, पन शत रहें सयोगी,
वीतराग सर्वज्ञ देव के, पद में झुकते योगी।
जिनवाणी सुन लो रे, जिन समवसरण हितकार है॥
गुरु आरति कर लो रे ..... ॥8॥
पंचशतक अट्ठान्नव ऊपर, चौदहवें गुणथान में,
इन अयोगि सब मुनिराजों को, ध्याते भविजन ध्यान में।
मृदुता से ध्याओ रे, गुरु बिन सूना संसार है॥
गुरु आरति कर लो रे ..... ॥9॥
गुरु आरति कर लो रे, यह श्रमण चक्र दरबार है।
श्रद्धा से झूमो रे, मुनिराजों का दरबार है॥
शत वसु गुण गाओ रे, गुरु महिमा अपरम्पार है।

जिनवाणी - आरती

रचियित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

मात जिनभारती तत्त्व उर धारती,
आप्त वागीश्वरी की करें आरती॥ध्रुव॥
द्वादशांगों की रचना हुई मात की।
ज्ञान गंगा बहे आज जिन तात की॥

औषधी बन जरा रोग संहारती ।
आप्त वागीश्वरी की करें आरती॥1॥
आपके हित वचन जो कभी ना सुने।
दुःख के कारणों को कभी ना गुने॥
शक्ति कर्मों की दुख दे उसे मारती।
आप्त वागीश्वरी की करें आरती॥2॥
मोह निद्रा से जाग्रत करे मात ये।
वेदना में रखे ज्ञान का हाथ ये ॥
साम्य लोरी सुनाके हमें पालती।
आप्त वागीश्वरी की करें आरती॥3॥
मोक्ष पथ को दिखाने रही दर्पणा।
शान्त रस को पिलाने नदी तर्पणा॥
गिरते चारित्र गिरि से हमें थामती।
आप्त वागीश्वरी की करें आरती॥4॥
ज्ञानगंगा में अवगाहना जो करे।
कर्म के ताप के दुःख को वो हरे॥
कर्म सेना उसे देख के हारती।
आप्त वागीश्वरी की करें आरती॥5॥
मात तेरे बिना दुःख सहते रहे।
कोई सुनता नहीं नित्य कहते रहे॥
शक्ति देकर दुखों से मुझे तारती।
आप्त वागीश्वरी की करें आरती॥6॥
मित्र वैराग्य रहता सदा साथ में।
मात रखती अभय बीन निज हाथ में॥
मृदु हृदय में बसे मात जिनभारती।
आप्त वागीश्वरी की करें आरती॥7॥

❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖❖

पंचपरमेष्ठी आरती

इह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परमपद भज सुख लीजे।
पहली आरति श्री जिनराजा, भवदधि पार उतार जिहाजा॥
इहविधि मंगल..... ॥
दूसरी आरति सिद्धन केरी, सुमरन करत मिटै भवफेरी।
इहविधि मंगल..... ॥
तीसरी आरति सूरि मुनीन्द्रा, जनम मरण दुःख दूर करिंदा।
इहविधि मंगल..... ॥
चौथी आरति श्री उवझाया, दर्शन देखत पाप पलाया।
इहविधि मंगल..... ॥
पाँचवी आरति साधु तिहारी, कुमति विनाशन शिव अधिकारी।
इहविधि मंगल..... ॥
छट्ठी आरति श्री जिनवानी, 'द्यानत' सुरग मुकति सुखदानी।
इहविधि मंगल..... ॥
सातवीं आरति बाहुबलि स्वामी, करि तपस्या हुये मोक्षधामी।
इहविधि मंगल..... ॥

श्रुतपंचमी आरती (मातृका छन्द)

रचियित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

तर्ज : पाँच तत्त्वों की ये चूनर धानी ....

मात जिनभारती तत्त्व उर धारती,
आप्त वागीश्वरी की करें आरती ॥ध्रुव॥
द्वादशांगों से रचना हुई मात की।
ज्ञान गंगा बहे आज जिन तात की॥
औषधी बन जरा रोग संहारती।
आप्त वागीश्वरी की करें आरती ॥1॥
पुष्पदन्तार्य मुनि भूतबलि ने लिखा।

सूरि धरसेन से ज्ञान जैसा लखा॥
ज्ञान षट्खण्ड आगम हृदय धारती।
ज्येष्ठ सित पंचमी को लिखी भारती ॥2॥
पहले मौखिक पढ़ाते गणी भारती।
बुद्धि प्रक्षीण भय से लिखी भारती॥
धन्य श्रुत पंचमी ग्रन्थ अवतारती।
पर्व श्रुत पंचमी को करें आरती ॥3॥
आपके हित वचन जो कभी ना सुने।
दुःख के कारणों को कभी न गुने॥
शक्ति कर्मों की दुख दे उसे मारती।
आप्त वागीश्वरी की करें आरती ॥4॥
मित्र वैराग्य रहता सदा साथ में।
मात रखती अभय बीन निज हाथ में॥
मृदु हृदय में बसे मात जिनभारती।
आप्त वागीश्वरी की करें आरती ॥5॥

बुंदेली आरती प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

रचयिताः मुनि श्री 105 सुव्रतसागर जी महाराज

(तर्ज : कैसे धरे मन धीरा रे-तीनों....)

गुरुवर की हो रई जय-जय रे, आरतिया उतारौ।
हाँ-हाँ रे! आरतिया उतारौ॥
मल्लप्पा श्रीमति के मौड़ा[2], ज्ञान गुरु से नाता जोड़ा[2]
शिष्य बनें गुरु स्वामी रे, गुरु-चरणा पखारौ,
हाँ-हाँ रे! आरतिया उतारौ॥
थाल सजाऔ दीप जलाऔ, मंगल-मंगल महिमा गाऔ॥
नाचौ, गाऔ, झूमौ रे, गुरु-मूरत निहारौ,
हाँ-हाँ रे! आरतिया उतारौ॥

चलते फिरते तीरथ गुरुजी, सब खौं भव से तारत गुरुजी ॥
गुरु की शरणा पाऔ रे, गुरुवर खौं पुकारौ,
हाँ-हाँ रे! आरतिया उतारौ ॥
नगन दिगम्बर चारितधारी, ज्ञानी ध्यानी पाप निवारी ॥
जगत्-पूज्य परमेष्ठी रे, मोरी किस्मत सँवारो,
हाँ-हाँ रे! आरतिया उतारौ ॥
गुरु दयालु करुणाधारी, अब तौ सुन लो विनय हमारी ॥
मुस्का कैं 'सुव्रत' खौं तारो, रे, भव दुख सै निकारौ,
हाँ-हाँ रे! आरतिया उतारौ ॥

संक्षेप आरती :- जय जय गुरु की बोल के

जय जय गुरु के बोल के, करो आरतिया
आरतिया ..... आरतिया
आंखियाँ मन की खोल के करो आरतिया।
जय जय ....
गुरुवर हमरे मात-पिता पालक स्वामी।
सभी तीर्थ है गुरु चरणों में कल्याणी ॥
विद्या गुरु है नाथ मोक्ष के सारथिया।
जय जय .... गुरु की बोल के करो आरतिया।
जय जय .... गुरु की बोल के करो आरतिया।
जय जय .... गुरु की बोल के करो आरतिया।
जय जय .... गुरु की बोल के करो आरतिया।.

हम जो है उसे स्वीकार ले तो जिंदगी बेहतर होती है।

संक्षेप आरती : तुम भी करो हम भी करे

तर्ज ...... हम तो चले आये
तुम भी करो हम भी करे।
तुम भी करो हम भी करे गुरुवर की आरती।
श्री विद्यासागर जी शिवपुर के सारथी ॥1 ॥
आओ! आओ! हिल-मिल के हम पूजें चरणा।
चारों धामों के तीर्थ, गुरुवर की शरणा।
तुम भी गीत गाओ रे हम भी गीत गाये।
गुरुवर की किरपा, भव सागर से तारती ॥2 ॥
तुम भी करो हम भी करे गुरुवर की आरती
श्री .... सागर जी शिवपुर के सारथी
श्री .... सागर जी शिवपुर के सारथी
श्री .... सागर जी शिवपुर के सारथी
श्री .... सागर जी शिवपुर के सारथी

संक्षेप आरती : ओम जय गुरुवर कष्ट हरो

ओम जय गुरुवर कष्ट हरो
ओम जय गुरुवर कष्ट हरो स्वामी जय गुरु कष्ट हरो।
हम है चरण पुजारी गुरुवर-2 हमको नहीं विसरो
हो गुरुवर हम सब उतारे तेरी आरती -२
विश्व भ्रमण से थककर गुरुवर, चरण-शरण आया-2
ज्योति पुंज के सम्मुख गुरुवर-2 आत्म ज्योति लाया
हो गुरुवर ....
हो गुरुवर ....
हो गुरुवर ....
हो गुरुवर ....
श्री विद्यासागर जी हम सब उतारे तेरी आरती।

संक्षेप आरती : दीपक ही दीपक जलायेगें

दीपक ही दीपक जलायेगें २
विद्या गुरु की आरती हम गायेगें २
झिलमिल-झिलमिल चमचम थाली से सजायी
थाली ए सजायी हाँ-हाँ ज्योति भी जलायी
झूम-झूम भक्ति में इठलायेगें ॥
विद्या गुरु ....
.... गुरु की आरती हम गायेगें।
.... गुरु की आरती हम गायेगें।
.... गुरु की आरती हम गायेगें।
.... गुरु की आरती हम गायेगें।

संक्षेप आरती : जय - जय गुरुवर भक्त पुकारे

(तर्ज .... माईन - माईन ....)
जय - जय गुरुवर भक्त पुकारे, आरती मंगल गावे।
करके आरती विद्या गुरु की, मोह तिमिर मिट जावें।
गुरुवर के चरणों में नमन, ऋषिवर के चरणों में नमन ॥
यतिवर के चरणों में नमन, सूरीश्वर के चरणों में नमन ॥
.... गुरु के चरणों में नमन।
.... गुरु के चरणों में नमन।
.... गुरु के चरणों में नमन।
.... गुरु के चरणों में नमन।

संक्षेप आरती : गुण रत्नाकर

आरती - गुण रत्नाकर विद्यासागर
गुण रत्नाकर विद्यासागर यह मंगल - दीपक हाथ लिए,
जन्म - पूर्व सपने में माँ को चारण-मुनि दिखलाए हो ॥

चारण मुनि दिखलाए
पूर्णकाम बनने को स्वामी। पूनम के दिन आए।
हो स्वामी पून के दिन आए .....
शिवपथगामी अंतर्यामी यह मंगल - दीपक हाथ लिए,
आरती उतारूँ गुरुवर की ....
आरती उतारूँ मुनिवर की ....
गुण रत्नाकर .... सागर यह मंगल दीपक हाथ लिए।
गुण रत्नाकर .... सागर यह मंगल दीपक हाथ लिए।
गुण रत्नाकर .... सागर यह मंगल दीपक हाथ लिए।
गुण रत्नाकर .... सागर यह मंगल दीपक हाथ लिए।

गंधोदक भजन

रचयिताः मुनि श्री सुव्रतसागर जी महाराज

(लय-मानो तो मैं गंगा माँ हूँ...)

मानो तो मैं गंधोदक हूँ, ना मानो तो झरता पानी।
जो प्रभु ने दी भक्तों को, वो धर्म की अमर निशानी ॥
अनादिकाल से बहती आयी, जिन अभिषेक की धारा।
जिन गंधोदक से भक्तों ने, निज आतम श्रृंगारा ॥
मेरी बूँद-बूँद में भरी है, जिनधर्म की अमर कहानी। जो प्रभु.....
मानो तो मैं....

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं।

कोई कष्ट हरे मेरे जल से-2, कोई तन के रोग मिटाये।
कोई इच्छा पूरी करने, मुझे जगह-जगह छिड़काये ॥
हो जिसकी जैसी श्रद्धा, हो वैसी ही फलदानी। जो प्रभु....
मानो तो मैं.....

निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पापनाशनं।
जिन गंधोदकं वंदे, अष्ट कर्म विनाशनं॥
मैना सुंदरी ने मुझसे, निज पति का कुष्ट मिटाया।
हुये सात शतक भी निरोगी, तन चेतन को चमकाया॥
मेरी धारा करके मिटी है, भक्तों की कर्म कहानी। जो प्रभु....
मानो तो मैं.....

गंधोदक की महिमा-1

❉ भगवान को छूने का अधिकार जैन कुल ने दिया है लेकिन अगर इस अवसर का उपयोग नहीं किया तो कर्म आपको फिर इस अवसर से वंचित कर देगा।

❉ प्राचीन शास्त्रों में पुरुषों के लिए जिन पूजा का नियम है और पूजा का आद्यांग (पहला अंग) अभिषेक है, केवल देव दर्शन नहीं, क्योंकि देव दर्शन तो पशु, महिला कोढ़ी रोगी या पापी भी कर सकते हैं लेकिन ये सभी अभिषेक नहीं कर सकते।

❉ मैं बहुत करुणा कर के कह रहा हूँ कि बहुत गरीबी के समय माँ/ घर की महिलाओं को भीख मंगवाने से भी बड़ा पाप है कि तुम्हारे जीतेजी तुम्हारी माँ/घर की महिलाओं को मंदिर में जाके किसी और से गंधोदक माँगना पड़े।

❉ 1000 मुनिराज भी आशीर्वाद दे उससे भी ज्यादा मंगलकारी है अगर घर के पुरुष खुद गंधोदक बना के अपने घर की महिलाओं/बच्चों को लगायें।

❉ यहाँ तक की घर के पशुओं/नौकरों को भी गंधोदक दीजिए। घर प आये मेहमान, घर पे आयी बारात का स्वागत भी गंधोदक से करिये। इसके लिए छोटा सा कलश रखिये और मंदिर जी से कभी खाली मत आओ। उस कलश में गंधोदक भर के घर लाइए। ऐसा करना बहुत ही मंगलकारी है। शाम को उस गंधोदक को या तो अपने सर पे लगा लीजिए, या ऐसी जगह डाल दीजिए जहां किसी के पैर न पड़ते हो।

गंधोदक की महिमा-2

जो गंधोदक कुष्ठादि रोगों का क्षय कारक है, जो गंधोदक आपत्तियों के शत-चक्र का निवारक है, जो शुभगति के पंथ का सहचारी है, जो निश्चय ही विघ्न-राशि का विदारक है, जो पापरूपी सर्प के लिए नाश करने वाला गरुड़ है, जो इच्छित सुखों को देने वाला महान कल्पवृक्ष है, जो मिथ्यात्व रूपी बेल को सुखाने के लिए सूर्य का तेज है, जो सार और असार के भेद को प्रकट करता है, जो समस्त यंत्रों में परम यंत्र है, जो सकल मंत्रों में शुभ मंत्र है, जो समस्त ऋद्धियों का दाता है, जिस से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। उस गंधोदक की स्वर्ग में देवों ने वंदना की, व्यंतर-गणों ने वंदना कर अत्यंत आनंद मनाया। मध्यलोक में मनुष्य वृन्द ने वन्दना की, पाताल में नागेन्द्रों ने वन्दना की। वह गंधोदक ढुलता हुआ जहाँ-जहाँ गया, वहाँ - वहाँ तुरंत उस की वन्दना की गई। (रइधू ग्रन्थावली, सम्मइ जिण चरिउ, भाग-2, डॉ. राजाराम जैन)

(साभार : जिन स्तुतीयम्)

स्वाध्याय की महिमा

यदि एक बार भी विनय से स्वाध्याय कर लिया जावे तो भूल जाने पर भी वह संस्कार अगले भव में उपस्थित होकर मोक्ष में पहुँचा देता है।

(धवला पुस्तक 9 पृष्ठ 130)

पुण्यशाली जीव ही चक्रवर्ती का वैभव पाता है। इसे पुरुषोत्तम, नरेन्द्र, नर श्रेष्ठ व षठ्खण्डाधिपति भी कहा जाता है। यही कल्पद्रुम पूजा करने और किमिच्छिक दान देने का अधिकारी होता है।
भरत चक्रवर्ती के समतुल्य ही शेष चक्रवर्तियों का वैभव होता है किन्तु उनके शरीरोत्सेध, आयु कुमार काल, मण्डलीक काल दिग्विजयकाल, राज्यकाल, पर्यायान्तर गतियों में अंतर होता है।

विनय पाठ

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ ॥1॥
अनंत चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सिरताज।
मुक्ति-वधु के कंत तुम, तीन भुवन के राज ॥2॥
तिहुँ जग की पीड़ा हरन, भवदधि-शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार ॥3॥
हरता अघ अंधियार के, करता धर्म- प्रकाश।
थिरता-पद दातार हो धरता निज गुण रास ॥4॥
धर्मामृत उर जलधि सों, ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुँ जग भूप ॥5॥
मैं वन्दौं जिनदेव को, करि अति निरमल भाव।
कर्म-बन्ध के छेदने, और न कछु उपाव ॥6॥
भविजन को भव-कूप तैं, तुम ही काढ़नहार।
दीन-दयाल अनाथ-पति, आतम गुण भंडार ॥7॥
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म-रज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिवगैल ॥8॥
तुम पद-पंकज पूजतैं, विघ्न-रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय ॥9॥
चक्री खगधर इन्द्र पद, मिलैं आप तैं आप।
अनुक्रम करि शिवपद लहैं नेम सकल हनि पाप ॥10॥
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जलबिन मीन।
जन्म-जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन ॥11॥
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव ॥12॥

थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेय।
खेवटिया तुम हो प्रभु जय जय जय जिनदेव ॥13॥
राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेट्यो अबैं, मेट्यो राग कुटेव ॥14॥
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यञ्च अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान ॥15॥
तुमको पूजैं सुरपति, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव ॥16॥
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भव सिन्धु में, खेव लगाओ पार ॥17॥
इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारकै, कीजे आप समान ॥18॥
तुमरी नेक सुदृष्टि तैं, जग उतरत है पार।
हा हा डूबो जात हों, नेक निहार निकार ॥19॥
जो मैं कहहूँ और सों, तो न मिटैं उरभार (झार)।
मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार ॥20॥
वंदों पाँचों परमगुरु सुरगुरु वंदत जास।
विघनहरन मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश ॥21॥
चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधकसाधुनमि, रच्योपाठसुखदाय ॥22॥
मंगल मूर्ति परम पद, पंच धरो नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान ॥23॥
मंगल जिनवर पद नमों, मंगल अर्हंत देव।
मंगलकारी सिद्ध पद सो वन्दों स्वयमेव ॥24॥
मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरु उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, वन्दों मन-वचकाय ॥25॥

मंगल सरस्वती मात का, मंगल जिनवर धर्म।
मंगलमय मंगलकरो, हरो असाता कर्म ॥26॥
या विधि मंगल से सदा जग में मंगल होत।
मंगल 'नाथूराम' यह भव सागर दृढ़ पोत ॥27॥
भजन करो प्रभु आदि का अन्त नाम महावीर।
तीर्थंकर चौबीस को धरऊ ध्यान धर शीश॥
॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥
(नौ बार णमोकार मंत्र जपें)

पूजा पीठिका

ओं जय जय जय नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥
ओं ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः पुष्पांजलिं क्षिपेत्।
चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे शरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।
ओं नमोऽर्हते स्वाहा पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।
अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा
ध्यायेत्पंच-नमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥1॥
अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥2॥
अपरा-जित-मंत्रोऽयं, सर्व- विघ्न- विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः ॥3॥
एसो पंच-णमो-यारो, सव्व-पावप्पणा-सणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होई मंगलं ॥4॥
अर्ह-मित्यक्षरं ब्रह्म,- वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्यसद्बीजं, सर्वतः प्रणमाम्यहम् ॥5॥
कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं, मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनं।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं, सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥6॥
विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे ॥7॥
(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

पंचकल्याणक अर्घ

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्, चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल- मंगल- गान-रवाकुले, जिनगृहे कल्याणमहं यजे॥
ओं ह्रीं भगवतो गर्भजन्मतपज्ञाननिर्वाणपंचकल्याणकेभ्योऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचपरमेष्ठी का अर्घ

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्, चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल- मंगल- गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाथमहं यजे॥
ओं ह्रीं श्री अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्योऽर्घ्यं नि. स्वाहा

जिनसहस्त्रनाम अर्घ

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्, चरु-सुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवल- मंगल- गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाम यजामहे॥
ओं ह्रीं श्री भगवज्जिनअष्टोत्तरसहस्त्रनामभ्योऽर्घं नि. स्वाहा।

जिनवाणी का अर्घ

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्, चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल- मंगल- गान-रवाकुले, जिनगृहे जिनसूत्रमहं यजे॥

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि तत्त्वार्थसूत्रदशाध्यायेभ्योर्घं नि. स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्-जिनेन्द्र- मभि- वंद्य- जगत्- त्रयेशं,
स्याद्- वाद-नायक- मनंत- चतुष्ट- यार्हम्।
श्रीमूल- संघ- सुदृशां सुकृतैक- हेतुर्
जैनेन्द्र- यज्ञ- विधि- रेषमयाऽभ्य- धायि॥1॥

स्वस्ति त्रिलोक- गुरवे जिन- पुंगवाय,
स्वस्ति स्वभाव- महिमोदय- सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश- सह-जोर्ज्जित- दृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न- ललिताद्-भुत- वैभवाय॥2॥

स्वस्-त्युच्-छलद्-विमलबोधसुधा-प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव- परभाव- विभास- काय।
स्वस्ति त्रिलोक- विततैक- चिदुद्- गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल- सकलायत- विस्तृताय॥3॥

द्रव्यस्य शुद्धि- मधि- गम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धि- मधिका- मधि- गंतुकामः।
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ- यज्ञ- पुरुषस्य करोमि यज्ञम्॥4॥

अर्हन् पुराण- पुरुषोत्तम- पावनानि,
वस्तून्- यनून- मखिलान्- ययमेक एव।
अस्मिन्-ज्वलद् विमल- केवल- बोध वह्नौ,
पुण्यं समग्र- मह- मेक- मना जुहोमि॥5॥

ओं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

स्वस्ति मंगलपाठ

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः।
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः।
श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः।
श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः।
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः।
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः।

॥ इति चतुर्विंशतिजिनेन्द्रस्वस्तिमंगलविधानं पुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

नित्या-प्रकंपाद्-भुत-केवलौघाः, स्फुरन्मनःपर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञान-बल-प्रबोधाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥1॥
कोष्ठस्थ-धान्योपममेक-बीजं, संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विधं बुद्धि-बलं दधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥2॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरा-, दास्वादन- घ्राण- विलोकनानि।
दिव्यान्-मतिज्ञानबलाद्वहंतः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥3॥
प्रज्ञा-प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येक-बुद्धाः दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टाङ्ग-निमित्तविज्ञाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥4॥
जंघानलश्रेणि-फलांबु-तंतु-, प्रसून-बीजाङ्कुर-चार-णाह्वाः।
नभोऽङ्गण-स्वैर-विहारिणश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥5॥
अणिम्निदक्षा कुशलामहिम्नि, लघिम्निशक्ताः कृतिनो गरिम्णि।

मनो-वपु-र्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥6॥
सकाम-रूपित्व-वशित्वमैश्यं, प्राकाम्य-मन्तर्द्धि-मथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥7॥
दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं, घोरं तपो घोर-पराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरंतः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥8॥
आमर्ष- सर्वौषधयस्तथाशी, र्विषाविषा दृष्टिविषाविषाश्च।
सखिल्लविड्जल्लमलौषधीशाः, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥9॥
क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो, मधुस्रवंतोऽप्य-मृतं स्रवंतः।
अक्षीण-संवास-महानसाश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः॥10॥

॥ इति परमर्षिः स्वस्तिमंगलविधानं परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

समुच्चय पूजन

देव-शास्त्र-गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा नमूँ चित्त हुलसाय॥

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरु समूह! विद्यमानविंशतितीर्थंकरसमूह! अनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अनादिकाल से जग में स्वामिन्, जल से शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक्रत्नत्रय, निधि को नहीं पहिचाना॥
अब निर्मल रत्नत्रय-जल ले, श्रीदेव-शास्त्रगुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्रीबीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा

भव-आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने अब तक मैंने, पर में की झूठी ममता है॥
चन्दन सम शीतलता पाने, श्रीदेव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्रीबीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा

अक्षयपद के बिना फिरा, जगत की, लख चौरासी योनी में।
अष्ट कर्म के नाश करन को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं॥
अक्षय निधि निज की पाने अब, श्रीदेव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्रीबीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्योअक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा

पुष्प सुगुन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ बाणों से बिन्ध करके, चहुँगति में दुःख उपजाया है॥
स्थिरता निज में पाने को, श्रीदेव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्रीबीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा

षट् रस-मिश्रित भोजन से, ये भूख न मेरी शान्त हुई।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय-मन इच्छा शमन हुई॥
सर्वथा भूख के मेटन को, श्रीदेव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्रीबीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा

जड़-दीप विनश्वर को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
निज-गुण दरशायक ज्ञानदीप से, मिटा मोह का अंधियारा॥
ये दीप समर्पित करके मैं, श्रीदेव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्रीबीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्योमोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग द्वेष नशायेगी॥
उस शक्तिदहन प्रगटाने को, श्रीदेव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्रीबीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

पिस्ता बदाम श्री फल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतमरस भीने निज गुणफल, मम मन अब उनमें ललचाया॥
अब मोक्षमहाफल पाने को, श्रीदेव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्रीबीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निजगुण प्रकट किये॥
यह अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्रीदेव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्रीबीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ॥

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान।
अब वरणूँ जय मालिका, करूँ स्तवन गुणगान॥
नसे घातिया कर्म अर्हन्त देवा,
करे सुर- असुर- नर- मुनि नित्य सेवा।
दरश-ज्ञान-सुख-बल अनन्तों के स्वामी,
छियालीस गुण युत महा ईश नामी॥1॥

तेरी दिव्य-वाणी सदा भव्य मानी,
महा-मोह विध्वंसिनी मोक्ष-दानी।
अनेकान्तमय द्वादशांगी बखानी,
नमो लोक माता श्री जिनवाणी॥2॥
विरागी अचारज उवज्झाय साधू
दरस- ज्ञान भण्डार समता अराधू।
नगन वेशधारी सु एका विहारी,
निजानन्द मंडित मुकति पथ प्रचारी॥3॥
विदेहक्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजें,
विहरमान बन्दूँ सभी पाप भाजें।
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी,
अनाकुल समाधान सहजाभिरामी॥4॥
देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धर ले रे।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तर ले रे॥5॥

ऊँ ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्योऽनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा।

भूत भविष्यत वर्तमान की, तीस चौबीसी मैं ध्याऊँ।
चैत्य चैत्यालय कृत्रिमाकृत्रिम, तीन लोक के मन लाऊँ॥

ऊँ ह्रीं त्रिकाल सम्बन्धी तीस चौबीसी त्रिलोक सम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्य भक्ति आलोचन चाहूँ, कायोत्सर्ग अघ नाशन हेत।
कृत्रिमाकृत्रिम तीनलोक में, राजत हैं जिन बिम्ब अनेक॥
चतुर निकाय के देव जजे लें, अष्ट द्रव्य निज भक्ति समेत।
निज शक्ति अनुसार जजूँ मैं, कर समाधि पाऊँ शिवखेत॥

ऊँ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्योऽर्घं नि. स्वाहा।

पूर्व मध्य अपराह्न की बेला, पूर्वाचार्यों के अनुसार।
देव वन्दना करूँ भाव से सकल कर्म की नाशन हार॥

पंच महा गुरु सुमरन करके कायोत्सर्ग करूँ सुखकार।
सहज स्वभाव शुद्ध लख अपना जाऊँगा अब मैं भव पार॥
॥ पुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

नवदेवता पूजन

(गीता छन्द)

अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु त्रिभुवन वंद्य हैं।
जिनधर्म जिनआगम जिनेश्वरमूर्ति जिनगृह वंद्य हैं॥
नव देवता ये मान्य जग में, हम सदा अर्चा करें।
आह्वान कर थापे यहाँ मन में अतुल श्रद्धा धरें॥

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु जिनधर्मजिनागम- जिनचैत्य- चैत्यालय समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक (गीता छन्द)

गंगा नदी का नीर निर्मल, बाह्य मल धोवे सदा।
अंतर मलों के क्षालने को नीर से पूजूँ मुदा॥
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकांता वरें॥1॥

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागम जिनचैत्य चैत्यालयेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा

कर्पूर मिश्रित गंध चंदन देह, ताप निवारता।
तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरतहिं वारता।।नव.॥

ओं ह्रीं नवदेवेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा

क्षीरोदधी के फेन सम सित तंदुलों को लायके।
उत्तमअखंडित सौख्य हेतु, पुंज नव सुचढ़ायके।।नव.॥

ओं ह्रीं नवदेवेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा

चंपा चमेली केवड़ा, नाना सुगंधित ले लिये।
भवके विजेता आपको, पूजत सुमन अर्पण किये।।नव.॥

ओं ह्रीं नवदेवेभ्यः कामबाणविनाशनाय पुष्पं नि. स्वाहा

पायस मधुर पकवान मोदक, आदि को भर थाल में।
निज आत्म अमृत सौख्य हेतु पूजहूँ नतभाल मैं।।नव.॥

ओं ह्रीं नवदेवेभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा

कर्पूर ज्योति जगमगे दीपक लिया निज हाथ में।
तुम आरती तमवारती, पाऊँ सुज्ञान प्रकाश मैं।।नव.॥

ओं ह्रीं नवदेवेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा

दश गंध धूप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊँ सदा।
निजआत्मगुण सौरभ उठे, हों कर्म सब मुझसे विदा।।नव.॥

ओं ह्रीं नवदेवेभ्योष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा

अंगूर अमरख आम्र अमृत, फल भराऊँ थाल में।
उत्तम अनूपम मोक्ष फल के, हेतु पूजूँ आज मैं।।नव.॥

ओं ह्रीं नवदेवेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा

जल गंध अक्षत पुष्प चरु दीपक सुधूप फलार्घ्य ले।
वह रत्नत्रयनिधि लाभ यह बस अर्घ्यसे पूजतमिले।।नव.॥

ऊँ ह्रीं नवदेवेभ्यो नर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा

दोहा – जलधारा से नित्य मैं, जग की शांति हेत।
नवदेवों को पूजहूँ, श्रद्धा भक्ति समेत॥

(शांतये शांतिधारा)

नानाविध के सुमन ले, मन में बहु हरषाय।
मैं पूजूँ नवदेवता, पुष्पाञ्जलि चढ़ाय॥

(दिव्यपुष्पाञ्जलिः)

जाप्य- ऊँ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय- सर्वसाधु- जिनधर्म- जिनागम- जिनचैत्यचैत्यालयेभ्यो नमः। (9, 27 या 108 बार)

जयमाला

सोरठा

चिच्चिंतामणि रत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हो।
गाऊँ गुण मणिमाल, जयवंते वर्तो सदा॥1॥

चाल : हे दीन बन्धु ...

जय जय श्री अरिहंत देव देव हमारे।
जय घातिया को घात सकल जंतु उबारे॥1॥
जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूँ।
जय अष्ट कर्ममुक्त की मैं अर्चना करूँ॥2॥
आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं।
दीक्षादि दे असंख्य भव्य तार रहे हैं॥
जैवंत उपाध्याय गुरु ज्ञान के धनी।
सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करें घनी॥3॥
जय साधु अठाईस गुणों को धरें सदा।
निज आतमा की साधना से च्युत न हों कदा।
ये पंच परम देव सदा वंद्य हमारे।
संसार विषम सिंधु से हमको भी उबारें॥4॥
जिनधर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा।
जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा॥
जिनकी ध्वनि पीयूष का जो पान करेंगे।
भव रोग दूर कर वे मुक्ति कांत बनेंगे॥5॥
जिन चैत्य की जो वंदना त्रिकाल करे हैं।
वे चित्स्वरूप नित्य आत्म लाभ करे हैं॥
कृत्रिम व अकृत्रिम जिनालयों को जो भजें।

वे कर्मशत्रु जीत शिवालय में जा बसें॥6॥
नव देवताओं की जो नित आराधना करें।
वे मृत्युराज की भी तो विराधना करें॥
मैं कर्मशत्रु जीतने के हेतु ही जजूँ।
संपूर्ण 'ज्ञानमती' सिद्धि हेतु ही भजूँ॥7॥
नव देवों को भक्तिवश, कोटि कोटि प्रणाम।
भक्ति का फल मैं चहूँ, निज पद में विश्राम॥8॥

ओं ह्लीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिन-चैत्यालेभ्यो पूर्णार्घं नि. स्वाहा।

जो भव्य श्रद्धा भक्ति से नव देवता की पूजा करें।
वे सब अमंगल दोष हर, सुख शांति में झूला करें।
नवनिधि अतुल भंडार ले, फिर मोक्ष सुख भी पावते।
सुखसिंधु में हो मग्न फिर, यहां पर कभी न आवते॥9॥

(**विशेष जानकारी** – जिनके पास समय नहीं है, अनुकूलता नहीं है वह नीचे दी हुई पूजा विधि करें लेकिन जिनके पास समय है वह बड़ी पूजन विधि से करें)

लघु देव शास्त्र गुरु पूजा

रचयिता : मुनि श्री 108 सुव्रतसागर जी महाराज

मन वच तन पावन बना, आया मैं प्रभु- द्वार।
जिन-सूरज जिन-चन्द्र को, वन्दन बारम्बार॥1॥
कर्मों के हर्त्ता तुम्हीं, मुक्ति रमा के नाथ।
वीर! तीर संसार के, तुम्हीं त्रिलोकी नाथ॥2॥
आतम वैभव के धनी, तुम धर्मी गुणवान।
स्वर्ग मोक्ष दाता तुम्हीं, तुम्हीं पूज्य भगवान॥3॥
भक्तों को तुम तारते, तारण-तरण जहाज।
मुझको भी तारो तुम्हीं, कृपा सिंधु जिनराज॥4॥

नाथ! आपका नाम भी, कष्ट विघ्न हर्त्तार।
मुझ पर भी करुणा करो, कर दो अब उद्धार ॥5 ॥
जन्मादिक व्याधीं हरो, मैं आया हूँ पास।
कर्म बन्ध से मुक्ति दो, देकर कुछ सन्यास ॥6 ॥
तुमरा वैभव देखकर, दास हुआ संसार।
मैं तो बस विनती करूँ, महिमा अपरम्पार ॥7 ॥
जल बिन ज्यों मछली हुयी, चाँद बिना ज्यों रात।
वैसे तुम बिन मैं हुआ, बालक ज्यों बिन मात ॥8 ॥
नमूँ-नमूँ ओंकार को, वन्दूँ जिन चौबीस।
देवशास्त्र गुरु को नमूँ, दो मंगल आशीष ॥9 ॥
परमेष्ठी पाँचों नमूँ, नमूँ-नमूँ नव-देव।
भूत भविष्यत आज के, वन्दूँ प्रभु जिनदेव ॥10 ॥
मंगल-मंगल बोल हों, मंगल-मंगल ध्यान।
मंगलमय 'सुव्रत' रहें, हो सबका कल्याण ॥11 ॥

(पुष्पांजलिं)

(णमोकारमन्त्र 9 बार)

(मेरी भावनावत्)

पहला मंगल अपराजित यह, सभी विघ्न हरने वाला।
णमोकार यह मन्त्र सदा ही, पाप नाश करने वाला॥
सुस्थित दुस्थित सभी दशा में, णमोकार जो ध्याते हैं।
पाप नशा भीतर बाहर से, पावन बन सुख पाते हैं॥

(दोहा)

अर्हम् सिद्ध समूह जो, सगुण मुक्ति के धाम।
कर्म रहित परमेश को, शत-शत नम्र प्रणाम॥
श्री जिनवर की वन्दना, हरती विघ्न समूल।
भूत शाकिनी सर्प भय, हरे जहर का शूल॥

(पुष्पांजलिं)

पाँचों कल्याणक नमूँ, जिनवाणी जिननाम।
अर्घ चढ़ा परमेश को, सादर करूँ प्रणाम॥

ओं ह्रीं पंचकल्याणक-पंचपरमेष्ठि- जिनसहस्त्रनाम- जिन सूत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

तीन लोक के स्वामी गुरुवर, नन्त चतुष्टय के धारी।
ज्ञान- सूर्य सर्वज्ञ हितैषी, समवशरण वैभवधारी॥
श्री अर्हन् की पूजा करने, द्रव्य शुद्ध कर मैं लाया।
ज्ञान हवन में पुण्य होमकर, भाव शुद्ध करने आया॥

ओं ह्रीं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

स्वस्ति मंगल पाठ

वृषभ अजित शंभव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनचन्द्र।
पुष्पदन्त शीतल श्रेयांस्जिन, वासुपूज्य प्रभु विमल अनन्त॥
धर्म शान्ति कुन्थू अर मल्ली, मुनिसुव्रत नमि नेमि महान्।
पार्श्व वीर प्रभु चौबीसों हों, मंगलमय मंगल भगवान्॥

पुष्पांजलिं

परमर्षि स्वस्ति मंगल पाठ

चौषठ- चौषठ ऋद्धियाँ, परमर्षि-ऋषिराज।
मंगल हम सबका करें, करें हृदय पर राज।

इति परमर्षिस्वस्तिमङ्गलविधानं परिपुष्पांजलिं क्षिपामि।

जिन मंदिर निर्माण, जिनबिम्ब निर्माण, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, यात्रा, दान, पूजा, जीर्णोद्धार एवं शास्त्र प्रकाशन में द्रव्य (बोने) लगाने से मनुष्य भव के सार की प्राप्ति होती है।

पंचकल्याणक महोत्सव आत्मा से परमात्मा, मिथ्यादृष्टि से सिद्ध अवस्था प्राप्त ऐसे होती है, इसके माध्यम से देखने को मिलता है।

जिन पूजा

(नवदेवता+देवशास्त्र गुरु पूजा)

(लय- मेरी भावनावत्)

श्री अरहन्त सिद्ध आचारज, उपाध्याय सब साधु महान्।
जय जिन धर्म जिनागम जय जिन-चैत्य तथा चैत्यालय धाम॥
ये नव देवा देव शास्त्र गुरु, पूजित जग में जिन भगवान।
मन मंदिर में इन्हें बिठाकर, हम करते हैं पूजन ध्यान॥

ओं ह्रीं श्री नवदेवता देवशास्त्र गुरु समूह अत्र अवतर-2 संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ! तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं। (पुष्पांजलिं)

जल तज के रत्नत्रय जल से, अब कर दो पावन हमको।
तुम बिन सक्षम कौन यहाँ पर? नीर करे अर्पण तुमको॥
देवशास्त्र गुरु नव देवों के, चरण पूजते जो मन से।
मंजिल उनके चरण चूमती, उनका क्या नाता गम से॥

ओं ह्रीं श्री नवदेवतादेवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जगत कूप में आग लगी है, उसमें जलते सब प्राणी।
तन मन भव का ताप मिटाती, जिनवर वाणी कल्याणी॥
देव शास्त्र गुरु नव देवों के, चरण पूजते जो मन से
मंजिल उनके चरण चूमती, उनका क्या नाता गम से?

ओं ह्रीं श्री नवदेवता देवशास्त्र गुरुभ्यो संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

जग वैभव की मारामारी, तजने-तन्दुल चढ़ा रहे।
भक्ति नाव से मुक्ति गाँव को, पाने माथा झुका रहे॥
देव शास्त्र गुरु नव देवों के, चरण पूजते जो मन से
मंजिल उनके चरण चूमती, उनका क्या नाता गम से?

ओं ह्रीं श्री नवदेवता देवशास्त्र गुरुभ्यो अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जिन सूरज के नाममात्र से, भाग्यकमल खिलकर महके।
काम रोग की व्यथा मिटेतो, ब्रह्मचर्य बगिया महके॥
देव शास्त्र गुरु नव देवों के, चरण पूजते जो मन से
मंजिल उनके चरण चूमती, उनका क्या नाता गम से?

ओं ह्रीं श्री नवदेवता देवशास्त्र गुरुभ्यः काम वाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा साँप है महाभयंकर, आप गुरुड़ बन आ जाओ।
ये नैवेद्य आपको अर्पण, क्षुधा जहर प्रभु नशवाओ॥
देव शास्त्र गुरु नव देवों के, चरण पूजते जो मन से
मंजिल उनके चरण चूमती, उनका क्या नाता गम से?

ओं ह्रीं श्री नवदेवता देवशास्त्र गुरुभ्यः क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यथा रात में सूरज गाफिल, तथा मोह में हम अन्धे।
ज्ञान किरण दो हमको भगवन, करें आरती हम बन्दे॥
देव शास्त्र गुरु नव देवों के, चरण पूजते जो मन से
मंजिल उनके चरण चूमती, उनका क्या नाता गम से?

ओं ह्रीं श्री नवदेवता देवशास्त्र गुरुभ्यो मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिसके दिल में प्रभु तुम बसते, उसके विधि बन्धन टूटें।
हृदय हमारे आओ भगवन्, धूप चढ़ाकर हम पूजें॥
देव शास्त्र गुरु नव देवों के, चरण पूजते जो मन से
मंजिल उनके चरण चूमती, उनका क्या नाता गम से?

ओं ह्रीं श्री नवदेवता देवशास्त्र गुरुभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वही सही फल जो उग करके, फसल बढ़ायें घर भर दे।
अगर वही फल प्रभु चरणों में, अर्पण हो तो शिवपुर दे॥
देव शास्त्र गुरु नव देवों के, चरण पूजते जो मन से
मंजिल उनके चरण चूमती, उनका क्या नाता गम से?

ओं ह्रीं श्री नवदेवता देवशास्त्र गुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट द्रव्य का मिश्रण करके, भाव भक्ति से चढ़ा रहे।
अक्षय अंक मिले रत्नत्रय, यही भावना बना रहे॥
देव शास्त्र गुरु नव देवों के, चरण पूजते जो मन से
मंजिल उनके चरण चूमती, उनका क्या नाता गम से?
ओं ह्रीं श्री नवदेवता देवशास्त्र गुरुभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

नव देवों के साथ में, देव शास्त्र गुरु जाप।
भक्तों के संकट हरे, सुख दे अपने आप॥

(लय-मेरी भावनावत्)

अर्हत् भगवत् घाति कर्म बिन, भव्य जनों को तार रहे।
अष्ट कर्म बिन सिद्ध महन्ता, आतम के श्रृंगार रहे॥
शिक्षा दीक्षा दण्ड प्रदाता, गुरु आचार्य ज्ञान पथ दें।
शास्त्र पठन करते करवाते, उपाध्याय विद्यारथ दें॥1॥
ज्ञान ध्यान तप में रत रहके, साधु थामते धर्म ध्वजा।
पूज्य पंच परमेष्ठी ये हैं, मिले इन्हीं की शरण मजा॥
जैन धर्म का चक्र निरन्तर, चलता हरता कर्म कथा।
अर्हत्वाणी जिन आगम का, अमृत पीकर हरो व्यथा॥2॥
प्रभु मूरत जिन चैत्य मनोहर, मन को शांति दिलाते हैं।
जिन मंदिर जिन चैत्यालय जो, चित्त भ्रांति नशवाते हैं॥
पूज्य यही नवदेव पूज लो, दसवें की क्यों हो पूजा।
दसवें की जो करते पूजा, उनसा मूर्ख नहीं दूजा॥3॥
दोष अठारह रहित देव हैं, देवों के जो देव रहे।
हित से सहित शास्त्र हितकर हैं, ग्रंथ रहित गुरुदेव रहे॥
परिषह उपसर्गों में जिनका, मन मेरु सा अचल रहा।
देवशास्त्र गुरु तीन रतन की, पूजन को मन मचल रहा॥4॥

जिन नव देवा, देव शास्त्र गुरु, ये आदर्श हमारे हैं।
इनके पूजक भक्तजनों के, रात दिवस त्यौहारे हैं॥
हरके संकट भरें संपदा, विघ्न कष्ट उलझन हर दें।
इस गंगा में नहा-नहा के, 'सुव्रत' मन पावन कर लें॥5॥

(दोहा)

भाव भक्ति से गा लिये, नव देवों के गीत।
देव शास्त्र गुरु नाम में, घटे न अपनी प्रीत॥
ओं ह्रीं श्री नवदेवता देवशास्त्र गुरुभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
शांति शांतिधारा करे, करे शांति चहुँ ओर।
पुष्पांजलिं से हो रहे, भक्त कमल के भोर॥
शांतिधारा.......... पुष्पांजलिं..........

महा-अर्घ्य

(मेरी भावनावत्)

जिन मूरत पाँचों परमेष्ठी, देवशास्त्र गुरु को पूजूँ।
नामादिक नव-देव पूज लूं, तीर्थंकर तीरथ पूजूँ॥
दया धर्म दशलक्षण पूजूँ, रत्नत्रय मन से पूजूँ।
पूज्य भावनाओं को सादर, महाअर्घ लेकर पूजूँ॥
ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं महाऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा............

शांतिपाठ (चौपाई)

शांति प्रभु चन्दा के जैसे, गुण-धर नेत्र, कमल के जैसे।
पंचम चक्री सोलम जिनवर, आठों प्रातिहार्य मय मनहर॥
शांतिनाथ प्रभु शांति प्रदाता, जगत् पूज्य को हम नत माथा।
हमें शांति दो, जगत शांति हो, हम पूजें नित शांति शांति को॥

(दोहा)

पूजक रक्षक राज्य को, राजा देश विदेश।
गुरु मुनियों को शांति दें, परम शांति परमेश॥

(शांतिधारा मेरी भावनावत्)

सभी प्रजा सम्पन्न सुखी हो, राजा धर्मी सक्षम हों।
योग्य समय पर सम्यक् विधि से, बादल बरसें रिमझिम हो॥
चोरी-मारी रोग व्याधियाँ, जग से सब दुर्भिक्ष टलें।
सुख दाता जिनधर्म चक्र हो, यही भाव दिन रात फलें॥

(दोहा)

घातिकर्म हर पा लिये, उज्ज्वल केवल ज्ञान।
जगत शांति सुखमय करो, वृषभादिक भगवान॥

(चन्दनधारा) (अंतिम इष्ट प्रार्थना)

नमूँ चार अनुयोग पढूँ मैं, प्रभु वन्दन सत्संग करूँ।
गुण गाऊँ पर दोष न बोलूँ, सबसे हित मित बात करूँ॥
तव चरणों में मम हिय थित हो, मेरे हिय में तव-चरणा।
जब तक मैं निर्वाण न पाऊँ, यही भावना ये रटना॥

(दोहा)

क्षमा करो मम दुख हरो, रत्नत्रय दो नाँव।
वीर मरण मैं कर सकूँ, दो चरणों की छाँव॥

पुष्पांजलिं
(नौ बार णमोकार मंत्र)

विसर्जन पाठ (दोहा)

ज्ञान और अज्ञान से रही भूल जो नाथ।
आगम-विधि वो पूर्ण हो, पाकर तेरा हाथ॥
मंत्रादिक से हीन मैं, नहिं पूजन का ज्ञान।
मुझे क्षमा कर दीजिए, चरण शरण का दान॥
शीश झुकाऊँ आज मैं, हो पूजा संपन्न।
पाप हरो मंगल करो, करो मुझे प्रभु धन्य॥

ऊँ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा नमः अर्हदादि परमेष्ठिनः पूजा विधिं विसर्जनं करोमि अपराध क्षमापणं भवतु॥

यः यः यः॥ (नौ बार णमोकार मंत्र)

महाकवि आचार्य श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज पूजा

रचियित्री-आर्यिका श्री 105 मृदुमति माताजी

ज्ञानोदयछन्द

ज्ञानसागराचार्य महाकवि, पंचाचारी अविकारी।
कुन्दकुन्द सामन्तभद्र की, श्रुत परिपाटी अधिकारी ॥
आचारादिक आठ गुणों में, मुनिगुण अट्ठाईस मिलें।
गुण छत्तीस गणीश्वर धारें, पाठक मुनि गुण समाचरें॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

ज्ञानविद्या छन्द

शंका कांक्षा बिन गुण गुणि में, प्रीति अमूढ़ी दृष्टि गही।
उपगूहन मार्गस्थिति वत्सल, प्रभावना गुण सृष्टि लही॥
दर्शन-आचारी गुरु पद में, प्रासुक जल की धार करूँ।
ज्ञानोदधि के ज्ञान सलिल से, आतम के जन्मादि हरूँ॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शब्द,अर्थ शब्दार्थ विनय गुण, उपधा गुण बहुमान गुणी।
काल अनिह्नव वसु गुण धारें, ज्ञानसागराचार्य गणी॥
ज्ञानाचारी ज्ञानोदधि के, पद में चंदन सार धरूँ।
विद्योदधि की शीतलता से, भव आतप परिहार करूँ॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच महाव्रतपंच समिति सह, पञ्चेन्द्रिय का रोध किया।
षट् आवश्यक सात शेष गुण, मन वच तन अवरोध किया॥
चारित्र गुणधर ज्ञानसिन्धु के, पद में अक्षत पुञ्ज धरूँ।
लख चौरासी चारित गुण पा, अक्षय सुख अविलम्ब वरूँ॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये-अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बाह्य तपों से तन मन बाँधा, अंतर तप से मन साधा।
अनशनादि से उद्दीपित कर, दण्ड आदि तप आराधा॥
तपाचारधर ज्ञानोदधि के, पद में दिव्य सुपुष्प धरूँ।
गुरुवर से मैं शुचितप पाकर, कामबली का मान हरूँ॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्राय कामबाणविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानसूर्य वर वीर्य पराक्रम, सल्लेखन में अपनाते।
यथामान बल वीर्य पराक्रम, रत्नत्रय में प्रकटाते॥
वीर्याचारी ज्ञानगणी के, पद में चरु अर्पण नाना।
अनशन तप से क्षुधाजीत कर, मुझको अनन्त बल पाना॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशधर्मों के पुष्प खिलाते, अनुप्रेक्षा द्वादश भाते।
परिषह सहते धीर वीर मुनि, ज्ञानी शुद्धातम ध्याते॥
बाल ब्रह्म ज्योतिर्मय गुरु के, पद में श्रद्धा दीप धरूँ।
ज्ञानोदधि की ज्ञान ज्योति से, सम्यग्ज्ञान प्रदीप्त करूँ॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

पाप कर्म को निर्जर करने, भाव कर्म संवर करते।
पर निमित्त से दृष्टि हटाकर, तत्त्व दृष्टि उर में धरते॥
समाधि साधित ज्ञान तेज में, भक्ति धूप अर्पण करना।
ध्यान अग्नि में कर्म जलाकर, आत्म शुद्ध सुवरण करना॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

भूरामल ने वैरागी बन, मोक्ष तत्त्व में हित देखा।
तब सम्यक्चारित्र धारकर, पायी शान्ति-चन्द्रलेखा॥

शिव साधक ज्ञानोदधि गुरु के, पद में श्रीफल अर्पित है।
बोधि समाधि सुफल पाने को, जीवन पूर्ण समर्पित है॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ त्यागकर महार्घ पाने, रत्नत्रय का धारा था।
साधु सुपाठक सूरीश्वर के, पद को नित्य सम्हारा था॥
अनर्घ पद पाने गुरुवर के, पद में विद्या अर्घ धरें।
उन्हें ज्ञानसागर सूरीश्वर, विद्यासिन्धु महार्घ करें॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानविद्या यशोगान

बाल ब्रह्मचारी गणी, ज्ञानसागराचार्य ।
महामनीषी महाकवि, कुन्दकुन्द सम आर्य॥

ज्ञानविद्या (लय-ज्ञानोदय)

शिवसागर के प्रथम शिष्य गुरु, ज्ञानसिन्धु के गुण गाते।
जिनके शिष्य हमारे गुरुवर, विद्यासागर कहलाते ॥
जिनने जीवन के अथ से ले, इति तक मुनि जीवन साधा।
उन ज्ञानोदधि सूरीश्वर को, झुका रहे हम मृदु माथा ॥1॥
सीकर जिला जन्म राणोली, बाल व्रती पण्डित ज्ञानी।
भूरामल ने लिखा जयोदय, महाकाव्य अतिशय धानी॥
मुनि दीक्षा ले ज्ञानसिन्धु बन, रचे अनेकों ग्रन्थ महाँ।
गुरु विद्यासागर चेतन कृति, रची सूरि अजमेर जहाँ ॥2॥
ज्ञान सूर्य जब अस्ताचल की, तरफ बढ़े थे जिनभाषी।
तभी युवक दक्षिण से आया, 'विद्याधर' कन्नड़ भाषी ॥
ज्ञानसिन्धु बोले जब उससे, नाम कहो जिन-विश्वासी।
तब विद्याधर नाम बताया, मैं विद्या का अभिलाषी ॥3॥
इतना सुन बोले तब गुरुवर, कैसे मानूँ ये बातें।
कितने आये ज्ञान प्राप्त कर, विद्याधर सम उड़ जाते ॥

तभी वीर विद्याधर जी ने, झट रथ वाहन त्याग दिये।
आजीवन मैं रहूँ शरण में, कहकर दृढ संकल्प लिये ॥4॥
कठिन परीक्षाओं में 'विद्या', नहीं कभी भी विफल हुये।
तभी आप गुरु प्रथम शिष्य को, दीक्षा देकर सफल हुये ॥
तीस जून उन्नीस सौ अड़सठ, षाढ़ पञ्चमी सित दीक्षा।
नाम दिया मुनि 'विद्यासागर', बाद मिली आगम शिक्षा ॥5॥
अष्टसहस्री सु परीक्षामुख, बिना ग्रन्थ ही समझाते।
कष्ट-सहस्री मिष्ट सहस्री, बनती जब गुरु बतलाते ॥
मूलाचार दिखे जीवन में, समयसार रस स्वादी थे।
प्रथम शिष्य विद्यासागर को, दिया 'ज्ञान' स्याद्वादी थे॥6॥
जो मन चाहा हुआ वही है, वचन कहा जो हुआ वही।
किया कार्य जो शिष्य शीश पर, अंकित टंकित हुआ सही ॥
मूलगुणों सह छह आवश्यक, यथा समय पाले साँचा।
गुरु कुलाल घट शिष्य बनाया, विद्या को परखा जाँचा ॥7॥
अद्‌भुत शिल्पी ज्ञानसिन्धु ने, एक अनोखा शिष्य रचा।
दूजा रूप न दिखता वैसा, लगा अन्य न द्रव्य बचा ॥
सूरीश्वर के कर साँचे में, विद्यासागर समा गये।
मूलगुणों के अनुपम हीरे, गुरु ने उसमें जड़ा दिये ॥8॥
शिष्य पारखी ज्ञानसिन्धु ने, शिष्य रत्न का चयन किया।
तपः निकष पर योग्य बनाकर, जग को विद्या श्रमण दिया ॥
ज्ञान जौहरी ने विद्या को, स्वयं जौहरी बना दिया।
एक पारखी गुरु ने जिसको, लक्ष-पारखी बना दिया ॥9॥
जिस विध प्रभु का रूप बिम्ब में, तदाकार बिम्बित होता।
ज्ञानजलधि का नूर शिष्य में, तथाकार दर्शित होता ॥
नाम भिन्न है अर्थ एक है, एक ज्ञान है इक विद्या।
भाजन बदला सुधा वही है, वही ज्ञान है गुरु विद्या ॥10॥
पञ्चाचारों रत्नत्रय के, दोनों गुरुवर साधक है।
'ज्ञान' कहो या 'विद्या' कह दो, दोनों जिन आराधक हैं।

महाकाव्य लिख महाकवीश्वर, उपमायें लगती इक सी।
बाल ब्रह्म हैं गौर वर्ण है, द्रव्य जुदा पर्यय इक सी ॥11॥
दीर्घ काल के अनुभव द्वारा, अल्प काल में स्रजा जिसे।
सुघढ़ शिष्य विद्यासागर सा, नहीं अन्य ने रचा उसे ॥
यही बात है एक अनोखी, तुमने इक मूरत साधी।
और शिष्य ने लाख बनायीं, तथा न तुम सम आराधी ॥12॥
श्रमण मार्ग के इतिहासों में, इक अनुपम इतिहास लिखा।
ज्ञानोदधि ने विद्योदधि के, सिर पर अपना ताज रखा ॥
है दिनांक बाईस नवम्बर, मगसिर असित दोज का दिन।
सन् उन्नीस बहत्तर बेला, नगर नसीराबाद सदन ॥13॥
सल्लेखन व्रत धारण करने, तजा 'ज्ञानगुरु' उच्चासन।
निम्नासन पर स्वयं बैठकर, दिया शिष्य को सिंहासन ॥
सूरि ज्ञानसागर गुरुवर ने, नमन किया उस गागर को।
जिन्हें पढ़ाया था अकार से, ऐसे विद्यासागर को ॥14॥
फिर बोले मैं लघु हूँ गुरुवर, आप सूरि विद्यासागर।
हे निर्यापक! रखो शरण में, सल्लेखन व्रत दो भवहर ॥
इक सौ बान्नव दिवस समाधि, साध जून इक तेहत्तर।
ज्येष्ठ अमावस स्वर्ग सिधारे, प्रात दस बजे तन तजकर ॥15॥

दोहा

बने शिष्य गुरु शिष्य के, 'ज्ञानसिन्धु' गुरुराज।
बना लिया निज शिष्य को, अपने सर का ताज ॥1॥
'विद्योदधि' उपदेश को, सुनते 'ज्ञान' महान।
मान त्याग का दृश्य मृदु, देखो! जगत प्रधान ॥2॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागरमुनीन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभकामना

विद्यासागर सूरि की, कृपा रही हितकार ।
'मृदुमति? आर्या भक्ति से, रचती गुरु गुण हार ॥3॥

सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मचर्य धारक प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

रचयिताः शुभांशु जैन शहपुरा (भिटौनी)

ज्ञानोदय छंद (स्थापना)

आँगन मन का सूना गुरुवर, मैंने तुम्हें बुलाया है।
भक्ति भाव से देके निमंत्रण, श्रद्धा चौक पुराया है॥
राग द्वेष का मर्दन करके, कषायें मैंने बुहारी है।
मन वेदी पर आन विराजो, इतनी अरज हमारी है॥

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट सन्निनिधिकरणम।

जन्म जरा मृत्यु से गुरुवर, हम इतने घबराये है।
चरणों का प्रक्षालन करने, भक्त नयन भर लाये है॥
विद्यासागर संत, विमल है अनंत गुण के धारी है।
अचल भाव शुभ धर्म दिवाकर, अतुलनीय सुखकारी हैं॥

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र जन्मजरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

पाप ताप से तपता चेतन, किंचित सुख ना पाते है।
दर्श मात्र कर लेने से गुरु, शीतलता पा जाते है॥
विद्यासागर संत विमल है, अनंत गुण के धारी है।
अचल भाव शुभ धर्म दिवाकर, अतुलनीय सुखकारी है॥

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

अक्षय निधि को पाना है पर, मैं निज से अनजान रहा।
देख आपकी कठिन तपस्या, अविनाशी का ध्यान लहा॥
विद्यासागर संत विमल है, अनंत गुण के धारी है।
अचल भाव शुभ धर्म दिवाकर, अतुलनीय सुखकारी है॥

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान नि. स्वाहा।

विषय वासना की ज्वाला में, जीवन वृथा गंवाया है।
जान आपका शील पराक्रम, काम देव शर्माया है॥
विद्यासागर संत विमल है, अनंत गुण के धारी है।
अचल भाव शुभ धर्म दिवाकर, अतुलनीय सुखकारी है॥

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

क्षुधा तृषा बढ़ती ही जाती, तृप्त नही हो पाती है।
सुनकर तेरी मीठी वाणी, क्षुधा शांत हो जाती है॥
विद्यासागर संत विमल है, अनंत गुण के धारी है।
अचल भाव शुभ धर्म दिवाकर, अतुलनीय सुखकारी है॥

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

मोह अंध से अंधा होकर, निज को नही पहचाना है।
आज आपसे जाना मैंने, केवलज्ञान ठिकाना है॥
विद्यासागर संत विमल है, अनंत गुण के धारी है।
अचल भाव शुभ धर्म दिवाकर, अतुलनीय सुखकारी है॥

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र मोहाधंकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

कर्म अग्नि की ज्वाला भभके, हमको बहुत जलाती है।
आप ध्यान करने से मेरी, मोह अग्नि बुझ जाती है॥
विद्यासागर संत विमल है, अनंत गुण के धारी है।
अचल भाव शुभ धर्म दिवाकर, अतुलनीय सुखकारी है॥

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र अष्टकर्म दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

नाम मोक्षफल ज्ञात मुझे है, सिद्ध स्वरूप न जाना है।
चरण छाँव जो मिली आपकी, उसे शिवालय माना है॥
विद्यासागर संत विमल है, अनंत गुण के धारी है।
अचल भाव शुभ धर्म दिवाकर, अतुलनीय सुखकारी है॥

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र मोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

कैसे भेंट चढ़ाऊँ तुमको, कुछ भी मेरे पास नही।
सांसे अर्पित भक्त समर्पित, तुम बिन मेरा कोई नही॥
विद्यासागर संत विमल है, अनंत गुण के धारी है।
अचल भाव शुभ धर्म दिवाकर, अतुलनीय सुखकारी है॥

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

जयमाला

विद्यासागर संत है, संतो के सरताज
विमल गुणों से पूर्ण है अनंत धर्म जहाज
शिरोमणि जिन सूर्य है, अचल मेरु समजान
अतुलनीय चर्या रही, शुद्ध भाव पर ध्यान
कर्म मलों से लड़ते गुरु हैं, सिद्धदशा पा जाने को
राग द्वेष का मल धो डाला, शुद्धात्म रस पाने को
पग पग पथ पर बढ़ते जाते, वसुविधि कर्म नशाने को
करते लाखो प्रणाम गुरुवर, विमल सुगुण अपनाने को
शब्द लयो का ज्ञान नही है कैसे तेरे गुण गाऊँ
महिमा अनंत रवि के जैसी, दीपक कैसे दिखलाऊँ
अनंत गुणधारी तुम भगवन, अनंत सुख अभिलाषी हो
यही भावना अनंत है मेरी, सिद्ध लोक के वासी हो
धर्म शिरोमणि तुम हो गुरुवर, धर्मध्वजा फैराते हो
धर्म दीप को सतत जलाकर, तामस दूर भगाते हो
निज चेतन धर्मों को जाना, उस पर चलकर दिखलाया
धर्म दिवाकर बनकर तुमने, सारे जग को चमकाया
अचल मेरु सी चर्या है तव कर्म डिगा न पाते है
दृढ़ संकल्पी गुरु के आगे, सब बौने हो जाते है

ज्ञान ध्यान तप तेज को लखकर, सुर भी शीश झुकाते है
अचल मेरु सम दृढ़तर बनने चरणन दौड़े आते है
अतुलनीय चारित्र आपका नही किसी से तुलना हो
सारी सृष्टि फीकी पड़ती , नही किसी से उपमा हो
भाव अधिक है, शब्द भी बौने कैसे तुमको बतलाऊँ
सच में अतुल हो भगवन मेरे हार मान चुप हो जाऊँ
भाव शुद्ध है विशुद्ध चर्या, जिन आगम पर चलते हो
शांत स्वभावी सौम्य विभासी, तीर्थंकर सम लगते हो
भाव प्रभाव तुम्हारा गुरुवर सारे जग से न्यारा है
तुम 'शुभांशु' से हे गुरु प्रभुवर चमका भाग्य हमारा है

ओं ह्रूँ अष्टोतरशताचार्य श्रीविद्यासागर महामुनीन्द्र अनर्घ्यपद प्राप्तये पूर्णार्घं नि. स्वाहा।

दोहा

विद्यासागर सूरी के शिष्य रहे शुभ भाव
विमल अनंत व धर्म मुनि अचल अतुल मुनिराय

॥ पुष्पांजलिं क्षिपेत ॥

महावीर जयंती पूजन

स्थापना (दोहा)

महावीर का जन्म दिन, वीर जयंती पर्व।
झूम-झूम हम पूज लें, करके नमोऽस्तु सर्व॥

(शंभु)

जय महावीर! जय महावीर!जय महावीर! शासन स्वामी।
सिद्धार्थ राज माँ त्रिशला के, सुत महावीर अंतरयामी॥
जब जन्म लिये कुण्डलपुर में, तो तीन लोक में क्षणिक खुशी।
सुर इन्द्र जन्म उत्सव करते, हम करें अर्चना हँसी खुशी॥

(दोहा)

प्राप्त जन्म कल्याण कर, बने वीर जिनराज।
हृदय कमल आसीन कर, हम भी पूजें आज॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री महावीरजिनेन्द्र! अत्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(हरीगीतिका)

हर जन्म का उत्सव मनायें, मृत्यु का दुख भूल के।
जब मृत्यु आती है निकट तो, शीघ्र सुध-बुध भूलते॥
अतिवीर म कर जन्म सार्थक, भय मरण का जीत लें।
प्रभु वीर को करके नमोऽस्तु, हम जयंती पूज लें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री महावीर जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

संसार का जो ताप जीते, प्राणियों को छाँव दे।
सचमुच वही हैं वीर जग में, मुक्ति का जो गाँव दे॥
चैतन्य चंदन सा महकने, दें अभय दिल जीत लें।
प्रभु वीर को करके नमोऽस्तु, हम जयंती पूज लें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री महावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

कोई सिकन्दर हो भले पर, साथ क्या ले जायेगा।
आया दिगंबर हो दिगंबर, राख वह हो जायेगा॥
निधि वीर सम अक्षय मिले सो, धर दिगम्बर रूप लें।
प्रभु वीर को करके नमोऽस्तु, हम जयंती पूज लें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

विद्वेष के कंटक हटा के, प्रेम का सिंचन करें।
परिवार यह दुनियाँ लगेगी, आत्म का चिंतन करें॥
चारित्र का उपवन खिला के, वीर सम निज गंध लें।
प्रभु वीर को करके नमोऽस्तु, हम जयंती पूज लें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

कर निरन्तर भोज्य हम तो, आज तक भूखे रहे।
तन पुष्ट तो होता गया पर, तत्त्व से सूखे रहे॥

हो वीर सम आतम रसीली, स्वानुभव का सौख्य लें।
प्रभु वीर को करके नमोऽस्तु, हम जयंती पूज लें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

यह वीर शासन की दिवाली, है दशहरा ज्ञान का।
फिर क्यों अँधेरे में भटकते, नाश कर अज्ञान का॥
सो वीर सम चेतन करें हम, आरती का दीप लें।
प्रभु वीर को करके नमोऽस्तु, हम जयंती पूज लें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा

जो जीतता संसार को वह, सैन्य योद्धा वीर है।
जो जीतता साधक स्वयं को, सच! वही महावीर है॥
हम वीर बन महावीर बनने, कर्महारी धूप लें।
प्रभु वीर को करके नमोऽस्तु, हम जयंती पूज लें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री महावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

प्रभु वीर साक्षात् ना मिले, इसका हमें तो गम रहा।
पर वीरशासन मिल गया यह, पुण्य फल क्या कम रहा॥
इस पुण्य का करके वपन, अर्हंत फल का बीज लें।
प्रभु वीर को करके नमोऽस्तु, हम जयंती पूज लें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

प्रभु छोड़ हमको मोक्ष पहुँचे, याद में हम रो रहे।
प्रभु के बिना यह भार जीवन, व्यर्थ में हम ढो रहे॥
प्रभु थाम लो अब डोर अपनी, हम पुकारें अर्घ लें।
प्रभु वीर को करके नमोऽस्तु, हम जयंती पूज लें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वीर जयन्ती पर्व का, कर लें हम त्यौहार।
वीर भक्त बनने करें, नमोऽस्तु बारम्बार॥

(जोगीरासा)

जय हो! जय हो! वर्तमान के, वर्धमान जिन स्वामी।
महावीर जिनशासन नायक, प्रभु जी अंतर्यामी॥
पार्श्वनाथ जब मोक्ष गये तब, फैला पाप अंधेरा।
त्राहि!त्राहि! दुनियाँ में फैली, दिखता नहीं सबेरा॥1॥
तब श्रेष्ठी कुण्डलपुर वासी, श्री सिद्धार्थ नरेशा।
धार्मिक रानी त्रिशला देवी, देखी स्वप्न विशेषा॥
सोलह सपनों के फल जाने, रत्नों की हुई वर्षा।
महावीर का जन्म हुआ फिर, सकल विश्व यह हर्षा॥2॥
चैत्र शुक्ल की त्रयोदशी थी, कंचन जैसी काया।
शचि इन्द्राणी ने माता को, मूर्च्छा नींद सुलाया।
मायामयी एक बालक को, जल्दी वहीं सुलाया।
बालवीर को उठा गोद में, सम्यग्दर्शन पाया॥3॥
बाहर ला सौधर्म इन्द्र को, बाल वीर को सौंपा।
लेकर के सौधर्म इन्द्र फिर, सुमेरु गिरि पर पहुँचा॥
पाण्डुक तल पर शासित करके, क्षीर सिन्धु के जल से।
ढारे एक हजार आठ शुभ, बड़े- बड़े ले कलशे॥4॥
तब सौधर्म इन्द्र शंकित हो, सोच रहे कुछ ऐसे।
इतने सारे कलशों का जल, वीर सहेगा कैसे॥
बालवीर ने अवधि ज्ञान से, इसको जाना जैसे।
तनिक अँगूठा दवा दिया तो, हिला सुमेरु वैसे॥5॥
समझ गया सौधर्म इन्द्र सब, फिर अभिषेक करा के।
वीर नाम रख तांडव नाँचे, बाद नगर में आ के॥
इस विध चौदह कोटि रत्न की, प्रतिदिन वर्षा होती।
पन्द्रह माहों तक भक्तों में, दुख दरिद्र सब खोती॥6॥
पर्व जन्म कल्याणक करके, सुर स्वर्गों को जाते।
भक्त मना के वीर जयंती, अपना भाग्य जगाते॥
बदले में बस यही चाहते, बनें जन्म कल्याणी।

बार-बार ना गर्भ जन्म हों, हों कल्याणक स्वामी॥7॥
माँ को अब ना अधिक रुलायें, हम ना आँसु बहायें।
धर्म अहिंसा परमो धर्मः, सूत्र वीर के गायें॥
जियो और जीने दो सबको, दें धार्मिक संदेशा।
'सुव्रत' जीवन सार्थक करने, नमोऽस्तु करें हमेशा॥8॥

(सोरठा)

पर्व जन्म कल्याण, वीर जयन्ती गाइये।
करके नम्र प्रणाम, सार्थक जन्म बनाइये॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्घं नि. स्वाहा।

(दोहा)

महावीर स्वामी करें, विश्वशांति कल्याण।
प्रासुक जल की धार दे, हम पूजें भगवान्॥

(शांतये शांतिधारा)

कल्पवृक्ष के पुष्प सम, पुष्पांजलि पद लाय।
भव दुःखों को मेंट दो, महावीर जिनराय॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपेत्॥

अक्षय तृतीया पूजन

स्थापना (दोहा)

अक्षयतीजा पर्व है, जग में पूज्य महान।
आदिप्रभु को नमोऽस्तु कर, पायें अक्षय दान॥

(ज्ञानोदय)

इस युग के जब आदि प्रवर्तक, दीक्षित होकर संत हुए।
किन्तु वर्ष भर मिला न भोजन, अंतराय के उदय हुए॥
तब श्रेयांस सोम राजा दे, दान पारणा झूम उठे।
दान तीर्थ का हुआ प्रवर्तन, अक्षय-तीजा पूज झुके॥

(दोहा)

तीज शुक्ल वैशाख की, जग में हुई महान।
आदि प्रभु को हम भजें, हृदय वसो भगवान॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्र! अत्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। (पुष्पांजलिं...)

तद्भव मोक्षगामि के भी तो, जन्म मरण आदिक होते।
फिर क्या होगा अपना जीवन, इसे व्यर्थ क्यों हम खोते॥
प्रासुक जल ले अक्षय-तीजा, आदिनाथ को हम पूजें।
श्री श्रेयांस सोम राजा सम, नमोऽस्तु अपने भी गूँजें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

आदिनाथ ने बना अंजुली, पाणिपात्र फैलाया ज्यों।
हुआ मान का मर्दन देखो, शीतल स्वभाव पाया त्यों॥
सो चंदन ले अक्षय-तीजा, आदिनाथ को हम पूजें।
श्री श्रेयांस सोम राजा सम, नमोऽस्तु अपने भी गूँजें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा

धर्मतीर्थ विच्छेद हुआ पर, दानतीर्थ अक्षय दौड़े।
अक्षय-तीजा पर्व उसी का, सिद्धों से नाता जोड़े॥
सो अक्षत ले अक्षय तीजा, आदिनाथ को हम पूजें।
श्री श्रेयांस सोम राजा सम, नमोऽस्तु अपने भी गूँजें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

शील व्रतों का अखण्ड पालन, तीर्थंकर पद दान करें।
फिर भी केवल ज्ञान बिना यह, मुक्तिवधू में नहीं रमे॥
अतः पुष्प ले अक्षय-तीजा, आदिनाथ को हम पूजें।
श्री श्रेयांस सोम राजा सम, नमोऽस्तु अपने भी गूँजें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

तीव्र असाता शर्मिंदा कर, भूखे प्यासे भटकाये।
हाय!हाय! यह कैसे छूटे, जिससे कोई न बच पाये॥

ले नैवेद्यक अक्षय-तीजा, आदिनाथ को हम पूजें।
श्री श्रेयांस सोम राजा सम, नमोऽस्तु अपने भी गूँजें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

भोगभूमि का हुआ समापन, सूर्य चाँद तब प्रकट हुए।
भव्य जनों के पुण्योदय से, धर्म दीप भी उदित हुए॥
अतः दीप ले अक्षय-तीजा, आदिनाथ को हम पूजें।
श्री श्रेयांस सोम राजा सम, नमोऽस्तु अपने भी गूँजें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा

कर्मोदय से आदिनाथ भी, विषयों के व्यापार किये।
आत्मज्ञान पा हुए विरागी, कर्मों का संहार किये॥
अतः धूप ले अक्षय-तीजा, आदिनाथ को हम पूजें।
श्री श्रेयांस सोम राजा सम, नमोऽस्तु अपने भी गूँजें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

आदिनाथ जी किये तपस्या, मोक्षमार्ग सबने पाया।
पर निमित्त के फल से अपना, उपादान तक सुख पाया॥
सो लेकर फल अक्षय-तीजा, आदिनाथ को हम पूजें।
श्री श्रेयांस सोम राजा सम, नमोऽस्तु अपने भी गूँजें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

अहो! ज्ञान की महिमा देखो, पंचाश्चर्य प्रकट होते।
जय हो! जय हो! यशोगान कर, पवित्र आतम घट होते॥
अतः अर्घ ले अक्षय-तीजा, आदिनाथ को हम पूजें।
श्री श्रेयांस सोम राजा सम, नमोऽस्तु अपने भी गूँजें॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

अक्षय तीजा पर्व सा, करके मंगल दान।
अक्षय आतम प्राप्ति को, हो नमोऽस्तु गुणगान॥

(ज्ञानोदय)

जय हो! जय हो! आदिनाथ की, दान तीर्थ की जय-जय हो।
जय हो! जय हो! अक्षय-तीजा, चार दान की जय-जय हो॥
आदिनाथ जब बने तपस्वी, छह मासिक उपवास किये।
तज उपवास गये भोजन को, तो विधि बिन वह लौट लिये॥1॥
वर्धमान चर्या के धारी, पुनः मौन ध्यानस्थ हुए।
विधि का ज्ञान न भक्तों को था, अतः दुखी सब भक्त हुए॥
कैसे हो आहार प्रभु का, भरत सोचते बाहुबली।
तेरह माह नवों दिन गुजरे, कोई युक्ति नहीं चलीं॥2॥
इधर क्षयोपसम अन्तराय का, उधर हस्तिनापुर नृप को।
सात स्वप्न यों क्रमिक दिखे थे, स्वर्णिम मेरु कल्पतरु को॥
सिंह बैल रवि शशि सागर फिर, दिखी देवियाँ द्रव्य लिये।
जान स्वप्न फल पड़गाहन को, द्वाराप्रेक्षण शीघ्र किये॥3॥
श्री श्रेयांस सोम नृप करते, आदि प्रभु का पड़गाहन।
नवधा भक्ति करें खुशी से, दें इक्षुरस कर शोधन॥
वज्रजंघ श्रीमति के भव के, दान पुण्य होते अब धन्य।
पंचाश्चर्य प्रकट होते हैं, दान पात्र दाता हो धन्य॥4॥
रत्नवृष्टि हो, पुष्पवृष्टिहो, ढोल नगाड़े बाज उठे।
पवन सुगंधित सुर-सुर ढुरके, महा दान सब बोल उठे॥
अहो! दान यह धन्य! दान यह, नभ में जय-जय गूँज उठे।
अक्षय तीजा धन्य हो गयी, सभी भक्त हम पूज उठे॥5॥
औषध-शास्त्र-अभय-आहारा, चार तरह का दान करें।
दाता पात्र द्रव्य विधि जाने, आतम का कल्याण करें॥
जड़ धन वैभव नाशवान है, देकर दान अमर हो लो।
अक्षय-तीजा पर्व मनाकर, आदिनाथ की जय बोलो॥6॥
जोड़-जोड़ के जो रखता है, उसके धन में जंग लगे।
गाढ़-गाढ़ के जो रखता है, उसको सर्प भुजंग लगे॥
खाता-पीता जो रहता है, उसका धन तो अंग लगे।

अपने धन का दान करे जो, भव-भव में वह संग लगे॥7॥
अतः कमाओ धर्म नीति से, खर्च रीति से धन करना।
भोग भोगना सदा भीति से, दान प्रीति से सब करना॥
तो जिनशासन तीर्थ चलेगा, ऋद्धि-सिद्धि हो जीवन में।
'सुव्रत' अपना धर्म निभायें, सदा रमें निज चेतन में॥8॥

(सोरठा)

अक्षय-तीजा पर्व, देता यह संदेश है।
त्यागो जड़ धन सर्व, सिद्धों सा निज देश है॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री वृषभनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्घं नि. स्वाहा।

(दोहा)

वृषभनाथ स्वामी करें, विश्वशांति कल्याण।
प्रासुक जल की धार दे, हम पूजत भगवान्॥

(शांतये शांतिधारा)

कल्पवृक्ष के पुष्प सम, पुष्पांजलि पद लाय।
भव दुःखों को मेंट दो, आदिनाथ जिनराय॥

॥ पुष्पांजलि क्षिपेत्॥

* संकल्प वह शक्ति है जो लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए प्रबल और प्रगाढ़ रूप से व्यक्ति की सहायता करती है।

* विश्वास के आगे कमजोरी बोनी है

प्रतिदिन प्रभु के समक्ष यह भावना करें कि हे भगवन्! मैं रत्नमयी स्वर्णमयी जिनालय, वेदी, शिखर बनवाकर विशाल प्रतिमा विराजमान करूँ। सुंदर सुंदर अष्ट प्रातिहार्य, अष्ट मंगल द्रव्य अर्पण करूँ यह भावना अभिषेक के बाद या अन्य समय जरुर करें।

महावीर निर्वाण पूजन

स्थापना (दोहा)

महावीर भगवान को, मन मंदिर में धार।
कर नमोऽस्तु निर्वाण का, कर लें हम त्यौहार॥

(शंभु)

हे वीर! तुम्हें जब मोक्ष हुआ तब, पर्व किया था देवों ने।
जब पता चला इस जग को तो, त्यौहार मनाया भक्तों ने॥
हम उसमें शामिल हो न सके, सो यथाशक्ति से आज सजें।
हे वीर! हमारे ह्रदय वसो, हम महावीर निर्वाण भजें॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्र! अत्र अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। (पुष्पांजलिं...)

जग जन्म-मृत्यु में उलझा है, पर आप जगत के पार गये।
हे मृत्युंजय! जाते-जाते, दे दीवाली त्यौहार गये॥
हम ऋणी रहेंगे जन्मों तक, पर जल तो आज चढ़ायेंगे।
हम करके नमोऽस्तु वीरा को, दीवाली पर्व मनायेंगे॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा...।

खुद 'जियो और जीने दो' यह, सिद्धांत तुम्हारा प्रचलित है।
सिद्धांत भुलाकर यह दुनियाँ, नित राग-द्वेष कर विचलित है॥
हम चलें आपके चिह्नों पर, सो चंदन आज चढ़ायेंगे।
हम करके नमोऽस्तु वीरा को, दीवाली पर्व मनायेंगे॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा...।

क्यों नाथ! हमें तुम छोड़ गये, क्यों सिद्ध हुये शुद्धातम के।
क्यों आकुल-व्याकुल हम भटकें, हम यही समझने आ धमके॥
हमको भी वीर बना लेना, ये अक्षत आज चढ़ायेंगे।
हम करके नमोऽस्तु वीरा को, दीवाली पर्व मनायेंगे॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

ज्यों मोक्ष गये तो तुम अपना, चैतन्य बाग महका डाले।
हम सूख रहे काँटों जैसे, क्यों हमको नाथ! भुला डाले॥
चंदनवाला सम खिलने को, पुष्पों को आज चढ़ायेंगे।
हम करके नमोऽस्तु वीरा को, दीवाली पर्व मनायेंगे॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

ज्यों आत्मप्रदेश विशुद्ध किये, त्यों ठोस ज्ञानघन रूप हुये।
सो मीठे लाडू चढ़ा-चढ़ा, निर्वाण महोत्सव खूब हुये॥
नैवेद्य धर्म का चखने को, यह लाडू आज चढ़ायेंगे।
हम करके नमोऽस्तु वीरा को, दीवाली पर्व मनायेंगे॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

तुम कार्तिक घोर अमावस में, सिद्धों की नगरी खोज लिये।
सो पर्व दिवाली मना-मना, हम दीप जलाना सीख लिये॥
हो नगर-नगर घर-घर उत्सव, ये ज्योति से ज्योति जलायेंगे।
हम करके नमोऽस्तु वीरा को, दीवाली पर्व मनायेंगे॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

हे सन्मति तेरे संदेशे, बस पन्नों पर छप जाते हैं।
दीवालों पर लिख जाते हैं, दीवाली पर पुत जाते हैं॥
अब कहो विश्व का क्या होगा, पर हम तो धूप चढ़ायेंगे।
हम करके नमोऽस्तु वीरा को, दीवाली पर्व मनायेंगे॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

है स्वार्थ बड़ा मजबूत यहाँ, जो सबको बाँधे रखता है।
सो वर्तमान को वर्धमान की, फिर से आवश्यकता है॥

सिद्धांत आपके अपनाने, प्रासुक फल आज चढ़ायेंगे।
हम करके नमोऽस्तु वीरा को, दीवाली पर्व मनायेंगे॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

हे वीर प्रभु! तुम बच निकले, सो मना रहे हम दीवाली।
वरना अस्तित्व हमारा क्या, आये खाली जाते खाली॥
पर मिला वीरशासन हमको, सो सादर अर्घ्य चढ़ायेंगे।
हम करके नमोऽस्तु वीरा को, दीवाली पर्व मनायेंगे॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

पंच कल्याणक अर्घ्य

(दोहा)

षष्ठी शुक्ल अषाढ़ को, तज अच्युत सुर धाम।
माँ त्रिशला के गर्भ में, आये वीर महान्॥

ओं ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठयां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा।

तेरस शुक्ला चैत्र को, वर्धमान लें जन्म।
सिद्धारथ घर आँगने, सुर-नर हुये प्रसन्न॥

ओं ह्रीं चैत्रशुक्ल त्रयोदश्यां जन्ममङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा।

अगहन दसवीं कृष्ण को, सन्मति तज संसार।
बने दिगम्बर सो करें, नमोऽस्तु बारम्बार॥

ओं ह्रीं मगशिरकृष्णदशम्यां तपोमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा।

दसें शुक्ल वैशाख को, पाया केवलज्ञान।
शासननायक बन पुजे, महावीर भगवान्॥

ओं ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा।

कार्तिक कृष्ण अमावस को, मोक्ष गये अतिवीर।
दीवाली त्यौहार हो, पावापुर के तीर॥

ओं ह्रीं कार्तिककृष्ण-अमावस्यायां मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

उत्तम मंगलशरण हैं, णमोकार ओंकार।
शासननायक वीर को, नमोऽस्तु बारम्बार॥

(ज्ञानोदय)

जय हो!जय हो! शासन नायक, महावीर भगवान की।
जय हो! जय हो! वर्धमान के, दीवाली निर्वाण की॥
दीवाली त्यौहार कथा की, अपनी-अपनी श्रद्धायें।
आओ जानें समझें क्या हैं, कैसी प्रचलिलत निष्ठायें॥1॥
हिन्दु कहते आज राम जी, लंका जय कर लौटे थे।
नरकासुर को मार श्याम जी, सिंहासन पर बैठे थे॥
दुर्गाजी अपने पति के घर, आज लौट कर आयीं थीं।
समुद्रमंथन में लक्ष्मी जीर, आज प्रकट हो आयीं थीं॥2॥
सिक्ख गुरु गोविंदसिंह जी, आज मुक्त हो तन छोड़े।
रामकृष्ण जी परमहंस ने, दयानंद ने तन छोड़े॥
हुयी बोधि की प्राप्ति बुद्ध को, रामतीर्थ भी मुक्त हुये।
आद्य शंकराचार्य गुरु जी, मृत्यु शैय्या युक्त हुये॥3॥
किसकी कैसी आस्था हमने, थोड़ी सी कुछ बतलायी।
दीवाली क्यों जैन मनाते, जो तीर्थंकर अनुयायी॥
चौबीसी अंतिम तीर्थंकर, महावीर को आज सुबह।
मोक्ष हुआ निर्वाण गये सो, लाडू चढ़ते जगह-जगह॥4॥
संध्या को अनुबद्ध रूप में, प्रथम शिष्य गौतम गणधर।
बने केवली अतः दिवाली, भक्त मनाते हैं घर-घर॥
सोलह दीपक चौंषठ ज्योति, जला रोशनी करते हैं।
ज्ञानलक्ष्मी मोक्षलक्ष्मी, पूजा खोजा करते हैं॥5॥

घर आँगन को रोशन करने, दीप जलाते शहर नगर।
आतम घट को रोशन करने, प्रेम बाँटते घर-बाहर॥
तब रत्नत्रय रूपा लक्ष्मी, होती शीघ्र प्रसन्न अहो।
दीवाली पावापुर जैसी, स्वयं मनाकर धन्य रहो॥6॥
महावीर गौतम के जैसे, हम अपना उद्धार करें।
अतः पंचमेवा सेवा कर, दीवाली त्यौहार करें॥
विश्व एक परिवार बनाने, 'सुव्रत' ज्योति जलाओ रे।
जलने के पहले जलने से, बचकर पर्व मनाओ रे॥7॥

ओं ह्रीं निर्वाणमहोत्सवमण्डितश्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं नि. स्वाहा...।

(दोहा)

दीवाली के प्रभु करें, विश्वशांति कल्याण।
प्रासुक जल की धार दे, हम पूजत भगवान्॥

(शांतये शांतिधारा)

कल्पवृक्ष के पुष्प सम, पुष्पांजलि पद लाय।
भव दुःखों को मेंट दो, महावीर जिनराय॥
॥ पुष्पांजलि क्षिपेत्॥

श्रुतपंचमी पूजन-1

स्थापना (दोहा)

पूजित श्रुत अवतार की, पूर्ण कथा का पर्व।
हम पूजें श्रुतपंचमी, करके नमोऽस्तु सर्व॥

(ज्ञानोदय)

जिनशासन की अनादि धारा, महावीर प्रभु बहा गये।
जिनकी वाणी सुनकर गौतम, सबको दे तत्त्वार्थ गये॥
जो धरसेनाचार्य गुरु ने, षट्खंडागम ज्ञान दिया।
भूतबलि मुनि पुष्पदंत ने, जिसे पूर्ण लिपिबद्ध किया॥

(दोहा)

ज्येष्ठ शुक्ल श्रुतपंचमी, तब से हुई महान।
'जयदु जयदु सुद देवदा' प्रकटा दें निज ज्ञान॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञान जिनवाणि! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। (पुष्पांजलिं...)

ज्यों अनादि से श्रुत धारा से, जिनशासन सिंचित होता।
उसके आश्रित नहीं हुए जो, जनम मरण उनका होता॥
जन्म मरण की पीड़ा हरने, हम श्रुतपंचमी पर्व भजें।
षट्खण्डागम कसायपाहुड़, उन्तालिस आगम पूजें॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञानाय जन्मजरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा...।

जलकण हिमकण से भी ज्यादा, शीतलता जिनवाणी की।
जिनवाणी रसपान करे जो, व्यथा मिटे उस प्राणी की॥
निज की ज्वालामुखी शांति को, हम श्रुतपंचमी पर्व भजें।
षट्खण्डागम कसायपाहुड़, उन्तालिस आगम पूजें॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञानाय संसारताप-विनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा

लूट-लूट श्रुतधन श्रद्धालु, निजी खजाना भरते हैं।
पर श्रुत के भंडार अनंतों, रिक्त हुआ ना करते हैं॥
निज श्रुत वैभव अक्षय पाने, हम श्रुत पंचमी पर्व भजें।
षट्खण्डागम कसायपाहुड़, उन्तालिस आगम पूजें॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञानाय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

श्रुत के बाग बगीचे में ही, तरुवर हों रत्नत्रय के।
जो अर्हंत सिद्ध बन खिलते, पुष्प लगें सिद्धालय के॥
श्रुत की एक पंखुडी बनने, हम श्रुतपंचमी पर्व भजें।
षट्खण्डागम कसायपाहुड़, उन्तालिस आगम पूजें॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञानाय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

सुनो! मील के पत्थर जैसे, श्रुत के मंत्र समझना हैं।
शास्त्र द्रव्य श्रुत रहा अचेतन, इससे चेतन चखना है॥
अपना शुद्धभाव श्रुत चखने, हम श्रुतपंचमी पर्व भजें।
षट्खण्डागम कसायपाहुड़, उन्तालिस आगम पूजें॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञानाय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

केवलज्ञान सूर्य के बिन तो, श्रुत आगम ही दीप रहे।
जो हमको सन्मार्ग दिखायें, प्रभु के बहुत समीप रहे॥
आतम दीप प्रज्ज्वलित करने, हम श्रुतपंचमी पर्व भजें।
षट्खण्डागम कसायपाहुड़, उन्तालिस आगम पूजें॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञानाय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

भले धूल हो शास्त्रों पर वे, बन कर शस्त्र प्रहार करें।
पाप दुखों की धूल हटा के, कर्म शत्रु संहार करें॥
आत्म किले पर विजय प्राप्ति को, हम श्रुतपंचमी पर्व भजें।
षट्खण्डागम कसायपाहुड़, उन्तालिस आगम पूजें॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञानाय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

जिन श्रुत का स्कंध अडिग है, हिले न मिथ्या आंधी से।
जिसके फल तो स्वर्ग मोक्ष दें, जो आतम रस दे मीठे॥
महा मोक्षफल का पथ पाने, हम श्रुतपंचमी पर्व भजें।
षट्खण्डागम कसायपाहुड़, उन्तालिस आगम पूजें॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञानाय मोक्षफल-प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

संविधान से देश सुचालित, भक्त चलें जिन-आगम से।
विश्व शांति फिर क्यों ना होगी, मुक्ति मिलेगी खुद हमसे॥

ज्ञान देवता प्रसन्न करने, हम श्रुतपंचमी पर्व भजें।
षट्खण्डागम कसायपाहुड़, उन्तालिस आगम पूजें॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञानाय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

पावन है श्रुतपंचमी, नैमित्तिक त्यौहार।
जो शाश्वत त्यौहार दे, सो नमोऽस्तु बहु-बार॥

(ज्ञानोदय)

जय हो! श्रुतपंचमी पर्व की, श्रुत की यह अवतार कथा।
जिनशास्त्रों की रचना वाली, सिद्धांतों की सार कथा॥
ऋषभदेव से महावीर तक, दिव्य-देशना तत्त्वों की।
जिनके गणधर ग्रंथ गूँथते, जिनपर श्रद्धा भक्तों की॥1॥
महावीर निर्वाण गये फिर, गये केवली गणधर भी।
किन्तु बुद्धि जब क्षीण हुई तो, द्वादशांग अंतिम गुरु जी॥
श्री धरसेनाचार्य दुखी थे, कैसे श्रुत की हो रक्षा।
तो गिरिनारी पत्र भेजकर, कही संघ से निज इच्छा॥2॥
मुझ में जो श्रुत ज्ञान भरा है, उसे सौंपना मैं चाहूँ।
अतः भेज दो कुछ शिष्यों को, श्रमण संघ करुणा चाहूँ॥
श्रमणसंघ की सहमति से तब, चन्द्रगिरी दो शिष्य गये।
तब धरसेन स्वप्न देखे दो, तरुण बैल पग चाट रहे॥3॥
सुबह जयदु सुद देवदा कह के, हों श्रुत देव सदा जयवंत।
तभी श्रमण दो आकर करते, नमोऽस्तु सादर नन्तानंत॥
समाचार कर परीक्षा करने, एक-एक फिर मंत्र दिया।
सिद्धि हेतु दो-दो अनशन का, बेला वाला नियम दिया॥4॥
हीनाधिक मंत्रों के कारण कानी देवी प्रकट हुयीं।
अन्य बड़े दाँतों वाली जो, किये व्यवस्थित शुद्ध हुयीं॥

भूतबली वा पुष्पदंत सो, उनके नाम प्रसिद्ध हुए।
जिनको गुरु श्रुत ज्ञान दान दे, अन्य जगह पर भेज दिये ॥5 ॥
षट्खण्डागम ग्रथ लिखे जो, पूर्ण हुए श्रुतपंचमी को।
जिनशासन के भक्त ऋणी हैं, अतः भजें श्रुतपंचमी को ॥
वीरसेन कृत धवला टीका, जय-धवला जिनसेन लिखे।
एक लाख बत्तीस हजारी, श्लोक प्रमाणी ग्रंथ दिखे ॥6 ॥
देवसेनकृत महाधवल जो, है चालीस हजार प्रमाण।
विजय धवल अतिशय धवला के, हैं उपलब्ध न कोई प्रमाण ॥
ऐसी श्रुत अवतार कथा ये, रत्नत्रय को पुष्ट करे।
दीन-हीन भूले भटकों को, ऋद्धि-सिद्धि दे तुष्ट करें ॥7 ॥
ज्ञान दान की परम्परा ये, आत्म धर्म भी दान करे।
राग द्वेष जग विभाव हर के, अनंतकेवल ज्ञान भरे ॥
ज्ञान महोत्सव मोक्षमहल में, करने अवसर दो स्वामी।
'सुव्रत' को आशीष दान दे, सिद्ध बना दो आगामी ॥8 ॥

(सोरठा)

हरने को अज्ञान, हम पूजें श्रुतपंचमी।
करके नमोऽस्तु ध्यान, हम हों आतम के धनी ॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत द्वादशाङ्गनयगर्भित श्रुतज्ञानाय अनर्घपद-प्राप्तये पूर्णार्घं नि. स्वाहा।

(दोहा)

श्री जिनवर वाणी करें, विश्वशांति कल्याण।
प्रासुक जल की धार दे, हम पूजें भगवान् ॥

(शांतये शांतिधारा)

कल्पवृक्ष के पुष्प सम, पुष्पांजलि पद लाय।
भव दुःखों को मेंट दो, श्रुतदेवा जिनराय ॥

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

रक्षाबंधन पूजन-1

रचयिताः मुनि श्री 108 सुव्रतसागर जी महाराज

स्थापना (दोहा)

रक्षाबंधन पर्व का, करते कुछ गुणगान।
शक्ति मिले वात्सल्य भी, बढ़े धर्म की शान ॥

(ज्ञानोदय)

जिन आचार्य अकंपन गुरु का, संघ सात सौ मुनियों का।
हस्तिनागपुर के उपवन में, हुआ विराजित गुणियों का ॥
पूर्व वैर से राजा बलि ने, यज्ञ रचा उपसर्ग किया।
आतम साधक गुरु शिष्यों ने, मौन अचल सब सहन किया ॥
दौड़े विष्णुकुमार महामुनि, ज्यों जाने उपसर्ग कथा।
निजी विक्रिया ऋद्धि द्वारा, शीघ्र दिया उपसर्ग हटा ॥
श्रावण पूनम को मुनियों का, सुखी धन्य आहार हुआ।
रक्षासूत्र बाँध गृहस्थों ने, वत्सलता का द्वार छुआ ॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतकमुनिसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। (पुष्पांजलिं...)

प्रासुक जल यह अर्पित करके, जनम मरण हम ना चाहें।
जिसकी औषध रत्नत्रय दे, हरो हमारी भी आहें ॥
मुनि आचार्य अकंपन आदिक, सात-शतक उपसर्गजयी।
हम पूजें उपसर्ग निवारक, वत्सल विष्णुकुमार गुणी ॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतक मुनिभ्योः जन्मजरा मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा...।

चन्दन द्वारा वन्दन करके, भवाताप हम ना चाहें।
करुणा रस की वर्षा करके, हरलो तम मन की दाहें ॥
मुनि आचार्य अकंपन आदिक, सात-शतक उपसर्गजयी।
हम पूजें उपसर्ग निवारक, वत्सल विष्णुकुमार गुणी ॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतक मुनिभ्यो: संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा

अखण्ड तन्दुल अर्पित करके, कोई उपाधि ना चाहें।
मनोकामना जीत सकें हम, हमें दिखाओ शिवराहें॥
मुनि आचार्य अकंपन आदिक, सात-शतक उपसर्गजयी।
हम पूजें उपसर्ग निवारक, वत्सल विष्णुकुमार गुणी॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतक मुनिभ्यो: अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कोमल पुष्पक अर्पित करके, कामबाण हम ना चाहें।
ब्रह्मचर्य पालन सिखलाके, संज्ञाएँ सब छुड़वायें॥
मुनि आचार्य अकंपन आदिक, सात-शतक उपसर्गजयी।
हम पूजें उपसर्ग निवारक, वत्सल विष्णुकुमार गुणी॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतक मुनिभ्य: कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस मधुर नैवेद्य चढ़ा के, क्षुधारोग हम ना चाहें।
समतारस का पान कराके, हरो भोग की ज्वालायें॥
मुनि आचार्य अकंपन आदिक, सात-शतक उपसर्गजयी।
हम पूजें उपसर्ग निवारक, वत्सल विष्णुकुमार गुणी॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतक मुनिभ्य: क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

करें आरती इन दीपों से, मोह तिमिर हम ना चाहें।
सम्यग्ज्ञान दीप जलवा के, हरलो मिथ्या अफवाहें॥
मुनि आचार्य अकंपन आदिक, सात-शतक उपसर्गजयी।
हम पूजें उपसर्ग निवारक, वत्सल विष्णुकुमार गुणी॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतक मुनिभ्यो: मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप सुगन्धी अर्पित करके, अष्ट कर्म मल ना चाहें।
संयम का सौरभ महका कर, हरो असंयम की बाहें॥

मुनि आचार्य अकंपन आदिक, सात-शतक उपसर्गजयी।
हम पूजें उपसर्ग निवारक, वत्सल विष्णुकुमार गुणी॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतक मुनिभ्यो:अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

यथा शक्तिफल अर्पित करके, लौकिक फल हम ना चाहें।
सम्यक् तप से कर्म झड़ाने, गुरुपद सेवा हम चाहें॥
मुनि आचार्य अकंपन आदिक, सात-शतक उपसर्गजयी।
हम पूजें उपसर्ग निवारक, वत्सल विष्णुकुमार गुणी॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतक मुनिभ्यो: मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव-भक्ति से अर्घ चढ़ा के, नश्वर वैभव ना चाहें।
रूक जाये भव भ्रमण हमारा, इस इच्छा से पद ध्यायें॥
मुनि आचार्य अकंपन आदिक, सात-शतक उपसर्गजयी।
हम पूजें उपसर्ग निवारक, वत्सल विष्णुकुमार गुणी॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतक मुनिभ्यो: अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

सहने वाले धन्य हैं, धन्य निवारक सन्त।
अब जयमाला से कहें, धर्म कथा जिनपन्थ॥

(ज्ञानोदय)

खूब सुनी वात्सल्य अंग की, महिमा अपरम्पार कही।
अखिल विश्व मैत्री का साधन, धर्मी सा उपकार नहीं॥
दूर हुआ उपसर्ग तभी से, रक्षाबन्धन मना रहे।
पर सोचो उपसर्ग धर्मपर, क्यों आते? क्यों सता रहे? ॥1॥
इसका कारण ऐसे लगता, धर्म विमुख हम दौड़ रहे।
थोथी शान मान के कारण, आडम्बर हम ओढ़ रहे॥

प्रेम, दया, वात्सल्य अंग या, धर्म अहिंसा की बातें।
मात्र पुराणों तक सीमित हैं, सदाचार की सौगातें ॥2 ॥
क्रिया-धर्म की भार हो गयीं, पर्व हुये सिर दर्द हमें।
तभी प्रेम विश्वास गमाकर, दुनियाँ लगती दर्द हमें ॥
दुनियाँ उन इंसानों की है, जिनके उर में प्रेम भरा।
धर्म दया सेवा से सनकर, कूट-कूट सुख क्षेम भरा ॥3 ॥
आओ! इस पावन उत्सव पर, मिलकर हम संकल्प करें।
दया धर्म का बिगुल बजाकर, जीवों के दुख दर्द हरें ॥
देव शास्त्र गुरुओं की आज्ञा, पालें सादे जीवन में।
उच्च विचारों की धरती पर, बोयें धर्म बीज मन में ॥4 ॥
बीज अंकुरित होने पर जब, सरस मधुर फल पायेंगे।
विश्व शांति हो घर-घर खुशियाँ, फिर उपसर्ग न आयेंगे।
हर दिन होगा पर्व सरीखा, जय-जय तब गुँजित होगी।
हर जन के मन में फिर 'सुव्रत', प्रेम मूर्ति अंकित होगी ॥5 ॥

(दोहा)

रक्षाबंधन या कहो, पर्व सलूना नाम।
जीव प्रेम वात्सल्य का, यही अनूठा धाम ॥
सर्व पर्व में श्रेष्ठ ये, हरता मन के मैल।
कर निष्ठा मजबूत दे, भक्तों को शिव-गैल ॥

ओं ह्रूँ श्री विष्णुकुमार अकंपनाचार्यादिसप्तशतक मुनिभ्यो जयमाला पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

आत्मसाधना संत की, करें विश्वकल्याण।
प्रासुक जल की धार दे, हम पूजत गुरुनाम ॥

(शांतये शांतिधारा)

कल्पवृक्ष के पुष्प सम, पुष्पांजलि पद लाय।
भव दु:खों को मेंट दो, कर्मजयी मुनिराय ॥

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

जिनवाणी सरस्वती पूजन

स्थापना (दोहा)

जिनवाणी जिन भारती, हरती दुख अज्ञान।
सो पूजें जिन सरस्वती, कर नमोऽस्तु सम्मान ॥

(त्रिभंगी)

तीर्थंकर वाणी, जगकल्याणी, सुनकर प्राणी, ज्ञान करें।
जिन तत्त्व प्रकाशी, धर्म विकासी, मोक्ष निवासी, दान करें ॥
हम करें अर्चना, यही प्रार्थना करें साधना, तत्त्वों को।
माँ ह्रदय पधारें, रूप निखारें, पार उतारें, भक्तों को ॥

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूत सरस्वतीदैव्यै अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्। (पुष्पांजलिं...)

तन होता निर्मल, खोता जग-मल, गंगा के जल-पानी से।
निज चेतन चमके, दुनियाँ महके, प्रभु की सुन के वाणी से ॥
तीर्थंकर वाणी , सुनकर ज्ञानी, गणधर स्वामी, श्रुत रचते।
माँ सरस्वती हम, पाने आतम, जल से अर्चन, अब करते ॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदैव्यै जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा...।

हम जग के ध्यानी, लोभी मानी, हो अज्ञानी, पाप करें।
यह दुनियाँ सपना, फिर क्यों तपना, पाके अपना, ताप हरें ॥
तीर्थंकर वाणी , सुनकर ज्ञानी, गणधर स्वामी, श्रुत रचते।
माँ सरस्वती हम, पाने आतम, चंदन से अर्चन, अब करते ॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदैव्यै संसारतापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा

वाणी तो नश्वर, पर अविनश्वर, देती शिवपुर, ज्ञानी को।
पर में क्यों फूले, आतम भूले, अब तो छूले, वाणी को ॥
तीर्थंकर वाणी , सुनकर ज्ञानी, गणधर स्वामी, श्रुत रचते।
माँ सरस्वती हम, पाने आतम, अक्षत से अर्चन, अब करते ॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदैव्यै अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

भव सुमन महकते, जीवन चहकते, इनमें फँसते, बन भोगी।
जिन सुमन वचन सुन, अंतस में गुन, ब्रह्म रमण चुन, बन योगी॥
तीर्थंकर वाणी , सुनकर ज्ञानी, गणधर स्वामी, श्रुत रचते।
माँ सरस्वती हम, पाने आतम, पुष्प से अर्चन, अब करते॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

यह क्षुधा हमारी, है बीमारी, दुख दे भारी, कब तज लें।
जिन वचन सहाई, क्षुधा दवाई, निज रस दायी, कब चख लें॥
तीर्थंकर वाणी , सुनकर ज्ञानी, गणधर स्वामी, श्रुत रचते।
माँ सरस्वती हम, पाने आतम, नेवज अर्चन, अब करते॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

हे! प्रभु बिन तेरे, घोर अँधेरे, कहाँ सबेरे, होंगे रे।
दो हमें उजाले, आतम वाले, फिर क्यों काले, होंगे रे॥
तीर्थंकर वाणी , सुनकर ज्ञानी, गणधर स्वामी, श्रुत रचते।
माँ सरस्वती हम, पाने आतम, दीप से अर्चन, अब करते॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

ये कर्म कषैले, ऐसे खेले, भव-भव मैले, हमें करें।
जिन वचन तरंगी, सात सभंगी, विमल तरंगी, कर्म हरें॥
तीर्थंकर वाणी , सुनकर ज्ञानी, गणधर स्वामी, श्रुत रचते।
माँ सरस्वती हम, पाने आतम, धूप से अर्चन, अब करते॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा

बिन श्री जिनवाणी, सुन निज वाणी, सारे प्राणी, दुख भोगें।
जिनवाणी गा के, पाप नशा के, आतम ध्याके, सुख भोगें॥
तीर्थंकर वाणी , सुनकर ज्ञानी, गणधर स्वामी, श्रुत रचते।
माँ सरस्वती हम, पाने आतम, जल से अर्चन, अब करते॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

जिनवाणी मैया, संयम नैया, दे के भैया, मुक्ति करे।
सो करें सवारी, हों अनगारी, मुक्ति नारी, प्राप्त करें॥

तीर्थंकर वाणी , सुनकर ज्ञानी, गणधर स्वामी, श्रुत रचते।
माँ सरस्वती हम, पाने आतम, जल से अर्चन, अब करते॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वतीदेव्यै अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

प्रथमानुयोग-अर्घ्य

(ज्ञानोदय)

जो परमार्थ बताने वाले, चरित पुराण शास्त्र होते।
शंका रहित रहें ज्यों के त्यों, देकर पुण्य-पाप धोते॥
बोधि-समाधि के भण्डारे, जो श्रद्धा मजबूत करें।
वो प्रथमानुयोग उन्हीं को, लेकर अर्घ्य नमोऽस्तु करें॥

ओं ह्रीं श्री प्रथमानुयोगसम्बन्धि जिनवाण्यै जिनमुखोद्भव सरस्वतीदैव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा....।

करुणानुयोग-अर्घ्य

लोकालोक विभाग बतायें, षट्कालों के परिवर्तन।
सभी योनियों सब गतियों के, हाल बतायें दर्पण सम॥
अपने भावों के फल क्या हों, भवदुख से भयभीत करें।
वो करणानुयोग उन्हीं को, लेकर अर्घ्य नमोऽस्तु करें॥

ओं ह्रीं श्री करणानुयोग सम्बन्धि जिनवाण्यै जिनमुखोद्भव सरस्वतीदैव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

चरणानुयोग-अर्घ्य

श्रावकचर्या मुनिचर्या का, सम्यग्ज्ञान सिखाये जो।
यम-संयम चारित्र धारने, रक्षासूत्र बताये जो॥
राग-द्वेष की वृत्ति त्यागने, चेतन शुद्ध स्वरूप करें।
वो चरणानुयोग उन्हीं को, लेकर अर्घ्य नमोऽस्तु करें॥

ओं ह्रीं श्री चरणानुयोगसम्बन्धि जिनवाण्यै जिनमुखोद्भव सरस्वतीदैव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

द्रव्यानुयोग-अर्घ्य

जीवाजीव पुण्य-पापों के, बंध-मोक्ष के तत्त्वों के।
सत्य स्वरूप बताकर हरते, मोह अँधेरे भक्तों के॥

सव्वे सुद्धा हु सुद्ध णया से, सिद्ध रूप चैतन्य करें।
वो द्रव्यानुयोग उन्हीं को, लेकर अर्घ्य नमोऽस्तु करें॥

ओं ह्रीं श्री द्रव्यानुयोगसम्बन्धि जिनवाण्यै जिनमुखोद्भव सरस्वतीदैव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा...।

संपूर्ण श्रुत-अर्घ्य

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं, नमः रूप ओंकारमयी।
द्रव्यभाव श्रुत आत्म स्वरूपा, द्वादशांग अनेकांतमयी॥
जग कल्याणी जो जिनवाणी, माँ जैसा उपकार करें।
हीनाधिक बिन जिन-आगम को, लेकर अर्घ्य नमोऽस्तु करें॥

(दोहा)

इक सौ बारह कोटियाँ, कुल तेरासी लाख।
अट्ठावन हजार तथा, द्वादशांग पद पाँच॥

ओं ह्रीं श्री दिव्यध्वनिरूप-संपूर्णजिनागम-स्वरूप जिनमुखोद्भूत सरस्वती-दैव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

दिव्य ध्वनि ओंकारमय, दे निज पर का ज्ञान।
सो जयमाला हम कहें, कर नमोऽस्तु सम्मान॥

(ज्ञानोदय)

पहला आचारांग इसी में, पद अष्टादस रहे हजार।
दूजा सूत्र कृतांग अंग है, जिसमें पद छत्तीस हजार
स्थानांग है अंग तीसरा, जिसमें पद ब्यालीस हजार॥
चौथा समवायांग जहाँ पद, एक लाख चौंसठ हज्जार॥1॥
पंचम व्याख्या प्रज्ञप्ति में, पद दो लख अठबीस हजार।
छठवें ज्ञातृकथा में पद हैं, पाँच लाख छप्पन हज्जार॥
उपासकाध्यानंग सातवाँ, ग्यारह लख सत्तर हज्जार।
रहे अन्तकृत अष्टम में पद, तेइस लख अठबीस हजार॥2॥
नौवें अनुत्तर दशांग में, बानव लख चवालीस हजार।
अंग प्रश्न व्याकरण दसम में, लाख तिरावन सोल हजार॥

सूत्र विपाक ग्यारवें में पद, एक करोड़ चौरासी लाख।
बारहवाँ तो दृष्टिवाद है, पाँच भेद हैं जिसकी शाख॥3॥
जहाँ एक सौ आठ कोटि अरु, इकसठ लाख छप्पन हजार।
और पाँच पद बारहवें में, जिनकी होतीजय-जयकार।
एक अरब बारह करोड़ अरु, जोड़े पद तेरासी लाख।
फिर अट्ठावन हजार पाँच पद, द्वादशांग के कुल पद शाख॥4॥
पद का प्रमाण श्लोकों में, कुल इक्यावन करोड़ हैं।
आठ लाख हजार चौरासी, छह सो साढ़े इक्कीस हैं।
इस विध तीर्थंकर के द्वारा, कथित ज्ञान श्रुतसागर का।
गणधर देवों ने ग्रंथों में, गूँथा सम्यक् गागर का॥5॥
अंग उपांग प्रकीर्णक पाहुड, सूत्र पर्वगत धर्म कथा।
थुति परिक्रम प्रथम अनुयोगा, ठवन चूलिका ज्ञान कथा॥
समीचीन जिन सरस्वती की, पूजा कर अज्ञान हरें।
रत्नत्रय संयम धारण कर, शाश्वत केवलज्ञान करें॥6॥
भजें द्रव्यश्रुत मिले भावश्रुत, अतः अर्चना रचा रहे।
भाव भक्ति से पर्व मनाकर, शिखर मान का गला रहे॥
संकट दुख कर्मों का क्षय हो, बोधि लाभ हो सुगति गमन।
अंत समाधि मरण करें हम, 'सुव्रत' पायें जिनगुण धन॥7॥

(दोहा)

जिनवाणी के ज्ञान से, समझें सार असार।
सो नमोऽस्तु हम सब करें, पाने को भव पार॥

ऊँ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भूत सरस्वतीदैव्यै जयमाला अनर्घपदप्राप्तये पूर्णार्घं नि. स्वाहा।

जिनवाणी माता करें, विश्व शांति कल्याण।
प्रासुक जल की धार दे, हम पूजत श्रुतज्ञान॥

(शांतये शांतिधारा)

कल्पवृक्ष के पुष्प सम, पुष्पांजलि पद लाय।
भव दुःखों को मेंट दो, जिनवाणी श्रुतराय॥

(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

श्रुत पंचमी पूजा-2

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

श्रुतधारी धरसेन सूरि ने, षट्खण्डागम ज्ञान दिया।
पुष्पदन्त मुनि भूतबली ने, सविनय श्रुत आदान किया॥
कर्मप्रकृति प्राभृत के ये छह, जीवस्थान क्षुल्लकबंधा।
बंधस्वामिविचयी व वेदना, वर्गण खंड महाबंधा॥
धवल महाधवला टीका युत, षट्खण्डागम ग्रन्थ नमूँ।
जिन श्रुत गुरु की पूजन करके, सर्व पाप कृत दोष वमूँ॥
आज पंचमी पावन दिन पर, उर में श्रुत अवतार करूँ।
मेरे उर को सतत प्रकाशो, पापों का परिहार करूँ॥

ओं ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतगर्भितषट्खण्डागम! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणम्।

जब से मैंने जिन वचनों के, जल से मिथ्या मल धोया।
तब से पर में सुख है ऐसा, निज का मिथ्या भ्रम खोया॥
निर्मल जल सम शुचि जीवन हो, श्रुतधारी धरसेन नमूँ।
पुष्पदन्त गुरु भूतबली मुनि, परमागम जिन वैन नमूँ॥

ओं ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतगर्भितषट्खण्डागमाय जलं निर्व. स्वाहा।

तन को शीतल करने वाले, जगती में बहु चन्दन हैं।
जो मन को शीतल करते हैं, उन वचनों को वंदन हैं॥
भव आताप विनाशक गुरुवर, श्रुतधारी धरसेन नमूँ।
पुष्पदन्त गुरु भूतबली मुनि, परमागम जिन वैन नमूँ॥

ओं ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतगर्भितषट्खण्डागमाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मन इन्द्रिय का सुख नश्वर है, चेतन सुख अविनश्वर है।
शिव सुख का कारण रत्नत्रय, मुनिवर रूप दिगम्बर है॥
अक्षय सुख मुझको मिल जावे, श्रुतधारी धरसेन नमूँ।
पुष्पदन्त गुरु भूतबली मुनि, परमागम जिन वैन नमूँ॥

ओं ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतगर्भितषट्खण्डागमाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

जिस श्रुत में अवगाहन कर मुनि, काम दाह को हरते हैं।
ऐसे उपकारक आगम को, शत शत वंदन करते हैं॥
मदन दोष मिट जाये मेरा, श्रुतधारी धरसेन नमूँ।
पुष्पदन्त गुरु भूतबली मुनि, परमागम जिन वैन नमूँ॥

ओं ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतगर्भितषट्खण्डागमाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रुत का अध्ययन करने को मुनि, नित रस का परित्याग करें।
और उसी के लेखन में वे, निज जीवन बलिदान करें॥
मैं भी रसना पर जय पाने, श्रुतधारी धरसेन नमूँ।
पुष्पदन्त गुरु भूतबली मुनि, परमागम जिन वैन नमूँ॥

ओं ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतगर्भितषट्खण्डागमाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस जिनशासन के दीपक ने, हम सबका अज्ञान हरा।
उस शासन के ज्ञाता गुरु से, मिलता है शिव सौख्य खरा॥
श्रुतज्ञान की ज्योति जगाने, श्रुतधारी धरसेन नमूँ।
पुष्पदन्त गुरु भूतबली मुनि, परमागम जिन वैन नमूँ॥

ओं ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतगर्भितषट्खण्डागमाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

मार्दव गुण से मुनिवर तुमने, दुखद मदाष्टक नष्ट किया।
फिर कर्माष्टक नष्ट हेतु गुरु, ज्ञान गुणाष्टक पुष्ट किया॥
ध्यान अग्नि में पाप दहन हित, श्रुतधारी धरसेन नमूँ।
पुष्पदन्त गुरु भूतबली मुनि, परमागम जिन वैन नमूँ॥

ओं ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतगर्भितषट्खण्डागमाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रुताभ्यास का सुफल मिले बस, सदा पाप से विरत रहूँ।
जिनशासक गुरु आचार्यों की, आज्ञा में नित निरत रहूँ॥
जिन-आज्ञा का पालन करने, श्रुतधारी धरसेन नमूँ।
पुष्पदन्त गुरु भूतबली मुनि, परमागम जिन वैन नमूँ॥

ओं ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतगर्भितषट्खण्डागमाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

वर्द्धमान जिनशासन वंदूँ, शिव साधक मुनिवर वंदूँ।
सन्मति मुख से निकली वाणी, गूँथी गौतम गुरु वंदूँ॥
अनर्घ पद पाने मति मृदु हो, श्रुतधारी धरसेन नमूँ।
पुष्पदन्त गुरु भूतबली मुनि, परमागम जिन वैन नमूँ॥
ओं ह्रीं द्वादशाङ्गश्रुतगर्भितषट्खण्डागमाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला (यशोगान)

(श्रुतावतारकथा)

वर्द्धमान निर्वाण के, छह सौ चौदह वर्ष।
बीते जब धरसेन का, उदित समय जग हर्ष॥

ज्ञानोदय छन्द

सौराष्ट्री गिरिनार नगर की, चन्द्र गुफा में रहते थे।
श्री धरसेनसूरि निज पर हित, जिनश्रुत चिन्तन करते थे॥
एक देश अंगों पूर्वों के, अष्ट निमित्तों के ज्ञाता।
पंचाचारी प्रवचन वत्सल, हमें बचावें जग त्राता॥1॥
अंग, गगन से, छिन्न, भौम से, लक्षण, व्यंजन से जानें।
स्वप्न स्वरों से सुख दुख जानें, उन्हें नमन हो सुख पानें॥
यों अष्टांग निमित्त ज्ञान से, अल्प आयु निज की जानी।
अंग पूर्व के ज्ञान लोप की, चिन्ता व्यापी दुखदानी॥2॥
उसी सूर्य महिमा नगरी में, यतियों का सम्मेलन था।
दक्षिण पथ के अर्हद्बलि के, निर्देशन में मेलन था॥
खत भेजा धरसेन स्वामि ने, और पढ़ा अर्हद्बलि ने।
सेन मनोगत ज्ञात हुए तब, स्वीकारा अर्हद्बलि ने॥3॥
देश जाति से कुलाचार से, जो विशुद्ध शुभ भासित थे।
सकल कलाओं में पारंगत, मूलाचार सुवासित थे॥
ऐसे दो मुनियों को गुरु से, जाने की आज्ञा मिलती।
गुरु आज्ञा के सुधा अशन से, मुनियों को तृप्ती मिलती॥4॥

शास्त्र श्रवण में अर्थ ग्रहण में, धारण में जो कुशल रहे।
विविध भाँति की विनयभक्ति में, जिनके तन मन धवल रहे॥
था निर्ग्रंथ निरम्बर जीवन, मुक्ति सुपथ पर गमन किया।
पुष्पदन्त मुनि भूतबली के, पद में युग ने नमन किया॥5॥
निजी योग्यता को दृढ़ करने, गणी भाव अवगत करने।
पुनः त्रिबार पूछने पर मुनि, आज्ञा पा हरषे उर में॥
आंध्र देश में बहने वाली, वेणा सरिता के तट से।
शीलहार से भूषित मुनि को, गमन कराते गुरु झट से॥6॥
जिस दिन श्री धरसेन पाद में, मुनि द्वय आने वाले थे।
प्रहर आखिरी निशि में देखे, वृषभ युगल मतवाले थे॥
कुन्द पुष्प सम श्वेत शंख सम, इन्दु किरण सम रँग वाले।
त्रय प्रदक्षिणा करके बैठे, नमन किया शुभ अँग वाले॥7॥
जागृत हुए स्वप्न फल जाना, हर्षित हो बोले धरसेन।
जयवंतो श्रुतवाग्देवता, जयवंतो हे जिनवर वैन।
तभी प्रात बेला में मुनि द्वय, आते सविनय शरणा में।
गुरु के पद में वंदन करके, विनत हुए द्वय चरणा में॥8॥
मौनाशीष गणी से पाते, दो दिन सहज व्यतीत किये।
तीजे दिन फिर विनय भक्ति से, निजी मनोगत व्यक्त किये॥
हे गुरुवर! हम दोनों मुनिजन, आप कार्य से आये हैं।
इतना सुन धरसेन सूरिवर, 'अच्छा' कह हर्षाये हैं॥9॥
'अच्छा हित हो' इन शब्दों में, शुभ आशीष प्रदान किया।
श्रुत विद्या को प्रदान करने, श्रोताओं पर ध्यान दिया॥
शैलघनी या भग्नघटी या, सर्प चालिनी मसक हिया।
तोता मेंढ़ा महिष जोंक सम, माटी सम को ना व्याख्या॥10॥
यदपि स्वप्न से उत्तम श्रोता, दोनों मुनियों को जाना।
अधम जनों को श्रुत देने से, भव भय बढ़ता दुख नाना।
शिष्य परीक्षा सुरीति से हो, हृदय तोष को करती है।

तब श्रुत विद्या शिव फल देती, भव दुःखों को हरती है ॥11 ॥
गुरु धरसेन सूरि श्रुतधर ने, विद्यायें मुनियों को दीं।
हीनाक्षरी एक मुनिवर को, अधिकाक्षरी अन्य को दी॥
सिद्ध हुईं द्वय उपवासों से, विकृत रूप देवी देखी।
इक काणी दूजी दन्तुरिया, मंत्र शुद्ध कर शुभ लेखी ॥12 ॥
मुनियों ने आ हाल सुनाया, गुरु मन ही मन मुस्काते।
योग्य वार तिथि ग्रह मुहूर्त्त में, श्रुत वाचन कर सुख पाते॥
सुदि अषाढ़ ग्यारस के दिन ज्यों, मौखिक आगम पूर्ण किया।
तभी भूतदेवों ने आकर, गुरु शिष्यों का अर्च किया ॥13 ॥
कुसुमावलि से बलि द्रव्यों से, शंख तूर्य शुभ वाद्यों से।
भूत-व्यन्तरों ने पूजा की, भक्ति गान के नादों से॥
भूतों से अर्चित मुनिवर को, 'भूतबली' गुरु नाम दिया।
दन्त पंक्ति सुस्थित होने पर, 'पुष्पदन्त' गुरु नाम किया ॥14 ॥
उसी दिवस दोनों मुनियों को, विहार का संकेत दिया।
गुरु के वचन अलंघ्यनीय हैं, यह विचार कर गमन किया।
वर्षावास अंकलेश्वर में, करके अलग विहार किया।
पुष्पदन्त वनवासि देश को, भूतबली ने तमिल किया ॥15 ॥
पुष्पदन्त ने जिनपालित को, दीक्षा देकर योग्य किया।
सत्प्ररूपणा विंशति गर्भित, जिनपालित को पढ़ा दिया।
फिर जिनपाल सूत्र ले जाकर, भूतबली को दिखलाते।
पुष्पदन्त अल्पायु जान तब, शेष सूत्र खुद रच पाते ॥16 ॥
षट्खण्डागम श्रुत के कर्त्ता, श्री धरसेनाचार्य हुए।
पुस्तक में लिपिबद्ध किया तब, दोनों मुनिवर ख्यात हुए।
पुस्तक में आरूढ़ हुआ जब, बनी पंचमी श्रुतदानी।
चार संघ ने पूजा इसको, 'मृदुमति' पूजो सुखदानी ॥17 ॥

ओं ह्रीं द्वादशाङ्गगर्भितषट्खण्डागमग्रन्थराजाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

रक्षाबन्धन पूजा-2

रचियित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

रेवती छन्द

अकंपन सूरि आदिक जो, सात सौ साधु गुणधारी,
सात दिन रात परिषह को, सहा समता धरी प्यारी।
विष्णु मुनिराज ने इनका, महा उपसर्ग टाला है,
सुगुरु शिष्यों की रक्षा कर, सुगुण वात्सल्य पाला है।
उन्हीं मुनि संघ को हम सब, भक्ति से अब बुलाते हैं,
हृदय में स्थापना करके, निकट कर भक्ति गाते हैं॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतमुनीन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

जिनगीतिका

जिनधर्म श्रद्धा नीर पीकर, जीतते जो प्यास को,
उन सूरि श्रमणों के पदों को, पूजते शिव वास को।
उपसर्ग विजयी अकम्पनादिक, सप्त शत मुनि को भजूँ,
मुनि संघ रक्षक विष्णु मुनि को, पूज वत्सलता यजूँ॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतमुनीन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

उपसर्ग की दुर्गन्ध सहते, साम्य चन्दन गन्ध ले,
उन सूरि श्रमणों के पदों को, आतमा तू वन्द ले।
उपसर्ग विजयी अकम्पनादिक, सप्त शत मुनि को भजूँ,
मुनि संघ रक्षक विष्णु मुनि को, पूज वत्सलता यजूँ॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतमुनीन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

रत्नत्रयों के अक्षतों से, सौख्य अक्षय पायेंगे,
उन सूरि श्रमणों के पदों को, पूज भवि शिव जायेंगे।
उपसर्ग विजयी अकम्पनादिक, सप्त शत मुनि को भजूँ,
मुनि संघ रक्षक विष्णु मुनि को, पूज वत्सलता यजूँ॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतमुनीन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

चारित्र गुण की पुष्पमाला, धारते नित कण्ठ में,
उन सूरि श्रमणों के पदों को, पूजता उत्कण्ठ मैं।
उपसर्ग विजयी अकम्पनादिक, सप्त शत मुनि को भजूँ,
मुनि संघ रक्षक विष्णु मुनि को, पूज वत्सलता यजूँ॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतमुनीन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

जो अनशनादिक सत्तपों से, भूख की बाधा हरें,
उन सूरि श्रमणों के पदों को, पूज गुण साधा करें।
उपसर्ग विजयी अकम्पनादिक, सप्त शत मुनि को भजूँ,
मुनि संघ रक्षक विष्णु मुनि को, पूज वत्सलता यजूँ॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतमुनीन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

संसार दुखमय चिन्त्य निशदिन, मोह ध्वान्त विनाशते,
उन सूरि श्रमणों के पदो को, पूज ज्ञान विकासते।
उपसर्ग विजयी अकम्पनादिक, सप्त शत मुनि को भजूँ,
मुनि संघ रक्षक विष्णु मुनि को, पूज वत्सलता यजूँ॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतमुनीन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

शुभ अशुभ फल में साम्य धरके, कर्म को निर्जर करें,
उन सूरि श्रमणों के पदों को, पूज अघ संवर करें।
उपसर्ग विजयी अकम्पनादिक, सप्त शत मुनि को भजूँ,
मुनि संघ रक्षक विष्णु मुनि को, पूज वत्सलता यजूँ॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतमुनीन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

उपसर्ग परिषह जीत कर के, कर्म फल को जीतते,
उन सूरि श्रमणों के पदों को, पूज दुख से रीतते।
उपसर्ग विजयी अकम्पनादिक, सप्त शत मुनि को भजूँ,
मुनि संघ रक्षक विष्णु मुनि को, पूज वत्सलता यजूँ॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतमुनीन्द्राय मोक्षफलप्राप्तयें फलं नि. स्वाहा।

शिव सिद्ध पद को प्राप्त करने, साधना करते महां,
उन सूरि श्रमणों के पदों को, पूजते मृदु भवि यहाँ।

उपसर्ग विजयी अकम्पनादिक, सप्त शत मुनि को भजूँ,
मुनि संघ रक्षक विष्णु मुनि को, पूज वत्सलता यजूँ॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतमुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

जयमाला (यशोगान)

विद्याब्धि छन्द – हे दीन बंधु

अकंपनादि सात सौ, मुनियों की वंदना।
उपसर्गहारी विष्णु महा, मुनि की अर्चना ॥ध्रुव॥
उज्जैन नगर जैन के, उत्कृष्ट घर जहाँ।
श्रीवर्मा नृप के सचिव थे, बलि आदि चउ वहाँ॥
ये दुष्ट थे स्वभाव से, मुनियों से द्वेष था।
राजा के साथ संत दर्श का, किलेश था॥1॥
मुनि दर्श कर नृपति, नगर को जा रहे जभी।
श्रुतसिन्धु मुनि आहार करके, आ रहे तभी॥
मुनि से विवाद करके बलि, हारता जभी।
श्रुतसिन्धु ने गुरुदेव से आ, कह दिया सभी॥2॥
गुरु ने विचार कर कहा, तुमने गलत किया।
खल से विवाद कर, ससंघ कष्ट ढा दिया॥
मुनि ने कहा कि संघ का, संकट टले सही।
गुरु ने कहा विवाद जहाँ, ध्यान कर वहीं॥3॥
मुनियों के प्राणघात को, रात्रि में खल चले।
श्रुतसिन्धु को ज्यों देख, मारने को झट बढ़े॥
वनदेवी ने उन चार के कर, कील थिर किये।
प्रातः नृपति ने देश से, बाहर उन्हें किये॥4॥
बलि आदि हस्तिनागपुरी, नृप से जा मिले।
युक्ति से स्थान प्राप्त करके, पद लिये भले॥
सिंहरथ को जीत 'पद्म' से, वरदान ले लिया।
आगे कभी ग्रहण करूँ, ये कह के रख दिया॥5॥

अवसर को देख मंत्री ने, उपसर्ग ढा दिया।
मुनि संघ ने उपसर्ग तक, संन्यास ले लिया॥
मुनि संघ पे उपसर्ग, श्रवण[1] काँपते जाना।
मुनि सारचन्द्र का, मुनि विष्णु को बुलाना॥6॥
उपसर्ग टालने को विष्णु, गजपुरी गये।
बल विक्रिया के रूप धार, वटु बने नये॥
याचक का विष्णु मुनवर ने, रूप धर लिया।
बलिराज से डग तीन भू को, दान में लिया॥7॥
तब विक्रिया से देह को, विशाल कर लिये।
दो डग से मेरु मनुजोत्तर, अद्रि छू लिये॥
पग तीसरे को भूमि न, बचती जभी बली।
निज पीठ दे के, दान मुक्त, हो गया छली॥8॥
डग तीन भूमि लेने का, अभिप्राय जान के।
चरणों में क्षमा मांगता, अपराध मान के॥
मुनिराज ने मुनियों का कष्ट, दूर कर दिया।
मुनि संघ की रक्षा का, जग को ज्ञान दे दिया॥9॥
रक्षा के बाद विष्णु ने, मुनि रूप धर लिया।
याचक का रूप धारने का, दण्ड ले लिया॥
नृप पद्मराय ने किया, नमोस्तु संघ को।
उपसर्ग दूर हो गया, उठिये आहार को॥10॥
मुनिभक्त साधु संघ को, आहार कराते।
क्षीरान्न दे मुनिश्वरों को, भाग्य मनाते॥
मुनि रक्षा हेतु सबके कर में, राखी बंध गयी।
श्रावण की पूर्णिमा सुनो, मृदु पर्व बन गयी॥11॥

ओं ह्रीं अकम्पनादिसप्तशतकमुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

उपसर्गों को सह लिया, करके निज का ध्यान।
सूरि अकम्पन आदि सह, विष्णु मुनीश प्रणाम॥
रक्षाबंधन पर्व पर, कर मुनियों को याद।
प्रथम अतिथि को दान दो, भोजन करना बाद॥

श्री महावीर जिन पूजा

(वीरशासन जयन्ती एवं दीपावली सहित)

जिनगीतिका छंद

जो मोह मद अज्ञान हरने, महति सन्मति वीर हैं,
उपसर्ग परिषह सहन करने, धीरधर गंभीर हैं।
उपदेश जिनके भव जलधि से, पार करने तीर हैं,
वे वर्द्धमान जिनेन्द्र मेरे, उर बसें महावीर हैं।
गौतम गणीश्वर शिष्य जिनके, ग्रन्थ रचने धीर हैं,
उन वीर प्रभु के तीर्थ में हम, पा रहे भव तीर हैं॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्र! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणम्।

शुचि रत्नत्रय के नीर से, चउ घाति विधि मल धो लिए,
क्षायिक चतुष्टय सुगुण नव विध, लब्धियों को वर लिये।
गौतम गणीश्वर शिष्य जिनके, ग्रन्थ रचने धीर हैं,
उन वीर प्रभु के तीर्थ में हम, पा रहे भव तीर हैं॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

जीवन मरण में सुख दुखों में, योग में सुवियोग में,
समता सुरभि ले वीर जिनवर, झट गए शिवलोक में।
गौतम गणीश्वर शिष्य जिनके, ग्रन्थ रचने धीर हैं,
उन वीर प्रभु के तीर्थ में हम, पा रहे भव तीर हैं॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व. स्वाहा।

मद मोह के क्षय से जिन्होंने, सौख्य अक्षय पा लिया,
सम्यक्त्व चारित ज्ञान दृग युत, आत्म वैभव पा लिया।
गौतम गणीश्वर शिष्य जिनके, ग्रन्थ रचने धीर हैं,
उन वीर प्रभु के तीर्थ में हम, पा रहे भव तीर हैं॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

कामेन्द्रियाँ भोगेन्द्रियाँ सब, आपने वश में करी,
सुकुमार बाल यतीश प्रभु ने, राह शिवघर की धरी।
गौतम गणीश्वर शिष्य जिनके, ग्रन्थ रचने धीर हैं,
उन वीर प्रभु के तीर्थ में हम, पा रहे भव तीर हैं॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व: स्वाहा।

तप अनशनों से भूख जीती, प्यास भी जीती तभी,
प्रभु दोष अष्टादश रहित वन, जानते लखते सभी।
गौतम गणीश्वर शिष्य जिनके, ग्रन्थ रचने धीर हैं,
उन वीर प्रभु के तीर्थ में हम, पा रहे भव तीर हैं ॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्व: स्वाहा।

जब सिंह की पर्याय में, सम्यक्त्व को धारण किया,
तब आपने सद्बोध पाकर, त्याग पापों का किया।
गौतम गणीश्वर शिष्य जिनके, ग्रन्थ रचने धीर हैं,
उन वीर प्रभु के तीर्थ में हम, पा रहे भव तीर हैं ॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

शुचि ध्यान अग्नि प्रजाल करके, घातिया चारों दहे,
तब शुद्ध परमातम बने प्रभु, नंत गुण चारों लहे।
गौतम गणीश्वर शिष्य जिनके, ग्रन्थ रचने धीर हैं,
उन वीर प्रभु के तीर्थ में हम, पा रहे भव तीर हैं ॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

प्रभु निर्विकल्प समाधि रत हो, आतमा में खो गये,
तब सर्व कर्म विमुक्त होकर, जिन निरंजन हो गये।
गौतम गणीश्वर शिष्य जिनके, ग्रन्थ रचने धीर हैं,
उन वीर प्रभु के तीर्थ में हम, पा रहे भव तीर हैं ॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

इस अर्घ का तो मूल्य है पर, आप का नहिं मूल्य है,
यह अर्घ मैं किस विध चढ़ाऊँ, वीर आप्त अमूल्य हैं।
गौतम गणीश्वर शिष्य जिनके, ग्रन्थ रचने धीर हैं,

उन वीर प्रभु के तीर्थ में हम, पा रहे भव तीर हैं ॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्व: स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्थ

दोहा छन्द

षाढ़ शुक्ल छठ से रहा, अन्तिम गर्भ प्रवास।
वसु दिन सह नव मास तक, सन्मति गर्भावास॥
कल्याणक अन्तिम रहा, फिर ना गर्भ निवास।
पूजूँ उस कल्याण को, हरूँ गर्भ का वास॥

ओं ह्रीं अषाढ़शुक्लषष्ठ्यांअन्तिमगर्भावासकल्याणकप्राप्तश्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घं।

त्रयोदशी सुदि चैत्र को, जन्म महोत्सव मान।
दीक्षा तिथि के पूर्व तक, कुण्ड ग्राम में जान ॥
सप्त मास द्वादश दिवस, अष्टाविंशति वर्ष।
जन्म बाद से वीर का, कुमार काल सहर्ष ॥

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यांअन्तिमजन्मकल्याणकप्राप्तश्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घं

मृगशिर दशमी असित से, बारह वर्ष प्रमाण।
पाँच माह पन्द्रह दिवस, दीक्षा काल सुजान ॥
निर्ग्रन्थी दीक्षा धरी, अन्तिम वीर जिनेश।
द्वादश वर्षी तप तपा, तभी बने तीर्थेश ॥

ओं ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यांअन्तिम तप: कल्याणकप्राप्तश्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घं।

दशमी सुदि वैशाख से, काल केवली जान।
बीस दिवस पन माह सह, उनतिस वर्ष प्रमान॥
दिव्यध्वनि से आपने, किया जगत उद्धार।
आज अभी भी भव्य को, मिलता शिव सुख द्वार॥

ओं ह्रीं वैशाखसितदशम्यांअन्तिमज्ञानकल्याणकप्राप्तश्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं।

युगादि दिन प्रारंभ में, वीर देशना जान।
सन्मति जिन शासन दिवस, श्रावण प्रतिपद् याम॥
सर्व ज्ञान के बाद से, छ्यासठ दिन जिन मौन।
गौतम दीक्षा बाद ही, वाणी खिरी अमौन ॥

ओं ह्रीं श्रवणकृष्णप्रतिपदायां युगादिदिनेधर्मदेशनादातृश्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं।

दो दिन पहले मोक्ष के, वीर ध्यान आरूढ़।
ध्यान त्रयोदशी लोक में, धन तेरस में रूढ़ ॥

ओं ह्री कार्तिककृष्णत्रयोदश्यां ध्यानारूढ़ श्रीमहावीरजिनेन्द्रायनमः अर्घं।

वर्ष इकत्तर मास त्रय, पच्चिस दिन सब काल।
मोक्ष हुआ श्री वीर को, कार्तिक अमा निहाल॥
पावापुर का पद्म सर, सिद्धक्षेत्र भूमीश।
सर्व दुखों से छूटने, निशदिन भजो मुनीश॥

ओं ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यायां मोक्षकल्याणकप्राप्तश्रीमहावीरजिनेन्द्राय नमः अर्घं।

जयमाला (यशोगान)

नमूँ वीर गौतम गणी, नमूँ शारदा मात।
श्रावण वदि एकम महाँ, शासन वीर प्रभात॥
वर्द्धमान तीर्थेश का, यह सर्वोदय तीर्थ।
उदित हुआ जिस भूमि पर, वह विपुलाचल तीर्थ॥

ज्ञानोदय छन्द

वीर नाम शिव लक्ष्मी दाता, सन्मति सन्मति दाता हैं।
लोक वीर अतिक्रान्त किये हैं, महति वीर गुण धाता हैं॥
गर्भादिक पाँचों कल्याणक, वीर जिनेश्वर ने पाये।
आषाढ़ी सित छठ को प्रभुजी, अन्तिम मात उदर आये ॥1॥
चैत्र सुदी तेरस संध्या में, महावीर का जन्म हुआ।
चतुर्दशी को इन्द्रों द्वारा, मेरु शिखर पर नह्वन हुआ॥
वसन भूषणों से फिर शचि ने, बालक का श्रृंगार किया।
वर्द्धमान की निश्छल छवि को, नयनों में फिर धार लिया ॥2॥
इन्द्र हाथ में बालक को ले, पितु के गृह आँगन आते।
जिनका ताण्डव नृत्य देखकर, सुर नर सब जन हरषाते॥
बड़ी कठिनता से सुरेन्द्र ने, सौंप दिया उस बालक को।
माँ त्रिशला सिद्धार्थ पिता के, कर में जग के पालक को॥3॥

तीस वर्ष में निज जन्मों की, संस्मृति से प्रतिबुद्ध हुए।
मोक्ष प्राप्ति हित दीक्षा लेने, वीर देव कटिबद्ध हुए॥
माँ त्रिशला ने बहुत मनाया, वरण करो तुम सन्नारी।
तब सिद्धारथ सुत झट बोले, ब्याहूँ अब मैं शिवनारी॥4॥
लौकान्तिक देवों से स्तुत हो, प्रभु ने वन को गमन किया।
साल वृक्ष तल में केशों का, पंचमुष्टि से लोंच किया॥
द्वय अनशन ले वीर मौन हो, करें मुक्ति वरने इच्छा।
उफा सांध्य में सिद्धों को नम, मगसिर अलि दशमी दीक्षा ॥5॥
बारह बरस तपस्या करके, ऋजुकूला सरि तट आये।
केवलज्ञान हुआ सन्मति को, घाति कर्म जब नश जायें॥
सित वैशाख सुदी दशमी तिथि, केवलता को ले आयी।
जय जयकार किया देवों ने, सारी जनता हरषायी ॥6॥
इन्द्राज्ञा से धनद देव ने, समवसरण रचना कर दी।
द्वादश गण में सभा उपस्थित, प्रभु ने नहीं देशना दी ॥
विहार करते करते प्रभुवर, विपुलाचल चल कर आये।
गण से वेष्टित जिनवर लगते, ज्यों तारों में शशि भाये॥7॥
छ्यासठ दिन बीते तब चिन्ता, हुई इन्द्र को प्रवचन की।
राजगृही से इन्द्रभूति को, लाया हरि इच्छा मन की ॥
मानस्तंभ का अवलोकन कर, जिनवर का वैभव देखा।
तब गौतम का मान गल गया, फिर सम्यक्त्व विभव लेखा ॥8॥
अष्ट प्रातिहार्यों से संयुत, महावीर को जब देखा।
तब माना मैं तुच्छ विप्र हूँ, मुझमें नहीं ज्ञान रेखा ॥
षाढ़ पूर्णिमा मिला समागम, वीर देव का ज्यों झट ही।
दीक्षा धर निर्ग्रन्थ श्रमण बन, आत्म बोध पाया घट ही ॥9॥
उसी रात्रि में इन्द्रभूति ने, ज्ञान चतुष्टय प्राप्त किया।
कोष्ठस्थादिक चतुः ऋद्धि युत, गणधर का पद प्राप्त किया॥
श्रावण अलि एकम को प्रातः, वीर देशना खिरती है।
गौतम गणधर द्वारा वाणी, अक्षर-अक्षर झिलती है ॥10॥

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं, चार भेद मय जिनवाणी।
गौतम गणधर ऋषि ने गूँथी, औषधमय जग कल्याणी॥
द्वादशांग की भाषा द्विविधा, सप्त शतक लघु भाषा हैं।
महाभाष अष्टादश रूपा, हितकर दोनों भाषा हैं ॥11॥
गुणस्थान पर्याप्ति मार्गणा, चौदह जीव समास करें।
प्राणा ध्यान उपयोग योनि कुल, बन्ध मोक्ष जिनदेव करे ॥
द्रव्य काल पंचास्तिकाय सब दिखते शासन दर्पण में।
सप्त तत्त्व का नव पदार्थ का, वर्णन प्रभु के प्रवचन में ॥12॥
एक नहीं दो आदि धर्म हों, अनेकान्त वह कहलाता।
युगल विरोधी गुण धर्मों को, मुख्य गौण कर सहलाता ॥
स्याद्वादी की कथन प्रणाली, मुख्य गौणमय होती है।
एकान्ती-मिथ्या दोषों को, विशाल हृदया धोती है ॥13॥
द्रव्य दृष्टि से जिनशासन का, तत्त्व लोप नहि होता है।
ऐसा निश्चय नय तुम जानो, कषाय मल को धोता है॥
चार संघ की कलियाँ खिलती, तीर्थ छेद नहिं होता है।
ऐसा शुभ व्यवहार सम्हालो, इस बिन जीवन थोता है ॥14॥
षाढ़ पूर्णिमा की संध्या में, इन्द्रभूति ने ली दीक्षा।
सावन वदि प्रातः एकम को, वीर देव ने दी शिक्षा ॥
गुरु पूनम पर शिष्ट शिष्य जन, गुरु की गरिमा गाते हैं।
तथा वीरशासन सु जयन्ती, अगली सुबह मनाते हैं ॥15॥
तीस वर्ष उपदेश दिया फिर, पावापुर प्रस्थान किया।
अमा कार्तिकी पद्म सर स्थित, प्रात वीर निर्वाण लिया॥
संध्या में गौतम गणधर ने, केवलज्ञान विकास किया।
ज्ञान ज्योति का पर्व मनाने, दीपावली प्रकाश किया॥16॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरमहावीरजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्व. स्वाहा।

गर्भ जन्म तप ज्ञान शिव, जिनके अन्तिम जान।
वही पूज्य भगवान है, पूजो भवि हित मान ॥
जन्म जरा मृति क्षय करें, हरें जन्म दुख पीर।
विद्यासागर सूरि के, मृदु वच हित गंभीर ॥

॥ इति शुभम् भूयात् ॥

दशलक्षणधर्म पूजा

उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं,
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं।
आकिंचन ब्रह्मचरज धरम दश सार हैं,
चहुँगति दुखतें काढ़ि मुकति करतार हैं ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्य-दशलक्षणधर्म। अत्र अवतर अवतर संवौषट्! अत्र तिष्ठ त्रिष्ठ ठः ठः! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्!

हेमाचल की धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन केशर गार होय सुवास दशों दिशा।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

अमल अखण्डित सार, तन्दुल चन्द्र समान शुभ।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविनाशनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नेवज विविध निहार, उत्तम षट्-रस-संजुगत।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

वाति कपूर सुधार, दीपक-जोति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता।
भव-ताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ओं ही उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल की जाति अपार, घ्राण-नयन-मन-मोहने।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ॥.

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

आठों दरब संवार, द्यानत अधिक उछाहसौं।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ नि. स्वाहा।

(सोरठा चौपाई एवं हरिगीतिका)

पीड़ै दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करें।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा॥
उत्तम छिमा गहो रे भाई, इह-भव जस पर भव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुन को औगुन कहै अयानो ॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करै।
घर तें निकारै तन विदारै, वैर जो न तहाँ धेरै ॥
तें करम पूरब किये खोटे सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध अगनि बुझाय प्रानी, साम्य-जल ले सीयरा ॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मान महाविषरूप, करहि नीच गति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥
उत्तम मार्दव गुन मन माना, मान करन को कौन ठिकाना।
वस्यो निगोद माँहि तँ आया, दमरी रूकन भाग बिकाया ॥
रूकन बिकाया भाग वशतैं, देव इक-इन्द्री भया।
उत्तम मुआ चाण्डाल हूवा, भूप कीड़ों में गया ॥
जीतव्य जोवन धन गुमान, कहा करें जल-बुदबुदा।
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा॥

ओं हीं उत्तममार्दवधर्मांङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा ॥
उत्तम आर्जव रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मन में हो सो वचन उचरिये, वचन होय सो तन सौं करिये॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट प्रीति अंगारसी॥
नहिं लहै लछमी अधिक छलकरि, कर्म-बन्ध विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता ॥

ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कठिन वचन मत बोल, परनिन्दा अरु झूठ तज ।
साँच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी ॥
उत्तम सत्य-बरत पीलीजै, पर विश्वासघात नहिं कीजै।
साँचे-झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो ॥
पेखो तिहायत पुरुष साँचे, को दरब सब दीजिये।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा, साँच गुण लख लीजिये ॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
वच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया ॥

ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि हिरदै सन्तोष, करहु तपस्या देह सों।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में ॥
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महा दुखदानी, सुख पावै सन्तोषी प्रानी ॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान ध्यान प्रभाव हैं।
नित गंग जुमन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष स्वभावतें ॥
ऊपर अमल मल भर्यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहैं।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच गुन साधू लहैं ॥

ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्रिय मन वश करो।
संजम रतन संभाल, विषय-चोर बहु फिरत हैं।
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजें अघ तेरे।
सुरग-नरक पशुगति में नाहीं, आलसहरन करन सुख ठाहीं ॥
ठाहीं पृथी जल अग्नि मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो ॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग-कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुख बीच में ॥

ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

तप चाहैं सुरराय, करम-शिखर को वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्योंनकरें निजसकति सम ॥
उत्तम तप सबमाँहि बखाना, करम-शैल को वज्र-समाना।
वस्यो अनादिनिगोद मँझारा, भू विकलत्रय पशु तन धारा ॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता ।
श्रीजैनवाणी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता ॥
अति महा दुरलभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलसा धरैं॥

ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।
धन बिजली उनहार, नर भव लाहो लीजिए ॥
उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वैष निरवारै, दाता दोनों दान सँभारे ॥
दोनों सँभारे कूप-जल सम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाया खोया बह गया ॥
धनि साधु शास्त्र अभय दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहें नाहीं बोध को ॥

ओं ही उत्तमत्यागधर्मांङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करें मुनिराज जी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए ॥
उत्तम आकिञ्चन गुण जानो, परिग्रह- चिन्ता दुख ही मानो।
फाँस तनक सी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुख भाले ॥
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि मुद्रा धरै।
धनि नगन पर तन-नगन ठाढ़े सुर-असुर पानि परें ॥
घर माहिं तिसना जो घटावै, रुचि नहीं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगार सौं ॥

ओं ह्रीं उत्तमआकिञ्चन्यधर्मांङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करिदोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा ॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानो।
सहैं बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे॥
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करें।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काग ज्यों चोंचे भरें॥
संसार में विषयाभिलाषा तजि गये जोगीश्वरा।
द्यानत धरम दश पैड़ि चढ़िकै, शिव-महल में पग धरा॥

ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांङ्गाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दश लच्छन वन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सुहाय ॥

(चौपाई)

उत्तम छिमा जहाँ मन होई, अन्तर बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासै ॥1॥
उत्तम आर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावै ।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोले ॥2॥
उत्तम शौच लोभ परिहारी, सन्तोषी गुण रतन भण्डारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता ॥3॥

उत्तम तप निरवांछित पालै, सो नर करम शत्रु को टालै।
उत्तम त्याग करै जो कोई, भोगभूमि सुर- शिवसुख होई ॥4॥
उत्तम आकिञ्चन व्रत धारै, परम समाधि दशा विस्तारै।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर सुर सहित मुकति फल पावै ॥5॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाश ।
अजर अमर पद को लहैं, द्यानत सुखकी राश॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ॥

रत्नत्रय पूजा

कुसुमलता छन्द

अष्ट अंग युत सम्यग्दर्शन, अष्ट अंग युत सम्यग्ज्ञान,
तेरहविध चारित्र सुनिर्मल, रत्नत्रय बनता शिवयान।
जनम मरण के रोग मिटाने, रत्नत्रय औषध गुणखान,
हृदय धार के करूँ अर्चना, हो जावे मेरा कल्याण॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम्!

ज्ञानोदय छन्द

तत्त्वार्थों की श्रद्धा करके, सम्यग्दर्शन पाना है,
रत्नत्रय को भक्ति भाव से सविनय नीर चढ़ाना है।
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण की, हमको अर्चा करना है,
रत्नत्रय की औषध लेकर, जन्म मरण दुख हरना है॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय नमः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

यथा अवस्थित वस्तु तत्त्व का, सम्यग्ज्ञान सुहाना है
रत्नत्रय को भक्ति भाव से, चंदन सुखद चढ़ाना है॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय नमः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व. स्वाहा।

षट् कायो की रक्षा करके, धर्म अहिंसा पाना हैं
रत्नत्रय को भक्ति भाव से अक्षत पूर्ण चढ़ाना है॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय नमः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

असत्य भाषण पर निन्दा तज, सत्यमहाव्रत पाना है।
रत्नत्रय को भक्ति भाव से, पुष्प प्रतीक चढ़ाना है॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय नमः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बिन प्रदत्त परवस्तु न लेगें, यह अचौर्य व्रत पाना है।
रत्नत्रय को भक्ति भाव से, शुचि नैवेद्य चढ़ाना है॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय नमः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।

सकल पुरुष तिय राग त्यागकर, ब्रह्मचर्य को पाना है।
रत्नत्रय को भक्ति भाव से, रत्न सुदीप चढ़ाना है॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय नमः मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दुख का कारण परिग्रह तज कर, निजातमा को पाना है।
रत्नत्रय को भक्ति भाव से, सुरभित धूप चढ़ाना है॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय नमः अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ईर्या भाषा आदि समितियाँ, हित करने अपनाना हैं ।
रत्नत्रय को भक्ति भाव से, श्रीफल सुफल चढ़ाना है॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय नमः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

मन वच तन की तीन गुप्तियाँ, कर्म रोकने धरना है।
रत्नत्रय को भक्ति भाव से, अर्घ समर्पण करना है॥

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय नमः अनर्घपदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

यशोगान (चौपाई)

जो निःशंकित गुण उर धारे, कर्म छेद कर मोक्ष पधारे ।
निःकांक्षित दृग मन में ध्यावें, तप कर प्राणी कर्म खपावें ॥1॥
निर्विचिकित्सा गुण के धारी, रत्नत्रय के बने पुजारी।
अमूढ़दृग पालक जग प्राणी, पाते सुखकर शिवपुर रानी ॥2॥
उपगूहन गुण मन में धारे, दोष रहित चारित्र सम्हारे।
स्थितीकरण करते जो ज्ञानी, परिभ्रमण से छूटें नामी ॥3॥
वत्सल भाव धरें जो मन में, मैत्री विस्तारें जन जन में।
जो अज्ञान तिमिर निरवारें, वे कैवल्य बोधि उर धारें ॥4॥

शब्द अर्थ शब्दार्थ उचारें, वे अनर्थ को शीघ्र निवारें।
कालाचार सम्हालें ज्ञानी, परम समाधि लहें वे नामी ॥5॥
विनय मान बहुश्रुत का करते, वे अज्ञान भाव को हरते।
व्रत धारक उपधान सम्हारें, सदा अनिहनव गुण को धारें ॥6॥
तेरह विध चारित्र सम्हालें, मोक्षमहल के खोलें ताले।
धरें अहिंसा महाव्रतों कों, सत्य अचौर्य सु ब्रह्म व्रतों कों ॥7॥
व्रत अपरिग्रह धारें ज्ञानी, पाते मोक्ष महाँ सुख दानी।
ईर्या भाषा एषण धारें, गहने रखने समिति सम्हारें ॥8॥
प्रासुक भूपर मल को त्यागें, समिति पालने हरदम जागें।
मनवचतन की गुप्ति सम्हारें, जन्म जन्म के दुख परिहारें ॥9॥

ओं ह्लीं सम्यक्‌रत्नत्रयाय नमः पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन ज्ञान युत, चारित्र धारें संत।
रत्नत्रय से शिव लहें, पायें सौख्य अनंत॥
विद्यासागर सूरिवर, पा रत्नत्रय यान।
मृदुता से भव तिर रहे, पाने केवलज्ञान॥
॥ इति शुभम् भूयात्॥

पंचमेरु जिन पूजा

ज्ञानोदय छन्द

ढाई द्वीप के मध्य सुशोभित, पंचमेरु जग वंदित हैं,
जिनमें अस्सी जिन चैत्यालय, सदा सुरों से अर्चित हैं।
एक मेरु प्रति सोलह जिनगृह, सब अस्सी चैत्यालय हैं,
प्रति जिनगृह में शत वसु प्रतिमा, पूजूँ अमित गुणालय हैं ॥

ओं ह्लीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इति आह्वाननम्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरणम्!

मातृका छन्द - लय - स्रग्विणी

नीर सा स्वच्छ जीवन बने इसलिए,
पूजने जिन पदों को सलिल घट लिए।

मेरु पन के सु अस्सी जिनालय भजूँ,
एक सौ आठ प्रत्येक के जिन यजूँ ॥

ओं ह्लीं पंचमेरुसंबंधि- अशीतिजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गुण सुगंधी अगुरु सी महकती रहे,
भ्रमर गुंजित मलय गंध से भज रहे।
मेरु पन के सु अस्सी जिनालय भजूँ,
एक सौ आठ प्रत्येक के जिन यजूँ ॥

ओं ह्लीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यः संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

मम सुगुण मोतियों से चमक जायेंगे,
इसलिए हम जिनालय सदा आयेंगे।
मेरु पन के सु अस्सी जिनालय भजूँ,
एक सौ आठ प्रत्येक के जिन यजूं ॥

ओं ह्लीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

चित्त मम पुष्प जैसा सुकोमल रहे,
अर्पते मन सुमन चित्त यह वश रहे।
मेरु पन के सु अस्सी जिनालय भजूँ ,
एक सौ आठ प्रत्येक के जिन यजूँ ॥

ओं ह्लीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यः कामवाण विंध्वसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जीतने भूख को चैत्य अर्चन करूँ,
हे जिनेश्वर! तुम्हारे चरण उर धरूँ।
मेरु पन के सु अस्सी जिनालय भजूँ,
एक सौ आठ प्रत्येक के जिन यजूँ ॥

ओं ह्लीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहतम नाशने वीर जिन वैन हैं,
ज्ञान दीपक लिए पूजते जैन हैं।
मेरु पन के सु अस्सी जिनालय भजूँ,
एक सौ आठ प्रत्येक के जिन यजूँ ॥

ज्ञान दीपक
ह

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म की धूप हो ध्यान की अग्नि हो,
कष्ट झेलें स्वहित हम न उद्विग्न हों।
मेरु पन के सु अस्सी जिनालय भजूँ,
एक सौ आठ प्रत्येक के जिन यजूँ ॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य के फल तुम्हें जिन चढ़ाउँ यहाँ,
मोक्ष का फल मिलेगा तपूँ तप महाँ।
मेरु पन के सु अस्सी जिनालय भजूँ,
एक सौ आठ प्रत्येक के जिन यजूँ ॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ का मूल्य जिनबिम्ब अनमोल हैं,
मेरु पन वंदना सुफल अनतोल है।
मेरु पन के सु अस्सी जिनालय भजूँ,
एक सौ आठ प्रत्येक के जिन यजूँ ॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला (यशोगान)

दोहा

प्रथम सुदर्शन मेरु वर, विजय अचल लघु मेरु।
मंदर विद्युन्माली लघु, जग में ज्येष्ठ सुमेरु ॥

ज्ञानोदय छन्द

प्रथम सुदर्शन सुमेरु का वन, भद्रशाल भू पर माना,
इसके चउ दिश में चउ जिनगृह, वंदन करके सुख पाना।
सुनो पाँच सौ योजन ऊपर, दूजा नंदन वन आना,
इसके चउ दिश में चउ जिनगृह, वंदन करके सुख पाना ॥1॥
साढ़े बासठ सहस्त्र योजन, ऊपर सुमनस वन आना,

इसके चउ दिश में चउ जिनगृह, वंदन करके सुख पाना।
छत्तिस सहस्त्र योजन ऊपर, गिरि पर पाण्डुक वन आना,
इसके चउ दिश में चउ जिनगृह, वंदन करके सुख पाना ॥2॥
जम्बुद्वीप का सुमेरु पर्वत, जिसके चारों वन गाये,
चार वनों की चार दिशा के, सोलह चैत्यालय भाये।
द्वीप धातकी पुष्करार्ध के, दो दो मेरु चार होते,
ऊँचाई में चउ समान हैं, सब में चउ चउ वन होते ॥3॥
भद्रसाल वन चारों भूपर, फिर क्रमशः ऊपर वन हैं,
चारों भद्रशाल के सोलह, जिनगृह को मम वंदन है।
पंच शतक योजन ऊपर जा, चारों के नंदन वन हैं,
चारों नंदनवन के सोलह, जिनगृह को मम वंदन है। ॥4॥
साढ़े पचपन हजार योजन, ऊपर चउ सुमनस वन हैं,
चारों सुमनस वन के सोलह, जिनगृह को मम वंदन है।
अट्ठाईस हजार सुयोजन, ऊपर चउ पांडुक वन हैं,
चारों पाण्डुक वन के सोलह, जिनगृह को मम वंदन है॥5॥
प्रतिवन के चउ चउ चैत्यालय, एक मेरु के सोलह हैं,
पंचमेरु के अस्सी जिनगृह, मेरे मन में सदा रहें।
पंच मेरु के पांडुक वन की, चउ विदिशा चउ शिला रहीं,
ढाई द्वीप के तीर्थकरों के, न्हवन शिला मन खिला रहीं ॥6॥
सुर नर खग मुनि चारण ऋषिवर, करें वंदना परिक्रमा,
ऐसे पंच मेरु का वर्णन, गणधर करते महामना।
जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के, सभी आर्य पूजन करते,
पंचमेरु को संस्थापित कर, श्रमण संस्कृति मन धरते ॥7॥

दोहा

दशलक्षण के अर्द्ध व्रत, पुष्पांजलि व्रत जान।
पंचमेरु व्रत भी यही, मृदु व्रत करो महान ॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधि-अशीतिजिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घ नि. स्वाहा।

दीपावली गृह पूजन

दीपावली में पूजा आदि क्रियाएँ रात्रि में सम्पन्न करते है जो जैन धर्मानुसार उचित नहीं है। जैन धर्म के अनुसार दिन में ही भोजन एवं पूजन सूर्योदय से सूर्यास्त तक किये जाते हैं।

1. पूजन हेतु स्थान की शुद्धि करके ऊँची टेबिल पर उत्तर, पूर्वाभिमुख जिनवाणी विराजमान कर पूजन अनुष्ठान शुद्ध वस्त्रों में सूर्यास्त से पूर्व सम्पन्न करें।
2. पूजन में भगवान् की अप्रतिष्ठित धातु, प्लास्टिक की मूर्तियाँ, चित्र फोटो केलेण्डर आदि नहीं रखना चाहिए क्योंकि वह पूजनीय नहीं हैं। अतः पूजा हेतू जिनवाणी रखें। (आचार्य श्री का चित्र एवं सच्चे, देव, शास्त्र, गुरु के चित्र रखें)
3. पूजन में रुपया, सिक्का, खाद्यान्न आदि न रखें, दीपावली के दिन ज्ञानलक्ष्मी की आराधना एवं कामना करें।
4. व्यापारिक उपकरण तराजू, बाँट, मीटर, आदि की पूजा न करके स्वास्तिक अंकित कर उन्हें शुद्ध तथा व्यवस्थित एवं निष्ठापूर्वक व्यापार करने का संकल्प करें।
5. अक्षत, आदि मंगल द्रव्य के रूप में रखें पर उनसे पूजन न करके प्रज्वलित दीपों से आरती करें।
6. दीपावली पावन पर्व है अतः जुआ, सट्टा, मद्यपान आदि खोटे कर्म नहीं करना चाहिए।
7. पूजन के बाद मिष्ठान वितरण करें।
8. धनतेरस (धन्य त्रयोदशी) के दिन भगवान् योग निरोध करके मुक्ति लक्ष्मी पाने को अग्रसर हुऐ थे इसी भावना से पूजानुष्ठान आदि करें परन्तु धार्मिक मान्यता से बर्तन, रजत या स्वर्णादि क्रय नहीं करना चाहिए।
9. पटाखों से अत्याधिक जीव हिंसा एवं प्रदूषण होता है स्वयं को हानि होती है एवं पाप का भी भारी बन्ध होता है, अतः पटाखों का प्रयोग न करें।
10. गरीबों को वस्त्र, भोजन, औषधि, मिठाई आदि सामग्री दें जिससे वह भी आपके जैसा पर्व मना सकें।

दीपावली पूजन विधि

अनादि काल से भरतक्षेत्र में अनंत चौबीसी होती आयी हैं इसी क्रम में इस युग में भी ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर हुए। तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ के 256 वर्ष साढ़े तीन माह के बाद अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर को कार्तिक कृष्ण अमावस्या को मोक्ष प्राप्त हुआ था। तथा उनके प्रथम गणधर इन्द्रभूति को अपराह्निक काल में उसी दिन कैवल्यज्ञान की प्राप्ति हुई थी इसी के प्रतीक के रूप में कार्तिक कृष्ण अमावस्या को दीपावली पर्व मनाया जाता है।

प्रातः काल पूजा विधि (मंदिर जी में)

प्रातः काल सूर्योदय के समय स्नानादि करके पवित्र वस्त्र पहनकर जिनेन्द्र देव के मंदिर जी में परिवार के साथ पहुँचकर जिनेन्द्र देव की वन्दना करनी चाहिए तदुपरान्त थाली में अथवा मूलनायक भगवान की वेदी पर चार-चार बाती वाले सोलह दीपक प्रज्ज्वलित करना चाहिए तथा भगवान महावीर स्वामी के मोक्ष कल्याणक का अर्घ्य बोलकर निर्वाण लाडू चढ़ाना चाहिए। नगर में साधु होने पर आहारदान करके भोजन करें। निर्वाण लाडू चढाने वाले दिन शाम को श्रावकगण अपने-अपने घरों में दीपावली पूजन करते हैं। दीपकों का मनोहर प्रकाश करते है। श्री जिन मंदिर जी में व अपनी दुकानों पर दीपकों को सजाते है और प्रमुदित होते है।

संध्याकाल में पूजा विधि (घर में) :

अपराह्न काल में गोधूलि बेला में (सायं 4 से 6 बजे तक) में घर के ईशान कोण (उत्तर-पूर्व में) अथवा घर के मुख्य कमरे में पूर्व की दीवार अथवा सुविधा अनुसार दीवार पर माडना (श्री का पर्वताकार लेखन) बनाकर चौकी के ऊपर जिनवाणी एवं भगवान महावीर स्वामी की तस्वीर रखनी चाहिए अन्य चित्रादि नहीं रखना चाहिए क्योंकि जैन धर्म में इसका कोई उल्लेख नहीं है। घर के मुखिया अथवा किसी अन्य सदस्य को एवं सभी सदस्यों को शुद्ध धोती दुपट्टा पहनकर दीपमालिका के

बाँयी तरफ आसन लगाकर बैठना चाहिए सोलहकारण भावना के प्रतीक रूप चौकी पर सोलह दीपक प्रज्ज्वलित करना चाहिए। इन्ही सोलह कारण भावनाओं को भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध भगवान महावीर स्वामी ने किया था इसी के प्रतीक स्वरूप सोलह दीप चार चार बातियों वाले जलाये जाते है। (16×4=64) का यह अंक चौसठ ऋद्धि का प्रतीक है भगवान महावीर चौसठ ऋद्धियों से युक्त थे। अतः सोलह दीपक चौसठ बत्तियों से जलाकर दीपकों में शुद्ध देशी घी उपयुक्त होता है। (घृत की अनुलब्धि पर यथायोग्य शुद्ध तेल का प्रयोग किया जा सकता है।) दीपको पर सोलह भावना अंकित करनी चाहिए। इन्हे जलाने के पश्चात् दीपावली पूजन, लय एवं शुद्धोच्चारण के साथ विनय पाठ, पूजन पीठिका, स्वस्तिपाठ, परमर्षि स्वस्ति पाठ पढकर देव, शास्त्र, गुरु, वर्तमान चौबीसी, आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी का अर्घ्य चढ़ाकर गौतम स्वामी एवं सरस्वती पूजन करके शान्तिपाठ पूर्वक विसर्जन करें। पूजनोपरान्त सोलहकारण भावना के प्रतीक सोलह दीपकों में 64 बाती जलाकर महावीराष्टक पढ़ें, आरती करें तथा दीपकों को मन्दिरजी, गृहद्वार, रसोईघर एवं सभी कमरों में रखें। आसपास रहने वाले सम्बन्धियों के यहाँ भी दीपक भेज सकते हैं। सरस्वती (जिनवाणी) पूजन चौसठ ऋद्धि का अर्घ्यं, धुली हुई अष्ट द्रव्य से चढ़ाना चाहिए। पूजन से पूर्व तिलक एवं मौली बन्धन सभी को करना चाहिए।

दुकान पर पूजन :

इसी प्रकार दुकान पर भी पूजन करनी चाहिए अथवा लघु रूप में पंच परमेष्ठी प्रतीक रूप पाँच दीपक प्रज्ज्वलित कर पूजन करनी चाहिए। पूजन करने से पूर्व अष्ट द्रव्य तैयार कर एक चौकी पर रख ले। दूसरी चौकी पर स्वस्तिक बनाये मंगल कलश की स्थापना करें। उत्तम धातु के स्वस्तिक या श्री हो तो कलश के अंदर रखें। एक चौकी पर बही (पुस्तक) के अंदर सीधे पृष्ठ पर ऊपर हल्दी या रोली से स्वस्तिक बनाये तथा श्री का पर्वताकार लेखन करे।

जैन समाज में भी इस दिन बही खाते बदलने की और नये कार्य प्रारम्भ करने की परम्परा चली आ रही है, क्योंकि वह युग परिवर्तन का समय था इसलिए नई व्यवस्था के प्रारम्भ के योग्य यह समय माना गया।

दुकान पर दीपावली एवं बही शुभारम्भ

श्री महावीरस्वामिने नमः

श्री लाभ श्री शुभ

श्री

श्री श्री

श्री श्री श्री

श्री श्री श्री श्री

श्री श्री श्री श्री श्री

बही बनाने के मंत्र

श्री ऋषभस्वामिने नमः। श्री महावीरस्वामिन नमः।
श्री गौतम गणधराय नमः। श्री केवलज्ञान-लक्ष्मी देव्यै नमः।
श्री जिन मुखोद् भव सरस्वती देव्यै नमः।

श्री शुभ मिति कृष्णा अमावस्या वीर निर्वाण संवत् .... विक्रम संवत् .... दिनांक........मास......ईं सन्...................वार को श्री (दुकान मालिक का नाम) .... की प्रतिष्ठान का नाम .... की दुकान की बही का शुभ मुहुर्त किया। यह हो जाने के बाद विधि कराने वाले, दुकान के प्रमुख सज्जन को बही हाथ में देवें और पुष्प क्षेपण करें।

(उपर्युक्त विषय नई बही पर लिखें)

जल पड़े है दीप दिल के, इस दिवाली पर सभी।
जीत लेगे हर तिमिर को, इस दिवाली पर सभी॥
रोशनी उम्मीद और विश्वास की फैली रहे।
जग मगाएं, मुस्काएँ इस दिवाली पर सभी॥

पूजन विर्सजन :

शान्ति पाठ एवं विर्सजन करके घर का एक व्यक्ति अथवा बारी बारी सभी व्यक्ति मुख्य दीपक को अखण्ड प्रज्जवलित करते हुए रात भर

णमोकार मंत्र का जाप अथवा पाठ या भक्तामर स्तोत्र आदि पाठ करते हुए शक्ति अनुसार रात्रि जागरण करना चाहिये यदि रात्रि जागरण नहीं कर सके तो कम से कम मुख्य दीपक में यथायोग्य घृत भरकर उसे जाली से ढककर उसी स्थान पर रात भर जलने देना चाहिए। शेष दीपकों में से एक दीपक मंदिर में भेज देना चाहिए। यदि निकट में कोई सम्बन्धी रहते हैं तो वहाँ भी दीपक भेजा जा सकता है। अथवा शेष दीपकों को घर के मुख्य दरवाजे पर एवं मुख्य मुख्य स्थानों पर रखे जा सकते हैं। मिष्ठान आदि का वितरण करना है तो पूजा समाप्ति के पश्चात पूजन स्थल से थोडा दूर हटकर वितरण करें। रात्रि में अन्न की वस्तु का खाने हेतु वितरण न करें।

- पूजा के पश्चात निर्माल्य सामग्री पशु पक्षियों को अथवा मंदिर के माली को दी जा सकती है।
- चौबीस स्वस्तिक या ओम् के बन्दनवार बनाकर दरवाजे के बाहर बाँधने चाहिए जो चौबीस तीर्थकरों के प्रतीक है।

(समुच्य मंत्र- ओं ह्रीं चतु: षष्टिऋद्धिभ्यो नम:)

नोट : दीपावली के दिन पटाखे, अनारदाने बिलकुल न जलावे। इससे लाखों जीवों का घात होता है। पर्यावरण दूषित होता है स्वयं की भी हानि हो जाती है और भारी पाप का बन्ध होता है अत: अपने बच्चो को इस बुरी आदत से रोके क्योंकि कई पशु पक्षियों के गर्भ गिर जाते है या मरण हो जाता है। कई मकान, दुकानें, झोपडियाँ जल जाती है तथा मनुष्यों के अंगोपांग नष्ट हो जाते हैं। पूजा ब्र. भैया, विधानाचार्य, पंडित जी या कुटुम्ब के मुखिया को स्नान कर धोती दुपट्टा पहनकर करना चाहिए।

पूजन में बैठे हुए सभी सज्जनों का निम्न मंत्र बोलकर तिलक करें–

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैन धर्मोऽस्तु मंगलं॥

इसके बाद निम्न मंत्र पढ़कर सभी सज्जनों को शुद्धि के लिए थोड़े से जल के हल्के छीटे दें।

अमृत स्नान मंत्र

मन: प्रसत्यै वचस: प्रसत्यै काय: प्रसत्यै च कषाय च हानि:।
सैवार्थत: स्यात्सकलीक्रियान्या मन्त्रैरुदारै: कृतिकल्पनांगा॥

ओं ह्वीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षणि, अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय सं हं झ्वीं क्ष्वीं ठः ठः हं स: स्वाहा।

(इस मन्त्र से जल को मन्त्रित कर शरीर पर छिटककर शुद्धि करें।)

मंगल कलश स्थापना मंत्र

(पीले चावल से स्वास्तिक बनाकर मंगल कलश की यह मंत्र पढ़ते हुए स्थापना करें)

ओं ह्वीं आद्यानामाद्ये मध्यलोके, जम्बूद्वीपे, भरतक्षेत्रे, आर्यखण्डे भारत देशे ....प्रदेश .... जिले .... नगरे .... मासे ....पक्षे .... अमावस्यां संध्याकाले गौतम गणधर पूजायां भूमि शुद्ध्यर्थं, पात्र शुद्ध्यर्थं, शान्तयर्थं पुण्य संचनार्थं, केवल ज्ञान प्राप्त्यर्थं नवरत्न, गंध पुष्पाक्षत श्री फलादि शोभितं शुद्ध प्रासुक जल प्रपूरितं मंगल कलश स्थापनं करोमि।

दीप प्रज्ज्वलन मंत्र

ओं ह्वीं कार्तिक कृष्ण अमावस्यां मोहितिमिर विनाशनाय दीप प्रज्ज्वलनं करोमि।

शास्त्र स्थापना मंत्र

ओं ह्वीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै: स्थापनं करोमि।

पूजा प्रारम्भ

ऊँ जय जय जय। नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु।
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

ऊँ ह्वीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नम:
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे शरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्।

अर्घ्यावली

श्री देव शास्त्र गुरु

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु जनम के पातक हरूँ॥
इह भाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि करत शिवपंकति मचूँ।
अरहंत श्रुत - सिद्धान्त गुरु - निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
वसुविधि अर्घ संजोय कै, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्री विद्यमान बीस तीर्थङ्कर

जल फल आठों द्रव्य अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इन्द्रनिहूं-तैं थुति पूरी न करी है॥
'द्यानत' सेवक जानके जग-तैं लेहु निकार।
सीमंधर जिन आदि दे बीस विदेह मँझार॥
श्री जिनराज हो भव तारण तरण जिहाज॥

ओं ह्रीं श्रीविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्री महावीर भगवान

जलफल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरों।
गुणगाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरों॥
श्री वीर महा अतिवीर सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मतिदायक हो॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा

सरस्वती (जिनवाणी)

जल चन्दन अक्षत पुष्प चरु, अरु दीप धूप अति फल लावै।
पूजा को ठानत जो तुम जानत, सो नर 'द्यानत' सुख पावै॥
तीर्थंकर की ध्वनि, गणधर ने सुनी, अंग रचे चुनि ज्ञान मई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य मई॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

गौतम स्वामी

गौतमादिक सर्व एक दश गणधरा, धर जिनके मुनि सहस्र चौदहवरा।
नीर गंधाक्षतं पुष्प चरु दीपक, धूप फल अर्घ फल ले हम जजे महर्षिक॥

ओं ह्रीं महावीरजिनस्य गौतमाद्येकादश गणधरसहितचतुर्दश सहस्रमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इसके बाद शांतिपाठ पढ़े विसर्जन करें। परिवार के सभी जनों को तिलक लगाये। अन्न रहित मिष्ठान से सत्कार करें।

आओ अंधकार मिटे का हुनर सीखें हम।
कि वजूद अपना बनाने का हुनर सीखे हम॥
रोशनी और बढ़े और उजाला फेले।
दीप से दीप जलाने का हुनर सीखे हम॥

श्री गौतम गणधर पूजन

जय जय इन्द्रभूति गौतम गणधर मुनिवर जय जय।
तीर्थंकर श्री महावीर के प्रथम मुख्य गणधर जय जय॥
द्वादशाङ्ग श्रुत पूर्ण ज्ञानधारी गौतम स्वामी जय जय।
वीर प्रभु की दिव्यध्वनि जिनवाणी के सुन हुए अभय॥
ऋद्धि सिद्धि मङ्गल के दाता मोक्ष प्रदाता गणधर देव।
मङ्गलमय शिव पथ पर चलकर मैं श्री सिद्ध बनूँ स्वयमेव॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वनन।
ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिन् अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिन् अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

मैं मिथ्यात्व नष्ट करने को निर्मल जल की धार करूँ।
सम्यक्दर्शन पाऊँ जन्म-मरण क्षय कर प्रभु! भव रोग हरूँ॥
गौतम गणधर स्वामी के चरणों की मैं करता पूजन।
देव! आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करुँ नमन॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

पञ्चपाप अविरति को त्यागूँ शीतल चन्दन चरण धरूँ।
भव आताप नाश करके प्रभु! मैं अनादि भव रोग हरुँ॥
गौतम गणधर स्वामी के चरणों की मैं करता पूजन।
देव! आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करुँ नमन॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

पञ्च प्रमाद नष्ट करने को उज्ज्वल अक्षत भेंट करूँ।
अक्षत पद की प्राप्ति हेतु प्रभु! मैं अनादि भव-रोग हरूँ॥
गौतम गणधर स्वामी के चरणों की मैं करता पूजन।
देव! आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करुँ नमन॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

चार कषाय अभाव हेतु मैं पुष्प मनोरम भेंट करूँ।
कामबाण विध्वंस करूँ प्रभु! मैं अनादि भव-रोग हरुँ॥
गौतम गणधर स्वामी के चरणों की मैं करता पूजन।
देव! आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करुँ नमन॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

मन वचन काय योग सर्व हरने को प्रभु! नैवेद्य धरूँ।
क्षुधा व्याधि का नाम मिटाऊँ मैं अनादि भव-रोग हरुँ॥
गौतम गणधर स्वामी के चरणों की मैं करता पूजन।
देव! आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करुँ नमन॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

सम्यक्ज्ञान प्राप्त करने को अन्तर दीप प्रकाश करूँ।
चिर अज्ञान-तिमिर को नाशूँ मैं अनादि भव-रोग हरुँ॥
गौतम गणधर स्वामी के चरणों की मैं करता पूजन।
देव! आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करुँ नमन॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

मैं सम्यक्चारित्र ग्रहण कर अन्तर तप की धूप वरूँ।
अष्टकर्म विध्वंस करूँ प्रभु! मैं अनादि भव-रोग हरुँ॥
गौतम गणधर स्वामी के चरणों की मैं करता पूजन।
देव! आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करुँ नमन॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने अष्टकर्मविनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

रत्नत्रय का परम मोक्षफल पाने को फल भेंट करूँ।
शुद्ध स्वपद निर्वाण प्राप्त कर मैं अनादि भव-रोग हरूँ॥
गौतम गणधर स्वामी के चरणों की मैं करता पूजन।
देव! आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करुँ नमन॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

जलफलादि वसु द्रव्य अर्घ्य चरणों में सविनय भेंट करूँ।
पद अनर्घ्य सिद्धत्व प्राप्त कर मैं अनादि भव-रोग हरूँ॥
गौतम गणधर स्वामी के चरणों की मैं करता पूजन।
देव! आपके द्वारा भाषित जिनवाणी को करुँ नमन॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्रावण कृष्ण एकम के दिन समवशरण में तुम आए।
मानस्तम्भ देखते ही तो मान मोह अघ गल पाए॥
महावीर के दर्शन करते ही मिथ्यात्व हुआ चकचूर।
रत्नत्रय पाते ही दिव्यध्वनि का लाभ लिया भरपूर॥

ओं ह्रीं श्री दिव्यध्वनिप्राप्तयाय गौतमगणधरस्वामिने अर्घ्यं नि. स्वाहा।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को कर्म घातिया करके क्षय।
सायंकाल समय में पाई केवलज्ञान लक्ष्मी जय॥
ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय का करके अंत।
अंतराय का सर्वनाश कर पाया पद भगवंत॥

ओं ह्रीं श्री केवलज्ञानप्राप्ताय गौतमगणधरस्वामिने अर्घ्यं नि. स्वाहा।

विचरण करके दुखी जगत के जीवों का कल्याण किया।
अन्तिम शुक्लध्यान के द्वारा योगों का अवसान किया॥

देव बानवे वर्ष अवस्था में तुमने निर्वाण लिया।
क्षेत्र गुणावा करके पावन सिद्ध स्वरुप महान लिया॥
ओं ह्रीं श्री मोक्षपदप्राप्ताय गौतमगणधरस्वामिने अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

मगध देश के गौतमपुर वासी वसुभूति ब्राह्मण पुत्र।
माँ पृथ्वी के लाल लाड़ले इन्द्रभूति तुम ज्येष्ठ सुपुत्र॥
अग्निभूति अरु वायुभूति लघु भ्राता द्वय उत्तम विद्वान।
शिष्य पाँच सौ साथ आपके चौदह विद्या ज्ञान निधान॥
शुभ बैसाख शुक्ल दशमी को हुआ वीर को केवलज्ञान।
समवशरण की रचना करके हुआ इन्द्र को हर्ष महान॥
बारहसभा बनी अति सुन्दर गन्धकुटी के बीच प्रधान।
अंतरीक्ष में महावीर प्रभु बैठे पद्मासन निज ध्यान॥
छियासठ दिन हो गए दिव्यध्वनि खिरी नहीं प्रभु की यह जान।
अवधिज्ञान से लखा इन्द्र ने गणधर की है कमी प्रधान॥
इन्द्रभूति गौतम पहले गणधर होंगे यह जान लिया।
वृद्ध ब्राह्मण वेश बना, गौतम के गृह प्रस्थान किया॥
पहुँच इन्द्र ने नमस्कार कर किया निवेदन विनयमयी।
मेरे गुरु श्लोक सुनाकर, मौन हो गए ज्ञानमयी॥
अर्थ भाव वे बता न पाए वही जानने आया हूँ।
आप श्रेष्ठ विद्वान् जगत में शरण आपकी आया हूँ॥
इन्द्रभूति गौतम श्लोक श्रवण कर मन में चकराए।
झूठा अर्थ बताने के भी भाव नहीं उर में आए॥
मन में सोचा तीन काल छः द्रव्य, जीव षट् लेश्या क्या?
नव पदार्थ, पंचास्तिकाय, गति, समिति, ज्ञान, व्रत, चारित क्या?
बोले गुरू के पास चलो मैं वहीं अर्थ बतलाऊँगा।
अगर हुआ तो शास्त्रार्थ कर उन पर भी जय पाऊँगा॥
अति हर्षित हो इन्द्र हृदय में बोला स्वामी अभी चलें।

शंकाओं का समाधान कर मेरे मन की शल्य दलें॥
अग्निभूति अरु वायुभूति दोनों भ्राता संग लिए जभी।
शिष्य पांचसौ संग ले गौतम साभियान चल दिए तभी॥
समवशरण की सीमा में जाते ही हुआ गलित अभिमान।
प्रभु दर्शन करते ही पाया सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान॥
तत्क्षण सम्यग्चारित धारा मुनि बन गणधर पद पाया।
अष्ट ऋद्धियाँ प्रगट हो गईं ज्ञान मनःपर्यय छाया॥
खिरने लगी दिव्यध्वनि प्रभु की परम हर्ष उर में आया।
कर्म नाश कर मोक्ष प्राप्ति का यह अपूर्व अवसर पाया॥
ओंकार ध्वनि मेघ गर्जना सम होती है गुणशाली।
द्वादशाङ्ग वाणी तुमने अंतर्मुहूर्त में रच डाली॥
दोनों भ्राता शिष्य पांचसौ ने मिथ्यात तभी हरकर।
हर्षित हो जिनदीक्षा ले ली दोनों भ्राता हुए गणधर॥
राजगृही के विपुलाचल पर प्रथम देशना मंगलमय।
महावीर संदेश विश्व ने सुना शाश्वत शिव सुखमय॥
इन्द्रभूति, श्री अग्निभूति, श्री वायुभूति, शुचिदत्त महान।
श्री सुधर्म, माण्डव्य, मौर्यसुत, श्री अकम्प अति ही विद्वान॥
अचल और मेदार्य प्रभास यही ग्यारह गणधर गुणवान।
महावीर के प्रथम शिष्य तुम हुए मुख्य गणधर भगवान॥
छह-छह घड़ी दिव्यध्वनि खिरती चार समय नित मंगलमय।
तीस वर्ष रह समवशरण में गूंथा श्री जिनवाणी को।
देश- देश में कर विहार फैलाया श्री जिनवाणी को॥
कार्तिक कृष्ण अमावस प्रातः महावीर निर्वाण हुआ।
संध्याकाल तुम्हें भी पावापुर में केवलज्ञान हुआ॥
ज्ञान- लक्ष्मी तुमने पाई और वीर प्रभु न निर्वाण।
दीपमालिका पर्व विश्व में तभी हुआ प्रारम्भ महान॥
आयु पूर्ण जब हुई आपकी योग नाश निर्वाण लिया।
धन्य हो गया क्षेत्र गुणावा देवों ने जयगान किया॥
आज तुम्हारे चरण कमल के दर्शन पाकर हर्षाया।

रोम-रोम पुलकित है मेरे भव का अंत निकट आया॥
मुझको भी प्रज्ञा छैनी दो मैं निज-पर में भेद करूँ।
भेदज्ञान की महाशक्ति से दुखदायी भव खेद हरूँ॥
पद सिद्धत्व प्राप्त करके मैं पास तुम्हारे आ जाऊँ।
तुम समान बन शिव पद पाकर सदा-सदा को मुस्काऊँ॥
जय-जय गौतम गणधर स्वामी अभिरामी अंतरयामी।
पाप-पुण्य पर-भाव विनाशी मुक्ति निवासी सुखधामी॥

ओं ह्रीं श्री गौतमगणधरस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं नि. स्वाहा।

गौतम स्वामी के वचन भाव सहित उर धार।
मन-वच-तन जो पूजते वे होते भव पार॥

(इत्याशीर्वादः पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि स्वाहा)

महावीराष्टक स्तोत्र, निर्वाण काण्ड, भगवान महावीर स्वामी की आरती

चौसठ ऋद्धि अर्घ्य (चौसठ अर्घ्य चढ़ावें)

ॐ ह्रीं अवधिज्ञानबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं मनःपर्ययज्ञानबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं केवलज्ञानबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं बीजबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं कोष्ठज्ञानबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं पादानुसारिणीबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं संभिन्नश्रोतृत्वबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं दूरास्वादित्वबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं दूरस्पर्शत्वबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं दूरघ्राणत्वबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं दूरश्रवणत्वबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं दूरदर्शित्वबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं दशपूर्वित्वबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।

ॐ ह्रीं चतुर्दशपूर्वित्वबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं अष्ठाङ्गमहानिमित्तबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं प्रज्ञाश्रमणत्वबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं प्रत्येकबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं वादित्वबुद्धिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं अणिमाविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं महिमाविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं लघिमाविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं गरिमाविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं प्राप्तिविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं प्राकाम्यविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं ईशत्वविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं वशित्वविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं अप्रतिघातविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं अंतर्धानविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं कामरूपत्वविक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं नभस्तलगामित्वचारणक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं जलचारणक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं जङ्घाचारणक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं फलपुष्पपत्रचारणक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं अग्निधूमचारणक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं मेघधाराचारणक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं तंतुचारणक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं ज्योतिश्चारणक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं मरुच्चारणक्रियाऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं उग्रतपःऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं दीप्ततपःऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं तप्ततपःऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ॐ ह्रीं महातपःऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।

ऊँ ह्रीं घोरतपःऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं घोरपराक्रमतपःऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं अघोरब्रह्मचारित्वतपःऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं मनोबलःऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं वचनबलऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं कायबलऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं आमर्शौंषधिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं क्ष्वेलौषधिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं जल्लौषधिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं मल्लौषधिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं विप्रुषौषधिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं सर्वौषधिऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं मुखनिर्विषौऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं दृष्टिनिर्विषौऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीआशीर्विषऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं दृष्टिर्विषऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं क्षीरस्त्राविरसऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं मधुस्त्राविरसऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं अमृतस्त्राविरसऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं सर्पिस्त्राविरसऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं अक्षीणमहानसऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।
ऊँ ह्रीं अक्षीणमहालसऋद्धये नमः अर्घं नि. स्वाहा।

निर्ग्रन्थोनिरतात्मसौख्य-निलयो, मुक्त्यातुरस्तारकस्।
तीर्थोद्धारक! वीतकामकलहो, विज्ञोऽपि गोरक्षकः॥
सन्मार्गं हृदि शान्तितो नयति यो, भव्यांश्च मुक्तिश्रिये।
विद्यासागर पूज्यपादकमलं, संस्थाप्य संपूजये ॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

परम्पराचार्य वन्दन अर्घ्य

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
शान्ति वीर शिव ज्ञान सूरि को वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥ध्रुव॥
बेलगाँव के भोजगाँव में, शान्तिसिन्धु ने जन्म लिया,
पितु पाटील भीमगौडा माँ, सत्यवती को धन्य किया।
ऐसे प्रथमाचार्य 'शान्ति' को वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥1॥

ओं ह्रीं चारित्रचक्रवर्तिप्रथमाचार्यशांतिसागरमुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

जो औरंगाबाद जिला के, ईर गाँव में जन्मे थे,
रामचन्द्र पितु मात मोहिनी, हीरालाल नाम से थे।
उन्हीं द्वितीयाचार्य 'वीर' को वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥2॥

ओं ह्रीं आचार्यवीरसागरमुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

जो औरंगाबाद जिला की, अड़पुर नगरी में जन्में,
नेमि पिताजी दगड़ा माता, हीरा पुत्र सुगुण जिनमें।
उन्हीं तृतीयाचारज 'शिव' को वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,

वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥3 ॥

ओं ह्रीं आचार्यशिवसागरमुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

सीकर जिला ग्राम राणौली, पिता चतुर्भुत घृतवरी माँ,
जहाँ जन्म ले भूरामल जी, बने ज्ञान के सिन्धु महां।
उन्हीं चतुर्थाचार्य 'ज्ञान' को वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥4 ॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यज्ञानसागरमुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

दक्षिण प्रान्त सदलगा में, पितु मल्लपा श्रीमन्ती माँ,
सुत विद्याधर 'विद्यासागर' मुनि बनते अजमेर जहाँ।
इन्हीं पंचमाचार्य श्री को वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥5 ॥

ओं ह्रीं महाकवि-आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

तीस जून उन्नीस सौ अड़सठ, ज्ञान सिन्धु से दीक्षा ली,
सिताषाढ़ पाँचे दिन गुरु को, दीक्षित होकर शिक्षा ली।
ऐसे विद्यासागर गुरु को वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥6 ॥

ओं ह्रीं आषाढसितपंचम्यांदीक्षाप्राप्तमहाकवि-आचार्यविद्यासागर मुनीन्द्राय अर्घं नि. स्वाहा।

वृद्ध ज्ञान गुरु से गुरु का पद, मगसिर कलि दोयज मिलता,
फिर निज गुरु की समाधि साधी, तब बुन्देली कण खिलता।
संयम स्वर्ण जयन्ती पर तुम्हें वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥7 ॥

ओं ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णद्वितीयायांआचार्यपदप्राप्तमहाकवि-आचार्यविद्यासागर-मुनीन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, वीर्य पंच आचार धरें,
गुरु विद्यासागर चर्या में, दर्शित जो आचार वरें।
ऐसे पाँचों आचार्यों को वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥8 ॥

ओं ह्रीं पंचाचारसंधारकमहाकवि-आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय अर्घ्यं।

दो हजार सत्रह के सन् में, अट्ठाईस जून आये,
तब पचासवीं स्वर्ण जयन्ती, मुनि दीक्षा की तिथि लाये।
गुरु की पचासवीं दीक्षा को वंदन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥9 ॥

ओं ह्रीं आषाढसितपंचम्यां पंचाशत्तमदीक्षावर्षप्राप्तमहाकवि-आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जिनशासन की निर्मल धारा, जग के अघ धोती आयी।
ऋषभदेव से महावीर तक, फिर गौतम गुरु ने पायी,

ऐसे तीर्थंकर जिनवर को वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥10॥

ओं ह्रीं तीर्थंकरपरंपराप्राप्तमहाकवि-आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय अर्घ्यं।

वह श्रुतधारा कुन्दकुन्द से, समन्तभद्र यतिवृषभ गही,
उपास्वामि गुरु पूज्यपाद, अकलंक देव जिनसेन लही।
ऐसे श्रुत आचार्य पूज्य को वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥11॥

ओं ह्रीं कुन्दकुन्दाम्नायसंप्राप्तमहाकवि-आचार्यविद्यासागरमुनीन्द्राय अर्घ्यं।

वासुपूज्य जिन मल्लि नेमि जिन, पार्श्वनाथ महावीर यति,
बाल यतीश जिनेन्द्र सदृश ही, पाँचों गुरु मृदु बालयति।
बाल ब्रह्मचारी गुरुओं को वन्दन है,
जिनशासक आचार्य तुम्हें शत वन्दन है,
वन्दन है वन्दन है, वन्दन है वन्दन है,
परम्परा आचार्य तुम्हें शत वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है,
शान्ति वीर शिव ज्ञान सूरि को वन्दन है।
विद्यासागर सूरि स्वगुरु को वन्दन है ॥12॥

ओं ह्रीं पंचबालयतितीर्थंकरसदृशपंचबालयतिदीक्षाप्राप्त आचार्य शांतिसागर-वीरसागरशिवसागर-महाकविज्ञानसागर-महाकविआचार्यविद्यासागरमुनीन्द्रेभ्यो नमः अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्री सम्मेदशिखर विधान

स्थापना (दोहा)

श्री सम्मेद शिखर रहा, सिद्ध क्षेत्र निर्वाण।
करके नमोऽस्तु अर्चना, हम चाहें कल्याण॥

(शंभु)

जय सिद्ध क्षेत्र सम्मेदशिखर, कुल रहे एक सौ सत्तर जो।
निर्वाण तीर्थ शाश्वत इससे, प्रभु गये अनन्तों शिवपुर को॥
हम वहाँ नहीं तुम यहाँ नहीं, फिर कैसे दर्श तुम्हारा हो।
सो हम पूजें सम्मेदशिखर, अब चेतन तीर्थ हमारा हो॥

(सोरठा)

हम करते आह्वान, सिद्ध भूमि हर सिद्ध को।
हृदय वसो भगवान्, भक्तों को सान्निध्य दो॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र अवतर अवतर...। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः...। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्....।

(पुष्पांजलिं...)

(शंभु)

सम्मेदशिखर गिरि पर पाते, जो जन्म मरण के शुभ अवसर।
कल्याण सुनिश्चित हैं उनके, जिनके दिल में सम्मेदशिखर॥
वे जन्म मृत्यु के दुख हरके, शुद्धातम का जल खोज रहे।
सो कहें णमो सिद्धाणं हम, सम्मेदशिखर को पूज रहे॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं...।

सम्मेदशिखर की भाव सहित, जो करें वंदना यात्रायें।
तिर्यंच नरक गति दुख न उन्हें, नर देव सुखों को वे पायें॥
संसार ताप का चक्र हरें, शीतल शुद्धातम खोज रहे।
सो कहें णमो सिद्धाणं हम, सम्मेदशिखर को पूज रहे॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः संसारताप विनाशनाय चंदनं...।

सम्मेदशिखर को तहस-नहस, कितना करलो ये हिल न सकें।
हैं मिट्टी पत्थर के अक्षत, सचमुच मिट्टी में मिल न सकें॥

ले इसकी रज तन मिट्टी में,हम चेतन मूरत खोज रहे।
सो कहें णमो सिद्धाणं हम, सम्मेदशिखर को पूज रहे॥
ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् ...।
सम्मेदशिखर के मण्डप में, कई हुए स्वयंवर आतम के।
सो मुक्तिवधू की चाहत में, सम्मेदशिखर हम आ धमके॥
लेकर पुष्पों की वरमाला, चारित्र पुष्प हम खोज रहे।
सो कहें णमो सिद्धाणं हम, सम्मेदशिखर को पूज रहे॥
ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पाणि...।
सम्मेद शिखर के कण-कण को, मुनि उपवासों से शुद्ध करें।
कुछ लोग न चढ़ते सो इस पर, कुछ भूखे- प्यासे तीर्थ करें॥
सम्मेदशिखर के भोजन में, हम स्वाद मोक्ष का खोज रहे।
सो कहें णमो सिद्धाणं हम, सम्मेदशिखर को पूज रहे॥
ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः क्षुधा रोग विशाशनाय नैवेद्यं...।
सम्मेदशिखर के दर्शन तो, बस भव्य प्राणियों को होते।
कुछ इस पर चढ़ने के पहले, अंधे से होकर के रोते॥
हम करें आरती चरणों की, निज नयना-दीपक खोज रहे।
सो कहें णमो सिद्धाणं हम, सम्मेदशिखर को पूज रहे॥
ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः मोहान्धकार विनाशनाय दीपं...।
सम्मेदशिखर की धूल करे, जग-पर्यावरण विशुद्ध सदा।
हों कर्मभूत सब दूर यहाँ, दुख रोग शोक ना टिकें कदा॥
हर एक शिला में सिद्धशिला, हम धूप चढ़ाकर खोज रहे।
सो कहें णमो सिद्धाणं हम, सम्मेदशिखर को पूज रहे॥
ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं...।
सम्मेदशिखर के भाव सहित, जो दर्शन पूजन तीर्थ करें।
कई उपवासों का फल पाके, घर ऋद्धि-सिद्धि से पूर्ण भरें॥
फल-फूल यहाँ सब औषध हैं, हम स्वस्थ चेतना खोज रहे।
सो कहें णमो सिद्धाणं हम, सम्मेदशिखर को पूज रहे॥
ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं...।

सम्मेदशिखर का तीरथ तो, सब तीर्थों का ही सार रहा।
सो इसकी तीर्थ वन्दना बिन, हम समझें सब निस्सार रहा॥
अब अर्घ चढ़ा हर टोंकों को, कर परिक्रमा निज खोज रहे।
सो कहें णमो सिद्धाणं हम, सम्मेदशिखर को पूज रहे॥
ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं....।

जयमाला

(दोहा)

हैं सम्मेदशिखर महा, तीर्थराज गुणधाम।
नमोऽस्तु कर जयमालिका, भक्त कहें धर ध्यान॥

(ज्ञानोदय)

तीन लोक के मध्य भाग में, मध्यलोक विख्यात रहा।
जम्बु-धातकी पुष्करार्द्ध ये, जिनको ढाई द्वीप कहा॥
जहाँ अधिकतम रहे शिखरजी, पूरे एक शतक सत्तर।
शाश्वत इस निर्वाण धरा से, गये अनन्तों मुनि शिवपुर॥1॥
तथा अनन्तों तीर्थंकर भी, तीन काल में शिव जाते।
सो तीर्थों का तीर्थ इसी को, देवशास्त्र गुरु बतलाते॥
इनके अणु परमाणू के तो, सीधे सिद्धों से रिश्ते।
अतः यहाँ पर्वत झरनों से, सिद्ध गीत जैसे रिसते॥2॥
बियावान जंगल में पक्षी, कलरव करके सिद्ध भजें।
नीची घाटी ऊँचे पर्वत, वृक्ष लतायें सिद्ध भजें॥
हाथी बन्दर लंगूरों से, तहस-नहस यों पर्वत हो।
ज्यों मुनियों के योग ध्यान से, कर्मों का वन आहत हो॥3॥
वर्तमान के बीस जिनेश्वर, मोक्ष यहाँ से जा बैठे।
तभी भक्त हम टोंक वन्दना , करने भाव सजा बैठे॥
सूर्योदय सम कुन्थुनाथ की टोंक ज्ञानधर कूट रही।
नमीनाथ की कूट मित्रधर, अर की नाटक कूट रही॥4॥
संवर कूट मल्लि जिनवर की, श्रेयांस प्रभु की संकुल है।
पुष्पदंत की सुप्रभ प्यारी, पद्मप्रभू की मोहन है॥

मुनिसुव्रत की निर्जर न्यारी, ललितकूट प्रभु चन्द्र की।
शीतल प्रभु की विद्युतवर है, कूट स्वयंभू अनंत की॥5॥
धवल कूट है शंभव प्रभु की, अभिनंदन प्रभु की आनंद।
सुदत्तवर है धर्मनाथ की, सुमतिनाथ की अविचल कूट॥
शांतिनाथ की कूट कुंदप्रभ, प्रभास है सुपार्श्व प्रभु की।
विमलनाथ की सुवीर सुन लो, सिद्धवर कूट अजित प्रभु की॥6॥
संध्या जैसी पार्श्वनाथ की, स्वर्णभद्र की अंतिम है।
दर्शन कर यों लगता जैसे, कष्टों का दिन अंतिम है॥
यहीं आदि की वासुपूज्य की, वीर नमि की कूट रही।
काल दोष से अन्य जगह से, मोक्ष गये पर टोंक यहीं॥7॥
श्री सम्मेदशिखर के वैभव, कोई भी ना बाँध सके।
कौन माई का जाया है जो, इसके वैभव वाँच सके॥
फिर भी जो गुणगान किये हम, इसका केवल यह उद्देश्य।
जो भी मोक्ष यहाँ से पहुँचे, उन जैसे हम पायें देश॥8॥
श्री सम्मेद शिखर पूजा कर, मात्र पुण्य ये अर्जित हों।
'पुण्यफला अरिहंता' हों हम, सारे पाप विसर्जित हों॥
योग त्याग फिर बने अयोगी, फिर सम्मेदशिखर पर आ।
'सुव्रत' सिद्धालय को पायें, निज सम्मेदशिखर को पा॥9॥

(सोरठा)

सम्मेदाचल पूज, धन्य किये निज पुण्य को।
सिद्ध स्वपद हम खोज, पायें निज चैतन्य को॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर सिद्धक्षेत्रेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं.....।

मैं नहीं जानता कि मृत्यु के पश्चात् भी जीवन है या नहीं किन्तु यदि यह सत्य है कि मृत्यु पश्चात् भी जीवन है तो मैं चाहूँगा कि मैं भारत में पैदा होऊँ वो भी जैन धर्म में।
(जार्ज अल्बर्ट आइन्स्टाईन विश्व प्रसिद्ध महान वैज्ञानिक)

श्री सम्मेद शिखर जी अर्घ्यावली

(ज्ञानोदय)

1. गणधर कूट

आदिप्रभु से वीरप्रभु के, चौदह सौ उनसठ गणधर।
वृषभसेन से प्रभासस्वामी, गये यहीं से लोक शिखर॥
गणधर कूट अतः प्रसिद्ध है, जिनके पद पूजें आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥1॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-गणधरकूटात् मुक्तिप्राप्तचतुर्विंशति तीर्थंकर-संबंधि- समस्तगणधरेभ्यो अर्घ्यं.....।

2. ज्ञानधर कूट

प्रथम ज्ञानधर कूट यहीं से, कामदेव चक्री जिननाथ।
कुंथुनाथ जी मोक्ष पधारे, जब शुक्ला एकम वैसाख॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, बने भेद ज्ञानी आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-ज्ञानधरकूटात् मुक्त श्री कुंथुनाथादि छ्यानवे कोड़ाकोड़ी छ्यानवे-करोड़ बत्तीसलाख छ्यानवे हजार सात सौ ब्यालीस मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं......।

3. मित्रधर कूट

कूट मित्रधर से नमि जिनवर, ध्यान धार निर्ध्यान हुये।
चतुर्दशी वैसाख कृष्ण को, आतम शुद्ध स्वभाव छुये॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, सिद्ध स्वपद पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-मित्रधरकूटात् मुक्त श्रीनेमिनाथादि नौ कोड़ाकोड़ी एक अरब पैंतालीस लाख सात हजार नौ सौ ब्यालीस मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

4. नाटक कूट

नाटक कूट यहाँ से चक्री, कामदेव अर-जिन तीर्थेश।
चैत्र अमावस को शिव पाये, शुद्ध बना निज आत्म प्रदेश॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, सिद्ध शिला पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-नाटककूटात् मुक्त श्री अरनाथादि निन्यानवे करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

5. संवल (संवर) कूट

संवल कूटधाम से जिनवर, मल्लिनाथ जी मुक्त हुये।
फाल्गुन कृष्ण पंचमी पाकर, भक्त भक्ति में युक्त हुये॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, मोहमल्ल मारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-संवलकूटात् मुक्त श्रीमल्लिनाथादि छ्यानवे करोड़ मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

6. संकुल कूट

संकुल पूज्य कूट से पाये, श्री श्रेयांसनाथ जी मोक्ष।
श्रावण पूनम धन्य हो गयी, वीतरागियों का सुन सौख्य॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, पा बैठे शिवकुल आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र-संकुलकूटात् मुक्त श्री श्रेयांसनाथादि छ्यानवे कोड़ा-कोड़ी छ्यानवे करोड़ छ्यानवे लाख नौ हजार पाँच सौ ब्यालीस मुनिरेभ्यो अर्घ्यं।

7. सुप्रभ कूट

सुप्रभकूट से सुविधि प्रभु जी, मोक्षमार्ग की सुविधि बता।
शुक्ल अष्टमी भाद्रपक्ष में, हरे कर्म की व्यथा-कथा॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, ज्ञान महल पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-सुप्रभकूटात् मुक्त पुष्पदंतादि एक कोड़ाकोड़ी निन्यानवे लाख सात हजार सात सौ अस्सी मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

8. मोहन कूट

मोहन कूट यहीं से जिनवर, पूज्य पद्मप्रभु सिद्ध हुये।
फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी पाकर, शुद्ध-बुद्ध अविरुद्ध हुये॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, कुन्दन से चमके आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-मोहनकूटात् मुक्त श्रीपद्मनाथादि निन्यानवे करोड़ सत्तासी लाख तैंतालीस हजार सात सौ सत्तावन मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

9. निर्जर कूट

नौवीं निर्जर कूट यहीं से, मुनिसुव्रत प्रभु मोक्ष गये।
फाल्गुन कृष्णा बारस के दिन, मुक्तिवधू के लोक गये॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, संकट कष्ट हरे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-निर्जरकूटात् मुक्त श्रीमुनिसुव्रतनाथादि निन्यानवे कोड़ाकोड़ी निन्यानवे करोड़ निन्यानवे लाख नौ सौ निन्यानवे मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

10. ललित कूट

ललित कूट से चन्द्रप्रभु जी, चित् चैतन्य चिदेश हुए।
फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को प्रभु, अष्टम भू के देश छुए॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, चन्द्र शिला पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-ललितकूटात् मुक्त नौ सौ चौरासी अरब बारह करोड़ अस्सी लाख चौरासी हजार पाँच सौ पंचानवे मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

11. सर्वसिद्धवर कूट

अष्टापद से मुक्त आदि जिन, माघ कृष्ण की चौदश को।
फिर भी कूट शिखर पर शोभित, पूज्य सिद्धवर पूजित हों॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, जग जंजाल हरे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री अष्टापदकैलाश-सिद्धक्षेत्र-सर्वसिद्धवरकूटात् मुक्त श्री वृषभनाथ बाल-महाबाल-नागकुमारादि दस हजार मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

12. विद्युतवर कूट

विद्युतवर की पूज्य कूट से, शीतलनाथ गये शिवधाम।
आश्विन शुक्ल अष्टमी पाकर, तीर्थवंदना करें प्रणाम॥
काटि-कोटि मुनि इसी कूट से, बने निजानंदी आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-विद्युतवरकूटात् मुक्त श्री शीतलनाथादि अठारह कोड़ा कोड़ी ब्यालीस करोड़ बत्तीस लाख ब्यालीस हजार नौ सौ पाँच मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

13. स्वयंभू कूट

कूट स्वयंभू से अनंतप्रभु, अनंत कर्मों को त्यागे।
चैत्र अमावस को पा निज रस, सिद्ध चासनी में पागे॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, निजानुभव पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-स्वयंभूकूटात् मुक्त श्री अनंतनाथादि छ्यानवे कोड़ाकोड़ी सत्तर करोड़ सत्तर लाख सत्तर हजार सात सौ मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

14. धवल कूट

धवलकूट से शंभवप्रभु जी, निजरमणी के राज बने।
चैत्र शुक्ल छठ को निजघट पा, तारणतरण जहाज बने॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, भव जल पार किये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-धवलकूटात् मुक्त श्री शंभवनाथादि नौ कोड़ाकोड़ी बारह लाख ब्यालीस हजार पाँच सौ मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

15. वासुपूज्य कूट

चम्पापुर मंदार गिरी से, प्रथम बालयति ईश हुये।
भाद्रशुक्ल चौदस के दिन को, वासुपूज्य सिद्धीश हुये॥

अनेक मुनि भी यहीं मुक्त हो, मुक्तिमहल पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री चंपापुर-सिद्धक्षेत्र-मंदारगिरि- कूटात् मुक्त श्री वासुपूज्यादि एक हजार मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

16. आनंद कूट

शुभ आनंद कूट से जिनवर, अभिनंदन प्रभु मोक्ष गये।
छह वैसाख शुक्ल को अनुपम, सहजानंदी धाम गये॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, निजानंद पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-आनंदकूटात् मुक्त श्री अभिनंदननाथादि बहत्तर कोड़ाकोड़ी सत्तर करोड़ सत्तर लाख ब्यालीस हजार सात सौ मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

17.सुदत्तवर कूट

सुदत्तवर की धर्मकूट से, धर्मनाथ दुख कर्म हरे।
चैत्र पंचमी शुक्ला के दिन, सुखदायक निज धर्म वरे॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, धर्म धुरी पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-सुदत्तवरकूटात् मुक्त श्री धर्मनाथादि उन्तीस कोड़ाकोड़ी उन्नीस करोड़ नौ लाख नौ हजार सात सौ पैंसठ मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

18. अविचल कूट

अविचलकूट टोंक से पाये, सुमतिनाथ पंचम गति को।
चैत्र शुक्ल ग्यारस हुई पावन, जब पायी निज परिणति को॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, हुये अचल अविचल आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-अविचलकूटात् मुक्त श्री सुमतिनाथादि एक कोड़ाकोड़ी चौरासी करोड़ बहत्तर लाख इक्यासी हजार सात सौ इक्यासी मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

19. कुंदप्रभ कूट

कूट कुंदप्रभ से शांति प्रभु, ज्येष्ठ कृष्ण की चौदस को।
राजचक्र तज धर्म चक्र धर, सिद्ध चक्र पा निज वश हो॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, महाशांति पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-कुंदप्रभकूटात् मुक्त श्री शांतिनाथादि नौ कोड़ाकोड़ी नौ लाख नौ हजार नौ सौ निन्यानवे मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

20. महावीर कूट

पावापुर के पंकज वन से, शासन नायक मुक्त हुये।
चढ़ा-चढ़ा निर्वाण लाडू हम, दीवाली से युक्त हुये॥
अनेक मुनि भी यहीं मुक्त हों, बन्धन मुक्त हुये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री पावापुर-सिद्धक्षेत्रात् मुक्त श्री महावीरजिनेन्द्रादि छब्बीस मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

21. प्रभास कूट

प्रभास कूट से सुपार्श्वप्रभु जी, फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को।
बाह्य लक्ष्मी तजकर पाये, अंतस आतमलक्ष्मी को॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, सिद्ध सदन पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-प्रभासकूटात् मुक्त श्री सुपार्श्वनाथादि उनंचास कोड़ाकोड़ी चौरासी करोड़ बहत्तर लाख सात हजार सात सौ ब्यालीस मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

22. सुवीर कूट

पूज्य सुवीर कूट से जिनवर, विमलनाथ प्रभु विमल हुये।
शुक्ल अष्टमी आषाढ़ी को, विभाव मल तज निकल हुये॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, सिद्धचक्र पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-सुवीरकूटात् मुक्त श्री विमलनाथादि सत्तर कोड़ाकोड़ी सात लाख छह हजार सात सौ ब्यालीस मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

23. सिद्धवर कूट

पूज्य सिद्धवर कूट टोंक से, अजितनाथ शिवधाम गये।
चैत्र पंचमी शुक्ला के दिन, सुख स्वरूप निर्वाण गये॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, मृत्युंजयी हुये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-सिद्धवरकूटात् मुक्त श्री अजितनाथादि अस्सी करोड़ चौवन लाख मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

24. नेमिनाथ कूट

ऊर्जयन्त गिरनार कूट से, नेमिनाथ को सिद्धि मिली।
शुक्ल अष्टमी (सप्तमी) आषाढ़ी को, मुक्तिवधू की ऋद्धि मिली॥
शंबु आदि मुनि इसी कूट से निजरमणी पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री गिरनार-सिद्धक्षेत्र-ऊर्जयतगिरिकूटात् मुक्त श्री नेमिनाथ- शंबु-प्रद्युम्न-अनिरुद्धादि बहत्तर करोड़ सात सौ मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

25. सुवर्णभद्र कूट

सुवर्णभद्र कूट है अंतिम, जहाँ आत्म सोना होती।
श्रावण शुक्ल सप्तमी पाके, मोक्षसप्तमी नित होती॥
कोटि-कोटि मुनि इसी कूट से, पारस मणि पाये आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्र-सुवर्णभद्रकूटात् मुक्त श्री पार्श्वनाथादि छ्यानवे कोड़ाकोड़ी सत्तर करोड़ सत्तर लाख सत्तर हजार सात सौ मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

पूर्णार्घ्य

शाश्वत सिद्ध क्षेत्र है शाश्वत, कण-कण में कल्याण यहाँ।
तीन काल के तीर्थकरों के, होते हैं निर्वाण यहाँ॥
और यहाँ से तप करके जो, मोक्ष पधारो मुनि आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, बोलें नमो नमः स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्रात् मुक्त असंख्यात मुनिवरेभ्यो पूर्णार्घ्यं..

समुच्चय महार्घ्य

रहे एक सौ सत्तर पूरे, श्री सम्मेद शिखर अक्षय।
पाँचों तीर्थधाम या जो भी, सिद्धक्षेत्र निर्वाण निलय॥
अतिशय क्षेत्र तीस चौबीसी, कृत्रिमाकृत्रिम चैत्य-सदन।
तीन काल के तीन लोक के, भजें मोक्ष बनने भगवान॥

(दोहा)

वीतराग विज्ञान ही, हम भक्तों का पर्व।
करें नमोऽस्तु अर्घ ले, 'सुव्रत' बने अनर्घ॥

ओं ह्रीं श्री त्रिलोक-त्रिकाल संबंधिः मुक्त अनंतानंतमुनिवरेभ्यः समुच्चय महार्घ्यं...।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

श्री सम्मेदशिखर यहाँ, गिरियों का गिरिराज।
कण-कण पावन की कहें, जयमाला हम आज॥

(जोगीरासा)

जय हो! श्री सम्मेदशिखर की, जो निर्वाण धरा है।
तीर्थवंदना ऐसी जैसे, सिद्धालय उतरा है॥
जिसका यश सर्वत्र फैलकर, चुंबक जैसा खींचे।
अतः भक्त भी दर्शन करने, कभी न रहते पीछे॥1॥
किंतु वंदना कर ना सकें यदि, दर्शन ना मिल पाएँ।
तो भक्तों की श्रद्धा देखो, कभी नहीं घबराएँ॥
अपने जैन जिनालय में ही, रचा अर्चना प्यारी।
श्री सम्मेद शिखर की पूजा, करते मंगलकारी॥2॥
द्रव्य अर्चना भाव वंदना, करके पुण्य कमायें।
सिद्धपुरी के सिद्ध जनों को, सिद्ध भक्ति कर ध्यायें॥
जो जो हैं निर्वाण भूमियाँ, इतनी अतिशयकारी।
जिनमें श्री सम्मेदशिखर की, महिमा सबसे न्यारी॥3॥

इसी अनादि तीर्थ के दर्शन, अहो! भाग्य भक्तों के।
करके तीर्थ वंदना होते, जन्म सफल भव्यों के॥
इस प्रभाव से उन्हें न मिलते, पचास भव भी पूरे।
वे उन्चास भवों में ही निज, कर्म शिलाएं चूरें॥4॥
फलतः अपनी निर्मल आतम, उन्हें प्राप्त हो जाती।
जिससे मुक्तिवधू बाहों में, उनको सदा बुलाती॥
'सुव्रत' का अपना सपना कि, हमको मुक्ति बुलाये।
सो सम्मेदशिखर के गुण गा, सिद्ध गुणों को ध्याये॥5॥

(सोरठा)

तीर्थराज सम्मेद, क्षेत्र शिखर जी पूजते।
कर्म शिला कर भेद, लोक शिखर हम खोजते॥

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखर-सिद्धक्षेत्रात् मुक्त असंख्यातमुनिवरेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं...।

(दोहा)

मुक्ति प्राप्त मुनिवर करें, विश्वशांति कल्याण।
प्रासुक जल की धार दे, हम पूजत भगवान॥

(शांतये शांतिधारा)

कल्पवृक्ष के पुष्प सम, पुष्पांजलि पद लाय।
भव दुःखों को में दो, मुक्ति प्राप्त जिनराय॥

(पुष्पांजलिं...)

* स्तुति का अर्थ अति प्रशंसा माना जाता है आंशिक गुणगान गुणानुवाद का मुख्य उद्देश्य दुःखों का नाश कर सुख को पाना है।
* मेहनती व्यक्ति को टाइम मैनेजमेंट में कोई समस्या नहीं होती, लेकिन आलसी के पास समय कम होता है।

श्री शांतिनाथ विधान - लघु

रचयिताः मुनि श्री 108 सुव्रतसागर जी महाराज

स्थापना (शंभु)

हे! शांति प्रदाता शांति प्रभु, चैतन्य शांति के अधिवासी।
हो जीव मात्र के इष्ट तुम्हीं हम विश्व शांति के अभिलाषी।
सुख शांति शीघ्र तुम सम पायें सो शांति प्रभु को पूज रहे।
प्रभु हृदय वेदिका पर तिष्ठो भक्तों के नमोऽस्तु गूँज रहे॥

ओं ह्रीं परमशांति विधायक सर्वोपद्रव शांतिकारक त्रय पदधारकश्रीशांतिनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर..। अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः..। अत्र मम सन्निहितो..।

(पुष्पांजलिं)

है जन्म सुखों में शांति कहाँ, है शांति कहाँ नव यौवन में।
है मरण दुखों में शांति कहाँ, है शांति कहाँ इस जीवन में॥
दुख मातम रोग अशांति हरो, जल जैसी शांति करो आहा।
ओम् ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय, शांतिं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री परमशान्तिविधायकायसर्वोपद्रव शान्तिकारकाय त्रियपदधारकाय शान्तिनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं...।

है भव भोगों में शांति कहाँ, है शांति कहाँ जग माया में।
रिश्तों-नातों में शांति कहाँ, है शांति कहाँ इस काया में॥
धन पद गृह युद्ध अशांति हरो, चन्दन सी शांति करो आहा।
ओम् ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय, शांतिं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री परमशान्तिविधायकायसर्वोपद्रव शान्तिकारकाय त्रियपदधारकाय शान्तिनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं...।

है स्वर्ग सुखों में शांति कहाँ, है शांति कहाँ सिंहासन में।
चौरासी लाख योनियों में, है शांति कहाँ भव भटकन में॥
जग भागमभाग अशांति हरो, अक्षत सी शांति करो आहा।
ओम् ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय, शांतिं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री परमशान्तिविधायकायसर्वोपद्रव शान्तिकारकाय त्रियपदधारकाय शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं...।

है घर गृहस्थी में शांति कहाँ, है शांति कहाँ सुर कन्या में।
है स्त्री सुखों में शांति कहाँ, है शांति कहाँ विष कन्या में॥
स्त्री पुरुषों की अशांति हरो, पुष्पों सी शांति करो आहा।
ओम् ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय, शांतिं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री परमशान्तिविधायकायसर्वोपद्रव शान्तिकारकाय त्रियपदधारकाय शान्तिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पाणि...।

है भूख प्यास में शांति कहाँ, है शांति कहाँ विष अमृत में।
छप्पन भोगों में शांति कहाँ, है शांति रस व्यंजन में॥
रस भोजन भोग अशांति हरो, नैवेद्य सी शांति करो आहा।
ओम् ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय, शांतिं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री परमशान्तिविधायकायसर्वोपद्रव शान्तिकारकाय त्रियपदधारकाय शान्तिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं...।

है अंधकार में शांति कहाँ, है शांति कहाँ उजयारों में।
बिजली बल्बों में शांति कहाँ, है शांति कहाँ नभ तारों में॥
दैनिक जीवन अशांति हरो, दीपक सी शांति करो आहा।
ओम् ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय, शांतिं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री परमशान्तिविधायकायसर्वोपद्रव शान्तिकारकाय त्रियपदधारकाय शान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं...।

है दौड़ धूप में शांति कहाँ, है शांति कहाँ जड़ कर्मों में।
है राग-द्वेष में शांति कहाँ, है शांति कहाँ नो-कर्मों में॥
परिषह उपसर्ग अशांति हरो, धूपों सी शांति करो आहा।
ओम् ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय, शांतिं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री परमशान्तिविधायकायसर्वोपद्रव शान्तिकारकाय त्रियपदधारकाय शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं...।

खोने-पाने में शांति कहाँ, है शांति कहाँ घर भरने में।
निंदा ईर्ष्या में शांति कहाँ, है शांति कहाँ कुछ करने में॥

भय वैर विरोध अशांति हरो, फल जैसी शांति करो आहा।
ओम् ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय, शांतिं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री परमशान्तिविधायकायसर्वोपद्रव शान्तिकारकाय त्रियपदधारकाय शान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं...।

है तीन लोक में शांति कहाँ, है शांति कहाँ जड़ पुद्गल में।
है तीन काल में शांति कहाँ, है शांति कहाँ जग दल दल में॥
अपने सम विघ्न अशांति हरो, अर्घों सी शांति करो आहा।
ओम् ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय, शांतिं शांतिं कुरु कुरु स्वाहा॥

ओं ह्रीं श्री परमशान्तिविधायकायसर्वोपद्रव शान्तिकारकाय त्रियपदधारकाय शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं...।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(दोहा)

कृष्ण सप्तमी भाद्र को, तजकर स्वर्ग विमान।
ऐरा माँ के गर्भ में, वसे शांति भगवान्॥

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

चौदह कृष्णा ज्येष्ठ को, जन्मे शांति विराट।
विश्वसेन के आँगने, ज्ञान-बताशा बाँट॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममङ्गलमण्डिताय श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

जन्म-तिथी में तप धरे, तजे अशांति शोर।
शांतिनाथ मुनि को हुई, नमोऽस्तु चारों ओर॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तपोमङ्गलमण्डिताय श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं..।

दशमी शुक्ला पौष में, पाया केवलराज।
नमन शांति अर्हन्त को, करती भक्त समाज॥

ओं ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां ज्ञानमङ्गलमण्डिताय श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

चौदस कृष्णा ज्येष्ठ को, मोक्ष गए शान्तीश।
कुन्दप्रभ कूट शाश्वतगिरि, को वंदन नत शीश॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमङ्गलमण्डिताय श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं...।

अर्घ्यावली

(अनंत चतुष्टय)

कर्म हरे ज्ञानावरणी, पूज्य बनें अनंतज्ञानी।
धर्म दान शुभ वस्तु दो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो॥1॥

ओं ह्रीं ज्ञानावरणकर्मसंबंध्युपद्रवनिवारकाय अनंतज्ञान प्राप्ताय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

हरे दर्शनावरणी जो, अनंत दर्शन स्वामी वो।
निज दर्शन की वस्तु दो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो॥2॥

ओं ह्रीं दर्शनावरणकर्मसंबंध्युपद्रवनिवारकाय अनंतदर्शन प्राप्ताय श्री शांतिनाथाय अर्घ्यं....।

मोहनीय को नष्ट किये, अनंत सम्यक् प्राप्त किये।
श्रद्धा सुख की वस्तु दो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो॥3॥

ओं ह्रीं मोहनीयकर्मसंबंध्युपद्रवनिवारकाय अनंतसुख प्राप्ताय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

अंतराय नाशे पाँचों, अनंतवीर्य का यश वाँचों।
आत्म शक्ति की वस्तु दो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो॥4॥

ओं ह्रीं अंतरायकर्मसंबंध्युपद्रवनिवारकाय अनंतवीर्य प्राप्ताय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

(अतिशय)

हुये जन्म के दस अतिशय, क्षणिक शांति मिलती जय-जय।
अतिशयकारी वस्तु दो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो॥5॥

ओं ह्रीं गर्भजन्मसंबंधिकर्मोपद्रवनिवारकाय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

दसों ज्ञान के अतिशय हों, शांति ज्ञान के आलय हों।
ज्ञान ध्यान की वस्तु दो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो॥6॥

ओं ह्रीं ज्ञानसंबंधिकर्मोपद्रवनिवारकाय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

हुये देवकृत अतिशय जो, शांतिविधायक चौदह वो।
विघ्न विनाशक वस्तु दो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो॥7॥

ओं ह्रीं चतुर्विध उपसर्गसंबंधिकर्मोपद्रवनिवारकाय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

(क्रयपद)

सोलम तीर्थंकर चक्री, कामदेव त्रय पदधारी।
रत्नत्रय की वस्तु दो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो ॥8 ॥

ओं ह्रीं पंचकल्याणक संबंधि पदप्रदाय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

(अष्टप्रातिहार्य)

अशोक तरुवर हरे भरे, शांतिप्रभु सम शोक हरे।
हं बीजाक्षर मय भज लो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो ॥9 ॥

ओं ह्रीं ह्म्ल्व्र्यूं बीजसहितअशोकतरुसम्प्रातिहार्यमंडितायसर्वोपद्रव शांतिकराय श्री शांतिनाथाय अर्घ्यं....।

दिव्य सुमन सुर बरसाते, शांतिप्रभु सम सुख लाते।
भं बीजाक्षर मय भज लो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो ॥10 ॥

ओं ह्रीं भ्म्ल्व्र्यूं बीजसहितपुष्पवृष्टिसम्प्रातिहार्यमंडितायसर्वोपद्रव शांतिकराय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

दिव्य ध्वनि ओंकारमयी, सुख संपद दे नयी-नयी।
मं बीजाक्षर मय भज लो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो ॥11 ॥

ओं ह्रीं म्म्ल्व्र्यूं बीजसहितदिव्यध्वनिसम्प्रातिहार्यमंडितायसर्वोपद्रव शांतिकराय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

चँवर ढुरायें चौसठ देव, उर्ध्वगमन होता स्वयमेव।
रं बीजाक्षर मय भज लो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो ॥12 ॥

ओं ह्रीं र्म्ल्व्र्यूं बीजसहितचामरसम्प्रातिहार्यमंडितायसर्वोपद्रव शांतिकराय श्री शांतिनाथाय अर्घ्यं....।

शांतिप्रभु सिंहासन पर, ऋद्धि सिद्धि दें मोहित कर।
घं बीजाक्षर मय भज लो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो ॥13 ॥

ओं ह्रीं घ्म्ल्व्र्यूं बीजसहितसिंहासनसम्प्रातिहार्यमंडितायसर्वोपद्रव शांतिकराय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

सात भवों को भामंडल, दर्शाकर करता मंगल।
झं बीजाक्षर मय भज लो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो ॥14 ॥

ओं ह्रीं झ्म्ल्व्र्यूं बीजसहितभामण्डलसम्प्रातिहार्यमंडितायसर्वोपद्रव शांतिकराय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

देव दुंदुंभि वाद्य बजें, दसों-दिशा तक गूँज उठें।
सं बीजाक्षर मय भज लो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो ॥15 ॥

ओं ह्रीं स्म्ल्व्र्यूं बीजसहितदेवदुंदुभिसम्प्रातिहार्यमंडितायसर्वोपद्रव शांतिकराय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

तीन लोक के अधिपति जो, तीन छत्र से शोभित सो।
खं बीजाक्षर मय भज लो, शांति प्रभु को नमोऽस्तु हो ॥16 ॥

ओं ह्रीं ख्म्ल्व्र्यूं बीजसहितछत्रत्रयसम्प्रातिहार्यमंडितायसर्वोपद्रव शांतिकराय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं....।

पूर्णार्घ्य (अर्घ जोगीरासा)

तेरा मंगल मेरा मंगल, सबका मंगल होवे।
शांतिप्रभु को करके नमोऽस्तु, जग का मंगल होवे ॥

(दोहा)

ओम् ह्रीं बीजाक्षर सहित, ह भ म र घ झ स ख आठ।
शांतिप्रभु को हम भजें, करके शांतिपाठ ॥

ओं ह्रीं षट्चत्वारिशद् मूलगुणसहितायाष्टबीजमण्डलमण्डिताय सर्वविघ्न शांतिकराय श्रीशांतिनाथाय अर्घ्यं...।

(जाप्य)

ऊँ ह्रीं जगच्छान्तिकराय श्रीशांतिनाथाय नमः सर्वोपद्रव शांतिं कुरु-कुरु स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

जिनके चरणों में बहे, विश्वशांति की धार।
ऐसे शांतिनाथ को, नमोऽस्तु बारम्बार ॥

(ज्ञानोदय)

तीन लोक में तीन काल में, विश्वशांति की चाह हमें।
देश शांति की हमें कामना, राज्य शांति की आश हमें ॥
नगर शांति के हम प्रेमी, हैं हम गृह शांति सदा पायें।
आत्म शांति के हम इच्छुक सो, शांतिप्रभु के गुण गायें ॥1 ॥

जी हाँ ये वो शांतिनाथ हैं, जो सोलहवें तीर्थंकर।
बारहवें जो कामदेव हैं, तथा पाँचवें चक्रेश्वर॥
विश्वसेन-ऐरा के नंदन, समवसरण के नाथ रहे।
तत्त्वज्ञान दे रोग शोक दुख, हरने को विख्यात रहे ॥2 ॥
नाथ! हमारी सुनो प्रार्थना, हम पर कृपा जरूर करो।
जीव मात्र की हरो अशांति, विश्वशांति भरपूर करो॥
कर्म उपद्रव शांति करो प्रभु, मन-वच-तन के रोग हरो।
योग-वियोग की हरो वेदना, त्रस थावर भव भोग हरो ॥3 ॥
जैसे शांति नाम के यश हैं, वैसे कार्य आपके हैं।
तब ही चौबीसी में सबसे, ज्यादा भक्त आपके हैं॥
स्वामी हम बस शांति चाहते,शांति शांति सुख शांति मिले।
कूट कुन्दप्रभ सम्मेदाचल, जैसी आत्मिक शांति मिले ॥4 ॥

ओं ह्रीं जगच्छांतिकराय श्री शांतिनाथाय जयमाला पूर्णार्घ्यं...।

(दोहा)

शांति शांति धारा करें, पुष्पांजलि कर जाप।
'सुव्रत' करें नमोऽस्तु अब, भूल चूक हो माफ॥

(शांतये शांतिधारा...पुष्पांजलिं...)

श्री निर्वाण क्षेत्र विधान

रचयिताः मुनि श्री सुव्रतसागर जी महाराज

स्थापना (दोहा)

वीतराग विज्ञान को, कर नमोऽस्तु धर ध्यान।
श्री निर्वाण क्षेत्र की, करें अर्चना गान॥

(ज्ञानोदय)

जिनशासन के आश्रय से जो, मुक्तिवधू से व्याह किये।
मोक्षमहल में हुए महोत्सव, जब प्रभु निज निर्वाण किये॥

ढाई द्वीप के कण-कण तब ही, पूजित सिद्ध प्रसिद्ध हुए।
मोक्षमहल से हृदय कमल पर, आओ! प्रभु नत भक्त हुए॥

ओं ह्रीं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्त मुनीन्द्र अत्र अवतर अवतर...। अत्र तिष्ठ तिष्ठ..। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्..। (पुष्पांजलिं...)

(शुद्ध गीता)

जिन्होंने कर्म दल-दल धो, निजातम को निखारा है।
हमें समकित उन्हीं सा हो, अतः उनको निहारा है।
बने हम सिद्ध सम कंचन, अतः जल धार अर्पित है।
भजें निर्वाण क्षेत्रों को, नमोऽस्तु भी समर्पित है॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं...।

जिन्होंने द्वन्द्व के हेतु, सभी संबंध तोड़े हैं।
वही निज ज्ञान के सेतु, निजी अनुबंध जोड़े हैं॥
मिले वह सिद्ध सम चंदन, अतः यह धार अर्पित है।
भजें निर्वाण क्षेत्रों को, नमोऽस्तु भी समर्पित है॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यः संसारताप विनाशनाय चंदनं...।

हुआ जब प्रेम निज से तो, मचलते आत्म दर्शन को।
पुनः दर्शन पुनः दर्शन, हुयी है तृप्ति चेतन को॥
मिले वह सिद्ध का दर्शन, अतः यह पुँज अर्पित है।
भजें निर्वाण क्षेत्रों को, नमोऽस्तु भी समर्पित है॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान्...।

गुलाबों की सजी शैय्या, दुःखों का ताज भव काटो।
खिलाते ब्रह्म बगिया जो, उन्हें साम्राज्य शिव का हो॥
मिले बल-वीर्य सिद्धों सा, अतः यह पुष्प अर्पित है।
भजें निर्वाण क्षेत्रों को, नमोऽस्तु भी समर्पित है॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यः कामबाण विध्वंसनाय पुष्पाणि...।

क्षुधा से जो दुखी जग में, क्षुधा वो क्या करें उपशम।
जिन्होंने की क्षुधा जय है, उन्हीं के रस चखेंगे हम॥

बनें हम सूक्ष्म सिद्धों सम, अतः नैवेद्य अर्पित है।
भजें निर्वाण क्षेत्रों को, नमोऽस्तु भी समर्पित है॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यः क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं...।

उजाला बाँटने जिसकी, भली सी भावना होती।
जलाते आत्म ज्योति वो, उन्हीं की आरती होती॥
करें अवगाह सिद्धों सम, अतः यह दीप अर्पित है।
भजें निर्वाण क्षेत्रों को, नमोऽस्तु भी समर्पित है॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं...।

बड़ी है कर्म की माया, इसी ने भव घुमाया है।
बड़ी है धर्म की छाया, इसे हमने भुलाया है॥
अगुरुलघु हो सिद्धों सम, अतः यह धूप अर्पित है।
भजें निर्वाण क्षेत्रों को, नमोऽस्तु भी समर्पित है॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं...।

किये श्रद्धा की खेती तुम, फसल निज ज्ञान की पाई।
लगे चारित्र फल मीठे, रसीली आत्म झलकायी॥
हो अव्याबाध सिद्धों सम, अतः फल गुच्छ अर्पित है।
भजें निर्वाण क्षेत्रों को, नमोऽस्तु भी समर्पित है॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं...।

उसी मय आत्मा होती, जिसे जो चाहते मन से।
किया जब ध्यान सिद्धों का, मिले सो सिद्ध भगवन से॥
करें शुद्धात्म सिद्धों सम, अतः यह अर्घ अर्पित है।
भजें निर्वाण क्षेत्रों को, नमोऽस्तु भी समर्पित है॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं...।

* विद्यमान अल्प गुणों का उल्लघंन कर उन गुणों की अधिकता का कथन करना स्तुति है।
* भक्ति, पूजा से तीन लोक में दर्शनीय, पूज्यनीय व स्तवनीय होते हैं।

अर्घ्यावली

(जोगीरासा)

अष्टापद से अनंत कीर्ति, आदिनाथ भगवन जी।
भरत बाहुबलि नाग बाल मुनि, महाबाल अंजन जी॥
छह हजार खलु चिच्च देव हो, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥1॥

ओं ह्रीं अष्टापदनिर्वाणक्षेत्रात् वृषभनाथादिषट्सहस्त्रमुनिभ्यो अर्घ्यं...।

चम्पापुर मन्दारगिरि पर, चलो भक्ति में नाँचो।
प्रथम बालयति वासुपूज्य के, कल्याणक हों पाँचों॥
एक हजार यहीं से मुनि जन, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥2॥

ओं ह्रीं चम्पापुरनिर्वाणक्षेत्रात् वासुपूज्यादिसहस्त्रमुनिभ्यो अर्घ्यं...।

गिरनारी से नेमिनाथ सह, पाँच शतक छत्तीसों।
प्रद्युम्न शंबु अनिरुद्धादि, जाए मिले मुक्ती सों।
कोटि बहत्तर तथा सात सौ, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥3॥

ओं ह्रीं गिरनारनिर्वाणक्षेत्रात् नेमिनाथादिसप्तशताधिक-द्विसप्तदशकोटि मुनिभ्यो अर्घ्यं...।

पद्म सरोवर पावापुर से, महावीर शिव पाये।
साथ-साथ छत्तीस साधु जी, निज आतम प्रकटाये॥
शासननायक दीवाली दे, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥4॥

ओं ह्रीं पावापुरनिर्वाणक्षेत्रात् महावीरस्वामिनासहषट्त्रिंशतमुनिभ्यो अर्घ्यं...।

शाश्वत श्री सम्मेदशिखर से, शेष बीस तीर्थंकर।
और अनंतानंत संत भी, गये यहीं से शिवपुर॥
चलो शिखर जी भजो उन्हें जो, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥5॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरनिर्वाणक्षेत्रात्विंशति तीर्थंकरादि-अनंतानंतमुक्तिप्राप्त मुनिभ्यो अर्घ्यं...।

(जोगीरसा)

नगर तारवर सिद्धक्षेत्र से, श्री वरदत्त मुनिंदा।
सागरदत्त वरांग आदि मुनि, पाये निज आनंदा॥
पूरे साढ़े तीन कोटि मुनि, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥6॥

ओं ह्रीं तारवरनिर्वाणक्षेत्रात् श्रीवरदत्त-सागरदत्त-वरांगाश्चादिः त्रिकोटि-पंचाशतलक्षमुक्तिप्राप्त मुनिभ्यो अर्घ्यं...।

गजपंथा के उच्च शिखर से, बजा आत्म की बंसी।
सात सात बलभद्र और मुनि, आठ कोटि यदुवंशी॥
राजा आदिक कर्म विजेता, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥7॥

ओं ह्रीं गजपंथानिर्वाणक्षेत्रात् सप्तबलभद्रादि अष्टकोटिमुक्तिप्राप्त मुनिभ्यो अर्घ्यं...।

सोनागिरि के उच्च शिखर से, नंगानंग कुमारा।
आदिक साढ़े पाँच कोटि मुनि, पार किये भव खारा॥
सोनागिरि पर सोना-सोना, आतम सोना आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥8॥

ओं ह्रीं सोनागिरिनिर्वाणक्षेत्रात् नंगानंगकुमारादि पंचकोटिपंचाशतलक्ष मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं...।

तुंगीगिरि से रामचन्द्र मुनि, हनु सुग्रीव पधारे।
गवय गवाक्ष नील महनीला, निज चेतन श्रृंगारे॥
इत्यादिक निन्यानवे कोटि, आत्म निखारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥9॥

ओं ह्रीं तुंगीगिरिनिर्वाणक्षेत्रात् राम-हनु-सुग्रीव-सुडील-गवय-गवाख्य-नील-महानीलाश्चादि नवाधिक-नवत्रिंशतकोटिमुक्तिप्राप्त मुनिभ्यो अर्घ्यं...।

पावागढ़ से लवकुश आदिक, रामचन्द्र के बेटे।
लाट देश के पाँच करोड़ी, राजा शिव वर लेते॥
आतम राम प्राप्त करने को, राम राज्य हो आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥10॥

ओं ह्रीं पावागढ़निर्वाणक्षेत्रात् लव-कुशाश्चादिपंचकोटिः मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

बड़वानी के दक्षिण में थित, चूलगिरी चोटी है।
कुंभकर्ण मुनि इंद्रजीत की, मुक्ति यहीं होती है॥
उन्हें नमन जो संत यहाँ से, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥11॥

ओं ह्रीं बड़वानीतीर्थस्य चूलगिरिनिर्वाणक्षेत्रात् कुम्भकर्ण-इन्द्रजीतादि मुक्ति-प्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

रेवातट पर सिद्धोदय है, सिद्धक्षेत्र नेमावर।
रावण के सुत मुक्त यही से, हुए मोक्ष को पाकर॥
साढ़े पाँच करोड़ यहीं से, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥12॥

ओं ह्रीं रेवातटस्थसिद्धोदयनिर्वाणक्षेत्रात् रावणस्य पुत्रादि अष्टकोटिः मुक्तिप्राप्त मुनिभ्यो अर्घ्यं....।

रेवा नदी के तीर सिद्धवर, कूट वसा पश्चिम में।
दो चक्री दस कामदेव मुनि, यहीं रमे चेतन में॥
साढ़े तीन करोड़ यहीं से, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥13॥

ओं ह्रीं सिद्धवरकूटनिर्वाणक्षेत्रात् द्वयचक्री-दशकामदेवादि त्रिकोटि पंचाशत् लक्षमुक्तिप्राप्त मुनिभ्यो अर्घ्यं....।

नदी चेलना के पूरब तट, पावागिरी निहारो।
स्वर्ण भद्र मणि वीर भद्र गुण, मुक्त यहाँ से चारों॥
चख पावा के बाबा मावा, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥14॥

ओं ह्रीं पावागिरि (पवाजी) निर्वाणक्षेत्रात् स्वर्ण-वीर-मणि-गुणभद्रादि मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

फलहोड़ी के पश्चिम भू में, द्रोणगिरी है न्यारी।
गुरुदत्तादिक रत्नत्रय की, पाये मोक्ष सवारी॥
बन चैतन्य चमत्कारी प्रभु, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥15॥

ओं ह्रीं द्रोणगिरिनिर्वाणक्षेत्रात् गुरुदत्तदि मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

अचला पुर ईशान दिशा में, मुक्तागिरि की चोटी।
साढ़े तीन करोड़ यहीं मुनि, पाये आतम ज्योति॥
मुक्तागिरि से आत्म मुक्त कर, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥16॥

ओं ह्रीं मुक्तागिरि (मंदारगिरि) निर्वाणक्षेत्रात् त्रिकोटिपंचाशतलक्षमुक्तिप्राप्त मुनिभ्यो अर्घ्यं....।

वंश स्थल के पश्चिम भू में, कुन्थलगिरि सुहायी।
यहाँ देशभूषण कुलभूषण, मुनि को मुक्ति रिझायी॥
जग दूषण तज निज भूषण सज, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥17॥

ओं ह्रीं कुन्थलगिरिनिर्वाणक्षेत्रात् कुलभूषण-देशभूषणादि मुक्तिप्राप्त मुनिभ्यो अर्घ्यं....।

कोटिशिला या तारंगा जो, कलिंग या गुजराती।
यहीं यशोधर राजा के सुत, पाँच शतक की ख्याति॥
और यहाँ से एक कोटि मुनि, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥18॥

ओं ह्रीं तारंगा(कोटिशिला) निर्वाणक्षेत्रात् एककोटिपंचशतमुक्तिप्राप्त मुनिभ्यो अर्घ्यं ....।

नैनागिरि में पार्श्वनाथ का, समवसरण जब आया।
गुरु-वरदत्तादिक पाँचों को, तब शुद्धातम भाया॥
खोल यहीं से निज नैनों को, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥19॥

ओं ह्रीं नैनागिरिनिर्वाणक्षेत्रात् गुरुदत्त-वरदत्तादि मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

राजगृही से विद्युत नामक, चोर त्याग कर चोरी।
आतम धन की रक्षा करने, बाँधे संयम डोरी॥
मालामाल मुक्ति से होने, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥20॥

ओं ह्रीं राजगृहीनिर्वाणक्षेत्रात् विद्युतचोरादि मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

गौतम गणधर क्षेत्र गुणावा, पाकर मोक्ष पधारे।
पूज्य सुधर्माचार्य नवादा, तीरथ से दुख हारे॥
जम्बूस्वामी मथुरा से ही, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥21॥

ओं ह्रीं गुणावा-नवादा-मथुरानिर्वाणक्षेत्रात् गौतमगणधर-सुधर्माचार्य-जम्बूस्वामी-अन्याश्चाद्यो मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....

सेठ सुदर्शन शील धर्म के, ज्यों ही बने विहारी।
मुक्तिवधू नत नयना होकर, त्यों ही चरण पखारी॥
पटना में गुलजारबाग से, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥22॥

ओं ह्रीं पटनानिर्वाणक्षेत्रात् सेठ सुदर्शनादि मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

मध्यप्रदेश दमोह जिले में, कुण्डलपुर के बाबा।
मुक्त यहाँ से श्रीधर स्वामी, चखते निज के मावा॥
तीर्थ बना बुन्देलखण्ड को, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥23॥

ओं ह्रीं कुण्डलपुर (कुण्डलगिरि) निर्वाणक्षेत्रात् श्रीधरस्वामी-अन्याश्चादि मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

गोपाचल है ग्वालियर में, सिद्ध क्षेत्र मनहारी।
सुप्रतिष्ठित मुनि पाए यहाँ से, सुनलो मोक्ष सवारी॥
गोपाचल से सिद्धाचल पा, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥24॥

ओं ह्रीं गोपाचलनिर्वाणक्षेत्रात् सुप्रतिष्ठितादि मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

आहार जी से कामदेव जो, मुक्त हुए नलराजा।
महावीर शासन से पाये, विस्कंवल शिवराजा॥
पंच पहाड़ सिद्धशिला से, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥25॥

ओं ह्रीं आहारनिर्वाणक्षेत्रात् नल-विस्कंवलादि मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

ऊन क्षेत्र है मोक्षस्थली, स्वर्णभद्र मुनिवर की।
किंचित ऊन यहाँ से होकर, राह चले शिवपुर की॥
सार्थक संज्ञा करके मुनिवर, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥26॥

ओं ह्रीं ऊननिर्वाणक्षेत्रात् स्वर्णभद्रादि मुक्तिप्राप्तमुनिभ्यो अर्घ्यं....।

यमुना तट पर है शौरीपुर, तीर्थ बटेश्वर प्यारा।
यहाँ धन्य यम निर्मल सुत मुनि, पाये सौख्य अपारा॥
नेमिनाथ क जन्म भूमि से, मोक्ष पधारे आहा।
अर्घ चढ़ा हम करें नमोऽस्तु, मुख से बोलें स्वाहा॥27॥

ओं ह्रीं शौरीपुरवटेश्वरनिर्वाणक्षेत्रात् यम-धन्य-निर्मल-सुतादि मुक्तिप्राप्त-मुनिभ्यो अर्घ्यं....।

जयमाला

(दोहा)

जिस धरती से सिद्ध हों, जिनवर संत महंत।
सिद्ध क्षेत्र निर्वाण की, जयमाला जयवंत॥

(शेर चाल)

जय-जय श्री निर्वाण क्षेत्र पूज्य भूमियाँ।
हैं पाप काटने को यही सिद्ध भूमियाँ।
जो ढाई द्वीप का विशाल क्षेत्र जानिए।
संपूर्ण सिद्ध क्षेत्र है यथार्थ मानिए॥1॥
इस हेतु से विशुद्ध पूज्य पूर्ण क्षेत्र है।
निर्ग्रंथ रूप ने किया इसे पवित्र है।

फिर भी विशेष रूप से जो सिद्ध धाम हैं।
उनको पृथक्-पृथक् व साथ में प्रणाम हैं॥2॥
ये सिद्ध क्षेत्र पृथ्वीकाय के निकाय हैं।
फिर धर्म ध्यान में हुए कैसे सहाय हैं।
चूँकि जिनेन्द्र का इन्होंने आसरा लिया।
सो कार्य कारण रूप से पावन बना लिया॥3॥
सम्मेदशिखर तीर्थ तो भक्तों के प्राण हैं।
कैलाश चम्पा-पावापुर गिरनार धाम हैं।
हम चार-धाम के पुजारी हो न सकेंगे।
ये पाँच धाम पूज के निर्वाण भजेंगे॥4॥
सो पाँच पाप त्याग के धरेंगे व्रत महा।
फिर सिद्ध जैसे ध्यान से हो शुद्ध आत्मा।
चैतन्य चेतना चिदेश मोक्ष दिला दो।
एक सौ सत्तर शिखर जी के दर्श करा दो॥5॥
हमने तो एक शिखर जी भी ढँग से न भजी।
इस वेदना से अर्चना निर्वाण की रची।
ले टूटे फूटे द्रव्य भाव सिर को टेकते।
दिन-रात अपने नाथ को ह्रदय से पूजते॥6॥
इस भांति शब्द पुष्प की जो भक्ति माल ले।
चौबीस नाथ की निर्वाण भूमियाँ भजे।
लगा-लगा परिक्रमा जो पुण्य लूटते।
वे कर्म भार को उतार भव से छूटते॥7॥
हो सिद्ध तीर्थ यात्रियों की यात्रा सफल।
ये यात्रा दिलाये हमें मोक्ष का महल।
प्रभु मुक्ति का इशारा आसरा भी दीजिए।
'सुव्रत' की अर्ज सुन के निज शरण में लीजिए॥8॥

(दोहा)

सिद्ध क्षेत्र की सिद्धि से, हुए सिद्ध हर काम।
अतः सिद्ध पद प्राप्ति को, करें नमोऽस्तु ध्यान॥

ओं ह्रीं अर्हं श्री निर्वाणक्षेत्रात् मुक्तिप्राप्तसर्वमुनिभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं...।

(दोहा)

मुक्तिप्राप्त मुनिरवर करें, विश्वशांति कल्याण।
प्रासुक जल की धार दे, हम पूजत भगवान॥

(शांतये शांतिधारा)

कल्पवृक्ष के पुष्प सम, पुष्पांजलि पद लाय।
भव दुःखों को मेंट दो, मुक्ति प्राप्त जिनराय॥

(पुष्पांजलिं)

श्री विद्यागुरु बुंदेली विधान

रचयिताः मुनि श्री 108 सुव्रतसागर जी महाराज

स्थापना (ज्ञानोदय)

मोरे गुरुवर विद्यासागर, सब जन पूजत हैं तुमखों।
हम सोई पूजन खों आये, तारो गुरु झट्टईं हमखों॥
मोरे हिरदे आन विराजो, हाथ जोड कैं टेरत हैं।
और बाठ जइ हेर रये हम, हँस कैं गुरु कब हेरत हैं॥

ओं ह्रूँ आचार्य विद्यासागर मुनीन्द्र! अत्र अवतर अवतर...। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः...। अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्...। (पुष्पांजलिं)

बाप मतारी दोइ जनौं नैं, बेर-बेर जनमों मोखों।
बालापन गव आइ जुवानी, आव बुढापौ फिर मोखों॥
नर्रा- नर्रा कैं हम मर गये, बात सुनैं नैं कोऊँ हमाई।
जीवौ मरबौ और बुढ़ापौ, मिटा देव मोरो दुखदाई॥

ओं ह्रूँ आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं...।

मोरे भीतर आगी बर्रई, हम दिन रात बरत ओं में।
दुनियाँदारी की लपटों में, जूड़ापन नैं पाओ मैं॥

मोय कबऊँ अपनौं नैं मारौ, कबऊँ पराये करत दुखी।
ऐंसी जा भव आग बुझादो, देव सबूरी करौ सुखी॥

ओं ह्रूँ आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं...।

कबऊँ बना दव मोखों बङ्डौ, आगैं-आगैं कर मारौ।
कबऊँ बना कैं मोखों नन्नौ, भौतइ मोय दबा डारौ॥
अब तौ मोरौ जी उकता गओ, चमक-धमक की दुनियाँ में।
अपने घाँईं मोय बना लो, काय फिरा रये दुनियाँ में॥

ओं ह्रूँ आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान्...।

कामदेव तौ तुमसैं हारौ, मोय कुलच्छी पिटवाबै।
सारौ जग तौ मोरे वश में, पर जौ मोखों हरवाबै॥
हाथ जोड़ कैं पाँव परै हम, गैल बता दो लड़बे की।
ये खैं जीतैं मार भगावैं, ब्रह्मचर्य व्रत धरबे की॥

ओं ह्रूँ आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पाणि...।

हम तौ भूखे नैं रै पावैं, लडुआ पेड़ा सब चाने।
लुचईं ठडूला खीच औंरिया, तातौ वासौ सब खाने॥
इनसैं अब तौ भौत दुखी भये, देव मुक्ति इनसैं मोखों।
मोय पिल दो आतम-इमरत, नैवज से पूजत तोखों॥

ओं ह्रूँ आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं...।

दुनियाँ कौ जो अँधयारौ तौ, मिट लेत है हर कोऊ।
मोह रऔ कजरारौ कारौ, मिटा सके नैं हर कोऊ॥
ज्ञान-जोत सैं ये करिया कौ, तुमने करिया मौं कर दऔ।
ऊँसईं जोत जगा दो मोरी, दीया जौ सुपरत कर दऔ॥

ओं ह्रूँ आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं...।

खूबइ होरी हमने बारी, मोरी काया राख करी।
पथरा सी छाती बारे जै, करम बरैं नैं राख भयी॥
तुम तौ खूबइ करौ तपस्या, ओइ ताप सैं करम बरैं।
मोय सिखा दो ऐंसे लच्छन, तुम सौ हम भी ध्यान धरैं॥

ओं ह्रूँ आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं...।

तुम तौ कौनऊँ फल नइँ खाउत, पीउत कौंनऊँ रस नँइयाँ।
फिर भी देखौ कैसे चमकत, तुम जैसो कौंनऊँ नँइयाँ॥
हम फल खाकैं ऊबै नइयाँ, फिर भी चाने शिवफल खौं।
ओई सैं तौ चढ़ा रये हम, तुम चरणों में इन फल खौं॥
ओं ह्रूं आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं...।
ऊँसईं-ऊँसईं अरघ चढ़ा कैं, मोरे दोनऊँ हाथ छिले।
ऊँसईं-ऊँसईं तीरथ करकैं, मोरे दोनऊँ पाँव छिले॥
नैं तो अनरघ हम बन पाये, नैं तीरथ सौ रूप बनौ।
एई सैं तौ तुमें पुकारें, दै दो आतम रूप घनौं॥
ओं ह्रूं आचार्य विद्यासागरमुनीन्द्राय अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं...।

जयमाला

(दोहा)
विद्यागुरु सौ कोऊ नैं, जग में दूजों नाँव।
सबइ जने पूजत जिनैं, और परत हैं पाँव॥
दर्शन पूजन दूर है, इनकौ नाँव महान।
बड़भागी पूजा करैं, और बनावैं काम॥
(ज्ञानोदय)
मल्लप्पा जू के तुम मौड़ा, श्रीमति मैया के लल्ला।
गाँव आपनौ तज कैं देखौ, करौ धरम कौ तुम हल्ला॥
दया धरम कौ डण्डा लै कैं, फैरा रय तुम तौ झण्डा।
ऐसै तुम हौ ज्ञानी ध्यानी, फोरत पापों कौ भण्डा॥1॥
एकईं बिरियाँ ठाडे हो कैं, खात लेत नैं हरयाई।
नौंन मसालौ माल मलीदा, कबउँ खाव नैं गुरयाई॥
जड़कारै में कबऊँ नैं ओढ़ौ, प्यांरौ चारौ और चिटाई।
जेठमास में गर्मी सैनें, पिऔ कबऊँ नैं ठण्डाई॥2॥

तुम बैरागी हौ निरमोही, सच्ची मुच्ची में भज्जा।
बन कैं जिनवाणी के लल्ला, पूजौ जिनवाणी मज्जा॥
सब जग के तुम गुरुवर बन गय, ये में का कैंसौ अचरज।
गुरु के संगै मात-पिता के, गुरु बन गय जौ है अचरज॥3॥
मोय तुमारी चर्या भा गई, तबइ करत अर्चा तोरी।
तीनईं बिरियाँ माला फेरत, रोज करत चर्चा तोरी॥
अर जौ मोरौ पगला मनवा, तुम खौं तज कैं नैं जावै।
कहूँ रमैं नैं जौ बंदरा सौ, उचक-उचक कैं इत आवै॥4॥
कबउँ-कबउँ जौ मोरइ बन कैं, खूबइ खूब नचत भैया।
सो सब हम खों कहें दिवानौ, और कैत का-का दैया॥
भौत बडे आसामी तुम तौ, तुम व्यापार करौ नगदी।
सौदा कौ नैं काम करौ तुम, नैं दुकान नैं है गद्दी॥5॥
जग जाहिर मुस्कान तुमारी, तुम सी कला कहूँ नईंयाँ।
नैं कोऊ खों हामी भरते, नाहीं कँबऊँ करत नईंयाँ॥
मूड़ उठा कैं हेरत नईंयाँ, और कैत देखौ-देखौ।
चिटिया जीव-जन्तु दिख जावै, पै भक्तों खों नैं देखौ॥6॥
महावीर कौ समोसरण तौ, राजगिरी पै खूब लगौ।
ऊँसइ बुन्देली में शोभै, संघ तुमारौ खूब बड़ौ॥
करी बड़े बाबा की सेवा, सो बन गये छोटे बाबा।
काम करौ तुम बड़े-बड़े पै, काय कैत छोटे बाबा॥7॥
कबउँ-कबउँ तौ तुम बोलत हौ, आगम कौ तब ध्यान रखौ।
समयसार खों खूबइ घोकौ, आतम रस खौं खूब चखौ॥
नौंने-नौंने ग्रथ रचा दय, भौत बना दय तीरथ हैं।
दुखियों की करुणा खों सुनकैं हाथ दया कौ फेरत हैं॥8॥
ये की का का कथा कहें हम, कबउँ होय जा नैं पूरी।
भक्तों खों भगवान बना कैं, हरलई उनकी मजबूरी॥
इतनौ सब उपकार करत हौ, फिर भी कछू कैत नईंयाँ।
येई सें तौ जग जौ कैरव, तुम सौ कोऊ है नईंयाँ॥9॥

अब किरपा ऐसी कर दइयो, पाँव-छाँव में मोय रखौ।
अपने घाँई मोय बना लो, अपने से नैं दूर करौ॥
'सुव्रत' की जा अरज सुनीजै, और तनक सौ मुस्कादो।
भवसागर सैं मोरी नैया, झट्टईं-झट्टईं तिरवा दो॥10॥

ओं ह्रूँ आचार्य श्री विद्यासागरमुनीन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

गुण गावैं पूजा करैं, करैं भगति दिन रैन।
बस इत्तइ किरपा करौ, मोय देव सुख चैन॥
तुम तौ बड़े उदार हो, और गुणी धनवान।
पूजा जयमाला करी, मैं मौड़ा नादान॥
विद्यागुरु खों कैत सब, बुन्देली के नाथ।
सो बुन्देली गीत गा, तुमें झुकारय माथ॥

(पुष्पांजलिं)

अर्घ्यावली)

पंचाचार (ज्ञानोदय)

बालपने सें प्रभु दर्शन कौ, तुम पै रंग चढौ ऐंसौ।
सम्यग्दर्शन पाकें गुरु सें, रूप बना लऔ प्रभु जैंसौ॥
तन्नक सौ तौ तकौ नांय खों, दर्शन दै दइऔ हमखों।
हे! दर्शन आचारी गुरुवर, करें नमोऽस्तु हम तुमखों॥1॥

ओं ह्रूं दर्शनाचारगुणसुशोभिताय आचार्य विद्यासागरगुरुवे नमः अर्घ्यं...।

ज्ञानगुरु नें कैसी घुट्टी, तुमें पिला दई ज्ञानइं की।
भोले भाले हम भक्तों में, जोत जगा दई ज्ञानइं की॥
अठ पहरी भी अष्टांगी सौ, ज्ञान देत रइऔ हमखों।
ज्ञानाचारी हे! विद्यागुरु, करें नमोस्तु हम तुमखों॥2॥

ओं ह्रूं ज्ञानाचारगुणसुशोभिताय आचार्य विद्यासागर गुरवे नमः अर्घ्यं...।

मोय लगत कै चंदा सूरज, तोए देखबे खों निकरें।
तेरा विध चारित्र देख कें, भाग्य हमौरों के निखरें॥
कंजूसी तन्नक सी तजकें, अपनौ धन दइऔ हमखों।
हे! चारित्राचारी गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥3॥

ओं ह्रूं चारित्राचारगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागर गुरवे नमः अर्घ्यं...।

सहौ अमरकण्टक में जाड़ौ, कुण्डलपुर में गर्मी खों।
हरयाइ गुरयाइ नौन मिठाई, भा नईं रइ इन धर्मी खों॥
मस्कइं मस्कइं तप के रसखों, लै कें दै दइऔ हमखों।
तपाचार के हे! भण्डारी, करें नमोस्तु हम तुमखों॥4॥

ओं ह्रूं तपाचारगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं....।

तुम तौ अपने दम सें जादा, करौ तपस्या तूफानी।
जबईं तुमारे इन चरनों में, भरें सुरासुर नर पानी॥
वीर्यशक्ति जब बांटौ तब तौ, बिसरा नें दइऔ हमखों।
वीर्याचारी हे! विद्यागुरु, करें नमोस्तु हम तुमखों॥5॥

ओं ह्रूं वीर्याचारगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागर गुरवे नमः अर्घ्यं....।

बारह तप

ढूँढ तनक सी कहूँ कौनियाँ, खाबौ पीवौ सब तज कें।
उपवासों की लैन लगा दइ, आतम परमातम भज कें॥
फिर भी आलस करौ नें ये कौ, राज बता दइऔ हमखों।
हे! अनशन तपधारी गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥6॥

ओं ह्रूं अनशनतपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागर गुरुवे नमः अर्घ्यं...।

तन्नक-मन्नक एकइ बिरियाँ, रूखौ सूखौ सौ खाऔ।
फिर भी कबउँ करौ नें गुस्सा, कबउं पेट भर नें खाऔ॥
लें के तनक बांटवौ मुतकौ, जौइ सिखा दइऔ हमखों।
हे! ऊनोदरतपधारी गुरु, करें नमोस्तु हम तुमखों॥7॥

ओं ह्रूं अवमौदर्यतपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागर गुरुवे नमः अर्घ्यं...।

एकइँ बिरियाँ खात ओइ पै, बन्न-बन्न के लेत नियम।
निजी पुण्य की जाँच परख खों, आसक्ती खों त्यागौ तुम॥
खूबई करौ परीक्षा लेकिन, फैल नें कर दइऔ हमखों।
वृत्ति परिसंख्यान धरौ सौ, करें नमोस्तु हम तुमखों॥8॥

ओं ह्रूँ वृत्तिपरिसंख्यानतपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

खट्टे मीठे खारे चिपरे, कड़वे आदि छै रस खों।
बखत-बखत पैं तजकें तुमतौ, लेत-रेत आतमरस खों॥
अपने जैसों सरस रसीलौ, जीवन दे दइऔ हमखों।
हे! रसत्यागी विद्या गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥9॥

ओं ह्रूँ रसपरित्यागतपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागरगुरव नमः अर्घ्यं...।

कित्तउ लुकलौ छुपलौ फिर भी, बच नें सकौ तुम भक्तों सें।
सो क्षेत्रों पै जाकें बैठौ, तन्नक सोत करौटों सें॥
रहौ भीड़ में आप अकेले, दूर भगइऔ नें हमखों।
विविक्त शैयासन तप धारी, करें नमोस्तु हम तुमखों॥10॥

ओं ह्रूँ विविक्तशैय्यासनतपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागरगुरव नमः अर्घ्यं....।

जड़कारे में बिना चटाई, गर्मी में बिन हरयाई।
खड़गासन शीर्षासन करकैं, खुद में खोऔ सुखदाई॥
बन्न-बन्न सें तपा-तपा तन, निजसम चमकइऔ हमखों।
कायक्लेश तपधारी गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥11॥

ओं ह्रूं कायक्लेशतपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागरगुरव नमः अर्घ्यं...।

वैसें तो निर्दोष रहौ तुम, फिर भी दोष लगें कौनउं।
तौ खुद खौं, खुद के सिस्सौं खों, दै कें मौन रहौ मोनउं॥
निंदा गर्हा आलोचन से, शुद्ध बनइऔ अब हमखों।
तुम तप प्रायश्चित्त धरौ सौ, करें नमोस्तु हम तुमखों॥12॥

ओं ह्रूं प्रायश्चित्ततपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागरगुरव नमः अर्घ्यं...।

पूज्य जनों की चार बन्न की, झुक कें भौत विनय करते।
भक्तों की जब सुनौ नमोस्तु, दै आशीष प्रेम रखते॥
अब तौ खोलौ मोक्ष किवाड़े, तीर्थंकर घाईं हमखों।
विनय तपोगुण धारी गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥13॥

ओं ह्रूं विनयतपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागरगुरव नमः अर्घ्यं...।

आलस तज कें जैन धरम के, जब तुम समझौ शास्त्रों खों।
तब तौ नांय-मांय नें हेरौ, पढ़ौ पढ़ाऔ सिस्सों खों॥
तोखों पढ़वें बारी विद्या, सिस्स बना दइऔ हमखों।
हे! स्वाध्याय तपो गुणधारी, करें नमोस्तु हम तुमखों॥14॥

ओं ह्रूं स्वाध्यायतपोगुणसुशोभित आचार्य श्रीविद्यासागरगुरव नमः अर्घ्यं...।

जो भी तोखों हेरै टेरै, ओकी खबर रखौ तुम तौ।
त्यागी व्रतियों के रखवारे, टेरें हेरें अब हम तौ॥
खबर हमारी भी लँय रइयौ, चरण शरण दइयौ हमखों।
वैयावृत्त तपोगुणधारी, करें नमोस्तु हम तुमखों॥15॥

ओं ह्रूं वैयावृत्ततपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागर गुरुवे नमः अर्घ्यं...।

बाप मतारी भाई बन्धु तज, दुनियाँदारी भी छोड़ी।
और कहें का तुमने अपनी, काया सें ममता मोड़ी॥
जब बारात मोक्ष लै जइऔ, संगै लै चलियौ हमखों।
हे! व्युत्सर्ग तपो गुणधारी, करें नमोस्तु हम तुमखों॥16॥

ओं ह्रूं व्युत्सर्गतपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागरगुरव नमः अर्घ्यं...।

जग कै सार दिगम्बर मुद्रा, तप कौ सार ध्यान धरते।
तब तुम ध्यान धरौ सौ साँचउं, सिद्धों के जैंसे लगते॥
जित्तौ ध्यान धरत हौ अपनों, उत्तई तारौ गुरु हमखौं।
ध्यान तपो गुणधारी गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥17॥

ओं ह्रूं ध्यानतपोगुणसुशोभित आचार्य श्री विद्यासागरगुरव नमः अर्घ्यं..।

दसलक्षण धर्म

चौका में मौका खों पाके, कौनउं कछू सुना देवै।
अथवा उल्टी सुल्टी कै कें, उपसर्गों सौ कर लेवै॥
फिर भी मुस्काऔं सो ऐंसे, लच्छन दै दइऔ हमखों।
उत्तम क्षमा धरमधारी गुरु, करें नमोस्तु हम तुमखों॥18॥

ॐ ह्वूं उत्तमक्षमाधर्मधुरन्धर आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं....।

तुमसौ नें खबसूरत कौनउं, नें त्यागी ज्ञानी ध्यानी।
हीरे सें मजबूत तुमइं हौ, फिर भी हौ नंईयां मानी॥
चर्या में मुलाम मक्खन से, नरियल सौ करियौ हमखों।
उत्तम मार्दव धर्म धुरन्धर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥19॥

ॐ ह्वूं उत्तममार्दवधर्मधुरन्धर आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

माया ठगनी छल कपटों से, तुम तौ कोशों दूर रहौ।
एक नजर में टेड़े- टाड़े, छलियों खों भी ठीक करौ॥
सीधी सादी गैल तुमारी, तन्नक तौ तकियौ हमखों।
उत्तम आर्जव धर्मधुरन्धर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥20॥

ॐ ह्वूं उत्तमार्जवधर्मधुरन्धर आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं....।

कैंसे हो तुम तौ निर्लोभी, जौ नें कोनउँ समझ सकै।
लोभ त्याग कें धरम रतन कौ, तुममें खूबई लोभ दिखै॥
कंजूसी अब तनक त्याग कें, धरम बाँट दइऔ हमखों।
उत्तम शौच धरमधारी गुरु, करें नमोस्तु हम तुमखों॥21॥

ॐ ह्वूं उत्तमशौचधर्मधुरन्धर आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं....।

झूठी मों से कबउँ नें निकरै, साँचउं-साँचउं तुम बोलौ।
सबके दिल पै राज करौ तुम, कानों में मिसरी घोलौ॥
बानी पै जिनबानी बैठी, जबइ खूब मोहौ हमखों।
उत्तम सत्य धर्मधरी गुरु, करें नमोस्तु हम तुमखों॥22॥

ॐ ह्वूं उत्तमसत्यधर्मधुरन्धर आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं....।

इन्द्री संयम प्राणी संयम, जब सें तुमनें ओढ़े हैं।
तब सें वौ तीरथ सौ बन गऔ, जितै जमा दय गोड़े हैं॥

सुनकैं अब तौ अरज हमारी, दीक्षा दे दइऔ हमखों।
उत्तम संयम धर्म धुरन्धर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥23॥

ॐ ह्वूं उत्तमसंयमधर्मधुरन्धर आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

रखौ नें इच्छा फिर भी सबकी, इच्छा पूरी करौ भली।
देख तुमारी कठन तपस्या, हल्ला हौ रऔ गली-गली॥
सफल साधना करौ हमारी, तनक निहारौ तौ हमखों।
उत्तम तपधारी हे! गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥24॥

ॐ ह्वूं उत्तमतपधर्मधुरन्धर आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

मुठी भरौ तौ खाऔ पीऔ, बांटौ झोली भर-भर कें।
त्यागी तोरौ त्याग देख कें, मनवा नांचै सर धर कें॥
परिग्रह जैसो हमें नें छोड़ौ, वैरागी करियौ हमखों।
उत्तम त्याग धर्मधारी गुरु, करें नमोस्तु हम तुमखों॥25॥

ॐ ह्वूं उत्तमत्यागधर्मधुरन्धर आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

कित्तौ तौ उपकार करत हो, फिर भी अपनौ नें मानौ।
तन्नक-मन्नक राग रखौ नें, अपनौ बस आतम जानौ॥
अपने जैंसौ नगन दिगम्बर, झट्ट बना लइऔ हमखों।
हे! आकिंचन धर्म धुरन्धर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥26॥

ॐ ह्वूं उत्तमआकिंचनधर्मधुरन्धर आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

तुमें देख कें ऐंसौ लागै, परम वीतरागी मिल गए।
जबइँ हजारौ भाई बैन खौं, ब्रह्मचर्य के पथ मिल गए॥
जल में कमल सरीखे तुम तौ, ब्रह्म रमण दइऔ हमखों।
ब्रह्मचर्य व्रत धर्म धुरन्धर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥27॥

ॐ ह्वूं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मधुरन्धर आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

षट्-आवश्यक

नें तौ सुख में सुखी होत तुम, नें दुख में तुम होत दुखी।
बहिर्मुखी कौ भाव त्याग जौ, बन गए अंतर मुखी- सुखी॥
देख तुमारी सामायिक खों, सिद्धशिला झलकै हमखों।
हे! सामायिक कर्ता गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥28॥

ओं ह्रूं सामायिकगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

कोउ एक तीर्थंकर प्रभु की, तीनइं बिरियाँ जाप करौ।
भक्ति भाव सें तन्मय होकें, करकें नमोस्तु पाप हरौ॥
भक्त और भगवान मिलन को, दृश्य दिखा दइऔ हमखों।
पूज्य वंदना गुणधारी गुरु, करें नमोस्तु हम तुमखों॥29॥

ओं ह्रूं वन्दनागुणसुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

तीनइं बिरियाँ बड़ौ स्वयंभू, करकें जब भगवान भजौ।
तबतौ ऐंसौ लगै हमें कै, चौबीसी कौ धाम सजौ॥
आदिनाथ सें महावीर के, दर्श करा दइऔ हमखों।
हे! आवश्यक स्तुतिकर्ता, करें, नोस्तु हम तुमखों॥30॥

ओं ह्रूं स्तवनगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

आंगे को अनुमान लगा कें, तुमतौ अपने काम करौ।
मस्कईं मस्कईं करौ साधना, तनक भौत आराम करौ॥
लगबै से पैलें दोषों कौ, त्याग सिखा दईयौ हमखों।
प्रत्याख्यान कर्म गुणधारी, करें नमोस्तु हम तुमखों॥31॥

ओं ह्रूं प्रत्याख्यानगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

वैसें तौ हुशयार भौत हौ, फिर भी कौनउं दोष लगें।
तौ निंदा आलोचन करकें, साँचे गुरु निर्दोष बनें॥
तुम सौ शुद्ध दिखै नै कौनउँ, शुद्ध बना दइऔ हमखों।
प्रतिक्रमण के कर्ता गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥32॥

ओं ह्रूं प्रतिक्रमणगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

जित्ते सुन्दर उत्ते कोमल, फिर भी तन से मोह नहीं।
छाले फोले आयें तौ भी, मन में तन्नक क्षोभ नहीं॥
खड़गासन में बाहुबली से, शोभ रहे हौ गुरु हमखों।
कायोत्सर्ग ध्यानधारी गुरु, करें नमोस्तु हम तुमखों॥33॥

ओं ह्रूं कायोत्यर्गगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

तीन गुप्तियाँ

तुमरे मन की कोउ नें जानें, तुम सबके मन की जानौ।
अपने मन की कबउं करौ नें, अरज कोउ की नें मानौ॥
फिर भी मन की करा लेत तुम, मन की कै दइयौ हमखों।
मनोगुप्ति धारी हे! गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥34॥

ओं ह्रूं मनोगुप्तिगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं....।

या तौ मौन रहौ तुम या फिर, बोलो तन्नक-मन्नक सौ।
वचनों खों ऐंसें बरसाऔ, जैंसें बरसै अमृत सौ॥
कित्तउ सुनलौ वचन आपके, होए नें संतुष्टि हमखों।
वचनगुप्ति धारी हे! गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥35॥

ओं ह्रूं वचनगुप्तिगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

देख तुमारी कोमल काया, सांचउं हमें लगै ऐंसौ।
चलते फिरते तीरथ हौ तुम, कौनउ नंइयां तुम जैंसौ॥
देख ध्यान मुद्रा खों तोरी, सिद्धालय झलकै हमखों।
कायगुप्ति धारी हे! गुरुवर, करें नमोस्तु हम तुमखों॥36॥

ओं ह्रूं कायगुप्तिगुणसुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः अर्घ्यं...।

एड़ी और चुटइया तक लौं, मूलगुणों सें तुम सोहौ।
मन्द-मन्द मुस्कान बाँट कें, बुन्देली खों तुम मोहौ॥
भाग्य तुमईं बुन्देलखण्ड के, तनकथाम लईओ हमखों।
तुमई सरीखौ अनरघ बनबे, करें नमोस्तु हम तुमखों॥

ओं ह्रूं षट्त्रिंशगुण-सुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे नमः पूर्णार्घ्यं...।

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

विद्यागुरु की भक्ति में, धूप लगै नें ठण्ड।
जयमाला में रम रहौ, सांचउं बुन्देलखण्ड॥

(जोगीरासा)

दुनियाँ में सबसे न्यारी है, भारत भूम हमारी।
भारत में बुन्देलखण्ड की, का कैनें बलिहारी॥

जब लौं कौनउं समझ सकौ नें, ये की महिमा न्यारी।
तब लों माटी कूरा जैसी, लुटी-पिटी सी भारी॥1॥
लेकिन जा कनात सुनें कें, घूरे के दिन फिरबें।
फिर जौ तौ बुन्देलखण्ड, है भाग्य काय नें चमकें॥
जितै कबउं मुनियों के दर्शन, मिलबौ बड़ौ कठिन थौ।
सुनौ इतईं तो चतुर्मास कौ, होवौ लगै सुपन सौ॥2॥
जाड़े में जब परै माइआ, कुकर-कुकर सब जाबें।
ज्वांर बाजरा कोदों खा कें, मौं करिया पर जाबें॥
गेहूँ मिलबौ बड़ौ कठिन थौ, फैली भूख गरीबी।
लगै दण्ड बुन्देलखण्ड जौ, दिखै नें कोउ करीबी॥3॥
महावीर सें अब लों जित्ते, मुनी अज्जका वीरा।
उनमें इक्के दुक्के भए हैं, बुन्देली के हीरा॥
लेकिन बुन्देली पै जबसें, पंइयां परे तुमारे।
साँची कै दउं ये माट के, हो गए बारे-न्यारे॥4॥
भूख गरीबी सबरी मिट गई, कोउ दिखै नें दुखिया।
खण्ड-खण्ड बुन्देलखण्ड जौ, अखण्ड हो गऔ सुखिया॥
टलें फावडों से जड़ माया, चेतन धन का कईये।
बुन्देली में समौसरण कौ, देख नजारौ रइये॥5॥
बुन्देली के भाग्य विधाता, तुमें कैत जब सारौ।
भाग्य हमौरों कौ चमकइऔ, अब नें पल्ला झारौ॥
हम बुन्देली तुम बुन्देली, रिश्तौ गजब हमारौ।
सो बुन्देली चेला चेली, अर 'सुव्रत' खों तारौ॥6॥

ओं ह्रूं षट्त्रिंशगुण-सुशोभित आचार्य विद्यासागरगुरवे जयमाला पूर्णार्घ्यं..।

(दोहा)

बुन्देली सें का बँधें, विद्यागुरु के गान।
फिर भी नमास्तु हम करें, करबै खों कल्यान॥

(पुष्पांजलिं...)

श्री गणधर विधान

मंगलाचरण

जय गुरुदेव-जय गुरुदेव, नग्न दिगंबर जय गुरुदेव।
जय गुरुदेव-जय गुरुदेव, गणधर ऋषिवर जय गुरुदेव॥

(विष्णु)

जन्म मरण में सभी दिगम्बर, आडंबर फिर क्यों।
पापों का क्यों भरो समन्दर, करो वबण्डर क्यों॥
इन बिंदू पर अंतस चिंतन, सो वैरागी हो।
हुए दिगंबर मुक्तिवधू में, आतम रागी हो॥ जय गुरुदेव....
खोज आतमा की करने को, वैरागी निकले।
किस साधन से मिले आतमा, मनमयूर मचले॥
अतः दिगम्बर सम्यक् गुरु की, करने खोज चले।
तीर्थंकर के समवसरण में, चरणा पूज चले॥ जय गुरुदेव...
चरण पूज आचरण भजे फिर, हुए दिगंबर जी।
गुरु शिष्य की जय से गूँजे, धरती अंबर भी॥
गणधर का संयोग देखकर, दिव्य देशना हो।
शुद्धातम को मुख्य बनाकर, तत्त्व देशना हो॥ जय गुरुदेव...
तत्त्व देशना सुनकर प्राणी, भव के रोग हरें।
गणधर ज्ञानी जिनवाणी सुन, श्रुत संयोग करें॥
ऐसे गणधर गुरु की सेवा, सांसारिक सुख दे।
संकट रोग शोक सब हर के, महामोक्ष सुख दे॥ जय गुरुदेव

(जोगीरासा)

तेरा मंगल मेरा मंगल, सबका मंगल होवे।
सुखिया होवे सारी दुनियाँ, कोई दुखी न होवे॥
कण-कण मंगल क्षण-क्षण मंगल, जन-जन मंगल होवे।
गणधर गुरु को करके नमोस्तु, जग का मंगल होवे॥

(पुष्पांजलिं...)

श्री गणधर पूजन

रचयिताः मुनि श्री 108 सुव्रतसागर जी महाराज

स्थापना (दोहा)

वृषभ सेन को आदि ले, गणधर अंत प्रभास।
चौदह सौ बावन भजें, कर के नमोऽस्तु दास॥

(ज्ञानोदय)

वृषभनाथ से महावीर के, चौदह सौ बावन गणधर।
दिव्य देशना प्रभु से सुनकर, हमें सुनायें करुणा कर॥
गुरु तो इतना देते हमेको, हम उनको क्या दान करें।
यथा शक्ति गुरु भक्ति करें हम, गुरु सान्निध्य प्रदान करें॥

(दोहा)

हृदय वेदिका पर वसें, ज्ञानी गुणी गणेश।
करके नमोऽस्तु हम भजें, करुणा करो जिनेश॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो अत्र अवतर...। अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः....। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्...। (पुष्पांजलिं)

(अष्टपदी-आँचलीबद्ध चौपाई)

(लय-चौबीसी पूजा वत्)

जल से कर शुद्ध शरीर, दुख मिथ्यात्व हरें।
सो लाये प्रासुक नीर, आतम शुद्ध करें॥
चौबीसों के मुनिराज, गणधर हम पूजें।
हम करके नमोऽस्तु आज, शुद्धातम खोजें॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं....।

चंदन की खिली बहार, जग में हो मंगल।
फिर पायें चेतन सार, ताप करें शीतल॥
चौबीसों के मुनिराज, गणधर हम पूजें।
हम करके नमोऽस्तु आज, शुद्धातम खोजें॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो संसारताप

विनाशनाय चंदनं....।

अक्षय जिनशासन तीर्थ सबको तार रहा।
दो शुद्धातम का तीर्थ, भक्त पुकार रहा॥
चौबीसों के मुनिराज, गणधर हम पूजें।
हम करके नमोऽस्तु आज, शुद्धातम खोजें॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान्..।

आतम का पुष्प पराग, तुम सम चाह रहे।
खिल जाए आतम बाग, पुष्प चढ़ाय रहे॥
चौबीसों के मुनिराज, गणधर हम पूजें।
हम करके नमोऽस्तु आज, शुद्धातम खोजें॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पाणि....।

षट् रस के लेकर स्वाद, निज रस भूल रहे।
अब चढ़ा-चढ़ा नैवेद्य, निज रस खोज रहे॥
चौबीसों के मुनिराज, गणधर हम पूजें।
हम करके नमोऽस्तु आज, शुद्धातम खोजें॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं....।

लेकर पुद्गल के दीप, हो दीपावलियाँ।
जा बैठे आत्म समीप, दो सुख की गलियाँ॥
चौबीसों के मुनिराज, गणधर हम पूजें।
हम करके नमोऽस्तु आज, शुद्धातम खोजें॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं...।

खेकर यह धूप दशांग, धूम्र उड़ायें रे।
अब कर्म जलें अष्टांग, निज चमकायें रे॥
चौबीसों के मुनिराज, गणधर हम पूजें।
हम करके नमोऽस्तु आज, शुद्धातम खोजें॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो अष्ट कर्म दहनाय धूपं...।

श्रद्धा के फल हों ज्ञान, ज्ञान वही साँचे।
जो दें संयम निर्वाण, पाने हम नाचें॥
चौबीसों के मुनिराज, गणधर हम पूजें।
हम करके नमोऽस्तु आज, शुद्धातम खोजें॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं....।

श्रद्धालु लाये अर्घ, भेंट कृपालु को।
दो मुक्तिवधू का पर्व, आप दयालु हो॥
चौबीसों के मुनिराज, गणधर हम पूजें।
हम करके नमोऽस्तु आज, शुद्धातम खोजें॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं....।

पूर्णार्घ्य

(शंभु)

हे! ज्ञानमूर्ति गणधर ज्ञानी, तुम तीर्थंकर के पुत्र रहे।
हम अज्ञानी जन के स्वामी, तुम ही तो साँचे मित्र रहे॥
अज्ञान अँधेरे से तारो, दो समवसरण का धाम हमें।
हम आतम ज्ञानी ध्यानी हों, हो विश्वशांति निर्वाण हमें॥

ऊँ ह्रीं वर्तमानचतुर्विंशतितीर्थङ्कर सम्बन्धिसकलगणधर ऋषिवरेभ्यो पूर्णार्घ्यं...।

अर्घ्यावली (विष्णु)

वृषभनाथ के रहे हजारों, चौरासी मुनिराज।
चौरासी गणधर में पहले, वृषभ सेन ऋषिराज॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥1॥

ओं ह्रीं श्री आदिनाथस्य वृषभसेनादिचतुरशीतिगणधरेभ्यो चतुरशीति-सहस्त्र मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

अजितनाथ के सिंहसेन से, नब्बे गणधर हों।
एक लाख मुनि समवसरण में, प्रभु के अनुचर हों॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥2॥

ओं ह्रीं श्री अजितनाथस्य सिंहसेनादिनवतिगणधरेभ्यो लक्षमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं..।

चारुसेन हैं पहले गणधर, सभी एक सौ पाँच।
शंभवप्रभु के दोय लाख मुनि, दर्शन कर मन नाँच॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥3॥

ओं ह्रीं श्री शंभवनाथस्य चारुषेणादिपंचाधिकशतगणधरेभ्यो द्विलक्ष-मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

अभिनंदन प्रभु के मुनिवर हैं, तीन लाख निज लीन।
गणधर वज्रनाभि हैं पहले, सभी एक सौ तीन॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥4॥

ओं ह्रीं श्री अभिनंदननाथस्य वज्रनाभ्यादित्रयाधिकशतगणधरेभ्यो त्रिलक्ष-मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

तीन लाख बत्तीस हजारों, सुमतिनाथ के संत।
गणधर रहे एक सौ सोलह, चमरादि निर्ग्रंथ॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥5॥

ओं ह्रीं श्री सुमतिननाथस्य चमरादिषोडशाधिकशतगणधरेभ्यो द्वात्रिंशत-सहस्त्राधिकत्रिलक्ष मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

पद्म प्रभु के तीन लाख अरु, मुनिवर तीस हजार।
गणधर रहे एक सौ दस कुल, वज्रचमर भव पार॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥6॥

ओं ह्रीं श्री पद्मनाथस्यवज्रचमरादिदशाधिकशतगणधरेभ्यो त्रिशंत-सहस्त्राधिक त्रिलक्षमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

सुपार्श्व प्रभु के तीन लाख मुनि, समवसरण में हों।
पंचानवें पूज्य कुल गणधर, बलदत्तादिक हों॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥7॥

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथस्य बलदत्तादिपंचनवति गणधरेभ्यो त्रिलक्षमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

चन्द्रप्रभु के ढाई लाख मुनि, निज अध्यात्म चखें।
दत्तदि तेरानवें गणधर, जिनको भक्त भजें॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥8॥

ओं ह्रीं श्री चन्द्रनाथस्य दत्तादित्रिनवतिगणधरेभ्यो सार्द्धद्विलक्षमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

सुविधिनाथ के समवसरण में, मुनि दो लाख विशेष।
चेतन रस के रसिक अठासी, विदर्भ आदि गणेश॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥9॥

ओं ह्रीं श्री सुविधिनाथस्यविदर्भादिअष्टाशीतिगणधरेभ्यो द्विलक्षमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

शीतलप्रभु के एक लाख मुनि, निज के विश्वासी।
परम पूज्य अनगार आदि हैं, गणधर इक्यासी॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥10॥

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथस्य अनगारादिएकाशीतिगणधरेभ्यो लक्षमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

श्रेयांसप्रभु के समवसरण में, मुनि चौरासी हजार।
कुंथु आदि हैं सत्तर गणधर, जिनकी जय-जयकार॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥11॥

ओं ह्रीं श्री श्रेयांशनाथस्य कुंथ्वादिसप्ततिगणधरेभ्यो चतुरशीतिसहस्त्र

मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

रहे बहत्तर हजार मुनिवर, वासुपूज्य-प्रभु के।
सर्धू आदिक रहे छ्यासठ, गणधर सद्गुरु से॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥12॥

ओं ह्रीं श्री वासुपूज्यनाथस्य सुधर्मादिषट्षष्ठिगणधरेभ्यो द्वासप्ततिसहस्त्र मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

विमलनाथ के पचपन गणधर, मंदिर आदि हुए।
अढ़सठ हजार मुनिवर जिनके, हम तो चरण छुए॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥13॥

ओं ह्रीं श्री विमलनाथस्य मंदिरादिपंचपंचाशत्गणधरेभ्यो अष्टषष्ठिसहस्त्र मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

अनंतप्रभु के पचास गणधर, जय आदिक प्यारे।
सभी छ्यासठ हजार मुनिवर, दुनियां से न्यारे॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥14॥

ओं ह्रीं श्री अनन्तनाथस्यजयादि पंचाशत्गणधरेभ्यो षट्षष्ठिसहस्त्र मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

धर्मनाथ के अरिष्ट आदि, गणधर तेतालीस।
चौसठ हजार मुनिवर सांचे, जिन्हें झुकायें शीश॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥15॥

ओं ह्रीं श्री धर्मनाथस्य अरिष्टादित्रिचत्वारिंशत्गणधरेभ्यो चतुः षष्ठिसहस्त्र मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं...।

शांतिनाथ के चक्रायुध से, गणधर मुनि छत्तीस।
बासठ हजार मुनिवर जिन का, मिला हमें आशीष॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥16॥

ओं ह्रीं श्री शांतिनाथस्य चक्रायुधादिषट्त्रिंशत्गणधरेभ्यो द्विषष्ठिसहस्त्र मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

कुंथुनाथ के स्वयंभू आदि, गणधर यति पैंतीस।
साठ हजार रहे मुनिवर भी, चिदानंद के ईश॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥17॥

ओं ह्रीं श्री कुंथुनाथस्य स्वयंभ्वादिपंचत्रिंशत्गणधरेभ्यो षष्टि सहस्त्र-मुनिवरेभ्योअर्घ्यं....।

अरहनाथ के कुंभु आदि, गणधर ज्ञानी तीस।
पचास हजार मुनिवर हमको, लगते हैं जगदीश॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥18॥

ओं ह्रीं श्री अरनाथस्य कुंभादित्रिंशत्गणधरेभ्यो पंचाशतसहस्त्रमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

मल्लिनाथ के विशाख आदि, गणधर अट्ठाईस।
मुनि चालीस हजार पूज्सवर, चाह रहे जगशीश॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥19॥

ओं ह्रीं श्री मल्लिनाथस्य विशाखादिअष्टाविंशतिगणधरेभ्यो चत्वारिंशत सहस्त्रमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

सुव्रत प्रभु के मल्ली आदि, अष्टादस गणधर।
तीस हजार महा ज्ञानी मुनि, चाह रहे शिवपुर॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥20॥

ओं ह्रीं श्री सुव्रतनाथस्य मल्ल्यादिअष्टादशगणधरेभ्यो त्रिंशत्सहस्त्रमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

नमिनाथ के सुप्रभ आदि, सत्रह गणधर हों।
बीस हजार महा ऋषिवर जी, सुख रत्नाकर हों॥

अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥21॥

ओं ह्रीं श्री नमिनाथस्य सुप्रभादिसप्तदशगणधरेभ्यो विंशतिसहस्त्रमुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

नेमिनाथ के वरदत्तादि, ग्यारह ऋषि गणधर।
रहे अठारह हजार मुनिवर, जिन्हें भजें सिर धर॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥22॥

ओं ह्रीं श्री नेमिनाथस्य वरदत्तादिएकादशगणधरेभ्यो अष्टादशसहस्त्र-मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

पार्श्वनाथ के स्वयंभू आदि, दस गणधर साँचे।
सोलह हजार मुनि दर्शन कर, मन मयूर नाँचे॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥23॥

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथस्य स्वयंभ्वादिदशगणधरेभ्यो षोडशसहस्त्र मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

महावीर के गौतम आदि, ग्यारह गणधर जी।
चौदह हजार मुनियों के बिन, क्या हो रहकर भी॥
अर्घ्य चढ़ा मुनि ऋषिराजों को, हो नमोऽस्तु आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥24॥

ओं ह्रीं श्री वीरनाथस्य गौतमादिएकादशगणधरेभ्योचतुर्दशसहस्त्र मुनिवरेभ्यो अर्घ्यं....।

वृषभवीर चौबीसी प्रभु के, कुल गणधर मुनिजन।
वृषभसेन से प्रभास गणधर, चौदह सौ बावन॥
अठविस लख अड़तालिस हजार, मुनिजन हों आहा।
ओम् ह्रीं गणधर ऋषिवरेभ्यो, नमो नमः स्वाहा॥

(शंभु)

हम देव शास्त्र गुरु के अनुचर, जिन बिन अस्तित्त्व हमारे क्या।
जिनदेव हमें तो मिल न सके, जानें ना शास्त्र तत्त्व हैं क्या॥

निर्ग्रंथ संत गुरुदेव मिले, वह गणधर जैसे हम पूजें।
सान्निध्य मिला अध्यात्म मिला, सो चरणों में आतम खोजें॥

ओं ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरसम्बन्धि वृषभसेनादि - प्रभासपर्यंतं द्विपंचाशदाधिक-शतचतुर्दशअष्टचत्वारिंशत्- सहस्राधिकअष्टाविंशतिलक्ष मुनिवरेभ्यो महार्घ्यं...।

जाप्य मंत्र- ऊँ ह्रीं ऋद्धिसम्पन्नसकलगणधरेभ्यो नमो नमः।

जयमाला

(दोहा)

तीर्थकरों की देशना, जो सुनकर दें ज्ञान।
गणधर गुरु निर्ग्रंथ का, हम करते गुणगान॥

(ज्ञानोदय)

जय हो! जय हो! जिनशासन की, जय हो! तीर्थंकर प्रभु की।
जय हो! जय हो! श्रमण धर्म की, जय हो! मुनि गणधर गुरु की॥
गुरु शिष्य की परंपरा का, अद्भुत यह सम्मेलन है।
जो जयवंत रखें जिनशासन, झलकाता निज चेतन है॥1॥
तीर्थंकर अरिहंत बने ज्यों, समवसरण में शोभित हों।
भरे खचाखच भव्यजनों से, तीन लोक में पूजित हों॥
कोठों के सब जीव चाहते, जल्दी सुन लें दिव्य ध्वनि।
पर जब तक गणधर गुरु ना हो, खिर ना सकती दिव्यध्वनि॥2॥
ज्यों ही दीक्षित हों गणधर त्यों, दिव्यध्वनि खिरने लगती।
नभ भू में ओंकार ध्वनि की, दिव्यनाद होने लगती॥
सात तत्त्व षट् द्रव्य आदि के, प्रभु सम्यक् उद्गार कहें।
द्वादशांग जिन गंगा माँ के, गणधर गुरु विस्तार करें॥3॥
गणधर ज्ञानी गंधकुटी की, दूजी कटनी पर शोभें।
जिनशासन का राज बताकर, हम भक्तों के मन मोहें॥
प्रभु के तत्त्व भक्त को सीधे, ग्राह्य कभी ना हो सकते।
नग्न दिगंबर गणधर गुरु बिन, मन का मैल न धो सकते॥4॥
अतः कहें जिसके जीवन में, यदि निर्ग्रंथ गुरु ना हो।

उन्हें दिगंबर जैन न समझो, उनके जीवन शुरु ना हों॥
सो 'सुव्रत' की यही प्रार्थना, हर पल गुरु का सुमरण हो।
गुरु विद्या को रहें समर्पित, गुरु चरणों में सु-मरण हो॥5॥

(सोरठा)

गणधर गुरु के नाम, चौदह सौ बावन भजें।
करके नमोऽस्तु ध्यान, चेतन के आंगन सजें॥

ओं ह्रीं श्री चतुर्विंशतितीर्थंकरसम्बन्धि वृषभसेनादि-प्रभासपर्यंत द्विपंचाशदाधिक-शतचतुर्दश-अष्टचत्वारिंशत्- सहस्राधिक अष्टाविंशतिलक्ष मुनिवरेभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्यं...।

(दोहा)

ऋद्धिधारी मुनिवर करें, विश्वशांति कल्याण।
प्रासुक जल की धार दे, मैं पूजत भगवान्॥

(शांतये शांतिधारा)

कल्पवृक्ष के पुष्प सम, पुष्पांजलिं पद लाय।
भव दुःखों को मेंट दो, ऋद्धिधारी ऋषिराय॥

(पुष्पांजलिं...)

* आलोचकों से कभी मत डरो, आगे बढ़ते चलो, कुछ ऐसा कार्य करो जिससे दुनिया तुम्हें तुम्हारें कार्यों से जाने।
* वे सारे सद्गुण जो इंसान को आम पुरुषों की भीड़ से निकालकर महापुरुषों का दर्जा दिलाते है वे संस्कार का अंग बनते है।
* सबसे पावरफुल ब्रांड अपने अंदर का आत्म विश्वास है।
* गरीबों को दान दो और कीर्ति कमाओ, मनुष्य के लिए इससे बढ़कर लाभ और किसी में नहीं हैं।
* प्रशंसा करने वालों के मुख पद सदा उन लोगों का नाम रहता है, जो गरीबों को दान देते हैं।
* जगत् में सब वस्तुएँ नश्वर हैं, परन्तु मनुष्य की अतुल कीर्ति ही नश्वर नहीं हैं।

सामायिक का महत्त्व

❈ यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन लाख मुद्राओं का दान करे और दूसरा व्यक्ति मात्र दो घड़ी की शुद्ध सामायिक करता है तो वह स्वर्ण मुद्राओं का दान करने वाला व्यक्ति सामायिक करने वाले की समानता नहीं कर सकता।

❈ आर्त और रौद्रध्यान को त्याग कर संपूर्ण पाप क्रियाओं से निवृत्त होना और एक मुहूर्त पर्यन्त मनोवृत्ति को समभाव में स्थिर रखने की अपूर्व क्रिया का नाम सामायिक है।

❈ सामायिक करने से आत्मा में रहे दुर्गुण नष्ट होकर, सद्गुण प्राप्त होते हैं और परम शांति का अनुभव होता है।

❈ सामायिक से आत्म गुणों का विकास होता है, क्योंकि उसमें अशुभ तथा अशुद्ध क्रियाओं के वर्जन और शुभ शुद्ध क्रियाओं के सेवन का अभ्यास किया जाता है।

❈ सामायिक आध्यात्मिक व्यायामशाला के समान है, जिसमें आत्मा भाव-व्यायाम करके, अपने सद्गुणों को पुष्ट करता है।

❈ सामायिक में पाँच पापों का सामायिक काल पर्यन्त त्याग का संकल्प होने से सामायिकी श्रावक को भी ऐसे मुनि के समान कहा गया है, जिसको किसी ने ध्यानावस्था में वस्त्र ओढ़ा दिए हों।

❈ गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा- हे भगवन्! एक मुहूर्त की शुद्ध सामायिक का क्या फल है? तब भगवान् ने दिव्यध्वनि में कहा- एक शुद्ध सामायिक से जीव 92 करोड़, 59 लाख, 25 हजार, 925 पल्योपम से अधिक नरक के योग्य कर्मों का क्षय कर देता है।

(साभार : आत्म आराधना).

सामायिक विधि

हे भगवन्! पूर्व दिशा में स्थित सभी अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय, सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र को मेरा मन-वचन-काय से बारम्बार नमस्कार हो।

नौ बार णमोकार

हे भगवन्! दक्षिण दिशा में स्थित सभी अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय, सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र को मेरा मन-वचन-काय से बारम्बार नमस्कार हो।

नौ बार णमोकार

हे भगवन्! पश्चिम दिशा में स्थित सभी अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय, सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र को मेरा मन-वचन-काय से बारम्बार नमस्कार हो।

नौ बार णमोकार

हे भगवन्! उत्तर दिशा में स्थित सभी अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय, सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र को मेरा मन-वचन-काय से बारम्बार नमस्कार हो।

नौ बार णमोकार

हे भगवन्! जब तक मैं सामायिक अवस्था में रहूँगा तब तक शरीर पर जितना परिग्रह है, उसे छोड़कर सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करता हूँ।

सामायिक विधि

(पहले चारों दिशाओं में दिग्वंदन)

1. पूर्व दिशा एवं आग्नेय-विदिशा में जहाँ-जहाँ अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु परमेष्ठी हैं। ऋद्धि संपन्न मुनिराज हैं, केवली-श्रुतकेवली हैं, कृत्रिम-अकृत्रिम जिन चैत्य-चैत्यालय हैं, उन सभी के लिए मेरा मन से, वचन से, काय से नमस्कार हो...3 तीन बार बोल कर फिर नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें। (पूर्व दिशा में बैठकर नमोस्तु करें।)
2. दक्षिण दिशा एवं नैऋत्य-विदिशा में जहाँ-जहाँ....... (शेष पूर्व दिशा के अनुसार बोलें) (दक्षिण दिशा में बैठ कर नमोस्तु नहीं करना)
3. पश्चिम दिशा एवं वायव्य-विदिशा में जहाँ-जहाँ....... (शेष पूर्व दिशा के अनुसार बोलें) (यहाँ भी बैठ कर नमोस्तु नहीं करना)
4. उत्तर दिशा एवं ईशान-विदिशा में जहाँ-जहाँ... (शेष पूर्व दिशा अनुसार बोलें)(बैठ कर नमोस्तु करें।)

   नोट : पूर्व दिशा और उत्तर दिशा में ही बैठ कर नमोस्तु करते हैं क्योंकि

बारह आवर्त (यानि 3-3 बार चारों दिशाओं में दोनों हाथों को घड़ी के काँटों की तरह घुमाना आवर्त है), चारों दिशाओं में होते हैं। चार शिरोनति (अर्थात् आवर्त के बाद सिर झुका के नमस्कार करना) एवं दो निषद्या (अर्थात् पूर्व-उत्तर दिशा में कायोत्सर्ग के बाद बैठ कर नमस्कार करना)! सामायिक की विधि श्रावकाचार में बताई है वहाँ से जान सकते हैं।

❖ दिग्वंदन क्यों करते हैं? यह दिग्वंदन चारों दिशाओं में नमस्कार पूर्वक क्षेत्र की सीमा में करना होता है। सामायिक जब तक करते हैं तब तक समताभाव, प्राणी मात्र से क्षमा, सभी अपराधों की क्षमा तथा सभी प्रकार के पापों का त्याग, चारों कषायों का त्याग और शरीर के प्रति मोह ममत्व का भी त्याग करता हूँ।

❖ सामायिक समता का नाम है। एकाग्रचित्त होकर आत्मा का ध्यान, निर्विकार होना, पंचपरमेष्ठी का स्मरण, मंत्रजाप, क्षेत्रों तीर्थों की वंदना, स्तुति पाठ आदि करके अपने अंतस में आनंद की अनुभूति करना ही सामायिक का उद्देश्य है।

❖ **विशेष** : सामायिक के पहले प्रतिक्रमण करें, दिग्वंदन करके भी प्रतिक्रमण एवं सामायिक साथ-साथ कर सकते हैं। फिर समयानुसार अपनी व्यवस्था बना लें। यहाँ दिग्वंदन के बाद प्रतिक्रमण साथ करने की अपेक्षा लिखा गया है।

❖ **ध्यान रखें** : सामायिक के पहले जैसे दिग्वंदन चारों दिशाओं में किया है। वैसे ही सामायिक के बाद भी दिग्वंदन करना है। बिना दिग्वंदन किये स्थान न छोड़ें। क्षेत्र/सीमा की मर्यादा का पूरा ध्यान रखें। बीच-बीच में भी मन-वचन-काय को चंचल न करें। बैठने से पहले ही सभी पुस्तक आदि आवश्यक सामग्री अपने पास रख लें।

❖ सामायिक चटाई या लकड़ी के पाटे पर बैठकर ही करें। सामायिक के समय मुख मंदिर में जिन प्रतिमा-भगवान के सामने करें। अन्य स्थान पर पूर्व दिशा या उत्तर दिशा में ही करें। अपने शरीर को, वस्त्रों को व्यवस्थित करके ही बैठें। जिस स्थान पर शांति हो, आवागमन-शोरगुल न हो, मच्छर आदि का प्रकोप न हो। सभी का ध्यान रखें तभी सामायिक में ध्यान-स्थिरता का आनंद आएगा।

भावना द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ) -1

आचार्य अमित गति स्वामी विरचित

(उपजाति छंद)

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थ्य भावं विपरीत वृत्तौ,सदा ममात्मा विदधातु देव॥ 1॥
शरीरतः कर्त्तुमनन्त-शक्तिं, विभिन्न मात्मान मपास्त-दोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्ग-यष्टिं,तव प्रसादेन ममाऽस्तु शक्तिः॥2॥
दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे, योगे वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेष-ममत्वबुद्धेः समं मनोमेऽस्तु सदापि नाथ !॥ 3॥
मुनीश!लीनाविव कीलिताविव, स्थिरौ[1] निखाताविव बिम्बिताविव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमो धुनानौ हृदि दीपकाविव॥4॥
एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः, प्रमादतः संचरता[2] इतस्ततः।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडितास्, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा॥ 5॥
विमुक्तिमार्ग-प्रतिकूलवर्तिना, मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्र शुद्धे र्यदकारि लोपनं, तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो!॥ 6॥
विनिन्दनालोचन-गर्हणैरहं, मनोवचःकायकषाय-निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं, भिषग्विषं मन्त्र गुणैरिवाखिलम्॥ 7॥
अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः।
व्यधा मनाचार मपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये॥ 8॥
क्षतिं मनः शुद्धि-विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमं शील-व्रते[3]र्विलङ्घनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदन्त्य नाचारमिहाति सक्तताम्॥ 9॥
यदर्थ मात्रा-पद वाक्य हीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवल बोध लब्धिम्॥ 10॥
बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः, स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।
चिन्तामणिं चिन्तित वस्तुदाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि!॥ 11॥

पाठान्तर - 1. निषाता 2. इतस्ततः 3. विधे

यः स्मर्यते सर्व मुनीन्द्र वृन्दै, र्यः स्तूयते सर्व नरामरेन्द्रैः ।
यो गीयते वेद पुराण शास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 12॥
यो दर्शन ज्ञान सुखस्वभावः, समस्त संसार-विकारबाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसञ्ज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 13॥
निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदन्त रालम्।
योऽन्तर्गतो योगि निरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 14॥
विमुक्ति मार्ग प्रतिपादको यो, यो जन्म मृत्युव्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलङ्क : स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 15॥
क्रोडी कृताशेष-शरीरिवर्गा, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रियो ज्ञान मयोऽनपायः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 16॥
यो व्यापको विश्व जनीन वृत्तेः, सिद्धो विबुद्धो धुत कर्म बन्धः।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम्॥ 17॥
न स्पृश्यते कर्म कलङ्क दोष[1] र्यो ध्वान्त सङ्घैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्य मनेक मेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 18॥
विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोध मय प्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 19॥
विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्त मनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 20॥
येन क्षता मन्मथ मानमूर्च्छा, विषाद निद्रा भय-शोक-चिन्ताः।
क्षतो[2]ऽनलेनेव तरुप्रपञ्चस् तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥ 21॥
न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतो नो फलको विनिर्मितः।
यतो निरस्ताक्ष कषाय-विद्विषः, सुधीभि रात्मैव सुनिर्मलो मतः॥ 22॥
न संस्तरो भद्र! समाधि साधनं, न लोकपूजा न च सङ्घमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्म रतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनाम्॥ 23॥

पाठान्तरः 1. दोषैः 2. क्षयो

न सन्ति बाह्या मम केचनार्था भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं, स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र! मुक्त्यै॥ 24॥
आत्मान मात्मन्यव लोक मानस् त्वं दर्शनज्ञान मयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम्॥ 25॥
एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा, विनिर्मलः साधि गमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः॥ 26॥
यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं, तस्यास्ति किं पुत्र-कलत्र-मित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये॥ 27॥
संयोगतो दुःख मनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृति मात्मनीनाम्॥ 28॥
सर्वं निराकृत्य विकल्प-जालं, संसार-कान्तार निपातहेतुम्।
विविक्त मात्मान मवेक्ष-माणो, निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे॥ 29॥
स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥ 30॥
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन।
विचारयन्नेव-मनन्य मानसः, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्॥ 31॥
यैः परमात्माऽमित गतिवन्द्यः, सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते॥ 32॥

इति द्वात्रिंशतावृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगत-चेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम्॥

॥ इति भावना द्वात्रिंशतिका॥

खाओ पीयो भी
थाली में छेद करो
कहाँ जाओगे ?

सामायिक पाठ (लघु)-2

मुनि चर्या, श्रावक चर्या में, यह आवश्यक है।
ममता तजना, समता भजना, ही सामायिक है॥
चलो फिरो मत, हिलो डुलो मत, बोल नहीं बोलो।
कुछ ना सोचो, कुछ ना चाहो, बस निश्चल होलो॥
राग द्वेष अरु मोह करो मत, विधि आवश्यक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥1॥
आने वाली अंतिम घड़ियाँ, कैसे सुधरेंगी?
जीवन की दुर्लभतम घड़ियाँ, यदि ये बिगड़ेगी॥
अरे सम्हलना, आज सम्हलना, अति आवश्यक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥2॥
क्षमा भाव से क्रोध जीत लो, मान विनय धरके।
ऋजुता से माया को जीतो, लोभ तोष करके॥
विषय विजेता, कषाय जेता, ही इस लायक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥3॥
आवश्यक में आवश्यक हो, आवश्यकता है।
आवश्यक करने वालों की, आवश्यकता है॥
आवश्यक में सबसे उत्तम, यह आवश्यक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥4॥
समता बिन उपवास वृथा है, औ वनवास वृथा।
मौन-ध्यान, अध्ययन अध्यापन, जानो व्यर्थ प्रथा॥
समता धन ही संतजनों को, शिवसुखदायक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥5॥
अब तक जितने सिद्ध हुए हैं, सबने स्वीकारा।
सिद्ध हो रहे, आगे होंगे, सामायिक द्वारा॥
आत्म सिद्धि पाने वालों को, सिद्धि प्रदायक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥6॥

कुछ भी टूटे, कुछ भी फूटे, या सब जग रूठे।
काया छूटे माया छूटे, या सब जग छूटे॥
समता ताला कभी न टूटे, परमावश्यक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥7॥
राजाओं ने राज तजा है, जिसके पाने को।
सम्राटों ने ताज तजा है, जिसके पाने को॥
वह दुर्लभ सामायिक करलो, जो आवश्यक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥8॥
जन्म मरण में लाभ हानि में, हर पल समता हो।
शत्रु-मित्र में, काँच कनक में, समता-समता हो॥
समता लाओ सब सुख पाओ, यह सुखदायक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥9॥
सर्व गुणों का यही खजाना, निज में पाना है।
इसको लेने कहीं न जाना, निज में आना है॥
आत्मशांति की यही विधि है, यही विधायक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥10॥
सामायिक जप सामायिक तप, सामायिक व्रत है।
ध्यान दुग्ध धारा से निकला, सामायिक घृत है॥
आत्म तत्त्व के अन्वेषी को, नित आवश्यक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥11॥
मैं ही कर्त्ता कर्म करण हूँ, मैं ही किरिया हूँ।
मैं ही चेतन, मैं ही चिंतन, मैं ही चर्या हूँ॥
मेरी सामायिक ही मुझको, हित सम्पादक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥12॥
यही ज्ञान है, यही ध्यान है, यही साधना है।
यही भाव है, यही भासना, यही भावना है॥
इस पथ पर चलने वाला ही, शिवपथनायक है।
ममता तजना समता भजना, ही सामायिक है॥13॥

सामायिक पाठ-3

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो ॥1॥
यह अनन्त बल शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको ॥2॥
सुख दुख बैरी बन्धु वर्ग में, काँच कनक में समता हो।
वन उपवन प्रासाद कुटी में नहीं खेद, नहीं ममता हो ॥3॥
जिस सुन्दर तम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ॥4॥
एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य विभो ॥5॥
मोक्षमार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन जो कुछ किया कषायों से।
विपथ गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से ॥6॥
चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु मैं भी आदि उपान्त।
अपनी निन्दा आलोचन से करता हूँ पापों को शान्त ॥7॥
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत प्रवर्तन करके शीलाचरण विलीन किया ॥8॥
कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी पीकर विषयों की मदिरा मुझमें पागलपन आया ॥9॥
मैंने छली और मायावी हो, असत्य आचरण किया।
परनिन्दा गाली चुगली जो मुँह पर आया वमन किया ॥10॥
निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे ॥11॥
मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे ॥12॥
दर्शन ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार हो वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहे ॥13॥
जो भव दुख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।

योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान ॥14॥
मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शक है, जनम मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्यदर्शी वह देव रहे मम हृदय समीप ॥15॥
निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे न द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान स्वभावी, परम देव मम हृदय रहे ॥16॥
देख रहा जो निखिल विश्व को कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह देव करें मम हृदय पवित्र ॥17॥
कर्म कलंक अछूत न जिसको कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो परम शरण मुझको वह आप्त ॥18॥
जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्वपर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त ॥19॥
जिसके ज्ञान रूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्त से रहित शान्त शिव, परम शरण मुझको वह आप्त ॥20॥
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय विषाद चिन्ता नहीं जिनको,परम शरण मुझको वह देव ॥21॥
तृण, चौकी, शिल, शैलशिखर नहीं, आत्म समाधि के आसन।
संस्तर, पूजा, संघ सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन ॥22॥
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विषय वासना, उपादेय निर्मल आतम ॥23॥
बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें ॥24॥
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृग तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ ॥25॥
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है, सब पर है, कर्माधीन विनाशी है ॥26॥
तन से जिसका ऐक्य नहीं हो, सुत, तिय, मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहें कैसे ॥27॥
महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ, जड़-देह संयोग।

मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग ॥28 ॥
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो ॥29 ॥
स्वयं किये जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप, फल देय अन्य तो स्वयं किये निष्फल होते ॥30 ॥
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज, स्थिर हो, छोड़ प्रमादी बुद्धि ॥31 ॥
निर्मल, सत्य, शिवं सुन्दर है, अमित गति वह देव महान।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण ॥32 ॥
इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमातम को ध्याते हैं।
साँची सामायिक को पाकर, भवोदधि तर जाते हैं ॥

भावना बत्तीसी
(सामायिक पाठ) -4

रचयिता : क्षु. श्री 105 ध्यानसागर जी महाराज

मेरा आतम सब जीवों पर मैत्री भाव करे।
गुणगण मण्डित भव्य जनों पर प्रमुदित भाव धरे॥
दीन दुखी जीवों पर स्वामी! करुणाभाव करे।
और विरोधी के ऊपर नित समता भाव धरे॥1 ॥
तुम प्रसाद से हो मुझमें वह शक्ति नाथ! जिससे।
अपने शुद्ध अतुल बलशाली चेतन को तन से॥
पृथक् कर सकूँ पूर्णतया मैं ज्यों योद्धा रण में।
खींचे निज तलवार म्यान से रिपु सन्मुख क्षण में ॥2 ॥
छोड़ा है सबमें अपनापन मैंने मन मेरा।
बना रहे नित सुख में दुःख में समता का डेरा॥
शत्रु - मित्र में मिलन-विरह में, भवन और वन में।
चेतन को जाना न पड़े फिर नित नूतन तन में3 ॥

अन्धकार नाशक दीपक सम अडिग चरण तेरे।
अहो! विराजे रहें हमेशा उर में ही मेरे ॥
हों मुनीश! वे घुले हुए से या कीलित जैसे ।
अथवा खुदे हुए से हों या प्रतिबिम्बित जैसे ॥4 ॥
हो प्रमाद वश जहाँ-तहाँ यदि मैंने गमन किया।
एकेन्द्रिय-आदिक जीवों को घायल बना दिया॥
पृथक् किया या भिड़ा दिया हो अथवा दबा दिया।
मिथ्या हो दुष्कृत वह मेरा प्रभुपद शीश किया ॥5 ॥
चल विरुद्ध शिव-पथ के मैंने जो दुर्मति होके।
होके वश में दुष्ट इन्द्रियों और कषायों के॥
खण्डित की जो चरित-शुद्धि वह दुष्कृत निष्फल हो।
मेरा मन भी दुर्भावों को तजकर निर्मल हो ॥6 ॥
मन्त्र शक्ति से वैद्य उतारे ज्यों अहि-विष सारा।
त्यों अपनी निन्दा-गर्हा वा आलोचन द्वारा॥
मन वच तन से या कषाय से संचित अघ भारी।
भव दुख कारण नष्ट करूँ मैं होकर अविकारी ॥7 ॥
धर्म क्रिया में मुझे लगा जो कोई अघकारी।
अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतीचार या अनाचार भारी॥
कुमति, प्रमाद निमित्तक उसका प्रतिक्रमण करता।
प्रायश्चित्त बिना पापों को कौन, कहाँ हरता? ॥8 ॥
चित्त शुद्धि की विधि की क्षति को अतिक्रमण कहते।
शीलबाड़ के उल्लंघन को व्यतिक्रमण कहते॥
त्यक्त विषय के सेवन को प्रभु! अतीचार कहते।
विषयासक्तपने को जग में अनाचार कहते ॥9 ॥
शास्त्र पठन में मेरे द्वारा यदि जो कहीं-कहीं।
प्रमाद से कुछ अर्थ, वाक्य, पद, मात्रा छूट गयी॥
सरस्वती मेरी उस त्रुटि को कृपया क्षमा करें।
और मुझे कैवल्यधाम में माँ अविलम्ब धरे ॥10 ॥

वांछित फलदात्री चिन्तामणि सदृश मात! तेरा।
वन्दन करने वाले मुझको मिले पता मेरा॥
बोधि,समाधि, विशुद्ध भावना, आत्मसिद्धि मुझको।
मिले और मैं पा जाऊँ माँ! मोक्ष महा सुख को ॥11॥
सब मुनिराजों के समूह भी जिनका ध्यान करें।
सुरों-नरों के सारे स्वामी जिन गुणगान करें॥
वेद, पुराण, शास्त्र भी जिनके गीतों के डेरे।
वे देवों के देव विराजें उर में ही मेरे॥12॥
जो अनन्त-दृग-ज्ञान स्वरूपी सुख-स्वभाव वाले।
भव के सभी विकारों से भी जो रहे निराले॥
जो समाधि के विषयभूत हैं परमातम नामी।
वे देवों के देव विराजें मम उर में स्वामी॥13॥
जो भव दुख का जाल काट कर उत्तम सुख वरते।
अखिल-विश्वके अन्तःस्थल का अवलोकन करते॥
जो निज में लवलीन हुए प्रभु ध्येय योगियों के।
वे देवों के देव विराजे मम उर के होके॥14॥
मोक्षमार्ग के जो प्रतिपादक सब जग उपकारी।
जन्म मरण के संकटादि से रहित निर्विकारी॥
त्रिलोकदर्शी दिव्य शरीरी सब कलंकनाशी।
वे देवों के देव रहे मम उर में अविनाशी ॥15॥
आलिंगित हैं जिनके द्वारा जग के सब प्राणी।
वे रागादिक दोष न जिनके सर्वोत्तम ध्यानी॥
इन्द्रिय-रहित परम-ज्ञानी जो अविचल अविनाशी।
वे देवों के देव रहें मम उर के ही वासी ॥16॥
जग कल्याणी परिणति से जो व्यापक गुण-राशी।
भावी-सिद्ध,विबुद्ध, जिनेश्वर, कर्म-पाश-नाशी॥
जिसने ध्येय बनाया उसके सकल-दोष-हारी।
वे देवों के देव रहें मम उर में अविकारी ॥17॥

कर्म कलंक दोष भी जिनको कभी न छू पाते।
ज्यों रवि के सन्मुख न कभी भी तम समूह आते॥
नित्य निरंजन जो अनेक हैं और एक भी हैं।
उन अरहंतदेव की मैंने सुखद शरण ली है ॥18॥
जगतप्रकाशक जिनके रहते सूर्य प्रभाधारी।
किंचित भी ना शोभा पाता जिनवर अविकारी॥
निज आतम में हैं जो सुस्थित ज्ञान-प्रभाशाली।
उन अरहंतदेव की मैंने सुखद शरण पा ली ॥19॥
जिनका दर्शन पा लेने पर प्रकट झलक आता।
अखिल विश्व से भिन्न आतमा जो शाश्वत ज्ञाता॥
शुद्ध, शान्त, शिवरूप आदि या अन्तविहीन बली।
उन अरहंतदेव की मुझको अनुपम शरण मिली॥20॥
जो मद, मदन, ममत्व, शोक, भय, चिन्ता, दुख, निद्रा।
जीत चुके हैं जिन पौरुष को कहती जिन-मुद्रा॥
ज्यों दावानल तरु-समूह को शीघ्र जला देता।
उन अरहंतदेव की मैं भी सुखद शरण लेता॥21॥
ना पलाल पाषाण न धरती हैं संस्तर कोई।
ना विधिपूर्वक रचित काठ का पाटा भी कोई॥
कारण, इन्द्रिय वा कषाय-रिपु जीते जो ध्यानी।
उसका आतम ही शुचि संस्तर माने सब ज्ञानी॥22॥
ना समाधि का साधन संस्तर न ही लोक-पूजा।
ना मुनि-संघों का सम्मेलन या कोई दूजा॥
इसीलिये हे भद्र! सदा तुम आतमलीन बनो।
तज बाहर की सभी वासना कुछ ना कहो-सुनो॥23॥
पर-पदार्थ कोई ना मेरे, थे, होंगे, ना हैं।
और कभी उनका त्रिकाल में हो पाऊँगा मैं॥
ऐसा निर्णय करके पर के चक्कर को छोड़ो।
स्वस्थ रहो नित भद्र! मुक्ति से तुम नाता जोड़ो॥24॥

तुम अपने में अपना दर्शन करने वाले हो।
दर्शन-ज्ञानमयी शुद्धातम पर से न्यारे हो॥
जहाँ कहीं भी बैठे मुनिवर अविचल मन-धारी।
वहीं समाधि लगे उनकी जो उनको अति-प्यारी॥25॥
नित एकाकी मेरा आतम नित अविनाशी है।
निर्मल दर्शन-ज्ञानस्वरूपी स्व-पर-प्रकाशी है॥
देहादिक या रागादिक जो कर्म-जनित दिखते।
क्षणभंगुर हैं वे सब मेरे कैसे हो सकते ?॥26॥
जहाँ देह से नहीं एकता जो जीवनसाथी।
वहाँ मित्र सुत वनिता कैसे हों मेरे साथी॥
इस काया के ऊपर से यदि चर्म निकल जाये।
रोमछिद्र तब कैसे इसके बीच ठहर पाये॥27॥
भव वन में संयोगों से यह संसारी-प्राणी।
भोग रहा है कष्ट अनेकों कह न सके वाणी॥
अतः त्याज्य है मन वच तन से वह संयोग सदा।
उसको, जिसको इष्ट हितैषी मुक्ति विगत विपदा॥28॥
भव वन में पड़ने के कारण हैं विकल्प सारे।
उनका जाल हटाकर पहुँचो शिवपुर के द्वारे॥
अपने शुद्धातम का दर्शन तुम करते-करते।
लीन रहो परमात्म-तत्त्व में दुःखों को हरते॥29॥
किया गया जो कर्म पूर्व में स्वयं जीव द्वारा।
उसका ही फल मिले शुभाशुभ अन्य नहीं चारा॥
औरों के कारण यदि प्राणी सुख-दुख को पाता।
तो निज कर्म अवश्य स्वयं ही निष्फल हो जाता॥30॥
अपने अर्जित कर्म बिना इस प्राणी को जग में।
कोई अन्य न सुख दुख देता कहीं किसी डग पे॥
ऐसा अडिग विचार बना कर तुम निज को मोड़ो।

अन्य मुझे सुख-दुख देता है ऐसी हठ छोड़ो॥31॥
परमातम सबसे न्यारे हैं, अतिशय अविकारी।
सन्त 'अमितगति' से वन्दित हैं शम दम समधारी॥
जो भी भव्य मनुज प्रभुवर को नित उर में लाते।
वे निश्चित ही उत्तम वैभव मोक्ष महल पाते॥32॥

दोहा

जो ध्याता जगदीश को, ले यह पद बत्तीस।
अचल-चित्त होकर वही, बने अचलपद ईश॥

लघु प्रतिक्रमण

रचयिताः मुनि श्री 108 विराटसागर जी महाराज

हे भगवन्? हे जिनेन्द्र देव? हे अरिहंत प्रभु!

मैं अपने पापों से मुक्त होने के लिए प्रतिक्रमण करता/करती हूँ। हे भगवान मैं सर्व अवगुणों से सम्पन्न हूँ। मैंने मन, वचन, काय की दुष्टता से न जाने कितने अपराध किये हैं। हे भगवान आप तो केवलज्ञानी हैं, मेरे सब पापों को आप जानते हैं, आप से कुछ भी नहीं छिपा है। मैं सभी जीवों से क्षमा चाहता हूँ सभी जीव मुझे क्षमा प्रदान करें। मेरी किसी के साथ शत्रुता नहीं है, यदि मैंने राग, द्वेष आदि परिणामों से पाप किया हो, कर्कश वचन कहें हो, यदि मैंने उठने, बैठने, खाँसने, छींकने, बोलने आदि से जीवों का घात किया हो यदि मैंने त्रसकायिक या स्थावर जीवों की हिंसा की हो, परस्त्री या परपुरुष को बुरी निगाहों से देखा हो। अपने व्रतों नियमों में दोष लगाया हो, अष्टमूलगुणों के पालन में व सप्तव्यसन त्याग में दोष लगाया हो सच्चे देव शास्त्र, गुरु व मुनि, आर्यिका, श्रावक व श्राविका की निन्दा व आलोचना की हो तो हे भगवान मेरे ये सारे कर्म आपके प्रत्यक्ष/परोक्ष में मिथ्या होवे....3 मैं पश्चाताप करता हूँ....3। हे भगवान मेरे सारे कर्मों का क्षय हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, मेरा समाधि मरण हो एवं अन्तिम समय तक सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति में मन लगा रहे ऐसी मेरी भावना है...3।

नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें।

दार्शनिक प्रतिक्रमण

लेखकः मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज

जिनेन्द्र भगवान के चरणों की समीपता को प्राप्त करके पापों पर विजय प्राप्त करने के लिए मन-वचन-काय के योग से प्रतिक्रमण करूँगा।

हे भगवन्! मैं पापी हूँ। मैं बहुत दुष्ट हूँ। मैं महामूर्ख हूँ। मैं महान् आलसी हूँ। मैं कपटी हूँ। मैं धूर्त हूँ। मैं बड़ा लोभी हूँ। मैं सभी दुर्गुणों से भरा हुआ हूँ।

हे भगवन्! अहो! मुझ पापी ने, मुझ कामी ने चित्त की कलुषता से बहुत बुरा कहा है, बुरा चिन्तन किया है और अनेक अनर्थ किये हैं।

घर में, विद्यालय में, कॉलेज में, दुकान में, मित्रों से मिलने में जो पाप किये हैं, उनकी शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण की भावना करता हूँ।

मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा करें। मेरा सभी जीवों में मैत्री-भाव है। मेरा किसी भी प्राणी से वैर-भाव नहीं है।

एकेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, संज्ञी पचेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन जीवों को मारा हो, उन्हें संताप पहुँचाया हो, उनको विराधित किया हो, उनके अंग-उपांगों का घात किया हो अथवा कराया हो अथवा करने वाले की अनुमोदना की हो तो मेरा वह दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

आठ मूलगुणों में और सप्तव्यसन के त्याग में प्रमाद से, अज्ञान से जो मेरे द्वारा अतिचार (दोष) लगे हों, उनकी शुद्धि के लिए तथा तीव्र कषाय के कारण अनाचार (महादोष) किया हो तो उसको दूर करने के लिए मैं उपासना करता हूँ।

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु इन पाँच परमेष्ठी की साक्षी से सम्यक्त्व पूर्वक मूलगुणों की दृढ़ता मुझे हो, मुझे हो, मुझे हो।

इब दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण में समस्त अतिचारों की विशुद्धि के लिए पूर्व आचार्यों के चले आये क्रमानुसार आलोचना पूर्वक सिद्धभक्ति का मैं कायोत्सर्ग करता हूँ।

लोक के समस्त अरहंत परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो। लोक के सभी

सिद्धों को मेरा नमस्कार हो। लोक में विद्यमान समस्त आचार्यों को मेरा नमस्कार हो, लोक में विद्यमान सभी उपाध्यायों को मेरा नमस्कार हो, लोक में विद्यमान सभी साधु परमेष्ठियों को मेरा नमस्कार हो।

इस संसार में चार मंगल हैं- अरहंत देव मंगल हैं, सिद्ध भगवान् मंगल है, साधुगण अर्थात् आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी मंगल हैं, केवली भगवान् के द्वारा कहा हुआ धर्म मंगल है। लोक में चार ही उत्तम हैं। अरहन्त देव, सिद्ध प्रभु, साधुगण और केवली भगवान् के द्वारा कहा हुआ धर्म। लोक में चार ही शरणभूत हैं उनकी शरण को मैं प्राप्त होता हूँ। मैं अरहंतों की शरण को प्राप्त होता हूँ। मैं सिद्धों की शरण को प्राप्त होता हूँ, मैं साधुगण की शरण को प्राप्त होता हूँ, मैं केवली भगवान् के द्वारा कहे हुए धर्म की शरण को प्राप्त होता हूँ।

जम्बूद्वीप, धातकीखुण्ड और अर्ध पुष्करद्वीप इन ढाई द्वीपों में तथा लवण और कालोदधि इन दो समुद्रों में, पाँच भरत, पाँच ऐरावत व पाँच विदेह इन 15 कर्मभूमियों में होने वाले जितने भी अरहंत केवली, तीर्थंकर केवली, अनुबद्ध केवली, अंतकृत केवली, मूक केवली, समुद्घात गत केवली और उपसर्ग केवली, इस प्रकार सात प्रकार के केवली भगवान् व ज्ञान, दर्शन, चारित्र सम्बन्धी कृतिकर्म मैं सदा करता हूँ। मैं मन से, वचन से, काय से सभी सावद्य (हिंसा) योगों का त्याग करता हूँ। हे भगवन्! मेरे मूलगुणों में लगे अतिचारों का व अनाचारों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। जितने काल मैं उपासना करता हूँ उतने काल पर्यन्त पाप कर्मों व दुश्चेष्टाओं का त्याग करता हूँ।

(इस प्रकार दण्डक पढ़कर 9 बार णमोकार मंत्र पढ़ें।)

मैं प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ जिन की वन्दना करता हूँ। मैं अजितनाथ भगवान् की, संभवनाथ भगवान् की, अभिनंदन भगवान् की, सुमतिनाथ भगवान की, पद्मप्रभ भगवान् की, सुपार्श्वनाथ भगवान् की, चन्द्रप्रभ भगवान् की, सुविधिनाथ भगवान् की, शीतलनाथ भगवान् की, श्रेयांसनाथ भगवान् की, वासुपूज्य भगवान् की, विमलनाथ भगवान् की, अनंतनाथ भगवान् की, धर्मप्रवर्तक धर्मनाथ जिनेन्द्र की, तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव इन तीन पदों के धारी शांतिनाथ भगवान् की मोक्ष वधु में रमण करने वाले कुंथुनाथ भगवान् की और

अरनाथ भगवान् की कर्मों को चूर्ण करने वाले मल्लिनाथ भगवान् की, मुनिसुव्रतनाथ भगवान् की, नमिनाथ जिनेश की, यादव कुल के तिलक नेमिनाथ जिनेन्द्र की, पार्श्वप्रभु की और श्रेष्ठ वीर भगवान् की मैं वंदना करता हूँ। ये सभी तीर्थंकर हैं। मनुष्य क्षेत्र अर्थात् ढाईद्वीप में विहार करने वाले सीमंधर आदि जिन-भगवंत हैं जो कि हजारों सूर्य और चन्द्रमाओं से अधिक प्रकाशमान हैं। ये सभी भगवान् मुझे समाधि देवें और बोधि अर्थात् रत्नत्रय का श्रेष्ठ लाभ देवें।

जिनके ज्ञान में तीन लोक के समस्त पदार्थ गोखुर के समान झलकते हैं, जिनके चरणों में शत्रु भी झुक जाते हैं, ऐसे बाह्य और अन्तरंग लक्ष्मी से सहित वर्धमान जिन के लिए नमस्कार हो।

तप सिद्ध, नय सिद्ध, संयम सिद्ध, चरित्र सिद्ध, ज्ञान और दर्शन से सिद्ध पद को प्राप्त हुए सभी सिद्धों को मैं सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

हे भगवान्! मैंने सिद्ध भक्ति का कायोत्सर्ग किया, उसकी आलोचना करता हूँ। सम्यग्ज्ञान , सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र से युक्त, आठ प्रकार के कर्मों से रहित, आठ गुणों से सम्पन्न, ऊर्ध्व लोक के मस्तक पर विराजमान, तप सिद्ध, नय सिद्ध, संयम सिद्ध, चारित्र सिद्ध, भूत-भविष्यत-वर्तमान काल त्रय सिद्ध, सभी सिद्धों की मैं सदा अर्चना, पूजा, वंदना और नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि की प्राप्ति हो, सुगति में गमन हो और जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

हे भगवन्! मैं दैवसिक (रात्रिक) दोषों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। उसमें पाँच अणुव्रत, जल छानना, रात्रिभोजन त्याग और जिनदर्शन ये पाक्षिक श्रावक के आठ मूलगुण जानो।

मधु, मांस, मदिरा, जुआ, परस्त्रीरमण, वेश्यागमन और शिकार ये सात व्यसन जीवनपर्यन्त के लिए छोड़ देना चाहिए।

अब सभी दोषों की विशुद्धि के लिए दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण की क्रिया में किये हुए दोषों को दूर करने के लिए पूर्व आचार्यों के क्रम से समस्त कर्मों के क्षय के लिए भावपूजा, वन्दना, स्तुति सहित मैं प्रतिक्रमण भक्ति का कायोत्सर्ग करता हूँ।

(यहाँ पर नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें।)

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं॥

जिनेन्द्रदेव को नमस्कार हो! नमस्कार हो!! नमस्कार हो!!! हे परम ईश्वर! हे वीतराग! हे जिन! हे देवाधिदेव! हे सर्वज्ञ! हे नीराग! हे निर्दोष! हे तीर्थंकर! हे पंच कल्याण की पूजा को प्राप्त! हे गुणरत्न! हे शीलसागर! हे वर्धमान! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो!

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुगण, वृषभ आदि गणधरपरमेष्ठी, गौतम, सुधर्म, जम्बूस्वामी ये तीनों अनुबद्ध केवली, विष्णु, नंदि, अपराजित, गोवर्धन, भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली, अंग पूर्वों के धारक, परम्परा आचार्य, जिनेन्द्र भगवान् का तीर्थ, जिनेन्द्र भगवान् का प्रवचन, सभी ऋद्धियों से सम्पन्न महर्षि ये सब मेरे लिए मंगल दायक हों।

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक के सिद्धायतनों को नमस्कार हो। अष्टापद पर्वत, सम्मेदशिखर, ऊर्जयन्तपर्वत, चंपापुरी, पावापुरी, सिद्धवरकूट, बड़वानी, ऊन, मुक्तागिरि, स्वर्णगिरि, कुंडलपुर, तारंगा, मथुरा, शंत्रुजय, कुंथलगिरि, द्रोणगिरि, कोटिशिला इत्यादि स्थानों में जो कोई सिद्धों की निषिद्धिका का स्थान हैं, ईषत् प्राग्भार मोक्षशिला पर स्थित सिद्धों की जो सिद्धभूमि हैं, कृत्रिम-अकृत्रिम जिनायतन हैं, चैत्यवृक्ष और चैत्य हैं, ये सब मेरे लिए पवित्र और मंगल स्वरूप हैं। इनको मैं नमस्कार करके मस्तक पर अंजुली रखकर मन, वचन, काय की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ।

हे भगवन्! मैं प्रथम स्थूल अहिंसा मूलगुण व्रत में लगे दोषों का प्रतिक्रमण करता हूँ। घर की साफ-सफाई में, मूत्रालय और शौचालय की सफाई में, दुकान की सफाई में, वाहन से गमन करने में, हिंसक वस्तु और दवा के व्यापार के निमित्तों में, तीक्ष्ण क्षार अर्थात् सोड़ा, डिटरजेन्ट आदि से वस्त्र धोने में, धातु, पात्र आदि धोने में, स्नान करने में, वस्तु को फेंकने में, दरवाजों के खोलने बन्द करने में, पृथ्वी पर भारी वस्तु घसीटने में, ईधन जलाने में, विरोधी हिंसा में, आरंभी हिंसा में, उद्योगी हिंसा में, गर्भस्थ का घात होने में, आत्महत्या के परिणाम में, पर-घात के परिणाम में, ज्ञान से अज्ञान से, दिवस में (रात्रि में) मेरे द्वारा मन, वचन, काय से कृत, कारित, अनुमोदन से जो पाप कर्म किया

गया, वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या हो।

हे भगवन्! स्थूल असत्य विरति नामक दूसरे मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मिथ्या उपदेश देने में, अनादर के वचन बोलने में, दूसरों को ठगने वाले वचनों में, एकान्त का रहस्य प्रकट करने में, निंदा करने में, चुगली करने में, अनर्थ बोलने में, वैर बढ़ाने वाले वचनों में, फूट डालने वाले वचन बोलने में, विकथा करने में, आत्म-प्रशंसा करने में, दूसरों को परिताप पहुँचाने वाले वचनों में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप-कर्म अर्जित किया गया, वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या होवे।

हे भगवन्! स्थूल अचौर्य अणुव्रत नामक तीसरे मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ- किसी की पड़ी हुई वस्तु को ग्रहण करने में, चोरी करके लायी गयी वस्तु के ग्रहण में, बिजली की चोरी में, जमीन और जल की चोरी में, टैक्स नहीं देने में, राजकीय (शासकीय) नियमों का उल्लंघन करने में, सदृश वस्तु को मिलाकर देने में, ज्यादा खरीदने और कम करके बेचने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे भगवन्! अब्रह्म से विरति नामक चौथे स्थूल मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। कामवर्धक रसों के सेवन में, कामवर्द्धक तेल मर्दन में, कामवर्धक गीत सुनन में, कामवर्धक सुगन्धित इत्र आदि लगाने में, कामवर्धक चित्रों और रूप को बार-बार देखने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कृत्य मिथ्या हो।

हे भगवन्! अपरिग्रह नाम पाँचवे स्थूल मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। अपार अपरिग्रह की सीमा ना बनाने में, जो सीमा बनायी उसका अतिक्रमण करने में, अति वाहन संग्रह की लालसा में, अत्यधिक वस्तुएँ, मकान-जयदाद आदि, वस्त्र के संग्रह में, दूसरे के परिग्रह को देखकर विस्मय करने में, भीतर ही भीतर मन में परिग्रह के प्रति अति लोलुपता में, जो परिग्रह कहीं रखा है उसका परिमार्जन (देख-भाल) न करने में, जो परिग्रह है उसका दुरुपयोग करने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या होवे।

हे भगवन्! जलगालन मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता

हूँ। फटे-पुराने वस्त्र से जल छानने में, जीवानी को अन्यत्र डालने में, ऊपर से जल गिराने में बहुत जल को उछालने में, शीतल पेय (पेप्सी, लिम्का, मिनरल वाटर, फ्रूटी आदि कोल्डड्रिंक) पीने में, अनछने जल को पीने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या होवे।

हे भगवन्! रात्रिभोजन त्याग मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। दिन अस्त होने पर भोजन करने में, दिन उदय होने से पहले भोजन करने में, रात्रि में बनाया भोजन दिन में करने में, स्वप्न में भोजन करने में अथवा भोग करने में, स्वयं रात्रि में भोजन करने में, अन्य किसी को रात्रि में भोजन कराने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह दुष्कृत्य मेरा मिथ्या होवे।

हे भगवन्! जिनदर्शन मूलगुण में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मंदिर में कलह करने में, मंदिर की आसादना में, चैत्यबिम्ब की अवमानना में, दान दिये द्रव्य का ग्रहण करने में, राग द्वेष से युक्त देवताओं की आराधना में, जिन देशना के समय आपस में बातचीत करने में, पुत्र, घर, व्यापार, विवाह आदि के लोभ से आराधना करने में, निर्ग्रन्थ लिंग का अनादर करने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मधु व्यसन का परित्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। शहद वाली औषधि के सेवन में, मधु मक्खी के छत्ते की विराधना में, अति गृद्धता से भोजन करने में, अति मात्रा में भोजन करने में, जीवों से मिले भोजन करने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मांस व्यसन का परित्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। पाँच उदुम्बर फल (बड़, पीपल, पाकर, ऊमर, कठूमर) के सेवन में, अभक्ष्य भक्षण में, अज्ञात फल को खाने में, दुकान से खरीदी मिठाई खाने में, अमर्यादित अन्न और मसालों के सेवन में, अचार-मुरब्बा खाने में, चीन देश के व्यंजन (चाइनीज फूड़, फास्ट फूड़, जंक फूड, पेटिस, सेंडविच, कटलेट, मोमोज, पिज्जा, वर्गर, नूडल्स, मन्चूरियन, पाश्ता, हॉट डॉग, पाव भाजी पैकिग सामग्री) खाने में डबल रोटी, नमकीन, चिप्स, कुरकुरे, चाँदी वर्क, कस्टर्ड

पाउडर, केक, पेस्टी, फ्रूट जैम, टमाटर जैम, केचप, सॉस, दावेली, स्प्रिंग रोल, आइसक्रीम, वटर टिकिया, चीज, पनीर, चॉकलेट आदि बाजार की पैकेट बंद पदार्थों के खाने में द्विदल खाने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मदिरा व्यसन त्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। अमर्यादित जल (बिसलरी) का सेवन करने में, नींद की गोली खाने में, चाय कॉफी पीने में, देशी-विदेशी मदिरा सेवन में, मदिरा व्यापार अनमोदन और स्वयं करने में, महुआ व्यापार में, धूम्रपान में, गुटखा (पान पराग आदि पाउच) चबाने में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे भगवन्! परस्त्री रमण व्यसन के त्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। परस्त्री (पुरुष) के साथ सम्बन्ध की इच्छा में, पर स्त्री (पुरुष) का रूप चिंतन में, पर स्त्री (पुरुष) के साथ रहने में, उसके साथ गमनागमन में, उससे अनंत क्रीड़ा में, कौत्कुच्च में, उसको प्रलोभन देने में, काम-भोग की चिंता में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे भगवन्! वेश्यागमन व्यसन के त्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। वेश्या का घर देखने में, उसकी कथा-उपन्यास पढ़ने, पढ़ाने या सुनने में, सिनेमा गृह, वीडियो, बेवसाइट, एप, ई-मेल, वाट्सऐप, फेसबुक, इस्टाग्राम, कम्पूयटर, लेपटॉप, अखबार, पत्रिका में उसकी चेष्टाएँ देखने में, जिसका कोई स्वामी हो या न हो उसके साथ परिचय की इच्छा में मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे भगवन्! शिकार व्यसन के त्याग में लगे दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। हिंसक, वीडियो गेम, पवजी, फ्री फायर, कम्प्यूटर आदि के माध्यम से, डंडे से, भाला से, बाण से, गुलेल से जीव घात करने में, घात करके उसकी खाल से गृह शोभा बढ़ाने में, ऊन के वस्त्रों के उपयोग में, रेशमी वस्त्रों के उपयोग में, चमड़े की बेल्ट, पर्स आदि के उपयोग में दिवस (रात्रि) में जो पाप किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

हे भगवन्! मैं इस निर्ग्रन्थ लिंग की इच्छा करता हूँ। यह लिंग निर्वाण का मार्ग है, सभी दुःखों का अन्त करने वाला है, समता का निधान है, तीन लोक में श्रेष्ठ है, दानव, देवता और श्रेष्ठ मनुष्यों से पूजित है, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि महापुरुषों से सेवित है, अनुत्तर है, निःशल्य है, अध्यात्म का मूल कारण है, वैराग्य का भार लिए है, आत्मा को सुख देने वाला है, इससे बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं है, मैं इसी की रुचि करता हूँ, इसी का श्रद्धान करता हूँ, इसी की वांछा करता हूँ। इस लिंग के धारण से मेरा जीवन सफल होवे।

पाँच अणुव्रत, जलगालन, रात्रिभुक्ति त्याग और जिनदर्शन पाक्षिक श्रावक के आठ मूलगुण जानो।

मधु, मांस, मदिरा, जुआ, परस्त्री-रमण और शिकार इन सात व्यसनों को जीवनपर्यन्त के लिए छोड़ देवें।

अब सभी दोषों की विशुद्धि के लिए पूर्वाचार्य के अनुक्रम से सकल कर्मों के क्षय के लिए मैं वीर भक्ति करता हूँ।

(यहाँ अठारह बार णमोकार मंत्र पढ़ें।)

इस लोक में वीर भगवान् अपनी कीर्ति से प्रसिद्ध हैं। अपने हित के लिए भव्य जीवो वीर की पूजा करो। वीर भगवान् ने जो मोक्ष का मार्ग बताया है, वह शुद्ध है ऐसे वीर भगवान् के लिए नित्य मेरा नमस्कार हो। वीर भगवान् से ही सभी के लिए हितकारी तीर्थ की प्रवृत्ति हुई है। वीर भगवान् के चरणों में ही समता का एक मात्र सुख है। हे भव्य जनों की आत्मा का हित वीर भगवान् में ही है। हे वीर भगवान्! आपके नमस्कार में प्रवृत्त हुआ मैं धन्य हो गया हूँ।

जो जीव भक्तिपूर्वक वीर भगवान् के चरणों में नमन करते हैं और अपने चित्त में भी उनकी पवित्र स्मृति को धारण करते हैं, वे सभी कार्यों में सफल होते हैं और संसार समुद्र को तैर जाते हैं।

धर्म मंगल कहा गया है। वह धर्म अहिंसा, संयम और तप है। जिसका मन सदा धर्म में रहता है, देवता भी उसको नमस्कार करते हैं।

हे भगवन्! मैं प्रतिक्रमण के अतिचारों की आलोचना करता हूँ। निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण,

वात्सल्य और धर्म प्रभावना इन आठ गुणों में, छह अनायतनों में, तीन मूढ़ताओं में, आठ मदों में लगे सभी दोषों का मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के सभी अतिचारों से, मैं दूर होता हूँ। आहार संज्ञा में, भय संज्ञा में, मैथुन संज्ञा में, परिग्रह संज्ञा में, आर्त्तध्यान में, रौद्रध्यान में, मिथ्या शल्य में, माया शल्य में, निदान शल्य में, क्रोध कषाय में, मान कषाय में, माया कषाय में, लोभ कषाय में, कृष्ण-लेश्या के परिणाम में, नील लेश्या के परिणाम में, कापोत लेश्या के परिणाम में, स्त्री कथा में, भोजन कथा में, राज कथा में, दुश्चिंतन में इस प्रकार दुष्परिणाम की प्रवृत्ति से मेरे द्वारा दिवस (रात्रि) में जो पाप कर्म किया गया, वह मेरा दुष्कृत्य मिथ्या होवे।

अब सभी दोषों की विशुद्धि के लिए मैं चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति करता हूँ।

(यहाँ नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें।)

धर्म के भार से भरे हुए वृषभनाथ भगवान् हैं, जिन्होंने सभी बन्धनों को जीत लिया है, वह अजितनाथ भगवान् हैं, संसार का विनाश करने वाले संभवनाथ भगवान् हैं, गुणों को बढ़ाने वाले अभिनंदननाथ हैं, बुद्धि को देने वाले सुमतिनाथ हैं, कमल की आभा के निलय पद्मप्रभ देव हैं, जिनके दोनों पार्श्व भाग शोभा के स्थान हैं, वे सुपार्श्वनाथ है, चन्द्रमा की कान्ति से भी अधिक आभा वाले चन्द्रप्रभ भगवान् हैं, इन्द्रियों का दमन करने वाले पुष्पदंत भगवान हैं, समस्त पृथ्वी के सुखभूत शीतलनाथ हैं, कल्याण के कर्त्ता श्रेयांसनाथ हैं, सभी से पूजित वासुपूज्य भगवान् हैं, समस्त कर्ममल से रहित निर्मल आत्मा वाले विमलनाथ हैं, मृत्यु का अन्त करने वाले अनंतनाथ हैं, धर्मरूपी ध्वजा फैलाने के लिए वायु के समान धर्मनाथ हैं, शान्ति के आलय शान्तिनाथ हैं, कुन्थु आदि जीवों के पालनहारे कुन्थुनाथ भगवान् हैं, कामरूपी राक्षस के लिए शत्रु को देने वाले अरनाथ हैं, अष्टकर्म के लिए मल्लस्वरूप मल्लिनाथ हैं, श्रेष्ठ व्रतों के धारक मुनिसुव्रतनाथ हैं, मुनिश्वरों के इष्ट नमिनाथ हैं, इष्ट वस्तु को देने वाले नेमिनाथ हैं, प्रजा के नाथ पार्श्वनाथ हैं और अपने आत्मीय जनों को बढ़ाने वाले वर्धमान स्वामी हैं, इन सभी को मैं नमस्कार करता हूँ।

हे भगवन्! मैंने चौबीस तीर्थंकरों की भक्ति का कायोत्सर्ग किया,

उसकी आलोचना करता हूँ। पंच महाकल्याणकों को प्राप्त, अष्ट महा प्रातिहार्य से सुशोभित, चउतीस विशेष अतिशयों से युक्त बत्तीस देवेन्द्रों के मस्तक पर लगे मुकुटों की मणियों से पूजित, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, मूनि, यति औन अनगारों से घिरे हुए, लाखों स्तुतियों के आलय, वृषभ आदि महावीर पर्यन्त मंगलमय महापुरुषों की हमेशा मैं अर्चना करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दुःखों का क्षय हो, मेरे कर्मों का क्षय हो, बोधि का लाभ हो, मेरा सुगति में गमन हो, मेरा समाधिमरण हो, जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

अब सभी पाप कर्मों की विशुद्धि के लिए पूर्वाचार्यों के अनुक्रम से सभी कर्मों के क्षय के लिए श्री सिद्धभक्ति, श्री प्रतिक्रमणभक्ति, श्री वीरभक्ति, श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति करके उसमें लगे हीन-अधिक दोषों के निवारण के लिए मैं समाधिभक्ति का कायोत्सर्ग करता हूँ।

(यहाँ नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें।)

प्रतिक्रमण पाठ - छन्दोबद्ध -3

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

निज स्वभाव में लौटना, प्रतिक्रमण का भाव
क्षमा अस्त्र से क्रोध को, जीतो मिले स्वभाव॥

(ज्ञानोदय छन्द)

ढाई द्वीप में रहने वाले, अरहंतों को नमन करूँ,
आत्म सिद्धि को पाने वाले, सब सिद्धों को नमन करूँ।
आचार्यों को उवज्झाओं को, सर्व साधु को नमन करूँ,
निज दोषों का आलोचन कर, मोक्ष मार्ग पर गमन करूँ॥1॥
हे जिनवर! मैंने प्रमादवश, कषायवश जो दोष किये,
ज्ञान सहित अज्ञान सहित भी, दोष किये बिन होश जिये।
वे अपराध दोष मिथ्या हों, दोष क्षमा होवें स्वामी,
आत्म शुद्धि के महापर्व पर, करूँ आत्म को शुचि नामी॥2॥

द्रव्य क्षेत्र भव काल भाव कृत, मैंने दुष्ट विचारा हो,
दुष्ट वचन बोले हों मैंने, दुष्ट आचरण धारा हो।
उन पापों की निन्दा करता, गुरु समीप गर्हा करता,
हे जिनवर! मैं किये दोष का, प्रायश्चित ग्रहण करता ॥3॥
जिन गुरु से व्रत संयम धारा, उनसे प्रायश्चित गहूँ,
बालक सम निजदोष प्रकट कर, पाप रहित निश्शल्य रहूँ।
हे गुरुवर! व्रत को शुचि करने, प्रायश्चित मुझे दीजे,
सारे व्रत निर्दोष पलें नित, ऐसी प्रभो! कृपा कीजे ॥4॥
एक दोय तिय चउ पंचेन्द्रिय, जीवों को यदि दुखी किया,
तो सब प्राणी क्षमा दान दो, वैर भाव नहिं रखो जिया।
सब जीवों में मैत्री मेरी, नहीं शत्रु कोई जग में,
अनादि से मेरे संबंधी, सभी मित्र हैं शिव मग में ॥5॥
सुर नर पशु नारक चउ गति की, लाख चुरासी योनि रहीं,
इनमें रहने वाले प्राणी, यदि घाते हों कभी कहीं।
तो अपराध क्षमा करना सब, क्षमा मांगता हूँ सबसे,
सभी मित्र हैं शत्रु न कोई, क्षमा भाव मेरा सबसे ॥6॥
जिनकृत पुण्य पाप के फल से, सुख दुख का वेदन होता,
फल में परनिमित्त हो कितना, किन्तु स्वयंकृत फल भोक्ता।
इसलिए जिन कथित शास्त्र के, दश धर्मों को हृदय धरूँ,
क्षमा कराऊँ क्षमा करूँ मैं, मनुज जन्म को सफल करूँ ॥7॥
मन में धरूँ क्षमावाणी को, मुख से कहूँ क्षमावाणी,
क्षमा करूँ मैं प्रतिप्राणी को, क्षमापना हो कल्याणी।
प्रतिक्रमण है निज में आना, क्षमा स्वपर को सुखदानी,
पीड़ित दुखित जीव घावों को, भरती मृदुल क्षमावाणी ॥8॥

सबकी भूलें भूलकर, ज्ञात करो निज भूल।
दश धर्मों के सार में, क्षमा वचन भव कूल॥

❖❖❖❖❖❖❖

श्रावक प्रतिक्रमण

गुरुदेव दया करके, मुझे जग से छुड़ा देना।
पा जाऊँ मैं आतम को, वो राह दिखा देना॥
करुणानिधि नाम तेरा, करुणा को जगाओ तुम,
मैत्री के भावों को, हे नाथ जगा दो तुम।
प्रतिपल समता में रहूँ, संवर ये सिखा देना॥
गुरुदेव दया.....॥
लाखों को तारा है, मुझको भी तारो तुम,
मैं शरण पड़ा तेरी, मेरी ओर निहारो तुम।
मेरा जनम मरण छूटे, वो भक्ति जगा देना॥
गुरुदेव दया.....॥
मैं अनादि से घायल हूँ, उपचार कराओ तुम,
हो जाऊँ निरोग सदा, औषध वो पिलाओ तुम।
पा जाऊँ परम पद को, वो राह चला देना॥
गुरुदेव दया.....॥
टूटी हुई वीणा के सब, तार मिला दो तुम,
गाऊँ मैं मधुर संगीत, वो साज बना दो तुम।
ये गीत जो बिछुड़ा है, गायक से मिला देना॥
गुरुदेव दया.....॥
बहती हुई सरिता की, आवाज मिटाओ तुम,
अंतस में हे स्वामी, ज्योति प्रकटाओ तुम।
ये बूँद जो बिछुड़ी है, सागर से मिला देना॥
गुरुदेव दया.....॥

हे भगवन्! जिनेन्द्र देव के कहे अनुसार जिनधर्म का पालन करते हुए ग्रहण किये हुए नियमों में/व्रतों में जाने अनजाने में मन वचन काय की चंचलता से जो भी दोष लगे हों उन दोषों की शुद्धि एवं मन की पवित्रता हेतु भाव शुद्धि पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूँ।

हे भगवन्! मैं सब जीवों के प्रति मैत्री भाव रखता हुआ सबसे क्षमा

चाहता हूँ सभी जीव मुझे क्षमा करें एवं मैं भी सभी जीवों को क्षमा करता हूँ। मेरा किसी से भी बैर भाव नहीं है।

चार घातिया कर्मों से रहित अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख एवं अनंत वीर्य रूप अनंत चतुष्टय से सहित समवशरण आदि दिव्य वैभव से युक्त अरिहंत परमात्मा को मेरा नमस्कार हो, नमस्कार हो नमस्कार हो।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित, सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से सहित, लोक के अग्रभाग में स्थित, शरीर से रहित, अशरीरी सिद्ध परमात्मा को मेरा नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार, वीर्याचार, चारित्राचार रूप पंचाचारों से सहित, दीक्षा और प्रायश्चित आदि देने में कुशल, मुनि संघ के नायक, आचार्य परमेष्ठी की मैं बारम्बार स्तुति करता हूँ, वंदना करता हूँ, उन्हें मेरा नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

मुनि शिष्यों को पढ़ाने वाले रत्नत्रय से विशुद्ध उपाध्याय परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

अट्ठाइस मूलगुणों के पालन करने में निरत, परिग्रह से रहित, ज्ञान, ध्यान, तप में लीन रहने वाले साधु परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

हे भगवन्! मैं पापी हूँ, दुरात्मा हूँ, अल्पबुद्धि वाला हूँ, रागद्वेष से युक्त कषायवान हूँ।

हे भगवन्! मैंने दुष्ट कार्य किए, दुष्ट चिंतन किया, दुष्ट भाषण किया, अतः भीतर ही भीतर पश्चाताप की आग में जल रहा हूँ।

हे भगवन्! आज तक मेरे मन में अहिंसा आदि धर्म पालन करने की भावनाएँ नहीं हुईं। मैं रात-दिन क्रोध रूपी अग्नि में जलता रहा हूँ। मैं निरंतर लोभ रूपी सर्प के द्वारा काटा गया हूँ।

हे प्रभो! मैंने आज तक दीनों को अथवा सत्पात्रों को दान नहीं दिया, सत् चारित्र को अंगीकार नहीं किया है, मैंने कभी भी तप का आचरण नहीं किया अनादि कालीन संस्कार एवं अज्ञान के कारण मैं निरंतर माया जाल, छल कपट करने में लीन रहा हूँ।

हे भगवन्! मैं आपके पास आने में संकोच करता हूँ, मुझे डर लगता है। हे प्रभो! वास्तव में हमारे जैसे नरों का जन्म ही व्यर्थ है। किन्तु फिर भी प्रभो आप दयालु हैं, करुणा निधान हैं, संसार दुःख के वैद्य हैं, अनुपम कृपा अवतार हैं, परम पिता परमात्मा हैं। एक अज्ञानी बालक जिस तरह अपने माता-पिता के सामने अपनी तोतली भाषा में अपने हृदय की बात ज्यों की त्यों बिना किसी छल-कपट के कह देता है, उसी प्रकार मैं भी अपने हृदय का हाल, अपनी बुराई, दुर्गुण, अपने दोषों को आपसे विनय से प्रीतिपूर्वक कह रहा हूँ। मुझे विश्वास है आप निश्चित ही मुझ अज्ञानी पर कृपा करेंगे।

(नौ बार णमोकार)

सामायिक एवं प्रतिक्रमण
अपनी आलोचना

❇ वीतरागी सर्वज्ञ, हितोपदेशी, जिनेन्द्र भगवान की चरण, शरण में बैठ कर पाँच पाप और कषायों को जीतने पूर्ण मन-वचन-काय की शुद्धि पूर्वक अपने गृहीत व्रतों-नियमों को शुद्ध करने, निरतिचार व्रतों का पालन करने और अपनी आत्मा को पवित्र करने के लिए मैं मन-वचन-काय योग से प्रतिक्रमण करने का संकल्प करता हूँ।

❇ हे भगवान! मैं पापी हूँ, दुरात्मा हूँ, मायाचारी हूँ, लोभी हूँ, आलसी हूँ, महामूढ़ हूँ, अज्ञानी हूँ, मैं सभी दुर्गुणों का घर हूँ।

❇ हे भगवान! मुझ पापी ने मन को कलुषित कर काम, वासना कषाय के वशीभूत हो बुरा कहा, बुरा सोचाऔर बुरा अनर्थकारी कार्य किया है। मैं इन सभी कृत्यों का अंदर ही अंदर पश्चाताप की आग में झुलस कर मैं अपनी निंदा-आत्म आलोचना करता हूँ।

❇ हे भगवान! मैंने घर में, परिवार में, मोहल्ले में, मंदिर में, समाज के बीच में, दुकान में, मित्रों के साथ में, स्कूल में, कॉलेज में, अन्य स्थानों में, तीर्थ क्षेत्रों में, सिद्ध क्षेत्रों में, सर्वत्र मन-वचन- काय से हँसी-मजाक में, विषय-वासना-कषाय भावों से जो-जो अशुभ कर्म किये, उन सभी की मैं आलोचना, निंदा, गर्हापूर्वक प्रतिक्रमण करने के लिए हे प्रभु आपके

चरणों को, गुरुदेव के चरणों को साक्षी मानकर (परोक्ष में भी) आज अपने को शुद्ध करने आया हूँ।

❖ **खम्मामि सव्वजीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।**
मेत्ती मे सव्व भूदेसु, बैरं मज्झं ण के णवि॥
अर्थ: मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा करें। मेरा सभी जीवों में मैंत्री भाव है, मेरा किसी भी प्राणी से बैर भाव नहीं है।

❖ मैंने स्थावर-त्रस जीवों को मारा हो, सताया हो, संताप दिया हो, उनका वध किया-कराया हो। मेरा यह सब दुष्कर्म मिथ्या हो।

❖ मैंने अष्ट मूलगुण धराण किये हैं, सप्त व्यसन का त्याग किया है। स्थूल पाँच पाप का त्याग किया है, रात्रि भोजन का त्याग किया है। कंदमूल, 22 अभक्ष्य, अनछने जल का त्याग किया है और भी जो नियम-व्रत गुरु की साक्षी में लिए हैं उन नियमों में प्रमादपूर्वक जो भी दोष लगे हों, उन्हें दूर करने के लिए मैं पश्चाताप करता हूँ तथा नियमों को पुनः अपने में स्थापन करता हूँ।

❖ अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु परमेष्ठी की सम्यक् श्रद्धा से मुझे अपने नियमों-व्रतों में दृढ़ता प्राप्त हो।

❖ मैंने अपने नियमों-व्रतों में रात-दिन में जो दोष लगाए हैं, उन्हें शुद्ध करने सिद्ध भक्ति का कायोत्सर्ग करता हूँ।

(9 बार णमोकार मंत्र का जाप)

❖ हे भगवान! मैंने सिद्ध भक्ति का कायोत्सर्ग किया, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से सहित आठ कर्मों से रहित, सम्यक्त्वादि आठ गुण से संपन्न लोक शिखर पर विराजमान, तप, नय, संयम, चारित्र से सिद्ध तीनों काल संबंधी सभी सिद्धों की मैं नित्य अर्चना, पूजा, वंदना पूर्वक नमस्कार करता हूँ। मेरे दुखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधिलाभ हो, सद्गति में गमन हो, समाधि मरण हो और जिनेन्द्र भगवान के गुणों की संपत्ति मुझे प्राप्त हो।

❖ मैं पंच परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ।

❖ अनंतानंत सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ।

❖ श्री आदिनाथ स्वामी से लेकर श्री महावीर पर्यंत सभी चौबीस तीर्थंकर भगवंतों को नमस्कार करता हूँ। सभी गणधर परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ।

❖ श्री सीमंधरादि विद्यमान बीस तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूँ।

❖ शास्वत तीर्थराज श्री सम्मेद शिखर जी को नमस्कार करता हूँ।

❖ अढ़ाई द्वीप और दो समुद्र से सिद्ध होने वाले सभी सिद्ध परमेष्ठियों को नमस्कार करता हूँ।

❖ पाँच भरत पाँच ऐरावत पाँच महाविदेह क्षेत्र संबंधी तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूँ।

❖ तीस चौबीसी के सात सौ बीस तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूँ।

❖ एक सौ सत्तर कर्मभूमि सभी आर्यखंडों में होने वाले तीन काल संबंधी पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करता हूँ।

❖ अढ़ाई द्वीप में मनुष्यों द्वारा बनाए मंदिरों को, मंदिर में विराजमान सभी वीतराग-निर्ग्रन्थ जिनबिम्बों को नमस्कार करता हूँ जो शत इन्द्रों, देवों-राजाओं द्वारा भी वंदनीय है, पूज्यनीय है।

❖ तीनों लोक के अकृत्रिम जिन चैत्य चैत्यालयों को नमस्कार करता हूँ। जो देवेन्द्रों द्वारा अष्ट द्रव्य से वंदित हैं, पूजित हैं। इनकी वंदना हमारे दुःखों का क्षय करें, कर्मों का क्षय करें, समाधिमरण में सहयोगी बनें, सद्गति मिले, तथा मुझे जिनेन्द्र भगवान के गुण-संपत्ति की प्राप्ति हो।

❖ लोक में श्री अरिहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु परमेष्ठी एवं अरिहंत भगवान के द्वारा कहा जिनधर्म ही मंगल है, उत्तम है, हम सभी को शरण है। मैं सच्ची श्रद्धा-भक्ति से पंच परमेष्ठी की शरण को प्राप्त करता हूँ।

❖ जम्बूद्वीप-धातकी खंड और पुष्करार्ध में, लवण समुद्र-कालोदधि समुद्र में पाँच भरत, पाँच महाविदेह और पाँच ऐरावत क्षेत्र ये 15 कर्मभूमियाँ हैं। इन सभी में अरहंत केवली तीर्थंकर, अनुबद्ध, अंतकृत, मूक, उपसर्ग, समुद्घात गत अननुबद्ध, सातिशय-निरतिशय, अयोग केवली इन सभी को नमस्कार करता हूँ। मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो यह भावना करता हूँ।

❖ मैं सामान्य केवली, श्रुत केवली, अंग पूर्वों के ज्ञाता मुनिराज को ऋद्धि संपन्न मुनियों को, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययधारी मुनिराजों को तथा प्रमत्त विरत अप्रमत्त विरत महामुनिराजों को नमस्कार करता हूँ।

❖ उपशांत मोह-क्षीण मोह गुणस्थानवर्ती महामुनिराजों को नमस्कार करता हूँ।

❖ जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे जिनधर्म को, जिनशासन को, जिनेन्द्र कथित द्वादशांग वाणी को सदा काल नमस्कार करता हूँ।

❖ श्री आदिनाथ जी से लेकर श्री महावीर प्रभु पर्यंत सभी तीर्थंकरों के गणधर परमेष्ठियों को नमस्कार करता हूँ।

❖ मैं पंच परमेष्ठी और अपनी आत्मा की साक्षी में आत्म आलोचना करने का संकल्प करता हूँ।

❖ मेरे ग्रहण किये व्रतों में, नियमों में, जैन कुल के कुलाचार में लगे दोषों का, भंग हुए व्रतों-नियमों की मैं आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूँ। अपनी आत्मसाक्षी में निंदा करता हूँ, गुरु सम्मुख गर्हा करता हूँ, जब तक मैं आलोचना-प्रतिक्रमण-सामायिक, उपासना कर रहा हूँ उतने समय तक मन-वचन-काय से कृत-कारित अनुमोदना से समस्त पाप कार्यों का त्याग करता हूँ।

(कायोत्सर्ग यानी नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें)

प्रतिक्रमण

❖ हे भगवान! आप सर्वज्ञ हैं, हमारी मन-वचन-काय की सभी क्रियाओं को आप जानते हैं। आपने मुझे शांति का मार्ग दिया, सुख का, कल्याण का, मंगलमय जीवन का उपाय बताया है। फिर भी मैं अपनी अज्ञानता से, जन्म-जन्मांतरों के खोटे संस्कार से बँधा हूँ इसीलिए आपकी आज्ञा नहीं मानी। आपके पास बार-बार कहता हूँ, पर अपनी कुटेव नहीं छोड़ता। हे भगवान! मुझे क्षमा करें, क्षमा करें, क्षमा करें।

❖ हे भगवान! मैंने आते-जाते, उठते-बैठते, चेतन-अचेतन पदार्थों को उठाते-रखते समय सावधानी नहीं रखी, बिना देखे, बिना शोधे कार्य किया है। इस क्रिया से एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय,

पंच इन्द्रिय जीवों की हिंसा हुई, घात हुआ, उनके शरीर को धक्का लगा हो, अंगोपांगों का छेदन-भेदन हुआ है। उनके आने-जाने के मार्ग में बाधा डाली हो, धूप-छाँव में डलवा दिया हो या स्वयं डाला हो। हे भगवान्, मैं पूरी सावधानी से अपने इन अपराधों के लिए प्राणीमात्र से क्षमा माँगता हूँ, मेरे यह अपराध मिथ्या होवें।

❖ मैं अरिहंत परमेष्ठी एवं सद्गुरु की साक्षीपूर्वक आत्मनिंदा करता हूँ। आगे मैं प्रत्येक कार्य देखकर करूँ, हे प्रभु मुझे इतनी शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करें। हे भगवान! मैं अपने सभी अपराधों-दुष्कृत्यों का क्षय करने पश्चातापपूर्वक प्रतिक्रमण करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। मैंने ग्रहण किये नियमों-व्रतों में अतिचार-अनाचार दोष लगा कर महापाप कर्म का बंध किया है। वे सभी मिथ्या होवें, मैं पाप कर्म से मुक्त होऊँ।

(नौ बार णमोकार मंत्र प्रतिक्रमण के संकल्प हेतु)

❖ हे भगवान्! आप सर्वज्ञ हैं, वीतरागी हैं, हम सभी के परम, हितैषी, बंधु-मित्र उपकारी हैं। आप हमारे सब अपराध को, दोषों को जानते हो। मैं अपने समस्त दुष्कर्मों को कहने में असमर्थ हूँ। मैं अपराध करके भूल भी गया। मेरे यह अपराध अनंत पूर्व भवों के भी हैं जो हमारे क्षयोपशम ज्ञान में नहीं है। फिर भी अपनी बुद्धि अनुसार आपके समक्ष कहता हूँ।

❖ हे भगवान्! मैंने सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की सम्यक श्रद्धा विश्वास, आस्था को प्रभू और गुरु की साक्षी में स्वीकार किया है। हमारी सम्यक श्रद्धा में मन-वचन-काय से स्नेह-भय-लोभ के कारण जो भी दोष लगा हो, वह मिथ्या होवे... ॥3॥ (3 बार)

❖ मैंने सच्चे देव-शास्त्र-गुरु में, रत्नत्रय स्वरूप मोक्ष मार्ग में, मोक्षमार्गी साधुओं में, शंका, कांक्षा, ग्लानि की हो, मिथ्यामार्गी की स्तुति या उन्हें अपने मन से अच्छा माना हो तो हे भगवान! मेरा यह अविचारित कार्य मिथ्या होवे..... ॥3॥ (3 बार)

❖ हे भगवान्! मैंने गुरु की साक्षी में, देव दर्शन की प्रतिज्ञा की है। अभिषेक-पूजन का नियम लिया है। मेरे द्वारा दर्शन प्रतिज्ञा और गृहीत नियम में ज्ञात अज्ञात भाव से नव कोटि द्वारा जो दोष लगे हैं, वह सब मिथ्या

होवें... ॥3 ॥ (3 बार)

❉ हे भगवान्! देवदर्शन करते समय प्रमाद किया हो, मंदिर में राग-द्वेष किया हो, क्रोधादि करके मंदिर की पवित्रता को दूषित किया हो, चौरासी प्रकार के आसादना दोष लगाए हों वह सब मिथ्या होवे.. ॥3 ॥ (3 बार)

❉ हे भगवान्! जिन दर्शन प्रतिज्ञा में लगे अन्य दोषों का भी मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। मंदिर में कलह की हो, मंदिर एवं जिन प्रतिमा की मेरे द्वारा आसादना, अनादर हुआ हो, मैंने दिये दान का मान ग्रहण किया हो, रागी-द्वेषी देवों की आराधना की हो, धर्मोपदेश के समय आपसी बातचीत की हो, पुत्र, घर, व्यापार, शादी, कोर्ट केस जीतने के लोभ से पूजा-विधान-जाप अनुष्ठान आदि किया हो, वीतरागी, दिगम्बर साधु का अनादर किया हो, इन सभी दुष्कृत्यों की मैं आत्मनिंदा करता हूँ। मेरा यह दुष्कृत्य मिथ्या होवे... ॥3 ॥ (3 बार)

❉ हे भगवान्! मैंने सप्त व्यसनों का त्याग किया है- उसमें जो भी ज्ञात-अज्ञात भाव से दोष लगा है, वह दोष मिथ्या होवे, मैं उसका प्रतिक्रमण करता हूँ।

❉ मैंने चाय-कॉफी, देशी-विदेशी शराब, वाइन व्हिस्की, कोल्डड्रिंक, मिनरल वाटर, फ्रूटी, फ्रूट वियर, एनर्जी ड्रिंक आदि का सेवन किया हो, इनके व्यापार को अच्छा माना हो, करने वालों का समर्थन किया हो, दवाई के रूप में सेवन किया हो, मदिरा निर्माण हेतु महुआ को खरीदा-बेचा हो, ध्रूमपान, गुटखा, तंबाखू, पान-मसाला खाया हो खिलाया हो, खाने वालों का समर्थन किया हो, बेचा हो, वह सब पाप कर्म मेरा मिथ्या होवे... ॥3 ॥ (3 बार)

❉ हे भगवान्! मैंने पाँच उदम्बर फल (बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर) का सेवन किया हो, बाईस अभक्ष्यों का भक्षण किया हो, जमींकंद का सेवन अच्छा माना हो, अज्ञात फल खाया हो, बाजार की मिठाई-नमकीन, मसाले, अचार, मुरब्बा, चाइनीज फूड, फास्ट फूड, बर्गर, नूडल्स, मन्चूरियन, पाश्ता, हॉट डॉग, पावभाजी, पेटिस, सेन्डविच, कटलेट, दावेली, स्प्रिंग रोल, मोमोज, अजीनोमोटो आदि पेस्ट्री, चिंगम, कस्टर्ड

पाउडर, डबल रोटी, केक, पिज्जा, कुरकुरा, मेगी, चिप्स, पैकेट बंद पदार्थ, द्विदल, पापड़, बड़ी, डबल रोटी, सब्जी, बासा भोजन, चलित स्वाद वाला भोजन दाल आदि खाई हो। यह सब मेरा दुष्कर्म मिथ्या होवे... ॥3 ॥ (3 बार)

❉ मैंने अनजान में मांस, अंडा, मछली, पनीर का देखा-देखी में भक्षण कर लिया हो, हे प्रभु यह महादुष्कर्म मिथ्या होवे... ॥3 ॥

❉ हे भगवान्! मैंने स्वास्थ्य के लोभ में शहद की बनी औषधि खाई हो, सीधा शहद भी खाया हो, मधुमक्खी के छत्ते को नष्ट किया हो, कराया हो, अति आसक्त होकर भोजन किया हो, अधिक भोजन किया हो, जीवों से मिश्रित भोजन किया हो, शहद को अन्य किसी भी रूप में उपयोग किया हो, हे प्रभु! मेरा यह सब दुष्कर्म मिथ्या होवे... ॥3 ॥

❉ हे भगवान्! मैंने जुआ खेला हो, दूसरों को अपनी तरफ से खेलने बैठा दिया हो, शर्त लगाई हो, धन के लोभ में, सट्टा, लॉटरी, वायदा व्यापार, आई. पी. एल., शेयर बाजार में शेयर लिया हो, रिश्वत ली हो, दी हो, पशुओं को मनोरंजन का साधन मान के उनको आपस में लड़ाया हो, इसके लिए शर्त लगाई हो, खेलों में सट्टा में धन लगाया हो। हे प्रभु! मेरा यह जीवनघाती, धर्मनाशक तथा कुलाचार के विरुद्ध दुष्कर्म मिथ्या होवे... ॥3 ॥

❉ हे भगवान्! मैंने परस्त्री/पर पुरुष के साथ रमने का विचार किया हो, उनके रूप का, शरीर के सौष्ठव का, लावण्यता का अशुभ विचार किया हो, परस्त्री/परपुरुष के साथ रहने का, बोलने का, हँसने का, आने-जाने का, उनके अंगोपांगों के साथ क्रीड़ा करने का लोभ जागा हो, काम भोग की इच्छा की हो, उन्हें प्रलोभन देकर कार्य सिद्धि का प्रयास किया हो। हे प्रभु! मेरा यह लौकिक पारलौकिक अच्छाई को नष्ट करने वाला दुष्कर्म मिथ्या होवे... ॥3 ॥

❉ हे भगवान! मैंने वेश्या के साथ बातचीत की हो, हँसी-मजाक की हो, उसके घर आना-जाना किया हो, उसकी कथा की हो, उससे मिलने की प्रेरणा देने वाले मित्रों का साथ किया हो, राग बढ़ाने वाले उपन्यास के

पढ़ने का, सुनने का, सिनेमाघर, टीवी, वीडियो, चैनल, फेसबुक, वाटसएप, बेवसाइट, इंस्ट्राग्राम, यू ट्यूब, इंटरनेट, फोटो, ऑडियो पर उनके हावभाव को रागपूर्वक देखने की इच्छा की हो, जिसका कोई स्वामी नहीं ऐसी अविवाहित चरित्रहीन स्त्रियों से मेल-मिलाप किया हो, कराया हो, हे प्रभु! साक्षात नरक के द्वार खोलने वाला हमारा यह दुष्कर्म मिथ्या होवे.... ॥3 ॥

❉ हे भगवान! मैंने शिकार खेला हो, बंदूक, डंडा, तलवार, भाला, त्रिशूल, बाण, गुलेल द्वारा जीवों का घात किया हो, हँसी-हँसी में पशु-पक्षियों का वध किया हो, कराया हो, उन्हें समय पर पानी-दाना नहीं दिया हो, धूप-सर्दी-गर्मी में उनका संरक्षण नहीं किया हो, अतिभार लादा हो, बीमार होने पर दवा नहीं दी हो, मृत पशुओं के अंगों को काट कर उनके चर्म-सींग-दाँत-आदि से बनाए उपकरणों को घर में श्रृंगार मान के लगाया हो, चमड़ी का वस्त्र बनवाया हो, बनाया हुआ बाजार से खरीदा हो, चमड़े के बेल्ट, पर्स, जूता, चप्पल आदि का उपयोग किया हो, हे प्रभु! अहिंसा धर्म का घात करने वाला मेरा यह दुष्कर्म मिथ्या होवे... ॥3 ॥

❉ हे भगवान! मैंने रात्रि भोजन का त्याग न किया हो अविवेकी बनकर अति आसक्त होकर, रात में भोजन किया हो, पानी पिया हो, दूसरों को भी भोजन कराया हो, फलाहार के नाम पर मिठाई, नमकीन, मूँगफली, चना, फल, दूध-चाय ली हो, दूसरों को पिलाई हो, समय की मर्यादा का उल्लंघन किया हो, रात का बना भोजन दिन में खाया हो दिन का बना भोजन रात में खाया हो, स्वप्न में भोजन किया हो, दूसरों को भी रात्रि में भोजन कराया हो। हे प्रभु! स्वास्थ्य एवं धर्मनाशक मेरा यह अपराध मिथ्या होवे.... ॥3 ॥

❉ हे भगवान! मैंने चर्बी युक्त साबुन, सोड़ा, पावडर का उपयोग किया हो, मैंने गृहस्थ संबंधी कार्य करने में प्रमाद से त्रस जीवों का घात किया हो, चूल्हा-चक्की, मिक्सी, ग्रैंडर बाल्टी, झाड़ू आदि का प्रमादपूर्वक, असावधानी से उपयोग करके सूक्ष्म स्थूल जीवों की हिंसा की हो। हे प्रभु! मेरा यह श्रावक की क्रिया के विपरीत किया गया दुष्कर्म मिथ्या

होवे... ॥3 ॥

❉ हे भगवान! मैंने स्थूल हिंसा का त्याग किया है। मेरे द्वारा घर की साफ-सफाई में, बुहारी लगाते समय, दुकान-वाहन की सफाई करने में, वाहन आदि से आने-जाने, स्नान करने में, वस्त्र धोने में, घर-दुकान के दरवाजे खोलने-लगाने में त्रस जीवों की जो भी जाने-अनजाने में हिंसा हुई, अंगभंग हुआ उन सभी दुष्कृत्यों का मैं पश्चाताप पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूँ। मेरे यह सब पापकर्म मिथ्या हो... ॥3 ॥

❉ बिना देखे, शोधे, ईंधन जलाने में, विरोधी हिंसा में, उद्योग-व्यापार संबंधी उद्योगी-आरंभी हिंसा में, भ्रूण हत्या करने कराने में, बार-बार परेशानी से पीड़ित होने पर आत्महत्या के विचार में, पर के घात में में, पर की बदनामी करने-कराने में, पर के अंगोंपांग का छेदन-भेदन करने कराने में, पशु-बालक-स्त्री-मित्रों, अचेतन विस्तर, अन्य सामान को जमीन पर पटकने, फेंकने एवं घसीटने में मेरे द्वारा मन-वचन-काय से करने-कराने एवं करने वाले को अच्छा मान के ज्ञात-अज्ञात भाव से जो पाप कर्म किया है, वह सब मिथ्या हो... ॥3 ॥

❉ हे भगवान! मैंने स्थूल झूठ का त्याग किया है। मैंने असत्य कथन किया हो, कठोर वचन कहे हो, परनिंदा कारक, हिंसा कारक, कर्कश, दूसरों को ठगने वाला, कपट-छल कारक, अपमान, तिरस्कार, अनादर कारक शब्दों को बोला हो, ऐसे असत्य वचनों की मैं आत्मनिंदा करता हूँ। मैंने चुगली की हो, दूसरों की हँसी-मजाक की हो, अनर्थकारी शब्द बोला हो, बैर-विरोध किया हो, मैत्रीभाव में फूट डाली हो, अपनी प्रशंसा-दूसरों की आलोचना-निंदा की हो, दूसरों को दुःख, संताप, शोक, क्रन्दन कराने वाले शब्द बोले हों, किसी के अंतरंग रहस्य को दूसरों के सामने खोला हो, झूठे लेख लिख दूसरों को बदनाम किया हो, दूसरों की गिरवी रखी धरोहर को हड़पा हो, दूसरों के अच्छे-बुरे संकेत को समझ के किसी के सामने कहा हो। हे प्रभु! इन सभी असत्य वचनों से मैंने विश्वासघात किया, अविश्वास का कार्य किया, अविश्वास पात्र बनके अपना यह भव और पर भव ही बिगाड़ा है। यह मेरा दुष्कर्म क्षमायोग्य

नहीं है, फिर भी मेरे यह सभी दुष्कर्म मिथ्या होवे... ॥3 ॥

❖ हे भगवान! मैंले स्थूल चोरी का त्याग किया- मैंने किसी की पड़ी हुई, भूली हुई, रखी हुई, बिना दी हुई वस्तु को लिया हो, किसी को दे दी हो, चोर से सस्ते दाम में चोरी की वस्तु खरीदी हो, सरकारी टैक्स की चोरी की हो, बिजली, जमीन, जल माटी को भी बिना दिये लिया हो, राजकीय मर्यादा का उल्लंघन किया हो, असली वस्तु में सादृश्य नकली वस्तु की मिलावट की, लेन-देन में ज्यादा-कम तौला हो, चोरों को चोरी करने का प्रोत्साहन दिया हो, आदि-आदि। हे प्रभु! मेरे द्वारा जो चौरकर्म सम्बन्धी दुष्कर्म किया गया हो वह सब मिथ्या होवे.... ॥3 ॥

❖ हे भगवान! मैंने स्वदार संतोष व्रत लिया है- मैंने उत्तेजक, काम वासना को बढ़ाने वाली दवाओं-रसों का सेवन किया हो, काम बढ़ाने वाला भोजन किया हो, तेल की मालिश कराई हो, अश्लील गाना-गीत सुने-गाये फिल्म देख के वासना से मन को मलिन किया हो, टीवी पर चित्रहार आदि देख के पहनावा, नाचना, सीख के आचरण हीनता की हो, शरीर का श्रृंगार उत्तेजना का कारण बना हो। हे भगवान! मैंने अपनी पत्नी/पति के अलावा दूसरों को देख के मन में बुरा विचार किया हो, माता-बहिन-बेटी के समान, भाई-पिता-पुत्र के समान वालों के प्रति मन-वचन-काय से दुर्व्यवहार किया हो, स्त्री/पुरुष संबंधी कथाएँ की हों, उनके अंगों का निरीक्षण किया हो, पूर्व भोगे भोगों का स्मरण किया हो, हँसी-मजाक में भी गलत क्रिया की हो, हे प्रभु! मेरा यह सब धर्म विरुद्ध आचरण मिथ्या होवे.... ॥3 ॥

❖ हे भगवान! मैं स्थूल रूप से परिग्रह का सीमांकन किया है। मैंने खेत, मकान, सोना-चाँदी, पशुधन, अनाज, नौकर-नौकरानी, कपड़ा-बर्तन आदि को लेकर मूर्च्छा, आसक्ति, गृद्धता की हो, बनाई मर्यादा का उल्लंघन किया हो, वाहनों का अति आसक्ति से संग्रह किया हो, दूसरे का वैभव, धन-समृद्धि, यश-कीर्ति, सम्मान-सत्कार, देख के आश्चर्य किया हो, मन में परिग्रह के लिए लोभ हुआ हो, स्वीकार की परिग्रह परिमाण की सीमा को भूल गया हूँ। हे प्रभु! मेरा यह संसार दुःख का

कार्य मिथ्या होवे... ॥3 ॥

❖ हे भगवान! मैंने अनछने जल को पीने का त्याग किया है। मेरे द्वारा प्रमाद से, असावधानी से, फटे-पुराने, छिद्र सहित, जल छानने के अयोग्य पतले छन्ने से जल छाना हो, विलछानी सही रीति से विसर्जित न की हो, छने जल में मिल गई हो, छन्ने को जोर से दबा दिया हो, बिलछानी जमीन पर फैल गई हो, यहाँ-वहाँ गिर गई हो, जहाँ से पानी निकाला उस कुएँ में, हैंडपम्प में, नदी में, तालाब में, बावड़ी में, अन्य जल स्रोत में यथावत विधि से न पहुँचाई हो, ऊपर से ही डाल दी हो, नाली में डाल दी हो, इत्यादि अपराध करके मैंने उन जलकायिक को भयभीत किया हो, अकाल मरण कराया हो, अपने जैन कुल की मर्यादा को नष्ट कर घोर पाप किया है। हे प्रभु! मेरा यह मर्यादा विहीन अपराध मिथ्या होवे... ॥3 ॥

❖ हे भगवान! मैं संसार से मुक्त होने के लिए वीतराग-निर्ग्रंथ पद की इच्छा करता हूँ। जो निर्ग्रंथ पद निर्वाण का मार्ग है, दुःखों का क्षय करता है। समता का धाम, तीन लोक में श्रेष्ठ है। देव-दानव, मानवों से पूजित है। तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव आदि 63 शलाका पुरुष और 170 महापुरुषों से सेवित है। इसका कोई अन्य उत्तर नहीं, यह निःशल्य है। इस मार्ग का स्वरूप केवली भगवान द्वारा कहा गया है। सामायिक रूप है, अध्यात्म-वैराग्य का मूल कारण है। सुख देने वाला है। इसी निर्ग्रंथ पद की मैं श्रद्धा करता हूँ, वांछा करता हूँ। इसी भावना से मेरा समाधिपूर्वक मरण हो।

❖ मैं नित्य जिन दर्शन एवम् देव पूजन करने की प्रतिज्ञा लेता/लेती हूँ, नित्य-नियम से देव पूजा करूँगा/करूँगी।

❖ हे भगवान! मैं स्थूल रूप से पाँच पापों का त्याग करता हूँ। अनछने पानी का त्याग करता हूँ, रात्रि भोजन का त्याग करता हूँ। मैं सप्त व्यसन (जुआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, वेश्यागमन करना, शिकार खेलना, परस्त्री के साथ रमण करना, चोरी करना) का त्याग करता हूँ। (अपने समस्त प्रकार से किये दोषों के लिये पश्चाताप पूर्वक पूर्ण सावधानी से 36 बार णमोकार मंत्र का जाप करें।)

❖ मैंने- जाने-अनजाने जो अपराध किये, व्रतों-नियमों में दोष लगाए हैं, उनकी शुद्धि के लिए पूर्वाचार्यों के निर्देश अनुसार सभी कर्मों का क्षय

करने के लिए, मैं वर्तमान शासन नायक 'श्री महावीर भगवान' की भक्ति करता हूँ।

❖ अहिंसा के अवतार, दुखियों के दुःख हरने वाले, परमात्मा, जिनकी यश कीर्ति सर्वत्र फैली है, हे भव्य! ऐसे भगवान की नित्य पूजा करो, ध्यान करो, नाम जाप करो। श्री महावीर भगवान ने जो सच्चे सुख का मार्ग बताया है, वही हम सभी का हितकारी-कल्याणकारी मार्ग है। ऐसे वीर स्वामी को सदा मेरा नमस्कार हो। वर्तमान में वीर भगवान ही हम सभी के शासन नायक हैं सभी उन्हीं के शासन में सकुशल हैं। प्रभू महावीर स्वामी ने ही वर्तमान में सर्व हितकारी सर्वोदयी तीर्थ का प्रवर्तन किया है। प्रभू चरण ही शरण है। समता-सुख के हेतु हमारा कल्याण वीर भगवान में है। हे भगवान! आज आपकी वंदना-नमस्कार करने से मेरा जीवन धन्य हो गया। मेरा सौभाग्य का सूर्य उदय को प्राप्त हुआ। आज दिन-घड़ी, मेरा जन्म भी आपकी वीतराग छवि को देख सफल हो गया। तीन लोक की अक्षय निधि को आज मैं पा गया। मैं निर्धन आपकी भव्य दिव्य निर्ग्रंथ मुद्रा को देख कर सच्चे सुख का आधार चिंतामणि रत्न पा गया। हे भगवान! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

❖ अहिंसा ही धर्म है, वही मंगल है। जहाँ धर्म है वहीं दया-करुणा है, संयम-तप-त्याग है, समृद्धि-ऋद्धि, सुख शांति है। जिसका चित्त-मन सदा अहिंसा-संयम-तप रूप धर्म में लगता है उसे देवता भी नमस्कार करते हैं। ऐसे सर्वोदयी अहिंसा धर्म में मेरा संपूर्ण संसारी जीवन व्यतीत हो। प्रभू वीर से यही प्रार्थना है।

❖ हे भगवान! मेरे प्रतिक्रमण करने में जो दोष लगे हों, उनकी मैं आलोचना करता हूँ। आठ शंकादिक दोष, आठ मद, छह अनायतन, तीन मूढ़ता स्वरूप 25 दोषों से मैंने अपने सम्यक दर्शन सच्ची श्रद्धा में जो दोष लगाया हो, वह मिथ्या हों। सम्यग्ज्ञान के सभी दोष मिथ्या हो। चार संज्ञा, तीन शल्य, आर्त्त-रौद्र ध्यान, चार कषाय, तीन अशुभ लेश्या, चार विकथा द्वारा मैंने दुष्परिणाम किये हों, अपने अमूल्य समय को नष्ट कर दुरुपयोग किया है, हे प्रभु! यह मेरा तिर्यंच आयु-नरकायु का कारण भूत

परिणाम एवं इससे उर्जित पाप मिथ्या होवें...॥3॥ मैं पश्चाताप करता हूँ॥3॥

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें।)

❖ मेरे सभी पाप मिथ्या हों इस हेतु चौबीसों तीर्थंकरों की भक्ति करता हूँ। ❖ श्री वृषभनाथ वृष यानी धर्म के स्वामी हैं। ❖ भव बंधन को जीतने वाले श्री अजितनाथ हैं। ❖ भली प्रकार से भव को संसार चक्र को नष्ट करने वाले श्री संभवनाथ हैं। ❖ गुणों द्वारा वंदनीय, अर्चनीय श्री अभिनंदन नाथ हैं। ❖ मति को सुमति प्रदान करने वाले श्री सुमतिनाथ हैं। ❖ कमल की कांति के विधान श्री पद्मप्रभजी हैं। ❖ जो अपने पार्श्व अर्थात् बगलों से सुशोभित हैं वह श्री सुपार्श्वनाथ भगवान हैं। ❖ चंद्रमा की शोभा-शीतलता को भी लज्जित करने वाले श्री चंद्रप्रभ भगवान हैं। ❖ इन्द्रिय-मन को जीतने वाले जितेन्द्रिय भी पुष्पदंत भगवान हैं। ❖ प्राण-भूत सत्व को सुख देने वाले श्री शीतलनाथ जी हैं। ❖ संपूर्ण श्रेय-सुख के कर्त्ता श्री श्रेयांसनाथ हैं। ❖ बाल ब्रह्मचारी यतियों के यतीश्वर, सर्व पूज्य श्री वासुपूज्य भगवान हैं। ❖ द्रव्य कर्म-भावकर्म-नोकर्म मल से रहित विमलनाथजी हैं। ❖ महामृत्युंजयी श्री अनंतनाथ जी हैं। ❖ धर्मध्वजा को अनंत आकाश में फहराने वाले श्री धर्मनाथजी है। ❖ अखंड धर्म के स्थापक, परम शांति के विधायक श्री शांतिनाथ जी हैं। ❖ छोटे-छोटे जीवों के रक्षक श्री कुंथुनाथजी हैं। ❖ अंतरंग-बहिरंग शत्रुओं को जीतने वाले श्री अरनाथ हैं। ❖ मोहरूपी महामल्ल को जीतने वाले श्री मल्लिनाथजी हैं। ❖ संसार समुद्र से तारने वाले महाव्रत की नाव के नाविक श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान हैं। ❖ धर्म की धुरा के धारक श्री नमिनाथ भगवान हैं। ❖ हमें परम इष्ट को देने वाले श्री नेमिनाथ भगवान हैं। ❖ उपसर्ग परीषहों में समभाव समता के विधायक श्री पार्श्वनाथ भगवान हैं। ❖ आत्मा के अनंत गुणों और आत्मीय बंधुओं की श्रीवृद्धि करने वाले श्री वर्धमान स्वामी हैं।

❖ मैं पंचकल्याणक के स्वामी, अष्ट महाप्रातिहार्य सहित, चौंतीस अतिशय वाले, 32 देवेन्द्रों से पूजित, चक्रवर्ती, नारायण-प्रतिनारायण, बलभद्र,

ऋषि, मुनि, गणधरों से वंदित, सभी तीर्थंकर भगवंतों की सदा काल अर्चना, वंदना, नमस्कार करता हूँ। मेरे कर्मों का क्षय हो, दुःखों का क्षय हो। मुझे बोधिलाभ हो, सद्गति हो, समाधिमरण हो, मुझे जिनेन्द्र भगवान के गुणों की संपत्ति का लाभ हो!!!!

❖ हे भगवान! मैं सभी पाप कर्मों की शुद्धि के लिए, पूर्वाचार्यों के अनुसार आलोचना के साथ सिद्ध भक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति, वीर भक्ति, चौबीस तीर्थंकर भक्ति करने में लगे हीनाधिक दोषों को दूर करने के लिए संपूर्ण दोषों के निरसन के लिए, सभी अतिचार-अनाचार रूप मल को धोने के लिए, आत्मा को पवित्र करने के लिए मैं समाधि भक्ति का संकल्प पूर्वक कायोत्सर्ग करता हूँ।

(नौ बार णमोकार महामंत्र का जाप)

विशेष बिन्दु

❖ यह प्रतिक्रमण रोज शाम को करें तो नियमों में दृढ़ता बनी रहे।

❖ अष्टमी-चतुर्दशी के दिन तो अवश्य करें और व्रत शुद्ध करें।

❖ प्रतिक्रमण के बाद सामायिक पाठ, जाप, ध्यान अवश्य करें।

❖ जब तक प्रतिक्रमण-सामायिक करें, तब तक सभी आरंभ-परिग्रह का त्याग करके सामायिक पर्यंत शरीर के प्रति राग-मोह का त्याग करें। पाँच पापों, चार कषायों का त्याग करें। प्राणीमात्र से क्षमा माँगें और सभी को क्षमा करके समभाव-समता भाव धारण करें।

❖ सामायिक पाठ से पहले या बाद में णमोकार मंत्र की 1-2 माला अवश्य करें।

❖ आनंद की इस यात्रा के समय केवल आत्मा-परमात्मा ही पास रहे। अन्य विकल्प अंतस में न हों तो आपका प्रतिक्रमण आपकी आत्म शुद्धि अवश्य करेगा।

❖ प्रतिक्रमण में ही शुद्धि है। पाप से मुक्ति है।

❖ प्रतिक्रमण-सामायिक आत्मा का सच्चा मित्र है, व्रतों की पूर्णता का कारण है।

❖ निर्विकल्प-निर्विचार होना ही सामायिक है, ध्यान है।

भावना

जिनके दर्शन से आत्महित का भाव जगा ऐसे परमपूज्य आचार्य श्रेष्ठ श्री विद्यासागर जी महाराज के पावन चरणों में नमन। यह लेखनी हमारे और सभी के सम्यग्ज्ञान की वृद्धि में सहायक हो। इसी भावना के साथ ...।

1. सभी जीवों के सुखी होने की भावना रखूँ।
2. मैं शीघ्र भगवान् बनूँ।
3. दूसरे की उन्नति में ईर्ष्या न करूँ।
4. विपरीतताओं में समता रखूँ।
5. प्रतिसमय अपने दोषों की निन्दा करूँ।
6. अपना अभिप्राय निर्मल रखूँ।
7. अपनी निन्दा करने वाले के प्रति समता रखूँ।
8. अपनी प्रशंसा होने पर अपने को श्रेष्ठ न समझूँ।
9. अपने विकास से कभी संतुष्ट न होऊँ।
10. सम्यग्ज्ञान के प्रति जिज्ञासु बना रहूँ।
11. सम्यग्ज्ञान का प्रसार कर अर्थ-उपार्जन का लक्ष्य न रखूँ।
12. अर्थ की दृष्टि परमार्थ से दूर कर देती है। यह दृष्टि हमेशा बनाकर रखूँ।

समाधि भावना-1

तेरी छत्रच्छाया प्रभुजी, मेरे सिर पर हो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥
जिनवाणी रस पान करूँ मैं, जिनवर को ध्याऊँ।
आर्य जनों की संगति पाऊँ, व्रत संयम चाहूँ॥
गुणी जनों के सद्गुण गाऊँ, जिनवर यह वर दो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥1॥
तेरी ....॥

पर निंदा न मुख से निकले, मधुर वचन बोलूँ।
हृदय तराजू पर हितकारी, संभाषण तौलूँ॥
आत्म तत्त्व की रहे भावना, **भाव विमल** भर दो।

मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥2॥
तेरी ....॥

जिनशासन में प्रीति बढ़ाऊँ, मिथ्यापथ छोड़ूँ।
निष्कलंक चैतन्य भावना, जिनमत से जोड़ूँ॥
जन्म - जन्म में, जैनधर्म यह, मिले कृपा कर दो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥3॥
तेरी ....॥

मरण समय गुरु पाद - मूल हों, संत समूह रहे।
जिनालयों में जिनवाणी की गंगा नित्य बहे॥
भव-भव में, संन्यास मरण हो, नाथ हाथ धर दो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥4॥
तेरी ....॥

बाल्यकाल से अब तक, मैंने जो सेवा की हो।
देना चाहो प्रभु आप तो, बस इतना फल दो॥
श्वास श्वास अंतिम श्वासों में, णमोकार भर दो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥5॥
तेरी ....॥

विषय कषायों को मैं त्यागूँ, तजूँ परिग्रह हो।
मोक्षमार्ग पर बढ़ता जाऊँ, नाथ अनुग्रह हो॥
तन पिंजर से मुझे निकालो, सिद्धालय घर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥6॥
तेरी ....॥

भद्रबाहु सम गुरु हमारे, हमें भद्रता हो।
रत्नत्रय संयम की शुचिता, हृदय सरलता दो॥
चन्द्रगुप्त सी गुरु सेवा का, पाठ हृदय भर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥7॥
तेरी ....॥

अशुभ न सोचूँ, अशुभ न चाहूँ, अशुभ नहीं देखूँ।
अशुभ न सुनूँ, अशुभ कहूँ न, अशुभ नही लेखूँ॥
शुभ चर्या हो, शुभ क्रिया हो, शुद्ध भाव भर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥8॥
तेरी ....॥

तेरे चरण कमल द्वय जिनवर रहे हृदय मेरे।
मेरा हृदय रहे सदा ही, चरणों में तेरे॥
पंडित पंडित मरण हो मेरा, ऐसा अवसर दो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥9॥
तेरी ....॥

मैंने जो जो पाप किए हों, वह सब माफ करो।
खड़ा अदालत में हूँ स्वामी, अब इंसाफ करो॥
मेरे अपराधों को गुरुवर, आज क्षमा कर दो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥10॥
तेरी ....॥

दुःख नाश हो कर्म नाश हो, बोधि लाभ भर दो।
जिन गुण से प्रभु आप भरे हो, वह मुझमे भर दो॥
यही प्रार्थना, यही भावना, पूर्ण आप कर दो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥11॥
तेरी ....॥

तेरी छत्रच्छाया प्रभुजी, मेरे सिर पर हो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥
(साभार - समाधि भावना)

मोक्ष मार्ग तो
भीतर अधिक है
बाहर कम

समाधि भाषा-2

इतना तो कर दो स्वामी, जब प्राण तन से निकले।
होवे समाधि पूरी, जब प्राण तन से निकले॥
माता-पितादि जितने, हैं ये कुटुम्ब सारे[२]
उनसे ममत्व छूटे, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो... ॥
बैरी बहुत से मेरे, होवेंगे इस जगत् में[२]
उनसे क्षमा करा लूँ, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो... ॥
परिग्रह का जाल मुझपर, फैला बहुत है स्वामी[२]
उनसे ममत्व छूटे, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो... ॥
दुष्कर्म दुःख दिखावे या रोग मुझको घेरे
प्रभु का न ध्यान छूटे, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो... ॥
इच्छा क्षुधा तृषा की, होवे जो उस घड़ी में[२]
उसका भी त्याग कर दूँ, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो... ॥
हे नाथ अर्ज करता, विनती पे ध्यान दीजे
होवे सफल मनोरथ, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो... ॥

समाधि भावना -3

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय मैं तुमको न भूल जाऊँ।।
शत्रु अगर कोई हो, सन्तुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धरकर सबसे क्षमा कराऊँ।।

त्यागूं आहार पानी औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊँ।।
जागें नहीं कषायें नहिं वेदना सतावें।
तुमसे ही लौ लगी हो दुर्ध्यान को भगाऊँ
आतम स्वरूप अथवा आराधना विचारूँ।।
अरहंत सिद्ध साधू रटना यही लगाऊँ
धर्मात्मा निकट हो चरचा धर्म सुनावें।
वे सावधान रक्खें गाफिल न होने पाऊँ।।
जीने की हो न वाञ्छा मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊँ।।
भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या पद इन्द्र का न चाहूँ।।
रत्नत्रय का पालन हो अंत में समाधि।
शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ।।

भावना दिन रात मेरी

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, व्यवहार हर-घर द्वार हो॥1॥
धर्म का परचार हो, और देश का उद्धार हो।
और यह उजड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो॥2॥
ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकास हो।
धर्म के परचार से, हिंसा का जग में ह्रास हो॥3॥
शान्ति सुख आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो॥4॥
रोग अरू भय शोक होवे, दूर है परमात्मा।
कर सके कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा॥5॥

वैराग्य भावना

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जग माहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म बिसारै नाहिं ॥1 ॥
इह विधि राज करै नरनायक, भोगे पुण्य विशालो।
सुख सागर में रमत निरन्तर, जात न जान्यो कालो ॥
एक दिवस शुभ कर्म – संजोगे, क्षेमंकर मुनि वंदे।
देखि शिरीगुरु के पदपंकज, लोचन अलि आनन्दे ॥2 ॥
तीन प्रदच्छन दे सिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु-समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दृष्टि दीनी ॥
गुरु उपदेश्यो धर्म – शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राजरमा, वनितादिक, जे रस, ते रस बेरस लागे ॥3 ॥
मुनि-सूरज कथनी किरणावलि लगत भरम बुधि भागी।
भव-तन-भोग-स्वरूप विचार्यो,परम धरम अनुरागी ॥
इह संसार महावन भीतर, भरमत ओर न आवै।
जामन मरन जरा दव दाझै जीव महादुख पावै ॥4 ॥
कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ, वधबन्धन भयकारी ॥
सुरगति में परसम्पति देखे राग उदय दुख होई।
मानुष-योनि अनेक विपतिमय, सर्वसुखी नहिं कोई ॥5 ॥
कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन – दरिद्री विलखे, कोई तन के रोगी ॥
किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किसही के दुख बाहिर दीखें, किसही उर दुचिताई ॥6 ॥
कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संततिसों दुख उपजै, क्यों प्रानी सुख सोवै ॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुख साता।
यो जगवास जथारथ देखें, सब दीखै दुखदाता ॥7 ॥
जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै।

काहे को शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागै ॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जलसों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई ॥8 ॥
सात कुधातु भरी मल -मूरत, चर्म लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है ॥
नव-मल-द्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधिउपाधि अनेक जहाँतहँ, कौन सुधी सुखपावै ॥9 ॥
पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ॥
राचन-जोग स्वरूप न याको विरचन – जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे यामें सार यही है ॥10 ॥
भोग बुरे भव रोग बढ़ावै, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके ॥
वज्र – अगिनि विष से विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म-रतन के चोर चपल अति, दुर्गति-पंथ सहाई ॥11 ॥
मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने ॥
ज्यों ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन – वांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे ॥12 ॥
मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे।
तौ भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे ॥
राजसमाज महा अघ – कारण, बैर बढ़ावन-हारा।
वेश्या सम लछमी अति चंचल, याका कौन पत्यारा ॥13 ॥
मोह-महा-रिपु बैर विचार्यो, जग-जिय संकट डारे।
घर – कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥14 ॥
छोड़े चौदह रतन नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी।

कोटि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक संपति बहुतेरी, जीरण-तृण-सम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुतकों, राज दियो बड़भागी॥15॥
होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरजधारी।
ऐसी सम्पति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी॥16॥
परिग्रहपोट उतार सब, लीनों चारित पंथ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ॥

रत्नाकर पञ्चविंशतिका

(श्री रत्नाकर सूरि विरचित) हिंदी पद्यानुवाद - श्री रामचरित उपाध्याय

शुभ-केलि के आनन्द के, धन के मनोहर धाम हो।
नरनाथ से सुरनाथ से पूजित चरण, गतकाम हो॥
सर्वज्ञ हो सर्वोच्च हो, सबसे सदा संसार में।
प्रज्ञा कला के सिन्धु हो, आदर्श हो आचार में॥1॥
संसार-दुःख के वैद्य हो, त्रैलोक्य के आधार हो।
जय श्रीश! रत्नाकर प्रभो! अनुपम कृपा-अवतार हो॥
गतराग है, विज्ञप्ति मेरी मुग्ध की सुन लीजिये।
क्योंकि प्रभो! तुम विज्ञ हो मुझको अभय वर दीजिए॥2॥
माता पिता के सामने बोली सुनाकर तोतली।
करता नहीं क्या अज्ञ बालक बाल्य-वश लीलावली॥
अपने हृदय के हाल को त्यों ही यथोचित रीति से।
मैं कह रहा हूँ, आपके आगे विनय से प्रीति से॥3॥
मैंने नहीं जग में कभी, कुछ दान दीनों को दिया।
मैं सच्चरित भी हूँ नहीं, मैंने नहीं तप भी किया॥
शुभ भावनाएँ भी हुईं, अब तक न इस संसार में।
मैं घूमता हूँ व्यर्थ ही, भ्रम से भवोदधि-धार में॥4॥

क्रोधाग्नि से मैं रातदिन हा! जल रहा हूँ हे प्रभो!
मैं लोभ नामक सांप से, काटा गया हूँ हे विभो!॥
अभिमान के खल ग्राह से, अज्ञानवश मैं ग्रस्त हूँ।
किस भाँति हो स्मृत आप, माया-जाल से मैं व्यस्त हूँ॥5॥
लोकेश! पर-हित भी किया, मैंने न दोनों लोक में।
सुख-लेश भी फिर क्यों मुझे, हो झींकता हूँ शोक में॥
जग में हमारे से नरों का, जन्म ही बस व्यर्थ है।
मानो जिनेश्वर! वह भवों की पूर्णता के अर्थ है॥6॥
प्रभु! आपने निज मुख सुधा, का दान यद्यपि दे दिया।
यह ठीक है पर चित्त ने, उसका न कुछ भी फल लिया॥
आनन्द - रस में डूबकर, सद्वृत्त वह होता नहीं।
है वज्र सा मेरा हृदय, कारण बड़ा बस है यही॥7॥
रत्नत्रयी दुष्प्राप्य है प्रभु से उसे मैंने लिया।
बहुकाल तक बहु बार जब, जग का भ्रमण मैंने किया॥
खो गया वह भी विवश, मैं नींद आलस के रहा।
बतलाइये उसके लिए, रोऊँ प्रभो! किसके यहाँ॥8॥
संसार ठगने के लिए, वैराग्य को धारण किया।
जग को रिझाने के लिए, उपदेश धर्मों का दिया॥
झगड़ा मचाने के लिए, मम जीभ पर विद्या बसी।
निर्लज्ज हो कितनी उड़ाऊँ, हे प्रभो! अपनी हँसी॥9॥
परदोष को कहकर सदा, मेरा वदन दूषित हुआ।
लख कर पराई नारियों को, हा नयन दूषित हुआ॥
मन भी मलिन है सोचकर, पर की बुराई हे प्रभो!
किस भाँति होगी लोक में, मेरी भलाई हे प्रभो॥10॥
मैंने बड़ाई निज विवशता, हो अवस्था के वशी।
भक्षक रतीश्वर से हुई, उत्पन्न जो दुख-राक्षसी॥
हा! आपके सम्मुख उसे, अति लाज से प्रकटित किया।
सर्वज्ञ! हो सब जानते, स्वयमेव संसृति की क्रिया॥11॥

अन्यान्य मन्त्रों से परम, परमेष्ठि-मंत्र हटा दिया।
सच्छास्त्र-वाक्यों को, कुशास्त्रों से दबा मैंने दिया॥
विधि-उदय को करने वृथा, मैंने कुदेवाश्रय लिया।
हे नाथ! यों भ्रमवश अहित, मैंने नहीं क्या क्या किया ॥12॥
हा, तज दिया मैंने प्रभो!, प्रत्यक्ष पाकर आपको ।
अज्ञान-वश मैंने किया, फिर देखिये किस पाप को॥
वामाक्षियों के राग में रत हो, पर सदा मरता रहा।
उनके विलासों के हृदय में, ध्यान को धरता रहा॥13॥
लखकर चपल-दृग-युवतियों, के मुख मनोहर रसमई।
जो मन-पटल पर राग भावों की मलिनता बस गई ॥
वह शास्त्रनिधि के शुद्ध जल से, भी न क्यों धोई गई ?
बतलाइए यह आप ही, मम बुद्धि तो खोई गई॥14॥
मुझमें न अपने अंग में, सौन्दर्य का आभास है।
मुझमें न गुण गण है विमल, न कला-कलाप-विलास है॥
प्रभुता न मुझमें स्वप्न को भी, चमकती है, देखिये।
तो भी भरा हूँ गर्व से, मैं मूढ़ हो किसके लिए॥15॥
हा नित्य घटती आयु है, पर पाप-मति घटती नहीं।
आई बुढ़ोती पर विषय, से कामना हटती नहीं॥
मैं यत्न करता हूँ दवा में, धर्म मैं करता नहीं ।
दुर्मोह-महिमा से ग्रसित हूँ, नाथ! बच सकता नहीं॥16॥
अघ पुण्य को भव आत्म को, मैंने कभी माना नहीं।
हो आप आगे हैं खड़े, दिननाथ से यद्यपि यहीं॥
तो भी खलों के वाक्य को, मैंने सुना कानों वृथा।
धिक्कार मुझको है, गया मम जन्म ही मानो वृथा ॥17॥
सत्पात्र-पूजन देव-पूजन, कुछ नहीं मैंने किया।
मुनिधर्म श्रावकधर्म का भी, नहिं सविधि पालन किया॥
नर - जन्म पाकर भी वृथा, ही मैं उसे खोता रहा।
मानो अकेला घोर वन में, व्यर्थ ही रोता रहा ॥18॥
प्रत्यक्ष सुखकर जिन-धरम में, प्रीति मेरी थी नहीं।

जिननाथ! मेरी देखिये, है मूढ़ता भारी यही॥
हा! कामधुक कल्पद्रुमादिक के यहाँ रहते हुए।
हमने गँवाया जन्म को, धिक्कार दुःख सहते हुए ॥19॥
मैंने न रोका रोग-दुख, संभोग - सुख देखा किया।
मन में न माना मृत्यु-भय, धन-लाभ ही लेखा किया ॥
हा! मैं अधम युवती-जनों, का ध्यान नित करता रहा।
पर नरक-कारागार से, मन में न मैं डरता रहा ॥20॥
सद्वृत्ति से मन में न मैंने, साधुता हा साधिता।
उपकार करके कीर्ति भी, मैंने नहीं कुछ अर्जिता॥
शुभतीर्थ के उद्धार आदिक, कार्य कर पाये नहीं।
नर-जन्म पारस-तुल्य निज, मैंने गँवाया व्यर्थ ही ॥21॥
शास्त्रोक्त विधि वैराग्य भी, करना मुझे आता नहीं।
खल-वाक्य भी गत क्रोध हो, सहना मुझे आता नहीं॥
अध्यात्म-विद्या है न मुझमें, है न कोई सत्कला।
फिर देव! कैसे यह भवोदधि पार होवेगा भला ॥22॥
सत्कर्म पहले जन्म में, मैंने किया कोई नहीं।
आशा नहीं जन्मान्य में, उसको करूँगा मैं कहीं॥
इस भाँति का यदि हूँ जिनेश्वर! क्यों न मुझको कष्ट हों।
संसार में फिर जन्म तीनों क्यों न मेरे नष्ट हों ॥23॥
हे पूज्य! अपने चरित को, बहुभाँति गाऊँ क्या वृथा।
कुछ भी नहीं तुमसे छिपी, है पापमय मेरी कथा॥
क्योंकि त्रिजग के रूप हो, तुम ईश हो सर्वज्ञ हो।
पथ के प्रदर्शक हो तुम्हीं, मम चित्त के मर्मज्ञ हो॥24॥
दीनोद्धारक धीर आप सा अन्य नहीं है।
कृपापात्र भी नाथ ! न मुझसा अवर कहीं है॥
तो भी माँगू नहीं धान्य धन कभी भूल कर।
अर्हन् ! केवल बोधिरत्न होवे मंगलकर॥
श्री रत्नाकर गुणगान, यह दुरित दुःख सबके हरे।
बस एक यही है प्रार्थना, मंगलमय जग को करे ॥25॥

मंगल भावना-1

रचयिताः प.पू. मुनि श्री 108 प्रमाणसागर जी महाराज

मंगल-मंगल होय जगत में, सब मंगलमय होय।
इस धरती के हर प्राणी का, मन मंगलमय होय॥
जिन गुरुवर ने धर्म दिया है, उनका मंगल होय।
जिस जननी ने जन्म दिया है, उसका मंगल होय।
पाला,पोसा और पढ़ाया, उस पिता का मंगल होय॥
मंगल-मंगल ....
कहीं कलेश का लेश रहे ना, दुःख कहीं नही होय।
मन में चिन्ता, भय ना सतावे, रोग-शोक नही होय।
नहीं बैर, अभिमान हो मन में, क्षोभ कभी नही होय।
मैत्री भाव का भाव रहे नित, मन मंगलमय होय॥
मंगल-मंगल ....
मन का सब संताप मिटे अरु, अन्तर उज्जवल होय।
राग द्वेष औ मोह मिट जाये, आतम निर्मल होय॥
प्रभु का मंगलगान करे सब, पापों का क्षय होय।
इस जगत के हर प्राणी का हर दिन, मंगलमय होय॥
मंगल-मंगल ...
गुरु हो मंगल प्रभु हो मंगल, धर्म सुमंगल होय।
मात-पिता का जीवन मंगल, परिजन मंगल होय॥
जन का मंगल, गण का मंगल, मन का मंगल होय।
राजा-प्रजा सभी का मूंगल, धरा धर्ममय होय॥
मंगल-मंगल ...
मंगलमय हो प्रातः हमारा, रात सुमंगल होय।
जीवन के हर क्षण हर पल की बात सुमंगल होय॥
घर-घर में मंगल छा जाये, जन जन मंगल होय।
इस धरती का कण-कण पावन औ सुमंगल होय॥

दोहा

सब जन में मंगल बढ़े, टले अमंगल भाव।
है 'प्रमाण' की भावना, सब में हो सद्भाव॥

बारह भावना -1

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥1॥
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोऊ न राखन हार॥2॥
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥3॥
आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यो कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय॥4॥
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय॥5॥
दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥6॥
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं॥7॥
सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमैं।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं॥8॥
ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे[1] पूरब चोर॥9॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥10॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान॥11॥
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥12॥

पाठान्तर - 1. पैठे

जाँचे सुर-तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥13॥

बारह भावना-2

अभी तक पं. भूधरदास जी द्वारा रचित बारह भावना के मात्र कुछ छन्द मिलते थे, लेकिन 100 वर्ष पुराने पूजन के संग्रह में बारह भावना के सम्पूर्ण छन्द प्राप्त हुए, जो यहाँ दिये जा रहे हैं। इस में भी बड़ी बारह भावना की तरह ही संसार, शरीर और भोगों से विरक्ति का ही उपदेश दिया गया है।

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥
अपनी-अपनी बार सर्व प्राणी जु अवशि मर जावै।
अन्य समस्त पदारथ जग में कोऊ थिर न रहावै॥
दे परवस्तु मोहवश मन में रागरु द्वेष बढ़ावै।
यातैं पर में रागरोष तज जो उत्तम पद पावै॥1॥
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोऊँ न राखनहार॥
कोऊँ न राखनहार जीव के जब अंतिम दिन आवै।
औषध यंत्र मंत्र की शरना गहे भि कोइ न बचावै॥
रत्नत्रय धर्म हि इक सरना, यही सर्व जन गावै।
तातैं सबकी सरन छार गहु, धर्म मुक्तिपद पावै॥2॥
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कबहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥
सब जग देख्यो छान, सबहि प्राणी अति दुख जु पावै।
कर्म बली नट चारू गति में, बहु विध नाच नचावै॥
गद विन तन पावै तो धन नहिं, धन पा तुरत नसावै।
तातै भवतन-भोग-राग तज, शिवमग लहि शिव जावै॥3॥

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यो कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय॥
साथी सगा न कोई मरनकर जब परभवमैं जावै।
मात पिता सुत दारा प्रिय जन कोइ न साथी आवै॥
पुण्य पाप या धर्म हि साथी, तन धन यहीं रहावै।
सुख दुख सबही इकला भुगतै इकला चहुँगति धावै॥4॥
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय॥
पर हैं परिजन लोय होय, नहिं वस्तु जाति कुल थारा।
मोहकर्मवश पर को अपने समझै सोइ गँवारा॥
तू है दर्शन ज्ञानमयी चैतन्य आतमा न्यारा।
यातैं पर जड़ त्याग आप गहि जो होवै निस्तारा॥5॥
दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥
अवर नहीं घिनगेह देह सम अशुचि पदारथ कोई।
अस्थि-मांस-मलमूत्र अशुचि सब याही तनतैं होई॥
चंदन केशर आदि वस्तु तन परसत शुचिता खोवै।
ऐसे तनमें राचि रह्यो, तब कैसे शिवमग जोवै॥6॥
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं॥
नहीं सुख या जीव को यह कर्म आस्रव नित करै।
मन वचन तन के योगतैं नित शुभ अशुभ कर्महि वरै॥
तिन करम के बंधन भये तिन उदयतैं सुख दुख लहो।
तातैं मिथ्यात प्रमाद आदिक, तजहु जातैं शिव गहो॥7॥
सतगरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमैं।
तब कछु बहहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं॥
रुकै तब ही कर्म आस्रव किये संवर चावसों।
अरु महाव्रत पन समिति गुप्ति तीन दश वृष भावसों॥

परिषह सहन अरु भावना चित चिंतये नित ही सही।
तातैं जु होवैं कर्म संवर यही जिनधुनि में कही॥8॥
ज्ञान- दीप तप - तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बनि निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर॥
बैठे पूरब चोर कर्म सब रहे देह घरमाहीं।
बारह विध तप अग्नि जलाये कर्मचोर जल जांही॥
उदय भोग सविपाक निर्जरा पकै आम तरु डाली।
तपसों ह्वै अविपाक पकावै पालाविषै जिम माली॥9॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥
धार निर्जरा सार सार संवर पूर्वक जो हो है।
यही निर्जरा सार कही अविपाक निर्जरा सो है॥
उदय भये फल देह निर्जरे सो सविपाक कहावै।
जासों जियका काज न सरि है सो सब व्यर्थ हि जावै॥10॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान॥
भरमत हैं बिन ज्ञान लोक में, कभी न हित उपजाया।
पंच परावृत करते करते सम्यग्ज्ञान न पाया॥
अब तू मोहकर्म को हरकर तज सब जग की आसा।
जिनपद ध्याय लोकशिर ऊपर करले निज थिर वासा॥11॥
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥
एक जथारथ ज्ञान सु दुर्लभ है जग में अधिकाना।
थावर त्रस दुर्लभ निगोदतैं नरतन संगति पाना॥
कुल श्रावक रत्नत्रय दुर्लभ अरु षष्ठम गुन थाना।
सबतैं दुर्लभ आतम ज्ञान सु जो जगमाँहिं प्रधाना॥12॥
जाँचे सुर-तरु देय सुख, चिन्तन चिन्ता रैन।
बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥

धर्म सकल सुखदैन रैन दिन भवि जीवन मन भाता।
षट्दर्शन ईसा मूसा महमद का मत न सुहाता॥
वीतराग सर्वज्ञ देव गुरु धर्म अहिंसा जानो।
अनेकांत सिद्धांत सप्त तत्वन को कर सरधानो॥16॥
भूधर कविकृत भावना, द्वादश जग-परधान।
तापर इक अल्पज्ञ ने, छंद रचे हित जान॥14॥

बारह भावना-3

बंदूँ श्री अरहंत - पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारहभावना, जग जीवन हित जान॥1॥
कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरत खण्ड सारा।
कहाँ गये वह राम-रु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा॥
कहाँ कृष्ण रुक्मणी सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी॥2॥
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वन को, अगनि लगी तन में॥
मोह-नींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं, गुरु बारह भावन को॥3॥

1. अनित्य भावना

सूरज चाँद छिपै निकलै ऋतु, फिर फिर कर आवै।
प्यारी आयु ऐसी बीतै, पता नहीं पावै॥
पर्वत-पतित - नदी -सरिता - जल, बहकर नहिं हटता।
स्वास चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे सों कटता॥4॥
ओस - बूँद ज्यों गलैं धूप में, वा अंजुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझै प्राणी॥
इंद्रजाल आकाश नगर सम, जग-संपति[1] सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी॥5॥

पाठान्तर - 1. संपत्ति

2. अशरण भावना

काल–सिंह ने मृग–चेतन को घेरा भव वन में।
नहीं बचावन – हारा कोई, यों समझो मन में॥
मंत्र तंत्र सेना धन संपति[1], राज पाट छूटे।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे॥6॥
चक्ररत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया॥
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूँ ही उमर खोई॥7॥

3. संसार भावना

जनम–मरन अरु जरा–रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव–परिवर्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशूगति[2], वध बंधन सहना।
राग–उदय से दुःख सुर गति में, कहाँ सुखी रहना॥8॥
भोगि पुण्य फल हो इक– इंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिनचार वही फिर, खुरपा अरु जाली॥
मानुष–जन्म अनेक विपतिमय[3], कहीं न सुख देखा।
पंचम गति सुख मिले शुभाशुभ को मेटो लेखा॥9॥

4. एकत्व भावना

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुख–दुख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन, यह देह जुदी होगी॥
कमला चलत न पैंड जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा॥10॥
ज्यों मेले में पंथी जन मिल नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा पंछी आ करते॥
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक–थक हारै।
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै॥11॥

पाठान्तर – 1. संपत्ति 2. पशुगति 3. विपत्तिमय

5. अन्यत्व भावना

मोह –रूप मृग–तृष्णा जग में, मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ उठ, दौड़े थक थककै॥
जल नहिं पावै प्राण गमावे,[1] भटक भटक मरता।
वस्तु पराई माने अपनी, भेद नहीं करता॥12॥
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले–अनादि यतन तैं बिछुडै[2], ज्यों पय अरु पानी॥
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौ–लों पौरुष थकै न तौ–लों उद्यम–सों चरना॥13॥

6. अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली।
निश दिन करे उपाय देह का, रोग– दशा फैली॥
मात – पिता – रज –वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी॥14॥
काना पौंडा पड़ा हाथ यह चूसै तो रोवै।
फलै अनंत जु धर्मध्यान की, भूमि–विषै बोवै॥
केसर चंदन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसते होय, अपावन निशदिन मल जारी॥15॥

7. आस्रव भावना

ज्यों सर–जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुद्गल भरमन को॥
भावित आस्रव भाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को।
पाप पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को॥16॥
पन–मिथ्यात योग –पन्द्रह द्वादश – अविरत जानो।
पंचरू बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो॥
मोह – भाव की ममता टारै, पर परिणति खोते।
करै मोख का यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते॥17॥

पाठान्तर – 1. गमावै 2. बिछुडे

8. संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोकै संवर, क्यों नहिं मन लाता॥
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर वचन काय मन को।
दशविध-धर्म परीषह-बाईस, बारह भावन को॥18॥
यह सब भाव सत्तावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते॥
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध - भावन - संवर भावै।
डाँट लगत यह नाव पड़ी मझधार पार जावै॥19॥

9. निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़ै भारी।
संवर रोकै कर्म निर्जरा, ह्वै सोखन हारी॥
उदय-भोग सविपाक-समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषै माली॥20॥
पहली सबके होय नहीं, कुछ सरै काज तेरा।
दूजी करै जू उद्यम करकै, मिटे जगत फेरा॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी॥21॥

10. लोक भावना

लोक अलोक आकाश माँहिं थिर, निराधार जानो।
पुरुषरूप कर - कटी भये षट्, द्रव्यन सों मानो॥
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीव रु पुद्‌गल नाचै यामैं, कर्म उपाधी है॥22॥
पाप पुण्य सों जीव जगत में, नित सुख दुख भरता।
अपनी करनी आप भरै सिर[1], औरन के धरता॥
मोह कर्म को नाश, मेटकर सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा॥23॥

पाठान्तरः 1. शिरं

11. बोधि - दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसै सो दुर्लभ प्रानी॥
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक कुल पाना।
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना॥24॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्ध भाव करना॥
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवे॥25॥

12. धर्म भावना

धर्म अहिंसा परमो धर्मः ही सच्चा जानो।
जो पर को दुख दे, सुख माने, उसे पतित मानो॥
राग द्वेष मद मोह घटा आतम रुचि प्रकटावे।
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे॥26॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिन की वानी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जामें, सबको सुखदानी॥
इनका चिंतवन बार - बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतनतैं इकदिन, भव-सागर तरना॥27॥

॥ इति सुल्तानपुर निवासी मंगतराय जी कृत बारह भावना॥

बारह भावना -4

रचयिताः मुनि श्री 108 सुव्रतसागर जी महाराज

(शुद्ध गीता)

चलो चेतन यहाँ क्या है?, हमें अब मोक्ष पाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

1. अनित्य भावना

गये राजा गये राणा, सभी को एक दिन मरना।
अमर कोई नहीं जग में, अथिर संसार का झरना॥
हमें फिर मौत न लूटे, भरम ये तो मिटाना है।

नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

2. अशरण भावना

गुरु चेला सखा बन्धु, किला सेना सुरक्षाएँ।
दवा विद्या हवन वैभव, नहीं कुछ काम में आएँ॥
बचायें ना मरण से ये, धरम साँचा ठिकाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

3. संसार भावना

महासंसार वन में हम, शुभाशुभ कर्म-फल पाते।
भटकते चार गतियों में, कहीं सुख लेश ना पाते॥
मिले सुख पाँचवी गति में, वही सत्सार धामा है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

4. एकत्व भावना

मरें जन्में अकेले हम, भटकते हैं अकेले ही।
अकेले कर्म सब करते, सहें सुख दुख अकेले ही॥
अकेली आतमा जग में, अकेले मोक्ष जाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

5. अन्यत्व भावना

परायी चीज को अपनी, कहें अज्ञान से मोही।
इन्हीं से कष्ट पाते वे, इन्हीं को त्यागते योगी॥
कहें किसको सगा अपना, सगा जब तन गँवाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

6. अशुचि भावना

मनोहर देह बाहर पर, पिटारा मैल का अन्दर।
बहे नव द्वार से मैला, लगे फिर भी हमें सुन्दर॥
तजें अनुराग तो सुख का, यहीं बनता खजाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

7. आस्त्रव भावना

शुभाशुभ भाव योगों से, शुभाशुभ कर्म आते हैं।

शुभाशुभ कर्म आतम को, दुखी करके घुमाते हैं॥
शुभाशुभ को समझ खुद को, निरास्रव बुध बनाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

8. संवर भावना

रही छेदों सहित नैय्या, भरे पानी डुबाती है।
लगे गर डाँट मोरी में, वही भव पार जाती है॥
शुभाशुभ आगमन रोके, धरम संवर सुहाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

9. निर्जरा भावना

पकाते पाल से फल ज्यों, सुखाते ताप से पानी।
सकल जब निर्जरा हो तो, मिले मुक्ति महारानी॥
हमें भी कर्म तप द्वारा, पकाकर के झड़ाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

10. लोक भावना

नहीं कर्त्ता नहीं धर्त्ता, नहीं कोई चलाता है।
पुरुष के कर कटी पर ज्यों, सहज यों लोक गाथा है॥
अनादि से इसी में ही, भटकते जीव नाना हैं।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

11. बोधिदुर्लभ भावना

महासागर में ज्यों हीरा, बड़े सौभाग्य से मिलता।
हमें वैसे मनुज जीवन, धरम साधन यहाँ मिलता॥
इसी से रत्न दुर्लभ पा, हमें आतम सजाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

12. धर्म भावना

कुदेवों को सदा त्यागो, तजो भव पाप हिंसा को।
कहा सर्वज्ञ देवों ने, धरम सच्ची अहिंसा को॥
अरे! 'सुव्रत' धरम-रथ से, हमें शिव साध्य पाना है।
नहीं संसार में फँसना, सही वैराग्य बाना है॥

बारह भावना-5

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

सखी छन्द

धन यौवन नश्वर जाना, आतम अविनश्वर माना।
मुनि वस्तु स्वरूप विचारें, पर्याय दृष्टि मन धारें ॥1 ॥
अरहंत सिद्ध गुरु शरणा, जिनधर्म सदा आचरणा।
मुनि चार शरण अपनाते, इन बिन जग अशरण पाते ॥2 ॥
इस जग में जीव सदा से, दुख पाता क्षुधा तृषा से।
मुनि भव स्वरूप पहचानें, तब शाश्वत शिवसुखमानें ॥3 ॥
दुख भोगे जीव अकेला, सारा जग स्वारथ मेला।
मुनि शिवपथ चलें अकेले, सब छूटें दुखद झमेले ॥4 ॥
आतम को आतम जानें, मुनि जड़ को जड़ पहचानें।
शुभ हंस वृत्ति मन भजते, चैतन्य गहें जड़ तजते ॥5 ॥
यह तन तो अशुचि पिटारा, पर चेतन शुचितम न्यारा।
मुनि भेदज्ञान अपनाते, निज से निज के घर जाते ॥6 ॥
मन वच तन की चंचलता, जिसमें कषाय पुट मिलता।
तब दुखमय जीवन फलता, मुनि तजते दुखदचपलता ॥7 ॥
व्रत समिति गुप्ति दश धरमा, भावन परिषह जय परमा।
इनसे आस्रव को रोकें, मुनि संवर श्री अवलोकें ॥8 ॥
मुनि द्वादश तप अपनाते, कर्मों को शीघ्र जलाते।
अविपाक निर्जरा करते, इससे झट शिवसुख वरते ॥9 ॥
जब संसारी को देखें, तब-तब मुनि निज को लेखें।
सब पूर्व दशायें मेरी, कब छूटे निशा अँधेरी ॥10 ॥
जब आधि व्याधि मिट जाती, तब बोधि समाधि सुहाती।
मुनि दुर्लभ 'केवल' पाते, नहिं लौट पुनः दुख पाते ॥11 ॥
सम्यक्त्व मूल है जिसका, सद्ज्ञान तना है उसका।
चारित्र वृक्ष जब फलता, तब मृदुमति धर्म सफलता ॥12 ॥

बारह भावना-6

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

दोहा

पर्यय अथिर विचारते, तब कर्मोदय आय।
रागद्वेष से जो बचें, उन मुनि को सिर नाय ॥1 ॥
रक्षक जग में ना रहे, बुझती जीवन जोत।
श्रमण लोक में धर्म को, मानें भव जल पोत ॥2 ॥
लख चौरासी योनि मय, चउगति मय संसार।
सन्त विचारें मोक्ष बिन, यह जग दुखद असार ॥3 ॥
जन्म जरा मृति रोग में, पाप उदय में एक।
दुःख स्वयं ही भोगता, मुनि चिन्तैं सविवेक ॥4 ॥
पुरजन परिजन दूर हों, जब हों विपद अनेक।
कोई दुख बाँटे नहीं, मुनिजन धरें विवेक ॥5 ॥
आधि व्याधि मंदिर रहा, देह अशुचि का गेह।
समाधि मंदिर जान मुनि, धरते संयम नेह ॥6 ॥
अशुभ योग अघ आस्रवै, व्रत तप शुभ सुख सेतु।
अयोगि बनते श्रमण के, नहिं आस्रव का हेतु ॥7 ॥
पन व्रत समिति त्रि गुप्ति सह, धर्म भावना सार।
परिषह चारित्र तप सहित, मुनि के संवरकार ॥8 ॥
संवर गुण के साथ ही, द्वादश तप को धार।
कर्म निर्जरा कर लहें, साधु मोक्ष का द्वार ॥9 ॥
अनंत नभ के मध्य में, लोक पुरुष आकार।
जिसमें भ्रमा अनादि से, मुनि चिन्त्यैं हितधार ॥10 ॥
दुर्लभ से दुर्लभ रहा, अपने हित का ज्ञान।
सम्यक् बोधि समाधि से, श्रमण करें कल्याण ॥11 ॥
धर्म अहर्निश जागता, जाग्रत को दे मोक्ष।
यदि प्रमाद मृदु हो करे, तब दे स्वर्ग अमोक्ष ॥12 ॥

मेरी भावना

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो ॥1॥
विषयों की आशा नहिं, जिनके साम्य भाव धन रखते हैं।
निज पर के हित साधन में जो, निशदिन तत्पर रहते हैं ॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं ॥2॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ।
परधन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ ॥3॥
अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या - भाव धरूँ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ ॥4॥
मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन - दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर - कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे ॥5॥
गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे ॥6॥
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे॥

अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे ॥7॥
होकर सुख में मग्न न फूलै दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी श्मशान -भयानक, अटवी से नहिं भय खावे॥
रहे अडोल - अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्टवियोग अनिष्टयोग में, सहनशीलता दिखलावे ॥8॥
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर - पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे॥
घर - घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत-दुष्कर हो जावे।
ज्ञानचरित उन्नत कर अपना, मनुजजन्म फल सब पावे ॥9॥
ईति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म - निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे॥
रोग - मरी -दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे ॥10॥
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे॥
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करे ॥11॥

आत्मतत्त्व भावना पाठ

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

जीव तत्त्व ही ज्ञेय है, जीव तत्त्व ही ध्येय।
जीव तत्त्व ही शुद्ध में, माने साधु उपेय॥

वीरोदधि छन्द

तर्ज- हे वीर तुम्हारे द्वारे पर इक दरश भिखारी आया है.............।

जिन जीव तत्त्व त्रय भेद कहे, जो भव्य अभवि जीवत्व रहे।
जो जग में अनादि अनंत रहे, वे जिनवर जीव अभव्य कहे ॥1॥

सो अभव्य जीव की दुख गाथा, कहने समर्थ नहिं गुरु भाषा।
कुछ अभवि सदृश ही भव्य रहे, इनके भी दुख को कौन कहे ॥2 ॥
कुछ ऐसे भव्य यहाँ जग में, अब तक न चले जो शिव मग में।
पर भवि रत्नत्रय प्रकटाता, जिससे वह शाश्वत सुख पाता ॥3 ॥
जो समता भाव सदा रखते, वे मुक्ति रमा मुख झट लखते।
अशुभोपयोग दुखकारक है, शुभ उपयोगी दुखहारक है ॥4 ॥
शुभ फूल समान बखाना है, उपयोग शुद्ध फल माना है।
जु अभाव अशुभ का शुभ मानो, पर शुभ सद्भाव शुद्ध जानो ॥5 ॥
इक को अभाव ही कारण है, शुचि को सद्भाव सुकारण है।
शुभ जानभजो तज अशुभ जान, शुद्धोपयोग ही साधु प्राण ॥6 ॥
जो विषय कषायों का पोषक, जो दुष्ट गोष्ठि दुःश्रुति तोषक।
जो दुष्ट चित्त उन्मार्गी हैं, वह उग्र अशुभ दुर्मार्गी है ॥7 ॥
जो पंच परम गुरु श्रद्धानी, जो जीव मात्र करुणा धानी।
जो सम्यक्त्वी व्रति अनगारी, वह शुभोपयोगी गुणधारी ॥8 ॥
जो विदित पदार्थ सूत्र ज्ञाता, विराग संयम तपयुत त्राता।
जो सुख-दुख में समताधारी, शुद्धोपयोग मुनि गुणधारी ॥9 ॥
अशुभोपयोग दुर्गति दाता, इक दो त्रय गुणस्थान नाता।
सो शुभोपयोग सुगति दाता, चौथे से सतगुण तक भाता ॥10 ॥
शुद्धोपयोग सत से बारा, इसका फल केवल शिवकारा।
तज हेय अशुभ, शुभ साधनकर, फिर साध्य शुद्ध आराधनकर ॥11 ॥
सिद्धान्त जान श्रद्धान करो, फिर निज में निज का ध्यान करो।
मैं कब से हूँ शुरुवात नहीं, पर दुःख अन्त मम हाथ सही ॥12 ॥
तू चेतन है उपयोगमयी, उपयोग ज्ञान औ दर्शमयी।
तन ज्ञान दर्श से शून्य रहा, गुण रूप गन्ध रस पर्श रहा ॥13 ॥
तू तन को तन पहचान सके, तो चेतन-चेतन जान सके।
जिस विध पाषाण स्वर्ण बनता, उसविध तू शुद्धसिद्ध बनता ॥14 ॥
जब रत्नत्रय संयोग करे, तब परमातम का योग वरे।
रत्नत्रय मुनि बिन नहि होता, इस विध तू जन्म व्यर्थ खोता ॥15 ॥

यदि मुनि बनना तुझे सम्भव ना, मुनि पर श्रद्धान असम्भव ना।
आलस करके तप धारा ना, तो शिव का मिले ठिकाना ना ॥16 ॥
तू काल अनादि से भटक रहा, क्यों तन साथी में अटक रहा।
तन धन यौवन तो नश्वर है, इक आत्म तत्त्व अविनश्वर है ॥17 ॥
तेरे भटकन की आदि नहीं, यदि समझ गया तो अन्त यहीं।
किंचित् विचार कर पाया तू, तो लाभ जैनकुल पाया तू ॥18 ॥
ज्यों बूँद-बूँद से घट भरता, त्यों व्रत संयम से तू बढ़ता।
नर जन्म काल जो जायेगा, रे भाग्यहीन! नहिं पायेगा ॥19 ॥
जिनको नरभव संयोग नहीं, औ जैनधर्म का योग नहीं।
ऐसे कितने जीवन देखे, पर हाय! किये तू अनदेखे ॥20 ॥
इक-इक जीवन तव दर्पण है, चिंतन करले तव नर तन है।
तुम अन्य दुखी जो देख रहे, तुम भोग चुके जिन वेद कहे ॥21 ॥
हर इक दुख लख उर, कम्पित है, हर दुख भोगा क्यों विस्मृत है।
इनको जो दुख है सोच अरे!, तुमको क्या दुख है सोच करे ॥22 ॥
यदि सुख पाने की इच्छा है, तो जैन धर्म की दीक्षा है।
अब बीते दुख नहिं पाऊँ मैं, दुख याद करूँ कँप जाऊँ मैं ॥23 ॥
जिनदेव शक्ति दो वह मुझको, गुरुदेव भक्ति दो वह मुझको।
मैं मोक्ष मार्ग पर चला करूँ, मैं अथक लक्ष्य पर बढ़ा करूँ ॥24 ॥
मैं उपसर्गों को सहन करूँ, दो बीस परीषह वहन करूँ।
मैं अष्ट कर्म की धूप करूँ, मैं ध्यान अग्नि में दहन करूँ ॥25 ॥
तप धरूँ मगर बिन आकुलता, सुख दुख में रक्खूँ मन समता।
यदि मृत्यु सामने आ जावे, तो मोक्ष लक्ष्य ही मन भावे ॥26 ॥
हे चेतन भोग विराम करो, चेतन में हो अविराम खरो।
विश्राम निकेतन आतम है, आराम केत परमातम है ॥27 ॥
चेतन का अनुभव चिन्मय है, तू क्यों पर में नित तन्मय है।
है कौन किसी का यहाँ सगा, क्या मिला नहीं है तुझे दगा ॥28 ॥
तू अजर अमर अविनाशी है, तू ही शिवसुख का वासी है।
तू अपनी क्षमता जान जरा, तो मोक्ष मिलेगा मान खरा ॥29 ॥

तू अरस अरूपी अस्पर्शी, तू अगंध अशब्द ज्ञानदर्शी।
तुझमें पर का संबंध नहीं, यह जान तप धरे, बंध नहीं ॥30॥
तू कर्म देह से भिन्न कहा, परमार्थ ज्ञान बिन दुःख लहा।
दृग ज्ञान चरित तप आराधो, तो निश्चय मोक्ष सुखद साधो ॥31॥
नारक निगोद तिर्यंच जीव, नित दुखी कु-सुर कुमनुज सदीव।
इनको नहिं दुख दूँ सुख चाहूँ, प्रतिदिन मन में जिन आराधूँ ॥32॥
शाश्वत सुख की सब बुद्धि लहें, दुर्बुद्धि तजें भव सफल करें।
सब सुखी रहें नीरोग रहें, सुख सामग्री 'मृदु' शीघ्र गहें ॥33॥

दोहा

चारों गति के दुःख से दूर सिद्ध भगवंत।
शुद्ध सिद्ध परमात्म को, नमन अनंतानंत॥
विद्यासागर सूरि से, दीक्षा शिक्षा धार।
निजानुभव से प्राप्त हो, 'मृदुमति' को शिव द्वार॥

आत्म भावना

(लय-दिन रात मेरे स्वामी...)

दिन रात सिद्ध स्वामी, हम भावना ये भायें।
शुद्धात्म आप जैसा, हम अपना शीघ्र पायें॥

1. जो भाव हैं विकारी, वो राग द्वेष सारे।
सुख शांति अपनी छीनें, दुर्भाव ज्यों हुआ रे।
वो राग-द्वेष तुम सम, हम अपने जीत पायें॥ शुद्धात्म...
2. बचपन में खेल खेले, फिर तो जवानी भोगी।
खोया बुढ़ापा तो फिर, निज प्राप्ति कैसे होगी।
इस देह में रहें पर, ज्योति विदेही पायें॥ शुद्धात्म...
3. हम सोचते सदा हैं, तुमसे ना दूर जायें।
भव कर्म रोक लेते, कैसे तुम्हें मनायें।
हम काश! आप जैसे, कर्मों को जीत पायें॥ शुद्धात्म...
4. श्रृंगार हो हमारा, अलंकार हो तुम्हारा।

उज्ज्वल स्वरूप पाने, अध्यात्म हो तुम्हारा।
आतम के रत्न तुम सम, बोलो कहाँ से पायें॥ शुद्धात्म...
5. तुम शक्ति पिण्ड घन हो, चैतन्य में मगन हो।
दर्शन तुम्हारा करने, 'सुव्रत' का भाव मन हो।
तुम एक अंक बनना, हम शून्य रूप पायें॥ शुद्धात्म...

आलोचना पाठ-1

वंदौं पाँचों परम गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरण के काज॥1॥

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काजा, तुम सरन लही जिनराजा ॥2॥
इक वे ते चउ इन्द्री वा, मनरहित-सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥3॥
समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकै, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै ॥4॥
शत आठ जु इमि भेदन तैं, अघ कीने परिछेदन तैं।
तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥5॥
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने ॥6॥
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदयाकरि भीनी।
या विधि मिथ्यात बढ़ायो, चहुँगतिमधि दोष उपायो ॥7॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनिता सों दृगजोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥8॥
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय-सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने ॥9॥
फल पंच उदम्बर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, विसयन सेये दुखकारे ॥10॥

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों-त्यों करि उदर भरायो ॥11॥
अनंतानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश गुनिये ॥12॥
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥13॥
निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय-वनधायो, नानाविध विष-फल खायो ॥14॥
आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन सोधी वस्तु जु खाई ॥15॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गयी है ॥16॥
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोस जु कीनी।
भिनभिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये ॥17॥
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रसजीवन राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उरमें करुना नहिं लीनी ॥18॥
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जाँगा चिनाई।
पुनि बिनगाल्यो जलढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो ॥19॥
हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा ॥20॥
हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामधि जे जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये ॥21॥
बींध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन-सोधि जलायो।
झाडू ले जाँगा बुहारी, चिंटियादिक जीव बिदारी ॥22॥
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि-डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥23॥
जलमल मोरिन गिरवायो, कृमिकुल बहुघात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये ॥24॥

अन्नादिक शोध कराई, तामें जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारैं धूप डराया ॥25॥
पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभ हिंसा साजे।
किये तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी ॥26॥
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिय न जाई ॥27॥
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुँजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसे करि गावै ॥28॥
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है जिन तारन विरद सही है ॥29॥
इक गाँवपती जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी ॥30॥
द्रोपदिको चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अन्तरजामी ॥31॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अन्तरजामी ॥32॥
इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निजपद दीजे ॥33॥

दोहा

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद-मंगल होय ॥34॥
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरन-शरन आनन्द ॥35॥

आलोचना पाठ - 2

पंच परमपद को सदा करता रहूँ प्रणाम।
चौबीसों जिनराज के गुण गाऊँ अभिराम ॥1॥
प्रतिदिन कर मैं आलोचन, शिव पाऊँ संकट मोचन।

बनते नित दोष घनेरे, जिन मध्य व साँझ सबेरे ॥2 ॥
इससे हम शरण तुम्हारे, आये मेटो दुख सारे।
दीनों के नाथ तुम्हीं हो, अशरण के शरण तुम्हीं हो ॥3 ॥
दुखियों को मैंने सताया, उनके दुख में सुख पाया।
उनको बहु दुःख दिलाया, फिर भी मैं नाहीं लजाया ॥4 ॥
सच बोलना पाप समझकर, ठगना पर को हँस हँसकर।
चोरी का द्रव्य जु आया, उसको रख पाप कमाया ॥5 ॥
अरु शील रतन मैं खोकर, नचता बहु परिग्रह ढोकर।
कर क्रोध किया मन माना, माया में हित पहचाना ॥6 ॥
लालच को गले लगाया, मृदुता को दूर भगाया।
मैं देव कुदेव न समझा, सबके जालों में उलझा ॥7 ॥
नदियों में पुण्य समझकर, नित स्नान किया मलमलकर।
गुरु मान नहीं गुण गाया, जिन शास्त्र नहीं सुन पाया ॥8 ॥
मन इन्द्रियों के वश होकर, करता अपना हित खोकर।
मन माना निशदिन खाया, हिंसा का पाप कमाया ॥9 ॥
पीकर छाने बिन पानी, कर बैठा मैं अनजानी।
ईर्ष्या करचित्त जलाया, विद्या मद में भरमाया ॥10 ॥
प्रभुता धन मद का प्याला, पीकर हूँ मैं मतवाला।
जिन दर्शन करना भूला, झूला मैं पाप का झूला ॥11 ॥
करुणा का भाव न जागा, समता में चित्त न पागा।
मैत्री कर पुण्य न पाया, कर दान नहीं हर्षाया ॥12 ॥
पर का उपकार न बनता, सुख में इस हेतु कठिनता।
प्रभु मेरी ऐसी मति हो, शुभकर्म करूँ शुभ गति हो ॥13 ॥
जिनधर्म का तेज बढ़ाऊँ, सुखिया जग को मैं पाऊँ।
सबके सुख में सुख मानूँ, निज जन्म सफल तब मानूँ ॥14 ॥

तुम ही शंकर विष्णु हो, ब्रह्मा बुद्ध जिनेश।
विघ्न जाल काटो पतित, मैं हूँ तुम पतितेश ॥

दोष-आलोचना

हे नाथ! मैंने प्रमादवश, हो दोष भारी जो किये।
इसी कारण पाप ने है, दुक्ख मुझको बहु दिये ॥1 ॥
अब शरण आया मैं तुम्हारी, दोष मेरे दूर हों।
कर दरश प्रभुजी आपका, मिथ्यात्व मेरे चूर हों ॥2 ॥
संकट सहूँ निर्भय बनूँ, आशीष यदि हो आपका।
दे दो चरण-रज आपकी, तो नाश होवे पाप का ॥3 ॥
गृहकार्य संबंधी क्रिया में, मुझसे हुई हिंसा महा।
मन-वचन अरु काय से ना, की दया मैंने अहा ॥4 ॥
स्वार्थवश मैंने न जाने, पाप कितने हैं किये।
खुद बचाया आपको, और कष्ट दूजे को दिये ॥5 ॥
इन्द्रियों का दास बन मैं, हूँ गया इनसे ठगा।
इसलिए यह पाप मुझको, दे रहा क्षण-क्षण दगा ॥6 ॥
देव जिनवाणी सुगुरु की, भक्ति नित करता रहूँ।
शक्ति दो हे नाथ! मुझको, मैं दिगंबर व्रत लहूँ ॥7 ॥

आत्मालोचना

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

दोहा

देव शास्त्र गुरु की कभी, यदि अविनय की होय।
तो इन तीनों के निकट, निज निन्दा अघ खोय॥

ज्ञानोदधि

देव शास्त्र गुरु की शरणा को, पूर्ण तरह से पाऊँ मैं।
भवसागर को धर्मनाव से, तिर शिवपुर को जाऊँ मैं ॥ध्रुव॥
वीतराग सर्वज्ञ बोध में, त्रिलोक सह नभ झलक रहा।
उसमें मेरा भूत भावि युत, वर्तमान भी झलक रहा॥
सच्चा भक्त बनूँ जब जिनवर, तब तव थुतिकर पाऊँ मैं।
भव सागर को धर्म नाव से, तिर शिवपुर को जाऊँ मैं ॥1 ॥

क्या था क्या हूँ क्या होऊँ मैं, अब क्या हूँ मैं तुम जानो,
जो जो कर्म किये हैं मैंने, पुण्य पाप सब पहचानो।
यदि न छिपाऊँ दोष आपसे, तो पवित्र हो जाऊँ मैं,
भव सागर को धर्म नाव से, तिर शिवपुर को जाऊँ मैं ॥2 ॥
देव! आप निर्दोष रहे हो, मैं सब दोषों का भण्डार,
एक एक यदि दोष कहूँ तो, बीते काल अनंत अपार।
जब तन मन से सत्य कहूँ तो, प्रभु सद्गति को पाऊँ मैं,
भव सागर को धर्म नाव से, तिर शिवपुर को जाऊँ मैं ॥3 ॥
समवसरण में पहुँचा भी तो, उपदेशों को सुना नहीं,
सुनने पर भी मैं नहिं माना, आदेशों को गुना नहीं।
अब जिनधर्म हृदय में धारा, तो शाश्वत् सुख पाऊँ मैं,
भव सागर को धर्म नाव से, तिर शिवपुर को जाऊँ मैं ॥4 ॥
जिनवाणी के पेज पलटकर, कितने पन्ने फाड़ दिये,
लोग मुझे स्वाध्यायी कहते, क्योंकि शास्त्र की आड़ लिये।
हे माँ! मुझको डाँट लगाओ, दुर्गति से बच जाऊँ मैं,
हे जिनवाणी माता! तेरी, सच्ची शरणा पाऊँ मैं ॥5 ॥
चिन्तन मन्थन लेखन मैंने, केवल पर के लिए किये,
पुल की तरह रहा भवदधि में, नहिं नौका बन कभी जिये।
हे शारद! अँगुली पकड़ो तो, गिरने से बच जाऊँ मैं,
हे जिनवाणी माता! तेरी, सच्ची शरणा पाऊँ मैं ॥6 ॥
माँ कहती है विपदाओं में, महापुरुष से शिक्षा लो,
धैर्य धरो या सभी त्याग कर, श्री गुरुवर से दीक्षा लो।
यदि वैराग्य सहित दीक्षा ली, तो सार्थक हो जाऊँ मैं,
हे जिनवाणी माता! तेरी, सच्ची शरणा पाऊँ मैं ॥7 ॥
यदि पुरुषार्थ सिद्ध ना हो तो, माँ कहती निज कृत्य लखो,
स्वयं किये का फल समता धर, तत्त्वज्ञान से नित्य चखो।
यदि माँ के अनुसार चलूँ तो, बन्धन से बच जाऊँ मैं,
हे जिनवाणी माता! तेरी, सच्ची शरणा पाऊँ मैं ॥8 ॥
जिनवाणी माँ कहती मुझसे, देख भाल चलना प्यारे,

जीवदया आधार धर्म से, शिवसुख मिलता सुन वारे।
यदि चारित्र चरण में गति की, तो पंचमगति पाऊँ मैं,
हे जिनवाणी माता! तेरी, सच्ची शरणा पाऊँ मैं ॥9 ॥
इष्ट वियोगों में जब रोया, तब तू मुझको समझाती,
देह विनश्वर तू अविनश्वर, चेतन शाश्वत बतलताी।
यदि पर्यायों में ना उलझूँ, तो अक्षय निधि पाऊँ मैं,
हे जिनवाणी माता! तेरी, सच्ची शरणा पाऊँ मैं ॥10 ॥
जब संसार दुःखमय जाना, तब गुरु चरणों में आया,
शिवपुर का पथ कठिन जानकर, घर से निकल नहीं पाया।
दो मुख पंथी सम गति छोड़ूँ, तो शिवपुर को पाऊँ मैं,
गुरुवर मुझ पर कृपा करो तो, झट तुम सम बन जाऊँ मैं ॥11 ॥
कभी जैन पथ को अपनाया, किन्तु नहीं दृढ़ता आयी,
भव सुख इच्छा तजी नहीं तो, यह यात्रा निष्फल गायी।
यदि सम्यक् रत्नत्रय धारा, तो शिव मंजिल पाऊँ मैं,
गुरुवर मुझ पर कृपा करो तो झट तुम सम बन जाऊँ मैं ॥12 ॥
ख्याति लाभ के अंधकार में, नहिं गुरु आज्ञा बोध रहा,
बोध बिना फिर निज के हित का, कैसे होता शोध महाँ।
दुख का पंथ पाप को छोड़ूँ, तो आत्मिक सुख पाऊँ मैं,
गुरुवर मुझ पर कृपा करो तो झट तुम सम बन जाऊँ मैं ॥13 ॥
गुरु कहते हे भव्य! सुनो तुम, जब संसार असार लगे,
तब तेरी शिवमार्ग भ्रान्तियाँ, रवि से तम सम शीघ्र भगें।
भव तन भोग विराग धरा तो, सच्चा शिवपथ पाऊँ मैं,
गुरुवर मुझ पर कृपा करो तो झट तुम सम बन जाऊँ मैं ॥14 ॥
वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, सच्चे देव हमारे हैं,
जिनवाणी जग जन कल्याणी, गुरु निर्ग्रन्थ सहारे हैं।
देव शास्त्र गुरु की शरणा को, पूर्ण तरह से पाऊँ मैं,
रत्नत्रय की दृढ़ नौका से, 'मृदुमति' हो तिर जाऊँ मैं ॥15 ॥
देव शास्त्र गुरु की शरणा को, पूर्ण तरह से पाऊँ मैं।
भवसागर को धर्मनाव से, तिर शिवपुर को जाऊँ मैं ॥

अपनी आलोचना

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

गीतिका छंद (14-12 मात्रिक)

(तर्ज - अपनी आजादी को हम .....)

आप्त श्रुत गुरु की शरण में, मैं अभागा आ गया।
दुःख सागर से निकलने, आपका पथ भा गया॥
दुःख सागर से निकलने ..... ॥ध्रुव॥
वीतरागी वीतमोही, वीतद्वेषी हे प्रभो!
सर्व-दर्शी सर्व-ज्ञानी, सर्व-हर्षी हे विभो!
मैं निजी बीती कथा को, अब सुनाने आ गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥1॥
भव दुःखों का रोग हरने, वैद्य सम आधार हो।
सर्व जीवों की व्यथा को, मेंटने अवतार हो॥
बाल सम पीड़ा बताने, तात के घर आ गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥2॥
मैं हृदय के हाल को सच, ही बताता रीति से।
आप बिन कोई न मेरा, कह रहा हूँ प्रीति से॥
बाल सम निश्छल मना हो, मात के घर आ गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥3॥
नहीं मैंने दान दीना, नहीं मैंने तप किया।
भावनायें शुभ न भायीं, नहीं मैंने व्रत किया॥
मैं अनर्थों को सुनाने, नाथ के दर आ गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥4॥
क्रोध ज्वाला में जला, अहि लोभ से काटा गया।
मान की गिरि से गिरा, अज्ञान से मारा गया॥
नहीं निज का हित किया मैं, यह समझ में आ गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥5॥

वज्र सा मेरा हृदय था, दया का ना नाम था।
पाप अत्याचार करके, मैं सदा बदनाम था॥
क्रूरता की चरमता से, नरक जाकर आ गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥6॥
मोक्ष सुख का लक्ष्य लेकर, ना प्रभो! दीक्षा धरी।
साधु संगति दान पूजा, आत्म हित में ना करी॥
स्वयं को छल दुःख पशु के, भोग कर मैं आ गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥7॥
काम वश नर नारियाँ लख, नेत्र को दूषित किया।
और उनका ध्यान करके, चित्त संक्लेशित किया॥
मोह के वश छोड़ चारित, सुपथ से गिरता गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥8॥
आयु घटती है प्रभो! पर, पाप मति घटती नहीं।
है बुढ़ापे की तरफ पर, कामना हटती नहीं।
कर्म के वश नर जन्म ले, जिन चरण में आ गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥9॥
लोक सुख की कामना से, मंत्र को पढ़ता रहा।
पाप क्षय कारण न जाना, भूल को करता रहा॥
जैन शासन प्राप्त कर भी, मूढ़ मति होता गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥10॥
भव-भवों में सुगुरु के बिन, मोक्ष पथ ना मिल सका।
सुपथ को मैं अहित माना, मोक्ष सुख ना खिल सका॥
आप हैं सर्वस्व मेरे, मोक्ष पाने आ गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥11॥
रत्नत्रय का पथ दिखाओ! , मैं नहीं कुछ जानता।
मूलगुण माला बताओ!, मैं नहीं पहचानता॥
आत्म विद्या सीखने को, गुरु शरण में आ गया।
दुःख सागर से निकलने ..... ॥12॥

हर समय संकेत देना, चूकता हूँ यदि प्रभो!
सतत गिरने से बचाना, भूलता हूँ यदि विभो!
आपका विश्वास करके, आज तुम ढिग आ गया।
दुःख सागर से निकलने .....॥13॥
आत्म बोधि समाधि पाऊँ, जिन गुणों की संपदा।
जन्म-जन्मों से घिरी जो, छूट जाये आपदा॥
मैं अमर बनने सदा को, पास तेरे आ गया।
दुःख सागर से निकलने .....॥14॥
अब नहीं तुमको छलूँ मैं, ना छलूँ खुद आप को।
बाल सम निश्छल बनाऊँ, हे प्रभो! मैं आत्म को॥
जैन शासन का सही पथ, मृदुल उर को भा गया।
दुःख सागर से निकलने .....॥15॥
आप्त श्रुत गुरु की शरण में, मैं अभागा आ गया।
दुःख सागर से निकलने, आप का पथ भा गया॥

प्रायश्चित पाठ

(दिन रात मेरे ....)

शत शत प्रणाम करते, आशीष हमको देना।
दोषों को दूर करके, अपराध क्षम्य करना॥1॥
मन से वचन से तन से, अपराध पाप करते।
कृत कारितानुमत से, दुख, शोक, क्लेश सहते॥2॥
चारों कषाय करके, निज रूप को भुलाया।
आलस्य भाव करके, बहु जीव को सताया॥3॥
भोजन शयन गमन में, पापों का बंध बाँधा।
अज्ञान भाव द्वारा, अज्ञात पाप बाँधा॥4॥
दिन रात और क्षण क्षण, अपराध हो रहे हैं।
इस बोझ से दबे हम, पापों को ढो रहे हैं॥5॥
गुरुदेव की शरण में, प्रायश्चित लेने आये।
मुक्ती का राज पाने, भव रोग को नशाये॥6॥

प्रशस्ति

ज्ञानोदय

अकलंक ने सौंदा मठ में, जिनशासन की रक्षा की।
बौद्धमती से वाद जीतकर, जैनधर्म की शिक्षा दी॥
यहीं हुई यह सिद्धक्षेत्र की, पूर्ण वंदना प्यारी है।
पढ़ो सुनो हे भव्य जनो, यदि चाहो सुख की क्यारी है॥28॥
माघ शुक्ल की पंचमी, सूर्यवार इकतीस।
वीर मोक्ष पच्चीस सौ, पूर्ण हुई थुति ईश॥29॥

आत्म स्वरूप चिंतन

शुद्धोऽहं।
निरंजनोऽहं।
आनंद स्वरूपोऽहं।
अनंतस्वरूपोऽहं।
केवलज्ञान स्वरूपोऽहं।
द्रव्यकर्मरहितोऽहं।
मिथ्यात्व रहितोऽहं।
सोऽहं सोऽहं सोऽहं।
बुद्धोऽहं।
प्रशांतोऽहं।
नित्यानंद स्वरूपोऽहं।
शल्यत्रय रहितोऽहं।
भावकर्मरहितोऽहं।
अनंतज्ञान स्वरूपोऽहं।
ज्ञानानंद स्वरूपोऽहं।
सोऽहं सोऽहं सोऽहं।
समाहिमरणं होउ मज्झं।

समाधिमरण पाठ-1

नरेन्द्र छन्द

बन्दौं श्री अरिहंत परम गुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई॥
अब मैं अरज करौं प्रभु तुम से, कर समाधि उर माँहीं।
अन्त समय में यह वर मागूँ, सो दीजै जगराई॥1॥
भव-भव में तनधार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो।
भव-भव में नृपरिद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो॥
भव-भव में तन पुरुष तनों धर, नारी हूँ तन लीनों।
भव-भव में मैं भयो नपुंसक, आतम सुख नहिं चीनों॥2॥
भव-भव में सुर पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव-भव में गति नरकतनी धर, दुख पायो विधि योगे॥
भव-भव में तिर्यंच योनि धर, पायो दुख अति भारी।
भव-भव में साधर्मीजन को, संग मिलो हितकारी॥3॥
भव-भव में जिन पूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो।
भव-भव में मैं समवसरण में, देखो जिनगुण भीनो॥
ऐसी वस्तु मिली भव-भव में, सम्यक् गुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो॥4॥
काल अनादि गयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो।
एक बार हू सम्यक् युत मैं, निज आतम नहिं चीनो॥
जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काई।
देह विनाशी मैं निजवासी, ज्योति स्वरूप सदाई॥5॥
विषय कषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो॥
यो कलेश हिय मरणकर, चारों गति भरमायो।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो॥6॥
अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगों।
रोग जनित पीड़ा मत हूवो, अरु कषाय मत जागो॥

ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजै।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यामद छीजै॥7॥
यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै॥
अतिदुर्गन्ध अपावन सों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै।
देह विनाशी, जिय अविनाशी नित्य स्वरूप कहावै॥8॥
यह तन जीर्ण कुटी सम आतम! यातैं प्रीति न कीजै।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजै॥
मृत्यु भये से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभतन तुम पावो॥9॥
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माँहीं।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम काहू नाहीं॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजै॥10॥
जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई॥
राग द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समय में समता धारो, परभव पंथ सहाई॥11॥
कर्म महा दुठ बैरी मेरो, ता सेती दुख पावै।
तन पिंजर में बंद कियो मोहि, वासों कौन छुड़ावै॥
भूख तृशा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजर सों काढ़े॥12॥
नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गन्ध-सुगन्धित अतर लगाये, षट्रस अशन कराये॥
रात दिन मैं दास होय कर, सेव करी तन केरी।
सो तन तेरे काम न आवे, भूल रह्यो निधि मेरी॥13॥
मृत्युराज को शरन पाय, तन नूतन ऐसो पाऊँ।
जामें सम्यक्रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ॥

देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाँहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई ॥14॥
यह सब मोह बढ़ावन हारे, जिय को दुर्गति दाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पत्ति तेती ॥15॥
चौ-आराधन सहित प्राण तज, तो ये पदवी पाओ।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग मुकति में जावो॥
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारे।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥16॥
इस तन में क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन हो है।
तेज कान्ति बल नित्य घटत है, या सम अपर सु को है॥
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै।
तापर भी ममता नहिं छोड़ै, समता उर नहिं लावे ॥17॥
मृत्युराज उपकारी जिय को, तनसों तोहि छुड़ावै।
नातर या तन बन्दीगृह में, पर्‌यो पर्‌यो विललावे॥
पुद्‌गल के परमाणु मिलकैं, पिण्डरूप तन भासी।
या है मूरत मैं अमूरती, ज्ञान जोति गुण खासी ॥18॥
रोग शोक आदि जो वेदन, ते सब पुद्‌गल लारे।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे॥
या तन सों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है।
खानपान दे याको पोषो, अब समभाव ठन्यो है ॥19॥
मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपना जान्यो।
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो॥
तन विनाश तें नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई।
कुटुम आदि को अपनो जानो, भूल अनादी छाई ॥20॥
अब निज भेद जथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
उपजै विनसै सो यह पुद्‌गल, जानो याको रूपी॥

इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्‌गल लागे।
मैं जब अपनो रूप विचारों, तब वे सब दुख भागे ॥21॥
बिन समता तन नैक धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो।
शस्त्र घाततैं नेक बार मर, नाना योनि भ्रमायो॥
बार अनन्त ही अग्नि माँहिं जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहिनैक बार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥22॥
बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराज को भय नहिं मानों, देवै तन सुखदाई॥
यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप-तप कीजै।
जप-तप बिन इस जग के माँहीं, कोई भी नहिं सीजै ॥23॥
स्वर्ग सम्पदा तप सों पावै, तप सों कर्म नसावै।
तप ही सों शिवकामिनि पति ह्वै, यासों तप चित लावै॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
मात-पिता सुत बाँधव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ॥24॥
मृत्यु समय में मोह करें, ये तातैं आरत हो है।
आरत तैं गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है॥
और परिग्रह जेते जग में तिनसों प्रीत न कीजै।
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजै ॥25॥
जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो॥
जो परभव में संग चलै तुझ, तिन सों प्रीत सो कीजै।
पञ्च पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजै ॥26॥
दशलक्षण मय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो।
षोडशकारण को नित चिन्तो, द्वादश भावन भावो॥
चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयम सों अनुरागो ॥27॥
अन्त समय में यह शुभ भावहिं, होवैं आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देहिं अधिकाई॥

खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाके।
जा सेती गति चार दूर कर, बसो मोक्षपुर जाके ॥28॥
मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ-आराधन भाई।
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितू कोउ नाहीं॥
आगैं बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी ॥29॥
तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सुनो भव्य चित लाके।
भाव सहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न जाके॥
अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावै।
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यानहिये विच लावै ॥30॥
धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी युगबालक युत पाँव भख्यो दुखकारी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव भारी ॥31॥
धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे ना, आतम सों हित लायो ॥32॥
देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगनि बहु धारी।
शीश जले जिमि लकड़ी तिनको, तो भी नाहिं चिगारी ॥33॥
सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ठ वेदना व्यापी।
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिंत्यो गुण आपी ॥34॥
श्रेणिक सुत गंगा में डूब्यो, तब जिननाम चितारयो।
धर सल्लेखना परिग्रह छोड्यो, शुद्ध भाव उर धारयो ॥35॥
समन्तभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
ता दुख में मुनि नेक न डिगियो, चिंत्यो निजगुण भाई ॥36॥
ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशाम्बी तट जानो।
नदी में मुनि बहकर डूवे, सो दुख उन नहिं मानो ॥37॥
धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो ॥38॥

श्री दत्त मुनि को पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुख शीत तनो सो, सह्यो साधु मन लाके ॥39॥
वृषभसेन मुनि उष्णशिला पर, ध्यान धर्यो मन लाई।
सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की वेदन सहि अधिकाई ॥40॥
अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई।
शत्रु चण्ड ने सब तन छेदो, दुख दीनो अधिकाई ॥41॥
विद्युतवर ने ने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी।
शुभ भावन से प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी ॥42॥
पुत्र चिलाती नामा मुनि को, वैरी ने तन घातो।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो ॥43॥
दण्डक नामा मुनि की देही बाणन कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी ॥44॥
अभिनन्दन मुनि आदि पाँचसौ, घानी पेलि जु मारे।
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरब कर्म विचारे ॥45॥
चाणक मुनि गोगृह के माँहीं, मूँद अगिनि परजाल्लो।
श्री गुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हाल्यो ॥46॥
सात शतक मुनिवर दुख पायो, हस्तिनापुर में जानो।
बलि विप्रकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो ॥47॥
लोह मयी आभूषण गढ़ के, ताते कर पहराये।
पाँचों पाण्डव मुनि के तन में, तौ भी नाहिं चिगाये ॥48॥
और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी।
वे ही हमको हों सुखदाता, हर हैं टेक प्रमादी॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन-तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोंको सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारों ॥49॥
यों समाधि उर माँहीं लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद को, जोति स्वरूपी ध्यावो॥
जो कोई नित करै पयानो, ग्रामान्तर के काजे।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजे ॥50॥

मात-पितादिक अरु सर्व कुटुम मिल, नीके शकुन बनावै।
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै॥
एक ग्राम के कारण, एते करें शकुन शुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे॥51॥
सर्वकुटुम जब रोवन लागे, तोहि रुलावे सारे।
ये अपशकुन करे सुन तोकौ, तू यों क्यों न विचारे॥
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्म ध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो मोह तनो दुख हानो॥52॥
होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो।
जब परगति को करहु पयानो, परमतत्त्व उर लावो॥
मोह जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मित्र मृत्यु उपकारी तेरो, यों निश्चय उर धारो॥53॥

दोहा

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिमान।
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द्र शिवथान॥54॥
पञ्च उभय नव एक नभ, संवत सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय॥55॥

शुभ भावना

पुण्य नहीं कीना है मैंने, पूर्व जन्म में हे भगवान्।
वर्तमान भी ऐसा बीता, जैसे ढलता सूर्य महान्॥1॥
बीते आगामी अब कैसा, कब होगा मेरा उद्धार।
भगवन तुमको आज पुकारूँ, कर दो मेरा बेड़ा पार॥2॥
धन्य हुए प्रभु नयन हमारे, आज आपके दर्शन से।
धन्य हो गया दिवस हमारा, आज आपके वंदन से॥3॥
धन्य हो गया जीवन मेरा, तेरे पथ को पाऊँगा।
सिद्धालय में जाकर के फिर वापस कभी ना आऊँगा॥4॥
सागर में गिर जाये रतन तो, फिर मिल पाना मुश्किल है।

वैसे ही नर जन्म गया तो फिर मिल पाना मुश्किल है॥5॥
सात व्यसन और चार कषायें ये ही दुःख का कारण हैं।
जिनने इनसे नाता तोड़ा, वे ही पायें शिवधन हैं॥6॥
हम सबकी हो यही भावना, मेरा देश महान् बने।
भारत का हर बच्चा - बच्चा, महावीर और राम बने॥7॥
नाम तुम्हारा तारणहारा कब तेरा दर्शन होगा।
तेरी प्रतिमा इतनी सुंदर तू कितना सुंदर होगा॥8॥
जब जनम हो दुबारा मानव जनम मिले।
फिर से यही जिनालय जिनवर शरण मिले॥9॥
जब जनम हो दुबारा मानव जनम मिले।
फिर से यही हो आगम, आगम शरण मिले॥10॥
जब जनम हो दुबारा मानव जनम मिले।
फिर से यही हो गुरुवर, गुरुवर शरण मिले॥11॥
हे प्रभो आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को, दूर हमसे कीजिए॥
लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी धर्म - रक्षक, वीर व्रतधारी बनें॥12॥

मृत्यु महोत्सव

पद्यानुवाद- क्षुल्लक श्री 105 ध्यानसागर जी महाराज

जीर्ण हुई मम जीवन-रेखा, आज अतः मेरे स्वामी।
हुआ मृत्यु की ओर अग्रसर, बन करके शिवपथगामी॥
जब तक मोक्ष-नगर ना आए, मुझे मार्ग का व्यय देना।
देना बोधि-समाधि साधना, काया में कितना रहना? ॥1॥
कृमि-गण-पूरित, जरा जर्जरित, कारा है मानव-काया।
अपने कर्म-उदय के कारण, मैंने यह बन्धन पाया॥
यदि यह नश्वर नष्ट हो रही, मैं काहे को घबराऊँ?

मैं हूँ ज्ञानशरीरी चेतन क्यों समाधि ना अपनाऊँ? ॥2॥
जब कोई जन धूम-धाम से, अन्य-नगर रहने जाता।
नव-निवास के शुभ-अवसर पर, वह न तनिक भी घबराता॥
मृत्यु-महोत्सव की बेला में, ज्ञानी! तुमको भय कैसा ?
आत्मलीन चेतन को नूतन, तन मिलता कंचन जैसा ॥3॥
सत्पुरुषों ने सत्पात्रों को जो - जो उत्तम दान दिया।
स्वर्ग-सुखों के संग उसे फिर मृत्यु-कृपा से प्राप्त किया॥
तब सज्जन क्यों डरे मृत्यु से, जो चेतन को हितकारी ?
इष्ट-प्रदाता को इस जग में, कौन कहेगा अपकारी ? ॥4॥
तन-पिंजरे में पड़ी हुई है, आत्मा गर्भ-अवस्था से।
आकुल-व्याकुल है इस तन की, कर्माधीन-व्यवस्था से॥
ज्यों बन्दी को बन्दी-गृह से, राजा बन्धन-मुक्त करे।
मृत्युराज बिन तन-बन्धन से कौन मुझे निर्मुक्त करे ? ॥5॥
नर-तन पा नर नर्तन करता, कारण यह मोही-मन है।
सब दुःखों को देने वाला, दुष्ट-पिण्ड यह नर-तन है॥
इसी पिण्ड से पिण्ड छुड़ाकर, मृत्यु-सखा सुख देता है।
आत्मदर्शियों से प्रतिफल में, स्वयं नहीं कुछ लेता है॥6॥
जिसको अवसर प्राप्त न होता, उसे न कोई चारा है।
पर जो अवसर पाकर खोता, वह दुर्मति का मारा है॥
मृत्यु-कल्पतरु को पाकर भी, जो हित-साधन ना करता।
वह बिगाड़ता निज-भविष्य को, जन्म-पंक से ना तरता॥7॥
जीर्ण-शीर्ण देहादिक सारे, जिससे नूतन हो जाते।
उसी मृत्यु से मोही प्राणी, ना जाने क्यूँ घबराते॥
पुण्य-कर्म का उदय मनुज को, ज्यों प्रमोद से भरता है।
देह-छूटना सत्पुरुषों को, त्यों आनंदित करता है॥8॥
देह - निवासी चेतन अपने, सुख-दुख को देखे जाने।
और किसी दिन इसी देह से, स्वयं निकलने की ठाने॥
स्वेच्छा से जाने वाला क्या, कभी, कहीं घबराता है ?

न सल्लेखनाधारी नर को, यम कंपित कर पाता है॥9॥
छोड़ न पाते विषय-सुखों को, जब छूटें, तब डरते हैं।
जो संसारासक्त बने वे, डरते - डरते मरते हैं॥
लेकिन ज्ञान - विराग-निवासी, अनासक्त होते जाते।
और अन्त में हर्षित-मन हो, मृत्यु-महोत्सव को पाते॥10॥
पूजा, दान, पठन शास्त्रों का, जप, तप, सेवा गुरु जन की।
दीन-दुखी जीवों पर करुणा, विधि है पुण्य उपार्जन की॥
अपना अर्जित पुण्य देखने, जब चेतन तन से जाता।
पंचभूत के प्रपंच से तब, कोई रोक नहीं पाता॥11॥
मृत्यु-काल में सत्पुरुषों को जो पीड़ा उठ आती है।
कर्म-जनित कुछ तीव्र व्याधियाँ आकुलता उपजाती है॥
मैं तो मानूँ यह पीड़ा ही देह - मोह को दूर करे।
समता का अवसर प्रदान कर शिव-सुख से भरपूर करे॥12॥
ज्यों घट देता अग्नि-परीक्षा, फिर जल-धारी बन पाता।
मृत्यु-परीक्षा देकर ज्ञानी, त्यों ही शिवपुर को जाता॥
शीतलताधारी होना हो, तो आवश्यक है तपना।
मृत्यु-ताप से कातर-जन को, मोक्ष सदा रहता सपना॥13॥
सज्जन और विवेकी मानव, पाप - पंक से डरते हैं।
अतः व्रतों को धारण करके, उनका पालन करते हैं॥
इस उद्यम का जो फल होता, उसको वह नर भी पाता।
जो बड़भागी मरण-काल में, सत्समाधि को अपनाता॥14॥
जो नर शान्त-निराकुल होता, मरकर कष्ट नहीं पाता।
पशु-गति में वह जन्म न लेता, नरकों में भी ना जाता॥
मरण-काल को निकट जानकर, जलाहार भी जो छोड़े।
धर्म-ध्यान करके वह नाता, स्वयं इन्द्र-पद से जोड़े॥15॥
तपे हुए तप का जो फल है, व्रत-पालन का अन्य नहीं।
और पढ़ा जो धर्म-शास्त्र को, उसका फल भी एक वही॥
सकल-धर्म का वह अनुपम फल, प्रभुवर ने भव-हरण कहा।

जीवन मन्दिर, उच्च-शिखर व्रत, स्वर्ण-कलश सन्मरण महा ॥16॥
जहाँ-कहीं अति-परिचय होता, वहाँ अवज्ञा हो जाती।
कहें दूर के ढोल सुहाने, प्रीति नए पर ही आती॥
करो भव्य ! चरितार्थ कहावत, जीर्ण-देह को जाने दो।
होकर अभय अहो! चेतन को, अब नूतन-तन पाने दो ॥17॥
सुरपति का साम्राज्य भोग कर नर-भव सुकुल सुयश पाते।
दान-पुण्य में अभिवांछित-धन प्रभु-भक्तों पर बरसाते॥
सुख-समृद्धि में जीवन के दिन मानों पल में कट जाते।
भव का नाटक छोड़ अन्त में सन्त स्वयं शिव-पद पाते ॥18॥

समाधि भावना-1

तर्ज : आत्म शक्ति से ओतप्रोत

नहीं डरुँ मैं मरने से पर, मरण समाधि भर हो,
हे प्रभु तेरा दर हो ॥
संवेदनमय श्रुत नयनों से, केवलज्ञानी ध्याऊँ। ऑ .... ऑ ...
सदा शास्त्र अभ्यास करूँ मैं, सन्त समागम चाहूँ॥
साधुजनों के गुण गाऊँ पर दोष कभी न मुखर हो,
नमन करुँउ जिनवर का ॥ नहीं ...
सबसे हित-मित प्रिय मैं बोलू, आत्म भावना भाऊँ। ऑ... ऑ...
मोक्षमार्ग से प्रीति बढ़ाऊँ, जिनवर के गुण गाऊँ॥
जब तक मुझको मिले मोक्ष ना, विमल भावना भर दो,
भव-भव में राह वर दो॥ नहीं ...
गुरु मुनि यतियों प्रभु चरणों में, जिन माँ की गोद में। ऑ... ऑ...
हो सन्यास मरण भव-भव में, जय- जय की बोधि में॥
जनम मरण के पाप हेतु जो, स्वामी मेरे हर लो,
दर्शन का अवसर दो ॥ नहीं .....
कल्पवृक्ष सम श्री जिनपद की, बाल्यकाल से सेवा। ऑ... ऑ..
अब तक मैंने जो की उसका, फल चाहूँ राह देवा॥

मरण समय में णमोकार का, पढ़ने को बस स्वर दो,
यही कृपा बस कर दो॥ नहीं ....
नाथ! आपके चरण द्वय रहे हृदय में मेरे । ऑ... ऑ...
होवे मेरा हृदय लीन यह, पद कमलों में तेरे॥
जब तक में निर्वाण न पाऊँ, हाथ दया का धर दो,
हे स्वामी यह वर दो ॥ नहीं ....
एक मात्र जिन भक्ति अकेली, दुर्गतियाँ हर लेती। ऑ... ऑ ...
पुण्य पूरकर मुक्ति संपदा, झोली में भर देती॥
मोक्ष महल के सिद्ध प्रभु जी, कर्म हमारे हर लो,
अपने जैसा कर लो॥ नहीं...
अनन्त भव की सन्तति रोके, चरण-शरण भगवन की। ऑ... ऑ...
शरण दीजिए! रक्षा कीजिए! हे प्रभु! हम भक्तन की॥
हुआ न होगा वीतराग से, पालक करुणा कर दो,
भक्ति पुष्प अंकुर दो ॥ नहीं...
कष्ट दूर हों, कर्म चूर हों, रत्नत्रय मैं पाऊँ। ऑ...ऑ...
सुगति गमन को वीर मरण हो, जिनगुण वैभव पाऊँ॥
यही प्रार्थना यही भावना, स्वामी पूरी कर दो,
'सुव्रत' को शिवपुर दो॥ नहीं .....

समाधि भावना-2

भगवन् सदैव मुझ पै, हो छत्र छाया तेरी।
चरणों में आपके ही, होवे समाधि मेरी॥ हो छत्र-छाया तेरी...
1. दर्शन तुम्हारा करके, सिर भी तुम्हें झुकाऊँ।
शास्त्रों का पान करके, तुम सा ही रूप पाऊँ॥
सत्संग करने मुझसे, होवे कभी न देरी। चरणों...
2. पर के न दोष बोलूँ, बोलूँ मधुर वचन मैं।
आगम का ले सहारा, अपना करूँ मनन मैं॥
जब तक न मोक्ष पाऊँ, रख लेना लाज मेरी। चरणों...

3. जब भी मरण हो मेरा, संन्यास से मरण हो।
मुनियों के साथ गुरु के, चरणों की बस शरण हो॥
जिनवाणी माँ की गोदी, छवि सामने हो तेरी। चरणों...
4. बचपन से आपके जो, चरणों की की हो सेवा।
यदि चाहते उसी का, बस फल यही दो देवा॥
णमोकार जपते-जपते, सल्लेखना हो मेरी। चरणों...
5. जब तक मुझे मिले ना, निर्वाण की नगरिया।
तब तक चरण तुम्हारे, मेरे मन में हो सँवरिया॥
मेरा हृदय न छोड़े, चरणों की छाँव तेरी। चरणों...
6. बस एक भक्ति तेरी, दुख संकटों को हरती।
बोधि समाधि दे के, सु संपदा भी भरती॥
ओंकारमय बना दो, हर श्वाँस नाथ मेरी। चरणों...
7. जयवंत हो जिनशासन, हो जय-जिनेन्द्र नारा।
निर्ग्रंथ पंथ धारूँ, तजूँ पाप पंथ सारा॥
'सुव्रत' की प्रार्थना ये, बरसे कृपा घनेरी। चरणों...

चौबीस तीर्थंकर स्तुति (दोहा थुदि)

रचयिताः प.पू.आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

आदिम तीर्थंकर प्रभो, आदिनाथ मुनिनाथ!
आधि व्याधि अघ मद मिटे, तुम पद में मम माथ॥
शरण, चरण हैं आपके, तारण तरण जहाज।
भवदधि तट तक ले चलो!, करूणाकर जिनराज॥1॥

जित-इन्द्रिय जित-मद बने, जित-भवविजित- कषाय।
अजितनाथ को नित नमूँ, अर्जित दुरित पलाय॥
कोंपल पल- पल को पले, वन में ऋतु- पति आय।
पुलकित मम जीवन- लता, मन में जिन पद पाय॥2॥

तुम- पद- पंकज से प्रभो, झर-झर-झरी पराग।
जब तक शिव- सुख ना मिले, पीऊँ षट्पद जाग॥

भव- भव, भव- वन भ्रमित हो, भ्रमता- भ्रमता आज।
शंभव- जिन भव शिव मिले, पूर्ण हुआ मम काज॥3॥

विषयों को विष लख तजूँ, बनकर विषयातीत।
विषय बना ऋषि ईश को, गाऊँ उनका गीत॥
गुण धारे पर मद नहीं, मृदुतम हो नवनीत।
अभिनन्दन जिन! नित नमूँ, मुनि बन मैं भवभीत॥4॥

सुमतिनाथ प्रभु सुमति दो, मम मति है अति मंद।
बोध कली खुल- खिल उठे, महक उठे मकरन्द॥
तुम जिन मेघ मयूर मैं, गरजो बरसो नाथ।
चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊपर करके माथ॥5॥

शुभ्र- सरल तुम, बाल तव, कुटिल कृष्ण- तम नाग।
तव चिति चित्रित ज्ञेय से, किन्तु न उसमें दाग॥
विराग पद्मप्रभु आपके, दोनों पाद- सराग।
रागी मम मन जा वहीं, पीता तभी पराग॥6॥

अबंध भाते काटके, वसु विध विधि का बंध।
सुपार्श्व प्रभु निज प्रभु- पना, पा पाये आनन्द॥
बाँध- बाँध विधि- बंध मैं, अन्ध बना मति- मन्द।
ऐसा बल दो अंध को, बंधन तोड़ूँ द्वन्द्व॥7॥

चन्द्र कलंकित, किन्तु हो, चन्द्र प्रभ अकलंक।
वह तो शंकित केतु से, शंकर तुम निःशंक॥
रंक बना हूँ मम अतः, मेटो मन का पंक।
जाप जपूँ जिन- नाम का, बैठ सदा पर्यंक॥8॥

सुविधि! सुविधि के पूर हो, विधि से हो अति दूर।
मम मन से मत दूर हो, विनती हो मंजूर॥
बाल मात्र भी ज्ञान ना, मुझमें मैं मुनि- बाल।
बवाल भव का मम मिटे, तुम- पद में मम भाल॥9॥

शीतल चन्दन है नहीं, शीतल हिम ना नीर।
शीतल जिन! तव मत रहा, शीतल हरता पीर॥

सुचिर काल से मैं रहा, मोह- नींद से सुप्त।
मुझे जगा कर, कर कृपा, प्रभो करो परितृप्त10॥
अनेकान्त की कान्ति से, हटा तिमिर एकान्त।
नितान्त हर्षित कर दिया, क्लान्त विश्व को शान्त॥
निःश्रेयस सुख- धाम हो, हे जिनवर श्रेयांस।
तव थुति अविरल मैं करूँ, जब लौं घट में श्वास॥11॥
वसुविध मंगल द्रव्य ले, जिन पूजो सागार।
पाप- घटे फलतः फले, पावन पुण्य अपार॥
बिना द्रव्य शुचि भाव से, जिन पूजें मुनि लोग।
बिन निज शुभ उपयोग के, शुद्ध न हो उपयोग॥12॥
कराल काला व्याल सम, कुटिल चाल का काल।
मार दिया तुमने उसे, फाड़ा उसका गाल॥
मोह अमल वश समल बन, निर्बल मैं भयवान।
विमलनाथ तुम अमल हो, संबल दो भगवान्॥13॥
अनन्त गुण पा कर दिया, अनन्त भव का अन्त।
अनन्त सार्थक नाम तव, अनन्त जिन जयवन्त॥
अनन्त सुख पाने सदा, भव से हो भयवन्त।
अन्तिम क्षण तक मैं तुम्हें, स्मरूँ स्मरें सब सन्त॥14॥
दया धर्म वर धर्म है, अदया- भाव अधर्म।
अधर्म तज प्रभु धर्म ने, समझाया पुनि धर्म॥
धर्मनाथ को नित नमूँ, सधे शीघ्र शिव शर्म।
धर्म- मर्म को लख सकूँ, मिटे मलिन मम कर्म॥15॥
शान्तिनाथ हो शान्त, कर सातासाता सान्त।
केवल, केवल- ज्योतिमय, क्लान्ति मिटी सब ध्वान्त॥
सकल ज्ञान से सकल को, जान रहे जगदीश।
विकल रहे जड़ देह से, विमल नमूँ नत शीश॥16॥
ध्यान- अग्नि से नष्ट कर, प्रथम पाप परिताप।
कुन्थुनाथ पुरुषार्थ से , बने न अपने- आप॥
ऐसी मुझपे हो कृपा, मम मन मुझमें आय ।

जिसविध पल में लवण है जल में घुल मिल जाय॥17॥
नाम- मात्र भी नहिं रखों, नाम- काम से काम।
ललाम आतम में करो, विराम आठों याम॥
नाम धरो 'अर' नाम तव, अतः स्मरूँ अविराम।
अनाम बन शिवधाम में, काम बनूँ कृत- काम॥18॥
मोहमल्ल को मार कर, मल्लिनाथ जिनदेव।
अक्षय बनकर पा लिया, अक्षय सुख स्वयमेव॥
बाल ब्रह्मचारी विभो, बाल समान विराग।
किसी वस्तु से राग ना, तव पद से मम राग॥19॥
मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ।
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ॥
यही भावना मम रही, मुनिव्रत पाल यथार्थ।
मैं भी मुनिसुव्रत बनूँ, पावन पाय पदार्थ॥20॥
अनेकान्त का दास हो, अनेकान्त की सेव।
करूँ गहूँ मैं शीघ्र से, अनेक गुण स्वयमेव॥
अनाथ मैं जगनाथ हो, नमिनाथ दो साथ।
तव पद में दिन- रात हूँ, हाथ जोड़ नत- माथ॥21॥
नील गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन।
नील कमल आसीन हो, नीलम से अति नील॥
शील- झील में तैरते, नेमि जिनेश सलील।
शील डोर मुझे बाँध दो, डोर करो मत ढील॥22॥
खास दास की आस बस, श्वाँस- श्वाँस पर वास।
पार्श्व करो मत दास को, उदासता का दास॥
ना तो सुर- सुख चाहता, शिव- सुख की ना चाह।
तव थुति- सरवर में सदा, होवे मम अवगाह॥23॥
नीर-निधी- से धीर हो, वीर बने गंभीर।
पूर्ण तैर कर पा लिया, भव सागर का तीर॥
अधीर हूँ मुझे धीर दो, सहन करूँ सब पीर।
चीर-चीर कर चिर लखूँ, अन्तर की तस्वीर॥24॥

प्रार्थना-1

हमको मन की शक्ति देना मन विजय करें।
दूसरों की जय से पहले खुद को जय करें॥
भेदभाव अपने दिल से साफ कर सकें।
दोस्तों से भूल हो तो माफ कर सकें॥
झूठ से बचे रहें, सच का दम भरें।
दूसरों की जय से पहले खुद को जय करें॥
मुश्किलें पड़े तो हमपे इतना कर्म कर।
साथ दें तो धर्म का, चलेंगे धर्म पर॥
खुद पर हौसला रहे बदी से ना डरें।
दूसरों की जय से पहले खुद की जय करें।
हमको मन की शक्ति देना मन विजय करें॥

प्रार्थना-2

श्रद्धा हमारी भाषा, निष्ठा हमारा नारा।
गुरुदेव की शरण में, भव का मिले किनारा॥1॥
हम गुरु के शिष्य ऐसे, जैसे दिये में बाती।
जलते रहेंगे हर पल, चाहे हो तूफां पानी॥2॥
गुरुवर हमारे ऐसे, जैसे श्री वीर भगवान।
श्री कुन्दकुन्द स्वामी, जैसा पवित्र जीवन॥3॥
चरणों का स्पर्श पाकर, हो जाती माटी चंदन।
पारस हैं आप गुरुवर, हमको बना दो कुन्दन॥4॥
दुखियों के दुःख हरने, हरदम खड़े रहेंगे।
हर आँच में जलेंगे, कर्मों से हम लड़ेंगे॥5॥
शुद्धोपयोगी गुरुवर, बस एक भावना है।
बन जाएँ आप जैसे, कुछ और चाह न है॥6॥

प्रार्थना-3

जीवन हम आदर्श बनायें, अनुशासन के नियम निभायें।
वीतराग जिनदेव भजेंगे, जिनवाणी अनुशरण करेंगे।
परम दिगम्बर मुनि पूजेंगे, उन पर श्रद्धा भक्ति बढ़ायें॥1॥
जीवन हम आदर्श बनायें, अनुशासन के नियम निभायें।
सदा बड़ों की विनय करेंगे, छोटों के प्रति प्रेम रखेंगे।
सबसे मिलकर नेक बनेंगे, शक्ति एकता की दिखलायें॥2॥
जीवन हम आदर्श बनायें, अनुशासन के नियम निभायें।
गुरु उपकार नहीं भूलेंगे, गुरु संकेत से शिक्षा लेंगे।
विनय नम्रता नहीं भूलेंगे, धीरज समता को अपनायें॥3॥
जीवन हम आदर्श बनायें, अनुशासन के नियम निभायें।
रात्रि भोजन नहीं करेंगे, छान के पानी सदा पीयेंगे।
प्रभु के दर्शन नित्य करेंगे, इनके ही गुणगान को गायें॥4॥
जीवन हम आदर्श बनायें, अनुशासन के नियम निभायें।
कभी किसी से नहीं लड़ेंगे, प्रेमभाव हम सदा रखेंगे।
दुखियों पर हम दया करेंगे, उनकी सेवा कर सुख पायें॥5॥
जीवन हम आदर्श बनायें, अनुशासन के नियम निभायें।
चुगली भी हम नहीं करेंगे, बिना दिये कुछ चीज न लेंगे।
खोटी संगत सदा तजेंगे, सप्त व्यसन को दूर भगायें॥6॥
जीवन हम आदर्श बनायें, अनुशासन के नियम निभायें।

भरतेश गाथा

रचियित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

तात भ्रात के बाद ही, जाग गया वैराग्य।
राज तजा भरतेश ने, पाया शिव सौभाग्य॥

ज्ञानोदय

चौदह दिन अवशेष रहे जब, पुरु ने योग निरोध किया।
वर्ष सहस्र दिवस चौदह कम, लक्ष पूर्व उपदेश दिया॥

गिरि कैलास पौष पूनम से, प्रभु बैठे पद्मासन में।
सुनते ही सब दौड़े आये, सभी कार्य तज आंगन में ॥1 ॥
कमल सरोवर सूर्य अस्त पर, जिस विध बंदमुखी होता।
त्यों चक्री ने धर्म सभा को, देखा म्लान मुखी रोता॥
अब पुरुवर शिव प्राप्त करेंगे, प्रभु दर्शन अब नहीं मिलें।
झट प्रदक्षिणा कर चक्री नृप, भक्ति करें नव पुण्य खिलें॥2 ॥
चौदह दिन तक परिकर के सह, भरत महा पूजन करते।
आगे का अब नहीं भरोसा, हाथों हाथ पुण्य भरते॥
माघ कृष्ण चौदस को प्रातः, ऋषभदेव ने शिव पाया।
शोक मग्न भरतेश्वर नृप को, 'वृषभसेन' ने समझाया॥3 ॥
अब नहिं प्रभु के दर्शन होंगे, नहिं उपदेश मिले प्रभु का।
चिन्तामग्न भरत नृप सोचें, नहिं सान्निध्य मिले पुरु का॥
फिर गणधर से प्रतिबोधित हो, भरत अयोध्या आते हैं।
गृही धर्म का पालन करते, शिव सुख लक्ष्य बनाते हैं॥4 ॥
एक दिवस चक्रेश भरत ने, दर्पण में निज मुख देखा।
श्वेत केश लख भव विरक्त हो, दुख मिश्रित भव सुख लेखा॥
आयु वायु सम क्षणभंगुर है, भोग मेघ सम अस्थिर हैं।
इष्ट योग का वियोग होता, भव संयोग नहीं स्थिर हैं॥5 ॥
सब विभूतियाँ बिजली सम हैं, विषय दुःख के कारण हैं।
यौवन है घनघोर महावन, करता सत्पथ वारण हैं॥
कुंभकार सम मैं निज पर को, जीव्य पदार्थ जुटाता हूँ।
इससे बढ़कर चक्र रहा क्या, यूँ ही समय बिताता हूँ॥6 ॥
इन्द्रिय सुख पुरु से दुखकर सुन, अतीत चिन्तन में खोते।
आठ पूर्व भव मति में झलके, हाय! कहाँ लेता गोते॥
स्वयं स्वयं को जागृत करते, तू राजा अतिगृद्ध हुआ।
बहु आरंभ परिग्रह करके, नरक आयु से बद्ध हुआ॥7 ॥
पंक प्रभा में दश सागर तक, तूने दुःखों को भोगा।
निकल वहाँ से व्याघ्र हुआ तू, पात्र दान को अनुमोदा॥
फिर तू हुआ 'दिवाकरप्रभ' सुर, पंचम भव में 'मतिवर' था।

फिर मुनि बन 'अहमिन्द्र' हुआ फिर, सुबाहु सप्तम तपधर था॥8 ॥
फिर अहमिन्द्र आठवें भव में, नवमें भव भरतेश यहाँ।
आज चरम तन पाया तूने, शिव सुख पा भाग्येश महाँ॥
यदि भव में किंचित् सुख होता, तो तप पुरु ने क्यों धारा।
अक्षय सुख पाने को त्यागा, नृपवर ने वैभव सारा॥9 ॥
ऋषभदेव! शिव राह दिखाओ, भटका हूँ मैं भव वन में।
बाहुबली जिन! मुझे निकालो, डूबा हूँ मैं भव जल में॥
बीती अनंत दुख पर्यायें, अब दुख अन्त करूँगा मैं।
करूँ प्रार्थना तात भ्रात से, तुम सम मोक्ष वरूँगा मैं॥10 ॥
यह विचार कर भरत आपको, सारा जग निस्सार लगा।
सब तत्त्वों में जान लिया था, मोक्ष तत्त्व सुख सार सगा॥
रत्न चतुर्दश नव निधि जिनके, अनुचर भोग दशांग रहे।
उनन्चास वैभव सेवा में, मुकुट बद्ध नृप साथ रहे॥11 ॥
सबसे विरक्त होकर तुमने, अर्ककीर्ति को राज्य दिया।
वृषभसेन गणधर से तुमने, शुचि तप का साम्राज्य लिया॥
शिव सुख पाने रत्नत्रय मय, मोक्ष मार्ग को अपनाया।
मुक्तिरमा से परिणय करने, तप का ताज आज भाया॥12 ॥
शल्य रहित कर बाहुबली को, नृप निशल्य हो तप धारा।
दीक्षा लेते भरत आपने, आत्म ध्यान को स्वीकारा॥
अल्प काल में तप के फल से, तुम को केवलज्ञान हुआ।
आप समान त्याग को पाऊँ, मुझे दीजिये प्रभो! दुआ॥13 ॥
बहुत काल अरिहंत दशा में, देश-देश उपदेश दिया।
फिर अघाति विधि क्षय कर तुमने, चेतन देश प्रवेश किया॥
औदारिक तैजस कार्मण से, पूर्व अघाती क्षय करते।
चरम ध्यान से भरत जिनेश्वर, शिवपद वसु गुणमय वरते॥14 ॥
पहले षट्खण्डों को जीता, फिर अपने को जीत लिया।
कर्म विजेता सिद्ध भरत प्रभु, बने सभी के मीत जिया॥
जो पहले पर में रमते थे, वे अपने में लीन हुए।
उन्हीं भरत को नमन हमारा, जो स्वतन्त्र-स्वाधीन हुए॥15 ॥

अध्रुव अशरण अनित्य भव से, निकल नित्य ध्रुव धाम बने।
चिन्मय चेतन लीन भरत जिन, बने शुद्ध गुण ग्राम घने॥
कभी नहीं भव में जन्मेंगे, कर्म बीज दह सिद्ध बने।
सदा-सदा को अविनाशी बन, अब ना कभी असिद्ध बने॥16॥
सर्व विभाव मयी परिणति तज, स्व-स्वभाव में लीन हुए।
जन्म जरा मरणादिक जिनके, सर्व प्रकार विलीन हुए॥
सर्व दुःख से छूट गये हैं, शाश्वत सुख के धाम बने।
ऐसे सिद्ध भरत स्वामी को, मृदुता करे प्रणाम घने॥17॥
ज्यों मेंढक पूजन प्रभाव से, देवों में अभिवन्द्य हुआ।
त्यों मैं भी तव पूजन करके, पाप नष्ट कर धन्य हुआ॥
आज आपके दर्शन करके, मेरे नयना सफल हुए।
आज आपकी स्तुति करने से, मेरे वयना विमल हुए॥18॥
आज आपका पूजन करके, मेरा जीवन धन्य हुआ।
आज आपका वंदन करके, मेरा तन मन धन्य हुआ॥
आज आपकी सेवा करके, अहो! भाग्य माना अपना।
विद्यासागर सूरि कृपा से, सारा जग जाना सपना॥19॥

दोहा

भरत वृत्त गाया गया, तात भ्रात के साथ।
बोधि समाधि सुप्राप्त हो, निमित्त 'मृदुमति' हाथ॥

।इति शुभम् भूयात्।

इष्ट प्रार्थना

❖ हे भगवान! प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को मेरा नमस्कार हो। जब तक मुझे मोक्ष न हो, तब तक मुझे जिनेन्द्र कथित शास्त्रों का पठन-पाठन लाभ हो। जिनेन्द्र भगवान के चरणों का समागम हो। सम्यक् जनों-आर्यजनों की संगति हो। सम्यक् व्रती जनों की गुणकारी कथा करता रहूँ। परदोष कहने में सदा मौन रहूँ। सभी से हित-मित-प्रिय बोलूँ। आत्म तत्व की रुचि-भावना सदा बनी रहे।

❖ हे भगवान! आपके चरण कमल मेरे हृदय में रहें, मेरा हृदय आपके श्री चरणकमलों में रहे। बस कर्मक्षय-मोक्ष प्राप्ति तक यही एकमात्र भावना/प्रार्थना आपके श्रीचरणों में है।

❖ मुझ अल्प बुद्धि ने यह प्रतिक्रमण किया है। मेरे द्वारा अक्षर-मात्रा, शब्द-पद, अनुस्वर, अर्थ-पद संबंधी जो भी कमी रह गई हो, भक्ति भाव के अतिरेक में कुछ का कुछ कहा गया हो तो, हे भगवान! हे गुरुदेव! उसे क्षमा करें। मुझे सद्बुद्धि सन्मार्ग देवें और मेरे दुःखों का क्षय करें। हे केवलज्ञानी भगवान! यह प्रतिक्रमण मुझे सभी दुःखों से मुक्त करे। मैं अजर-अमर पद को प्राप्त करूँ।

❖ हे भगवान! मैंने समाधि भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग किया है। उसमें लगे दोषों की मैं आलोचना करता हूँ। रत्नत्रयधारी परमात्मा का ध्यान कर मैं समाधि भक्ति द्वारा सदा अर्चना, वंदना, पूजा करके नित्य हर नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, मेरा सुगति में गमन हो, मेरा समाधिमरण हो, मुझे जिनेन्द्र भगवान के गुण संपत्ति का लाभ हो!!!

दर्शन स्तुति-1

रचयिता : बुधजन

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मरण जी॥1॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी॥2॥
भव-विकट-वन में कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो॥3॥
धन घड़ी यो धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु जी को लख लयो॥4॥
छवि वीतरागी नग्न मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण-युत, कोटि रवि छवि को हरैं॥5॥

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥6॥
मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरन जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोक पति जिन, सुनहुँ तारन तरन जी॥7॥
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि नर, राज परिजन साथ जी।
'बुध' जाँचहूँ तुम भक्ति भव-भव दीजिए शिवनाथ जी॥8॥

दर्शन स्तुति-2

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुःख पाये निज गुण जाने॥
पाये अनंत दुःख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहचान कर॥
भव बंधकारक सुख प्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि सुधा नहि पानकर॥1॥
तव पद उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी॥
रुचि लागी हित में आतम के, सत्संग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा॥
प्रिय वचन की हो टेव, गुणी-गण-गान में ही चित्त पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादन तैं भगै॥2॥
कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥
धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परीषह सह सदा, शुभ धर्म दस धारन करूँ॥
तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरूँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, करम रिपु को निर्जरूँ॥3॥
कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ॥

कर दूर रागादिक निरंतर, आत्म को निर्मल करूँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल लहि, चरित क्षायिक आचरूँ॥
आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरूँ।
आवै 'अमर' वो कब सुखद दिन, जब दुःखद भवसागर तरूँ॥4॥

दर्शन स्तुति-3

दोहा

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द-रस-लीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहय विहीन॥1॥

(पद्धरि)

जय वीतराग- विज्ञान पूर, जय मोह- तिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरज-मण्डित अपार॥2॥
जय परम शान्त मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि- भागन-वच जोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय॥3॥
तुम गुण चिन्तत निज- पर- विवेक, प्रगटै विघटै आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त॥4॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ-अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परिणतिमय अछीन॥5॥
अरूटादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनि गणधरादि सेवत महंत, नव केवल- लब्धि- रमा धरंत॥6॥
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाँहिं जैहैं सदीव।
भवसागर में दुःख क्षार वारि, तारन को और न आप टारि॥7॥
यह लखि निज दुखगद हरण काज, तुम ही निमित्त कारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय॥8॥
मैं भ्रम्यों अपनपो विसरि आप, अपनाये विधिफल पुण्य-पाप।
निज को पर को करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान॥9॥
आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।

तन- परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्व-पद सार ॥10 ॥
तुमको बिन जाने जो कलेश, पायो सो तुम जानत जिनेश।
पशु-नारक- नर- सुर-गति-मँझार, भव धर-धर मर्‌यो अनन्त बार ॥11 ॥
अब काल लब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द्व, चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद ॥12 ॥
तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुम चरण साथ।
तुम गुण गण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुम विरद एव ॥13 ॥
आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आप में आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन ॥14 ॥
मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रय-निधि दीजै मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु, हरहु मम मोह-ताप ॥15 ॥
शशि शान्तिकरन तप हरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय ॥16 ॥
त्रिभुवन तिहुँकाल मँझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख-जलधि उतारन तुम जिहाज ॥17 ॥

(दोहा)

तुम गुणगण-मणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
दौल' स्वल्प-मति किम कहै, नमहुँ त्रियोग सम्हार ॥18 ॥

प्रभु स्तुति

गुण गाते हैं, सुख पाते हैं², अरहंत प्रभु के चरणों में²।
हम शीश झुकाते हैं², हम शीश नवाते हैं ॥
प्रभु की प्रतिमा मनहारी हैं, सारे जग से अति न्यारी है।²
हे नाथ आपको देख मेरे², नयना हरषाते हैं² ।।गुण. ॥1 ॥
प्रभु की मूरत कुछ बोल रही, निज आनंद का रस घोल रही।
ऐसा लगता प्रभु भक्तों को, निज देश बुलाते हैं ।।गुण. ॥2 ॥
मैं भटका था इस भव वन में, अब आया हूँ तव चरणन में।

हे नाथ आपही भव्यों का, भव भ्रमण मिटाते हैं² ।।गुण. ॥3 ॥
जग में सुख के सब साथी हैं, दुःख में देखा सब स्वारथी हैं²।
हे नाथ आपके सिवा यहाँ, सब झूठे नाते हैं² ॥4 ॥
करुणासागर करुणा करदो, शाश्वत सुख से झोली भरदो²।
हे नाथ आप ही भक्तों को भगवान बनाते हैं² ।।गुण. ॥5 ॥

देव स्तुति-1

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर¹, भविजन² की अब पूरो आस।
ज्ञानभानु³ का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास ॥1 ॥
जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहीं कहें कदा।
परधन कबहुँ न हरहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा ॥2 ॥
तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष सुधा नित पिया करें।
श्री जिन धर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें ॥3 ॥
दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रसार ॥4 ॥
सुख दुःख में हम समता धारें, रहें अचल⁴ जिमि⁵ सदा अटल।
न्याय मार्ग का लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल ॥5 ॥
अष्ट करम जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय⁶ का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न शोक सबही टल जाय ॥6 ॥
आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहीं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हममें, धर्म ज्ञान हूँ बढ़े सदा ॥7 ॥
हाथ जोड़कर शीश नवावें, तुमको भविजन खड़े खड़े।
यह सब पूरो आस⁷ हमारी, चरण शरण में आन पड़े ॥8 ॥

अर्थ - 1. हित करने वाला, 2. भव्य पुरुष, 3. ज्ञान रूपी सूर्य, 4. पर्वत, 5. के समान, 6. नाश, 7. इच्छा।

देव स्तुति-2

अहो! जगत गुरुदेव! सुनिए अरज हमारी।
प्रभु तुम दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी ॥1 ॥
इस भव वन में वादि[1], काल अनादि गमायो।
भ्रम्यो चहूँ गति माँहिं, सुख नाहिं दुःख बहु पायो ॥2 ॥
कर्म-महारिपु जोर, एक न कान करैं जी।
मनमाने दुःख देहिं, काहू सौं नाहिं डरैं जी ॥3 ॥
कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नरक दिखावैं।
सुर-नर-पशु-गति माँहिं, बहुविध नाच नचावैं ॥4 ॥
प्रभु! इनको परसंग, भव-भव माँहिं बुरो जी।
जे दुःख देखे देव! तुमसौं नाहिं दुरो जी ॥5 ॥
एक जनम की बात, कहि न सकों सब स्वामी!।
तुम अनन्त परजाय, जानत अन्तरजामी ॥6 ॥
मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे ॥7 ॥
ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबलकरि डार्‌यो।
इनही तुम मुझ माँहिं, हे जिन! अन्तर पार्‌यो ॥8 ॥
पाप-पुन्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी।
तन कारागृह माँहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥9 ॥
इनको नेक बिगार, मैं कछु नाहिं कियो जी।
बिन कारन जगवंद्य! बहुविध बैर लियो जी ॥10 ॥
अब आयौ तुम पास, सुन जिन सुजस तिहारो।
नीति-निपुन जगराय, कीजै न्याय हमारो ॥11 ॥
दुष्टन देहु निकार, साधुन कौं रखि लीजै।
विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु! ढील न कीजै ॥12 ॥

पार्श्वनाथ स्तुति

तुमसे लागी लगन ले लो अपनी शरण,
पारस प्यारा, मेटो मेटो जी संकट हमारा ॥1 ॥
निश दिन तुमको जपूँ पर से नेहा तजूँ।
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा ॥
मेटो.. ॥2 ॥
अश्वसेन के राज दुलारे, वामादेवी के सुत प्राण प्यारे।
सबसे नेहा तोड़ा, जग से मुँह को मोड़ा, संयम धारा ॥
मेटो... ॥3 ॥
इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये।
आशा पूरो सदा, दुःख नहिं पावे कदा, सेवक थारा ॥
मेटो... ॥4 ॥
जग के दुःख की तो परवाह नहीं है, स्वर्ग सुख की भी चाह नहीं है।
मेटो जामन-मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा ॥
मेटो... ॥5 ॥
लाखों बार तुम्हें शीश नवाऊँ, जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊँ।
'पंकज' व्याकुल भया, दर्शन बिन ये जिया, लागे खारा ॥
मेटो... ॥6 ॥

जिनवाणी स्तुति-1

हे भारती माँ! हे भारती माँ! ॥टेक ॥
तेरी उतारें सभी आरती माँ... ॥
अर्हन्त भाषी ये जिनवाणी प्यारी।
गणधर ऋषि और मुनियों ने धारी ॥
जो तुमको ध्याते सुख शांति पाते।
जीवन की नैया को तू तारती माँ ॥1 ॥
तेरे श्रवण से खुशी मन में छाई।
नया बोध पाया नई राह पाई ॥

दया धर्म संयम के पथ पर चलें हम।
अतः आज मिलकर करें आरती माँ ॥2 ॥
माँ तेरी महिमा को कैसे बताऊँ।
अल्पज्ञ हूँ भक्ति से सिर झुकाऊँ॥
सद्ज्ञान का सूर्य तम को करे दूर।
ज्योति सदा फैले भू भारती माँ ॥3 ॥

जिनवाणी स्तुति-2

माता तू दया करके कर्मों से छुड़ा देना।
इतनी सी विनय तुमसे चरणों में जगह देना ॥टेक॥
माता आज मैं भटका हूँ माया के अन्धेरे में।
कोई नहीं मेरा है इस कर्म के रेले में।
कोई नहीं मेरा है तुम धीर बंधा देना॥
जीवन के चौराहे पर मैं सोच रहा कब से।
जाऊँ तो किधर जाऊँ यह पूछ रहा मन से।
पथ भूल गया हूँ मैं, तुम राह दिखा देना॥
लाखों को उबारा है हमको भी उबारो तुम।
मझधार में है नैया उस पार लगा दो तुम।
मझधार में अटका हूँ उस पार लगा देना॥

जिनवाणी स्तुति -3

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी ॥टेक॥
मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को बताया।
आपा पराया भासा, हो भानु के समानी ॥1 ॥
षड् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भव-फन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी ॥2 ॥
रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में।
ठाडे हैं मोक्ष मग में, तकरार मोसों ठानी ॥3 ॥

दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे सुदर्शन साता, नहीं जग में तेरी सानी ॥4 ॥

जिनवाणी स्तुति-4

वीर हिमाचलतैं निकसी, गुरु गौतम के मुखकुण्ड ढ़री है।
मोह महाचल भेदचली, जग की जड़तातप दूर करी है॥
ज्ञान पयोनिधि माँहिं रली, बहुभंगतरंगनि सों उछरी है।
ता शुचिशारद गंगनदी प्रति, मैं अंजुलि करि शीश धरी है॥
या जगमन्दिर में अनिवार, अज्ञान अंधेर छयौ अति भारी।
श्री जिनकी धुनिदीपशिखासम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी॥
तो किस भाँति पदारथ-पांति, कहाँ लहते रहते अविचारी।
या विधि सन्त कहैं, धनि हैं, धनि हैं जिन-बैन बड़े उपकारी॥

जिनवाणी स्तुति-5

बड़े भाग्य से माँ जिनवाणी, की हमको ये शरण मिली।
जब से आपको पाया लगता, मेरी अँखियाँ हैं ये खुली॥
भटक रहे थे माँ तुम बिन हम, इस दुनियाँ में कहाँ-कहाँ।
ऐसी कोई जगह न बाकी जनम मरण न किया जहाँ॥
जन्म-मरण के रोग की औषध, जग में आप हो सबसे भली।
जब से आपको पाया....॥
मित्र यहाँ शत्रु बन जाते, शत्रु ही फिर मित्र बने।
पिता-पुत्र भाई बन जाते, माँ-बहना अरु सुता बने॥
नाटक जैसे पात्र सभी ये, सच्ची केवल तेरी कही।
जब से आपको पाया....॥
सब द्रव्यों को भोग चुके हैं, कोई जग में नया नहीं।
नये रूप में हमें लुभाता, मोह ये छलिया दिखा वही॥

आँचल आपका जबसे पाया, मोह की फिर न एक चली
जब से आपको पाया....॥
तन भी जब ना मेरा अपना, परद्रव्यों की बात कहाँ।
तेरा-मेरा करते करते, बिता दिया सब काल यहाँ॥
भेदज्ञान तुमने सिखलाया, तब दुर्मति की बला टली।
जब से आपको पाया....॥

प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज स्तुति

स्तुतिकार : प.पू. मुनि श्री 108 धर्मसागर जी महाराज

काल के सतत प्रहारों से हुआ कुछ जर्जरित सा तन
पर साधना सद्भावना से, निखरता जा रहा चेतन
सुगमता औ विषमता में महके जिनका समता उपवन
ऐसे गुरु विद्याब्धि पद में मम सम्यक् बारम्बार नमन॥1॥

गुरु आज्ञा जिनकी धड़कन, समर्पण जिनकी है सांसें,
अचल गुरु वाणी पे श्रद्धा औ आगम जिनकी हैं आंखें
किसी भी हाल में छोड़े न दामन ये ज्ञान गुरु का
'धर्मगुरु' की हर चर्या में बिम्बवत् ज्ञानसूरि छाँकें॥2॥

धर्मगुरु विद्यासागर की ऋणी जनता है ये सारी
किये उपकार जो गुरु ने उन्हें कहने में लाचारी
पिला अध्यात्म का अमृत दिया हमको नया जीवन
करेंगे याद सदियों तक इन्हें हम सारे संसारी॥3

स्वस्थ तन हो स्वस्थ मन हो न्यायोपार्जित हो धन सारा
न विपदा न बीमारी न हो कोई गम का मारा
रहें सब स्वस्थ वतन ओ वन वचन भी हो मृदुल मंजुल
धर्म गुरु चाहें बन जाये स्वस्थ चेतन भी हमारा॥4॥

कभी कहते न निज मुख से, सुने न कानों से निन्दा
सदा तारीफ़ गुणियों की न करते आत्म प्रशंसा
पिलाई ज्ञान सिंधु ने जाने कैसी इन्हें घुट्ठी
धर्मगुरु करते बस वह ही, जिसमें गुरुदेवागमानुशसां॥5॥

कि कम लेना अधिक देना, श्रेष्ठतम जिन्दगी जीना
शास्त्र सम्मत सिंहवृत्ति से चलें गुरु तानकर सीना
न डोला मन कभी जिनका, पा के भय सत्ता प्रलोभन
धर्म गुरु संत शिरोमणि सा, दूजा कोई भी कहीं ना॥6॥

सफ़र में हमसफ़र गुरु हों तो हर मंजर सुहाना है
सदा बेफिक्री का आलम औ मुट्ठी में जमाना है
करें हर गम से गुरु बेगम सुना जिनवाणी की सरगम
धर्म गुरु के मुख से निकला हर एक शब्द तराना है॥7॥

न अंतरमन में कुछ अवसाद न अक्ष चापल्यन उन्माद
संतुलित है सारा जीवन न कोई शोक न आह्लाद
हृदय वीणा की मधुरिम तान करे हरदम गुरु गुणगान
धर्मगुरु वो शिरोमणि संत, दूर जिनसे चरित्र अपवाद॥॥

मिली मुझे राह औराहत, गुरु दर्शनोपदेशों से
दर्शनीय भी हुआ ये तन गुरु कृपा विशेषों से
संवारा गुरु ने मम जीवन सहारों संबलों द्वारा
किया जगपूज्य धर्म गुरु ने आचरण के विनिवेशों से॥9॥

गुलाम गुरु का हुआ जब से नाम अपना हुआ तव से
गुमनामी के अंधेरों में न जाने कैद था कब से
मुझे अपना के गुरुवर ने दिलाई गम से रिहाई
सलातम रहें सदा गुरुवर ये 'धर्म मुनि' की दुआ रब से॥10॥

मूल के बिन कहाँ दिखते पत्ते फल फूल शाखाएँ
सूत्राभाव में कोई क्या लिख सकता है टीकाएँ

केन्द्र के बिन करें चर्चा क्या त्रिज्या व्यास परिधि की
गुरु कृपा बिना त्यों धर्म न फलती शिक्षा दीक्षाएँ॥11॥

गुरु ही शिष्य की दृष्टि गुरु ही शिष्य की सृष्टि
समूचे शिष्य जीवन पर करें गुरु धर्म की वृष्टि
रसायन भी ये औषध भी ये मरहम औ संजीवन
धर्मगुरु नाम मंत्र तो है सब उपचारों की समष्टि॥12॥

गुरु कदमों तले जन्नत गुरु कदमों में ही राहत
गुरु का हाथ हो जिस पर, रहे हरदम वो सलामत
शोहरतें बख़्शते खैरात में हो जिससे गुरु राजी
जो गुरु नजरों से गिर जाए, उस पे हर वक्त कयामत॥13॥

'धर्मगुरु' वो शिरोमणि संत करते पतझड़ को जो बसंत
जिनकी गहराई ऊँचाई न कृपाओं को कोई अंत
दिया मुझ जैसे लाखों को जिन्होंने पद पथ ओ पाथेय
उनके श्री चरणों में मेरे, नमन अविरल अक्षयानन्त॥14॥

किसी हद तक बीमारी में दवाएँ काम करती हैं
दवा जब साथ ने दे तब दुआएँ पीर हरती है
जाँचा परखा आजमाया ये नुस्खा है सुनो बंधु
हर मुश्किल में इनसे ज्यादा गुरु आशीष कृपाएँ काम करती॥15॥

अनूठे और निराले हैं अद्वितीय बेमिशाल बेजोड़
लगाना चाहे मूरख ही इनकी चर्या से अपनी होड़
न था न है न होगा दूसरा कोई इनके जैसा
धर्म गुरु विद्यासागर ने दिया है सबको पीछे छोड़॥16॥

चारित्रिक स्वर्ण पन्नों पर रच दी यश की ऋचाएँ
संयम सुमनों की सौरभ से महका दी सर्व दिशाएँ
दिग्भ्रमित नव युवाओं को चलाकर राहे नेकी पर
धर्म गुरु ने किया जग वन्द्य उन्हें दे शिक्षा दीक्षाएँ॥17॥

सदा महफूज इनका जीवन जो हैं गुरु की पनाहों में
जो हैं गुरु आज्ञा से वंचित वो हैं दुख दर्द कराहों में
सुना है इक नजर में तौल लेते हैं वो लोगों को
खुदा जाने मेरा क्या वजन है गुरु की निगाहों में॥18॥

बैठे है ध्यान में गुरुवर, नासिका पर दृष्टि साधे
तरंगे अनगिनत जिसमें उसी मन सिन्धु को बाँधे
सदा शुभ शुद्ध ही रहता है जिनका योग और उपयोग
उन्हीं गुरु विद्यासागर की सत्कथा धर्म ऋषि बांचे॥19॥

बनो तुम श्रेष्ठ न कि ज्येष्ठ गुरु ने यथेष्ट बताया है
श्रेष्ठ के चरणों में तो ज्येष्ठ सदा ही झुकता आया है
उदाहरण इसका इससे अच्छा दूजा हो नहीं सकता
श्रेष्ठता लख ज्येष्ठ गुरु ने निज शिष्य को स्वगुरु बनाया है॥20॥

प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज स्तुति

स्तुतिकारः मुनि श्री 108 धर्मसागर जी महाराज

नमन अरिहन्तों को मेरे, करुँ मैं सिद्धों का सुमिरन।
पूज्य आचार्य भगवन्तों, के चरणों में सतत वंदन॥
जो दे सज्ज्ञान की शिक्षा नमन उन उपाध्यायों को।
सिद्ध बनने जो आतुर हैं, सर्व उन साधु को वंदन॥

शरद पूनम का उजियारा, सारी जगती पे था छाया।
सदलगा के आँगने में, पूर्ण चन्दा उतर आया॥
हुए पुलकित नयन सबके छायी खुशिर्या हर एक मन में।
द्वितीय पुत्र संग सब ने, अद्वितीय संत भी पाया॥
पा के विद्यागुरुवर को, ये सारी धरती हर्षायी।
शरद पूनम की रोशन रात, ने भी अमरता पायी॥
ज्ञान सूरि के ये चेले अकेले और अलबेले।

चरित्राकाश के सूरज, करे रोशन रुहें ''भाई''॥
दादा गुरु ज्ञान सिन्धु की, ''धर्मगुरु'' ने की गुरु सेवा।
अथक अम्लान ओ दिल से, रहे तत्पर गुरु देवा॥
न चाहें बदले में कुछ भी, करें कर्तव्य बस अपना।
स्वामी- कर्तृत्व बुद्धि से सदा बचते इन्हें देखा॥

गुरु स्तुति

हे गुरुवर शाश्वत् सुख दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्श कराने वाला है।
जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विषकंटक बोता हो।
हो अर्द्ध निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हो।
तब शांत निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो।
करते तप शैल नदी तट पर, तरु तल वर्षा की झड़ियों में।
समता रसपान किया करते, सुख-दुख दोनों की घड़ियों में।
अंतर ज्वाला हरती वाणी, मानो झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव बंधन तड़-तड़ टूट पड़े, खिल जावें अंतर की कलियाँ।
तुम सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दी जग की निधियाँ।
दिन रात लुटाया करते हो, शम सम की अविनश्वर मणियाँ।
हे निर्मल देव तुम्हें प्रणाम, हे ज्ञान-दीप आगम प्रणाम।
हे शांति त्याग के मूर्तिमान शिवपथ पंथी गुरुवर प्रणाम।

धर्म आराधना

तन पिंजरे से, प्राण पखेरू, जब बाहर उड़ जावे।
घरवाली द्वारे तक जावे, बेटा अगनि लगावे॥
रोने वाले रोते जावें, जाने वाला जावे।
सुन्दर काया भी मरघट में, राख-राख हो जावे॥1॥

आशा पल-पल बढ़ती जावे, आयु घटती जावे।
काया निशिदिन जर्जर होवे, माया बढ़ती जावे॥
आज सरीखा मंगल अवसर, कल आवे ना आवे।
किधर जिन्दगी के किस डग पर, क्या घटना घट जावे॥2॥
आप अकेलाआवे प्राणी, आप अकेला जावे।
ना कछु लावे ना ले जावे, तो भी मन भरमावे॥
करनी का परिणाम जगत् में, आप अकेला पावे।
आप अकेला बैरागी बन, मोक्ष महापद पावे॥3॥

गुरु स्तुति

भो आचार्यः श्री विद्यासागरः भक्तित्रय सहितोऽहं,
नमोऽस्तु कुर्वेहं।
बाल ब्रह्मचारिणः परमविरागिनः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं.....भो......॥1॥
अनुपम ज्ञानिनः भेद विज्ञानिनः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं.....भो......॥2॥
रहिताऽडम्बरः महादिगम्बरः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं.....भो......॥3॥
मुनिगण नायकः दुरितविनाशकः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं.....भो......॥4॥
भव्य शरीरिणः महामनीषिणः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं.....भो......॥5॥
धर्म प्रभावकः धर्म प्रबोधकः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं.....भो......॥6॥

भारतीय संस्कृति - बेटी को गृह लक्ष्मी, बहुरानी, महारानी, पट्टरानी अथवा साध्वी बनाने की है।

दर्शन पाठ-1

दर्शन श्री देवाधिदेव, दर्शन पाप विनाशन है।
दर्शन है सोपान स्वर्ग का, और मोक्ष का साधन है॥
श्री जिनेन्द्र के दर्शन औ, निर्ग्रन्थ साधू के वन्दन से।
अधिक देर अघ नहीं रहै, जल छिद्र सहित कर में जैसे॥
वीतराग मुख के दर्शन की, पद्मराग सम शांत-प्रभा।
जन्म-जन्म के पातक क्षण में, दर्शन से हों शांत विदा॥
दर्शन श्री जिनदेव सूर्य, संसार-तिमिर का करता नाश।
बोधिप्रदाता चित्त पद्म को, सकल अर्थ का करे प्रकाश॥
दर्शन श्री जिनेन्द्रचन्द्र का, सद् धर्मामृत बरसाता।
जन्मदाह को करे शांत औ, सुख वारिधि को विकसाता॥
सकलतत्त्व के प्रतिपादक, सम्यक्त्व आदिगुण के सागर।
शांत दिगम्बर रूप नमूँ, देवाधिदेव तुमको जिनवर॥
चिदानन्दमय एकरूप, वंदन जिनेन्द्र परमात्मा को।
हो प्रकाश परमात्म नित्य, मम नमस्कार सिद्धात्मा को॥
अन्य शरण कोई न जगत में, तुम्हीं शरण मुझको स्वामी।
करुण भाव से रक्षा करिये, हे जिनेश अर्न्यामी॥
रक्षक नहीं रण कोई नहीं, तीन जगत में दुखत्राता।
वीतराग प्रभु सा न देव है, न हुआ न होगा सुखदाता॥
दिन दिन पाऊँ जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति, जिनवर भक्ति।
सदा मिले वह सदा मिले, जब तक न मिले मुझको मुक्ति॥
नहीं चाहता जैन धर्म बिना, चक्रवर्ती होना।
नहीं अखरता जैन धर्म सहित, दरिद्री भी होना॥
जन्म-जन्म के किये पाप, और बंधन कोटि-कोटि भव के।
जन्म-मृत्यु और जरा रोग, सब कट जाते जिनदर्शन से॥
आज युगल दृग हुए सफल, तुम चरण कमल से प्रभुवर।
हे त्रिलोक के तिलक, आज लगता भवसागर चुल्लू भर॥

दर्शन पाठ-2

-मुनि श्री 108 सुव्रतसागर जी महाराज

दोहानुवाद

दर्शन प्रभु अर्हन्त का, दर्शन पाप नशाय।
दर्शन सीढ़ी स्वर्ग की, दर्शन मोक्ष दिलाय॥1॥
जिन-दर्शन मुनि वन्दना, हरे पाप दुख पीर।
छिद्रसहित ज्यों अंजली, खोती अपना नीर॥2॥
पद्मरागमणि कांति सम, वीतराग मुख देख,
दर्शन से बहु जन्म के, नशते पाप अनेक॥3॥
दर्शन श्री जिन सूर्य का, भव-तम करता नाश।
हृदय कमल विकसित करे- सारे अर्थ प्रकाश॥4॥
दर्शन श्री जिन-चन्द्र का, धर्मामृत बरसाय।
हरे दाह भवजन्म का, सुख का सिन्धु बढ़ाय॥5॥
प्रतिपादक सब तत्त्व के, गुणसार मय आठ।
नगन शान्त जिनरूप को, सदा झकाऊँ माथ॥6॥
चिदानंद परमातमा, एक जितेन्द्री रूप।
दिग्दर्शक परमात्म के, नमूँ सिद्ध शिवरूप॥7॥
अन्य शरण मेरी नहीं, मात्र शरण जिननाथ।
करुणा कर रक्षा करो, मेरी रक्षा आप॥8॥
त्रय जग में तुमसा नहीं, रक्षक त्राता ठौर।
वीतराग सा देव भी, हुआ न होगा और॥9॥
भव-भव में प्रतिदिन रहे, श्री जिन-भक्ति सदैव।
नित मुझमें जिन- भक्ति हो, हो जिन-भक्ति सदैव॥10॥
मुझे बिना जिन धर्म के, चक्री की ना आश।
भले दुखी दारिद रहूँ, पर जिन-धर्म निवास॥11॥
जन्म जरा मृतु रोगवा, जन्म-जन्म के पाप।
प्राप्त करोड़ों अघ नशें, जिन-दर्शन से आप॥12॥

(ज्ञानोदय छन्द) (लय मेरी-भावना)

नाथ! आप के पद-कमलों के,
पावन दर्शन आज किये।
जिससे मेरे प्यासे नयना,
सफल हुये गुण-सुधा पिये।
तीन लोक के तिलक जिनेश्वर,
आज मुझे लगता ऐसा।
मेरा खारा भवसागर अब,
शेष बचा चुल्लू भर सा॥13॥

पंच मंगल पाठ

17 वीं शताब्दी में हुए पं. रूपचन्द्र जी द्वारा रचित इस रचना से प्रायः सभी लोग सुपरिचित हैं। कवि ने तीर्थंकर के पंच कल्याणकों की गाथा काव्यरूप में निबद्ध की है। भाषा-शैली एवं विषय वर्णन की दृष्टि से भी कवि की अद्भुत रचना है। ये पाँचों मंगल अभिषेक के समय न बोलकर सामग्री बनाते समय बोल लेना चाहिए-

पणविवि पंच परमगुरु, गुरु जिन शासनों।
सकल- सिद्धि-दातार सु विघन-विनाशनो॥
शारद अरु गुरु गौतम सुमति प्रकाशनो।
मंगल कर चउ- संघहि पाप-पणासनो॥
पापहि पणासन गुणहि गरुआ, दोष अष्टादश-रहिउ।
धरि ध्यान कर्म विनाशि केवलज्ञान अविचल जिन लहिउ॥
प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुरनर ध्यावहीं।
त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥1॥

1. गर्भकल्याणक

जाके गर्भकल्याणक धनपति आइयो।
अवधिज्ञान-परवान सु इंद्र पठाइयो॥

रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी।
कनक-रयण-मणि-मंडित, मन्दिर अति बनी॥
अति बनी पौरि पगारि परिखा, सुवन उपवन सोहिये।
नर-नारि सुन्दर चतुर भेख सु, देख जनमन मोहिये॥
तहं जनकगृह छह मास प्रथमहिं, रतन-धारा बरसियो।
पुनि रुचिकवासिनि जननि-सेवा करहिं सब विधि हरषियो॥2॥
सुरकुंजर-सम-कुंजर,धवल धुरंधरो।
केहरि-केशर-शोभित, नख-शिख सुन्दरो॥
कमला-कलश-न्हवन, दुई दाम सुहावनी।
रवि-शशि-मंडल मधुर, मीन जुग पावनी॥
पावनि कनक-घट-जुगम पूरन, कमल-कलित सरोवरो।
कल्लोल-माला-कुलित-सागर सिंहपीठ मनोहरो॥
रमणीक अमर विमान फणिपति-भुवन, रवि छवि छाजई।
रुचि रत्नराशि दिपंत, दहन सुतेजपुंज विराजई॥3॥
ये सखि सोलह सुपने सूती शयनही।
देखे माय मनोहर, पच्छिम रयनही॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकाशियो।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तहँ भासियो॥
भासियो फल तिहिं चित्त दम्पत्ति परम आनन्दित भये।
छहमास परि नवमास बीतै, रैन दिन सुखसों गए॥
गर्भावतार सुमहंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भनि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥4॥

2. जन्मकल्याणक

मति-श्रुत-अवधि-विराजित, जिन जब जनमियो।
तिहुँलोक भयो हर्षित, सुरगन भरमियो॥
कल्पवासि-घर घंट अनाहद बज्जियो।
जोतिषि-घर हरिनाद, सहज गल गज्जियो॥
गज्जियो सहजहि शंख भावन, भुवन शब्द सुहावने।

व्यन्तर- निलय पटु पटह बज्जिय, कहत महिमा क्यों बने॥
कंपित सुरासन अवधिबल जिन-जनम निहचैं जानियो।
धनराज तब गजराज मायामयी निरमय आनियो॥5॥
जोजन लाख गयंद, वदन सौ निरमये।
वदन वदन वसुदंत, दंत सर संठये॥
सर-सर सौ-पनबीस, कमलिनी छाजहीं।
कमलिनि कमलिनि कमल पचीस विराजहीं॥
राजहीं कमलिनि कमलऽठोतर सौ मनोहर दल बने।
दल दलहि अपछर नटहि नवरस, हाव भाव सुहावने॥
मणि कनक- किंकणि वर विचित्र सु अमर-मण्डप सोहिये।
घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहिये॥6॥
तिहिं करि हरि चढ़ि आयउ सुर-परिवारियो।
पुरहिं प्रदच्छन दे त्रय, जिन जयकारियो॥
गुप्त जाय जिन- जननिहिं, सुखनिद्रा रची।
मायामई शिशु राखि तौ, जिन आन्यो सची॥
आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपति न हूजिये।
तब परम हरषित हृदय हरिने सहस लोचन पूजिये॥
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इन्द्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ।
ईशान इन्द्र सुचन्द्र छवि सिर, छत्र प्रभु के दीनऊ॥7॥
सनतकुमार महेन्द्र, चमर दुइ ढारहीं।
शेष शक्र जयकार, शब्द उच्चारहीं॥
उच्छव-सहित चतुरविधि सुर हरषित भये।
जोजन सहस निन्यानवै, गगन उलंघि गए॥
लाँघि गए सुरगिरि जहाँ पाण्डुक, वन विचित्र विराजहीं।
पांडुक-शिला तहँ अर्द्धचन्द्र समान, मणि छवि छाजहीं॥
जोजन पचास विशाल दुगुणा, ऽऽयाम, वसु ऊँची गनी।
वर अष्ट-मंगल-कनक कलशनि सिंहपीठ सुहावनी॥8॥
रचि मणिमंडप शोभित, मध्य सिंहासनो।

थाप्यो पूरब मुख तहँ प्रभु कमलासनो॥
बाजहि ताल मृदंग, वेणु वीणा घने।
दुंदभि प्रमुख मधुर धुनि, अवर जु बाजने॥
बाजने बाजहिं शची सब मिलि, धवल मंगल गावहीं।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना, सब देव कौतुक धावहीं॥
भरी क्षीरसागर जल जु हाथहिं हाथ सुरगिरि ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ईशान इन्द्र सु कलश ले प्रभु न्हावहीं॥9॥
वदन उदर अवगाह, कलशगत जानिये।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये॥
सहस-अठोत्तर कलसा, प्रभु के सिर ढरैं।
पुनि सिंगार प्रमुख, आचार सबै करैं॥
करि प्रकट प्रभु महिमा महोच्छव, आनि पुनि मातहिं दये।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गए॥
जन्माभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि रूपचन्द सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं॥10॥

3. तपकल्याणक

श्रमजल रहित शरीर, सदा सब मल-रहिउ।
छीर-वरनवर रुधिर, प्रथम आकृति लहिउ॥
प्रथम सार संहनन, सरूप विराजहीं।
सहस सुगंध सुलच्छन मंडित छाजहीं॥
छाजहिं अतुल बल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने।
दस सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने॥
आबाल काल त्रिलोकपति जिन- रुचित उचित जु नित नये।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम सकल भोग विभोगए॥11॥
भवतन भोग विरक्त, कदाचित चित्तए।
धन-यौवन पिय पुत्र, कलत्र अनित्य ये॥
कोउ न शन मरन दिन, दुख चहुँगति भर्‌यो।

सुख दुख एकहिं भोगत, जिय विधि-वश पर्‍यो॥
पर्‍यो विधिवश आन चेतन, अन्य जड़ जु कलेवरो।
तन अशुचि परसैं होय आस्रव, परिहरैतैं संवरो॥
निरजरा तपबल होय समकित, बिन सदा त्रिभुवन भ्रम्यो।
दुर्लभ विवेक बिना न कबहुँ, परम धर्म विषैं रम्यो॥12॥
ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया।
लौकान्तिक वरदेव, नियोगी आइया॥
कुसुमांजलि दे चरण, कमल सिर नाइया।
स्वयंबुद्ध प्रभु थुतिकर, तिन समुझाइया॥
समुझाय प्रभु को गए निजपुर, पुनि महोत्सव हरि कियो।
रुचि रुचिर चित्र विचित्र शिविका कर सुनन्दन वन लियो॥
तहँ पंचमुष्टी लोंच कीनों, प्रथम सिद्धनि नुति करी।
मंडत महाव्रत पंच दुद्धर सकल परिग्रह परिहरी॥13॥
मणिमय भाजन केश, परिट्ठिय सुरपती।
क्षीर-समुद्र-जल खिपकरि, गयो अमरावती॥
तप-संयम बल प्रभु को, मनपरजय भयो।
मौन सहित तप करत, काल कछु तहँ गयो॥
गयो कछु तहँ काल तपबल, ऋद्धि वसुविधि सिद्धिया।
सु धर्मध्यान-बलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धिया॥
खिपि सातवें गुण जतन बिन तहँ, तीन प्रकृति जु बुधि बढिउ।
करि करण तीन प्रथम शुकल-बल, क्षपक-श्रेणी प्रभु चढिउ॥14॥
बल से प्रभु क्षपक श्रेणी पर चढ़ गए।
प्रकृति छत्तीस नवैं, गुण-थान विनाशिया।
दसवें सूक्षम लोभ, प्रकृति तहँ नाशिया॥
शुक्ल-ध्यानपद दूजो, पुनि प्रभु पूरिया।
बारहवें-गुण सोलह, प्रकृति जु चूरिया॥
चूरि त्रेसठ प्रकृति इहविधि, घातिया-करमन तणी।
तप कियो ध्यानपर्यन्त बारह-विधि त्रिलोक-शिरोमणी॥

निःक्रमण-कल्याणक सु महिमा सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥15॥

4 ज्ञानकल्याणक

तेरहवें गुणस्थान सयोगि जिनेसुरो।
अनंत-चतुष्टय-मंडित, भयो परमेसुरो॥
समवसरन तब धनपति बहु-विधि निरमयो।
आगम-जुगति प्रमान, गगन-तल परि ठयो॥
परिठयो चित्र विचित्र मणिमय, सभा मण्डप सोहिये।
तिहि मध्य बारह बने कोठे, कनक सुरनर मोहिये॥
मुनि कल्पवासिनि अरजिका, पुन ज्योतिषी भवन-त्रिया।
पुनि भवन-व्यंतर नभग सुर नर पशुनि कोठे बैठिया॥16॥
मण्कुटी तीन, मणिपीठ तहाँ बने।
गुधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने॥
तीन छत्र शिर शोभित त्रिभुवन मोहिये।
अन्तरीच्छ कमलासन, प्रभुतन सोहिये॥
सोहये चौसठि चमर ढुरते, अशोक-तरु-तल छाजिए।
पुनि दिव्यधुनि प्रति-गूंजत तहँ, देवदुंदुभि बाजिए॥
सुर-पुहुपवृष्टि सुप्रभा-मण्डल, कोटि रवि छवि छाजिये।
इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजिये॥17॥
दुइसै जोजनमान सुभि चहूँ दिशी
गगन-गमन अरु प्राणी-वध नहिं अह-निशी॥
निरुपसर्ग निराहार, सदा जगदीश ए।
आनन चार चहुँ दिशि शोभित दीसए॥
दीसय असेस विशेष विद्या, विभव वर ईश्वरपना।
छाया-विवर्जित शुद्ध फटिक समान तन प्रभु का बना॥
नहिं नयन-पलक-पतन कदाचित् केश नख सम छाहजीं।
ये घातिया छय-जनित अतिशय, दश विचित्र विराजहीं॥18॥
सकल अरथमय मागधि-भाषा जानिये।

सकल जीवगत मैत्री-भाव बखानिये॥
सकल रितुज फलफूल, वनस्पति मन हरै।
दरपन-सम मनि अवनि, पवन-गति अनुसरै॥
अनुसरै, परमानन्द सबको, नारि नर जे सेवता।
जोजन प्रमान धरा सुमानहिं, जहाँ मारुत देवता॥
पुन करहिं मेघकुमार गंधोदक सुवृष्टि सुहावनी।
पदकमलतर सुर रचहिं कमलसु धरणि शशि-शोभा बनी॥19॥
अमल-गगन-तल अरु दिश, तहँ अनुहारहीं।
चतुर-निकाय देवगण, जय जयकारहीं॥
धर्मचक्र चले आगे, रवि जहँ लाजहीं।
पुनि भृंगार-प्रमुख, वसु मंगल राजहीं॥
राजहीं चौदह चारु अतिशय, देव रचित सुहावने।
जिनराज केवलज्ञान महिमा, अवर कहत कहाँ बने॥
तब इन्द्र आय कियो महोच्छव, सभा शोभा अति बनी।
धर्मोपदेशन दियो तहाँ, उच्चरिय बानी जिन तनी॥20॥
क्षुधा तृषा अरु राग, रोष असुहावने।
जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने॥
रोग शोक भय विस्मय, अरु निद्रा घनी।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिन्ता गनी॥
गनिये अठारह दोष तिनकरि रहित देव निरंजनो।
नव परमकेवललब्धि मंडित शिखर मनि-मन रंजनो॥
श्रीज्ञान कल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥21॥

5 निर्वाण कल्याणक

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसौ।
भव्यनिप्रति उपदेश्यो, जिनवर तारिसौ॥
भव-भय-भीत भविकजन, शरणै आइया।
रत्नत्रय-लच्छन शिवपंथ लगाइया॥

लगाइया पंथ जु भव्य पुनि प्रभु तृतिय सुकल जु पूरियो।
तजि तेरह गुणथान जोग अजोगपण पग धारियो॥
पुनि चौदहें चौथे शुकलबल बहत्तर तेरह हती।
इमि घाति वसुविधि कर्म पहुँच्यो, समय में पंचमगती॥22॥
लोकशिखर तनुवात, वलयमह संठियो।
धर्मद्रव्य बिन गमन न, जिहि आगैं कियो॥
नयन-रहित मूषो-दर, अंबर जारिसौ।
किमपि हीन निज- तनतैं, भयो प्रभु-तारिसो॥
तारिसो पर्यय नित्य अविचल, अर्थ पर्जय छन छयी।
निश्चयनयेन, अनंतगुण, विवहार नय वसु-गुणमयी॥
वस्तुस्वभाव विभाव-विरहित, शुद्ध परणति परिणयो।
चिद्रूप परमानंद मंदिर, सिद्ध परमातम भयो॥23॥
तनु- परमाणु दामिनि-पर, सब खिर गए।
रहे, शेष नख केश-रूप, जे परिणये॥
तब हरिप्रमुख चारविधि, सुरगण शुभ सच्यो।
मायामयि नख केश-रहित, जिनतनु रच्यो॥
रचि अगर-चंदन प्रमुख परिमल, द्रव्य जिन जियकारियो।
पदपतित अगनिकुमार मुकुटानल, सुविधि संस्कारियो॥
निर्वाणकल्याणक सु महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥24॥
मैं मतिहीन भगतिवस, भावन, भाइया।
मंगल गीत प्रबन्ध, सु जिनगुण गाइया॥
जो नर सुनहिं बखानहिं सुर धरि गावहीं।
मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं॥
पावहीं आठों सिद्धि नवनिध, मन प्रतीत जो लावहीं।
भ्रम भाव छूटै सकल मन के निज स्वरूप लखावहीं॥
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन सु होंहि मंगल नित नये।
भणि 'रूपचन्द' त्रिलोकपति, जिनदेव चउ-संघहिं जये॥25॥

पंचकल्याणक मंगलगीत

श्री मज्जिनेन्द्र के पञ्चकल्याणक का यह उत्सव प्यारा।
करता है भव का किनारा॥
श्री गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष का, देखो उत्सव सारा।
करता है भव से किनारा॥
इस संसार अनादि वास को जिनने सतत मिटाया।
सम्यक्त्व सहित सोलह कारण को जीवन में है ध्याया।
अपने समान ही जगत जीवों को, मार्ग बताया प्यारा॥
करता है भव से किनारा॥1॥
हम भूल रहें हैं शिवपथ नित ही, आकर हमें बताओ।
मोक्ष प्राप्त करने वाला सद्ज्ञान नाथ दे जाओ।
हम भक्त तुम्हारे शरण में आये, हरो अज्ञान हमारा॥
करता है भव से किनारा॥2॥
शुभ आशीष यह मिले नाथ हम भी कब अवसर पायें।
संसार वास सब मिटे हमारा, आतम ज्योति जगाएँ।
नर से नारायण बन करके, पाएँ शिवसुख सारा।
करता है भव से किनारा॥3॥

(सम्यक् प्रतिष्ठा सौरभ भाग-2)

समवशरण रचना

केवल ज्ञान प्रभु जब पाया, इन्द्र सिंहासन कंपित पाया।
अवधिज्ञान उपयोग लगाया, ज्ञात हुआ तब मन हरषाया॥
देवराज से आज्ञा पाई, शिल्पी धनपति मन हरषाई।
मध्यलोक धनपति तब आये समवशरण शुभ स्वयं बनाये॥
चहुंदिशि चार प्रमुख दरवाजे, आगे मानस्तंभ विराजे।
मानस्तंभ मान जब हरता, प्राणी तब प्रवेश है करता॥
चहुंदिशि निर्मित नाटक शाला, देवि करें नाटक अति आला।

पंचरत्न चूरण करवाया, धूलिसाल शुभ कोट बनाया॥
चैत्यप्रसाद भूमि अति सुन्दर, रचे ध्वजायुत श्री जिनमंदिर।
फूले कमल हंस मन मोहै द्वितीय भूमि खातिका सोहै॥
फूलेफूल बनी फुलवारी, तीजी लताभूमि इक क्यारी।
उपवन चम्पक आम्र अशोका सप्तपर्ण वन हरते शोका॥
चैत्य वृक्ष चैत्यालय सोहैं, चौथी वन भूमि मन मोहै।
सिंह वृषभ गज गरुड़ मयूरा, सूरज चन्द्र चक्र है पूरा॥
कमल हंस दस जिनमत गाये, ये दश चिन्ह ध्वजा बतलाये।
ध्वजा पताका ध्वज अति सोहैं, पंचम ध्वज भूमि मन मोहै॥
कल्पवृक्ष युत भूमि बनाई, कल्पवृक्ष भूमि कहलाई।
भवनभूमि सुर भवन बनाये, देवी सह सुरवास कराये॥
अग्रभूमि श्री मण्डप रूपा, बारह सभा बनी शुभरूपा।
प्रथम सभा गणधर मुनिराजें, दूजी कल्पवासिनी साजें॥
तीजे में माता आर्यिकायें संग बैठती हैं श्राविकायें।
चौथी सभा ज्योतिषी भाई, पंचम सभा व्यंतरी भाई॥
छट्ठे भवनवासिनी साजें सप्तम ज्योतिष देव विराजें।
अष्ठम व्यंतर देव बताये नव में भवनवासि शुभ गाये॥
कल्पवासि सुर दशम विराजे, चक्रवर्ति नर ग्यारम राजे।
बारम पशु पक्षी गण बैठें, दिव्यध्वनि सुन सब दुख मेटें॥
बारह सभा बीच त्रय कटनी बिन उपदेश कभी न हटनी।
धर्मचक्र चहुंदिशि अतिसोहैं प्रथम कटनि सबका मन मोहै॥
दूजी कटनी महाध्वजायें विविध चिन्ह युत यश फैलायें।
गंधकुटी कटनी शुभरूपा चहुंदिशि चार रखे घटधूपा॥
वायु शुद्ध करें घटधूपा अंतरिक्ष चौमुख प्रभुरूपा।
दिव्यध्वनि खिरती ऊंकारा तब गणधर करते विस्तारा॥
उपदेशामृत मेघ बरसते, भविजन मोक्ष मार्ग में लगते।
समवशरण शोभित जिनराजा भवदधि तारण तरण जहाजा॥
सम्यक् रत्नत्रय निधिदानी, लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी।
शत इन्द्रनि कर बंदित सोहैं, सुर नर पशु सबका मन मोहै॥

श्री आदिनाथ जी गर्भकल्याणक स्तवन गीत

आदिनाथ का आवन होगा, नगर अयोध्या पावन होगा।
सब जग दुख के नाश करन का साधन होगा॥ नगर अयोध्या....
धनपति सुर मिल नगर बनाया, महल सर्वतोभद्र सुहाया।
चारों दिशा में बने जिन मंदिर, अर्चन वन्दन करते सब नर।
पुण्य बंध का कारण होगा॥ नगर अयोध्या..........
इन्द्र इन्द्राणी हर्ष मनाएँ, मात-पिता के गुण मिल गाएँ।
गर्भोत्सव सब करने आएँ, भाँति-भाँति वादित्र बजाएँ
द्वार- द्वार पर तोरण होगा......नगर अयोध्या.........॥
सारे नगर की शोभा बनाएँ, रतन नृपति आङ्गंन बरसाएँ।
षट् कुमारिका सेवा करने, माता मन को प्रमुदित करने।
हर आंगन सुख पूरित होगा॥ नगर अयोध्या........॥

सोलह स्वप्न दर्शन गीत-1

सो रही माता देखो नींद में मगन, सोते हुए देखे मां ने सोलह स्वप्न।
मन में बजी शहनाई, खुशियों की बेला आई।
1. पहला सपना देखा माँ ने एक ऐरावत हाथी।
दूजे सपने में वृषभ को देखा, शोभा जिसकी न्यारी॥
तीजे में देखा वनराज, गूंज रही जिसकी आवाज।
देख के सुन्दर सपने मां का झूम उठा तन मन॥ सो रही......
2. चौथे में लक्ष्मी को देखा, जिसका रूप निराला।
पांचवा स्वप्न दो माला सुंदर मोहित है कर डाला॥
छटवां स्वप्न चन्द्रमा प्यारा, शीतलता पाये जग सारा।
ऐसे सपने देख के मां का जीवन हुआ है धन्य॥ सो रही.....
3. सातवां सपना ऊगता सूरज, जिसकी अद्‌भुत लाली।
आठवां सपना युगल मीन दो सुन्दर हैं अतिप्यारी॥
नौवां सपना कलश थे प्यारे जिसमें देखो जड़े सितारे।
ऐसे सपने देख के मां का सफल हुआ जीवन॥ सो रही......

4. दसवां सपन सरोवर देखा क्षीरोदधि सा पानी।
ग्यारहवां सपन समुन्द्र जो देखा लहर उठें मनमानी॥
बारहवां सपन रत्न सिंहासन देख के मां का ललचावे मन।
प्यारे-प्यारे सपने देखे झूम उठा तन मन॥ सो रही......
5. तेरहवां सपना विमान जो देखा, स्वर्ग से चलकर आया।
चौदहवां सपन धरणेन्द्र भवन जो सबके मन को भाया॥
पन्द्रहवां सपना रत्नराशि का जिसमें निकले उजाला।
सूर्य से अधिक कांति जिसमें है भगे अंधेरा काला॥
निर्धूम अग्नि सोलहवां सपना कोई नहीं जग में है अपना
सोलह सपने देखे मां ने सब जग हुआ प्रसन्न॥ सो रही......

दोहा -

सुन्दर सोलह स्वप्न यह, पहर आखिरी रात।
देखे फल चिन्तन करै, फिर मरुदेवी मात॥

स्वप्न फल गीत- 2

सुनो प्रिये मैं तुम्हें सुनाऊं स्वप्नों का फल प्यारा है।
धर्म मूर्ति तीर्थंकर सुत हो जागा भाग्य हमारा है।टेक॥
गजदेखन से सुत उत्तम हो, वृषभ से जग गुरु होवेगा।
सिंह देखन से पराक्रमी, माला तीर्थंकर होवेगा॥
कमला न्हवन से गिरि न्हवन, करें देव मिल प्यारा है॥
धर्म मूर्ति.....
शशि पूरण बतलाता ऐसा, सर्व जगत में शान्ति भरे।
सूर्य प्रतापी कुंभ युगल से, निधिपति बन भंडार भरे।
सरवर अवलोकन से होगा, सर्वगुणी भंडारा है।
धर्म मूर्ति.....
मीन युगल को देखा तुमने, आनन्द कारक होवेगा।
सागर का फल यह प्रिय जनों, सर्व ज्ञानमय होवेगा।
सिंहासन से प्रजापालक बन, नीतिवन्त जग प्यारा है।
धर्म मूर्ति.....

स्वर्ग विमान स्वर्ग से आये, नागेन्द्र अवधिज्ञानी होगा।
रत्नराशि से सर्वगुणों का, अधिकारी वह सुत होगा।
निर्धूम अग्नि से कर्म जला, किया शुद्ध चिदानंद प्यारा है।
धर्म मूर्ति.....
वृषभ प्रवेश से वृषभ नाम, सर्वार्थसिद्धि तजकर आये।
करें महोत्सव सुर सुरपति मिल निधिपति रतन सु बरसाये।
धन्य दिवस तीर्थंकर जननी, यह धनभाग्य हमारा है।
धर्म मूर्ति.....

सल्लेखना में धर्म की रक्षा गीत

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

तर्ज : जिनधर्म की डगर पर ...

सल्लेखना धरम की रक्षा सदा करेंगे।
आयेंगी जो भी बाधा सिद्धान्त से हरेंगे,
(यह धर्म है अहिंसा धारण इसे करेंगे,
सल्लेखना तरणि से भवसिन्धु को तिरेंगे।)
सर्वज्ञ देशना में सत्तप का फल कहा है,
साधक की साधना का सार्थक सुफल रहा है।
सल्लेखना से शाश्वत अमरत्व पद धरेंगे,
सल्लेखना तरणि से भवसिन्धु को तिरेंगे॥1॥
यदि धर्म साधना में कोई भी विघ्न आता,
संकट अकाल व्याधि वृद्धत्व तन समाता।
प्रतिकार हो सके ना तब तो समाधि लेंगे,
सल्लेखना तरणि से भवसिन्धु को तिरेंगे॥2॥
जब से धरम यहाँ ये तव से समाधि यश है,
संयम भव शिखर तप सल्लेखना कलश है।
मरणों से मुक्ति पाने सल्लेखना धरेंगे,
सल्लेखना तरणि से भवसिन्धु को तिरेंगे॥3॥

देहात्म भेद रेखा सल्लेखना दिखाती,
कृशता कषाय तन की सल्लेखना सिखाती।
जब तन से प्राण निकले तब आत्म को लखेगें,
सल्लेखना धरम की रक्षा सदा करेंगे॥4॥
मन इन्द्रियों को जीतें क्रोधादि मान जीतें,
जीतें जनम मरण को देहादि दुःख जीतें।
जीतें क्षुधा तृषा को अरहंत पद धरेंगे,
सल्लेखना धरम की रक्षा सदा करेंगे॥5॥
इतिहास पुरातत्त्वों में लेख बोलते हैं,
सल्लेखना में साधक शिवद्वार खोलते हैं।
संयम सफल बनाने सल्लेखना धरेंगे,
आयेंगी जो भी बाधा सिद्धान्त से हरेंगे॥6॥
सल्लेखना समाधि सत् लखने प्रक्रिया है,
इसमें न इच्छा मृत्यु नहिं आत्म वध क्रिया है।
मरणों का अन्त करने अध्यात्म को चखेंगे,
आयेंगी जो भी बाधा सिद्धान्त से हरेंगे॥7॥
जीवन मरण की आशा न शेष है जहाँ पे,
भोग स्मरण न मित्रों से राग है जहाँ पे।
संसार सुख दुखद तज शिव सौख्य को भजेंगे,
सल्लेखना तरणि से भवसिन्धु को तिरेंगे॥8॥
मरणों का अन्त होगा जन्मों का अन्त होगा,
सल्लेखना सु तप में जिन नाम मन्त्र होगा।
विद्याब्धि मृदु वचन सुन हम भव में ना भ्रमेंगे,
आयेंगी जो भी बाधा सिद्धान्त से हरेंगे॥9॥
सल्लेखना धरम की रक्षा सदा करेंगे।
आयेंगी जो भी बाधा सिद्धान्त से हरेंगे,
(यह धर्म है अहिंसा धारण इसे करेंगे,
सल्लेखना तरणि से भवसिन्धु को तिरेंगे।)

जन जागृति गीत

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

तर्ज : अपनी आजादी को हम .....

तन वतन का धन रहा है, हे मनुज! तू याद कर,
कर चुकाना ही पड़ेगा, व्यर्थ ना बरवाद कर।
हर तरह से राष्ट्र हित को, चित्त में यह ठान ले,
स्वपर का हित साथ में हो, संत वचन प्रमाण ले।
मन वचन से और तन से, सर्व का उपकार कर,
तन वतन का धन रहा है, हे मनुज! तू याद कर ॥1 ॥
दुःख जग के देखकर के, मन तुम्हारा मोम हो,
पक्षि पशुओं के सुहित में, प्राण अपने होम हों।
तभी संस्कृति बच सकेगी, हृदय मृदुल उदार कर,
तन वतन का धन रहा है, हे मनुज! तू याद कर ॥2 ॥
लक्ष्य चयनित कर चलो तो, लक्ष्य पाकर ही रहो,
जीवनी निज शक्तियों को, बाँटकर चलते रहो।
गाँधीजी सम देश हित में, स्वार्थ वाद संहार कर,
तन वतन का धन रहा है, हे मनुज! तू याद कर ॥3 ॥
देश का कर चुक सकेगा, आत्म बलिदानी बनो,
मांस मदिरा शहद तज के, शाक-आहारी बनो।
नशाबन्दी जुआबन्दी, जब कभी अभियान कर,
तन वतन का धन रहा है, हे मनुज! तू याद कर ॥4 ॥
गेंदबाजी बल्लेबाजी, या निशाना साधना,
खेल कैसा खेलना या, तैरना या दौड़ना।
पर सभी 'मृदु' शक्तियों में, राष्ट्र हित स्वीकार कर,
तन वतन का धन रहा है, हे मनुज! तू याद कर ॥5 ॥

अहिंसा गीत

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

जिनधर्म की डगर पर , बच्चों दिखाओ चल के।
यह धर्म है सभी का, धारो हृदय से बढ़ के॥
यह धर्म है अहिंसा, धारो हृदय से बढ़ के ॥ध्रुव॥
जीती कषायें जिनने, जीतीं हैं इन्द्रियाँ भी,
जीता है काम मद भी, जीता जनम मरण भी।
जीती क्षुधा तृषा भी, संयम के पथ पर चल के,
जिनधर्म की डगर पर, बच्चों दिखाओ चल के ॥1 ॥
जिसने स्वयं को जीता, उसको ही जिन कहा है,
माने जो ऐसे जिनको, सच जैन वह रहा है।
सच्चे बनोगे जैनी, जिनवर के पथ पै चलके,
जिनधर्म की डगर पर, बच्चों दिखाओ चल के ॥2 ॥
जीना सभी को प्रिय है, चाहे न कोई मरना,
तरुवर के धर्म जैसा, उपकार सबका करना।
सबमें छिपी अहिंसा, जीयो जिलाओ मिलके,
जिनधर्म की डगर पर, बच्चों दिखाओ चल के ॥3 ॥
यदि हो अहिंसा प्रेमी, स्वागत करो दिवस का,
दिन में ही लो बराती, दिन में हो भोज सबका।
बन जाओ श्रेष्ठ मानव, कुरीतियाँ कुचल के,
जिनधर्म की डगर पर, बच्चों दिखाओ चल के ॥4 ॥
वृषभादि वीर प्रभु ने, जिन धर्म को जिया है,
विद्याब्धि पा मृदुल हो, अरहंत बन गया है।
जीतो स्वयं को होगे, महावीर तुम भी कल के,
जिनधर्म की डगर पर, बच्चों दिखाओ चल के ॥5 ॥
यह धर्म है अहिंसा, धारो हृदय से बढ़ के।
यह धर्म है सभी का, धारो हृदय से बढ़ के॥

दुःखहरण जिनदेव स्तुति

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

पुष्पमञ्जरी छंद (रजररगण)

देव! आप दर्श से निहाल आज हो गया,
भक्ति भाव में विलीन साज-बाज खो गया।
चर्म नेत्र से लखूँ तभी जु हर्ष प्राप्त हो,
ज्ञान नेत्र से लखूँ कभी न वो समाप्त हो ॥1 ॥

आप नंत ज्ञान दर्श वीर्य सौख्यवान हो,
आप ही त्रिलोक मध्य पूर्ण कान्तिमान हो।
आपके बिना फिरा प्रभो यहाँ अनादि से,
दुःखसिंधु में पड़ा मिला न सौख्यव्याधि से ॥2 ॥

दुःख का न पार है अनादि काल से जने,
देह धार रोष-मोह राग-द्वेष से हने।
रागद्वेष मोह से बचूँ न कर्म बँध हो,
आप कर्म शत्रु जीत मुक्त हो अबंध हो ॥3 ॥

ईश! आप भक्ति से प्रसन्न हों न खिन्न हों,
भक्त में अभक्त में समान शंस निन्द हों।
स्वर्ग में न भेजते न नर्क में गिरावते,
शुद्ध दृष्टि से प्रभो! न भव्य को उठावते ॥4 ॥

पाप कर्म से जिनेश! आज कष्ट आ गया,
धर्मवान हूँ परं असह्य दुःख छा गया।
आप भक्ति से जिनेन्द्र! पाप कर्म हान के,
दुःखदायि पाप को करूँ न दोष जान के ॥5 ॥

वज्र भी कहाँ लगें कठोर कर्म दुःख दें,
काटते कटे नहीं फलें कुकर्म कष्ट दें।
वर्तमान से जु सीख लेय भव्य जीव है,
जो न सीख ले वही कुधर्म वज्र नींव है ॥6 ॥

वर्तमान में विषाद अज्ञता दिखा रही,
काल नंत से यही विपत्तियाँ बुला रही।
धैर्य धार कर्म की जु निर्जरा करो सही,
एक-एक कष्ट में समत्व धार लो यहीं ॥7 ॥

सो जिनेन्द्र देशना सु-धार लो सुधामयी,
जन्मवार्धि पार करे नाव धर्म की नयी।
भो गुरो! कृपा करो! कृपा के आप सिंधु हो,
हे प्रभो! उभार लो, तुम्हीं त्रिलोक बन्धु हो ॥8 ॥

हे जिनेश! पाप नाशने को पास आ गया,
पाप दुःख रूप जान छोड़ने को आ गया।
निन्द हूँ अनेक बार पाप धिक् करूँ सदा,
हाथ जोड़ के कहूँ विभाव से करो जुदा ॥9 ॥

नर्क दुःख देख-देख पाप से बचूँ सदा,
औ तिरश्च कष्ट देख धर्म में बढ़ूँ मुदा।
स्वर्ग राज्य सम्पदा मुझे न चाहिए प्रभो!,
मुक्ति प्राप्ति हेतु आप शर्ण दीजिए विभो! ॥10 ॥

आपके सुध्यान से मिटे किलेश सर्व ही,
शान्ति भाव धारके सुभव्य पाय शर्म भी।
आप नाम से करें अनंत पाप नाश को,
आप जाप से लहूँ महान मोक्षवास को ॥11 ॥

बोधि चाहिए समाधि चाहिए इसे प्रभो!
मोक्ष चाहिए निजात्म सौख्य चाहिए विभो!
अन्य चाह मेंट के सुभेंट आप से करे,
मृदुमती समाधि बोधि भक्ति नाव से तिरे ॥12 ॥

> ''अपने देश, कुल एवं ऐतिहासिक पुरुषों की संस्कृति उत्तम परम्पराओं को जीवित बनाये रखने की भावना ही संस्कार है''

संकटहरण पार्श्वनाथ विनती

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

शंभव छन्द

(तर्ज- हे वीर तुम्हारे द्वारे पर इक दरस भिखारी आया है..........।)

हे पार्श्वनाथ सर्वज्ञ प्रभो!, मुझको भव दुख से पार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥ध्रुव॥
चारों गतियों में कष्टों का, नहिं पार कहीं मैं पाता हूँ।
दुख ही दुख चारों ओर घिरे, मैं जाऊँ जिधर दुख पाता हूँ।
हे करुणा सागर दीन बन्धु, अब तो भव दुख से पार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥1॥
नरकों में देह मिली दुखदा, फिर अन्य नारकी दुख देते।
मारें काटें तन घात करें, टुकड़े करके मुख में देते।
ताड़न-मारण दुर्वचनों के इन, बहु दुःखों से पार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥2॥
कोई बाँधे कोई चीरे मारे, कोई मम अंगों को फाड़े।
कोई पटके वैतरणी में, सेमर तरु के दल तन काटें।
अति शीत उष्ण के भूख प्यास के, दुःखों का संहार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥3॥
जब नरकों के दुख सुनता हूँ, तो कँप जाता हूँ इस भूपर।
जब वहाँ सहे होंगे वे दुख, तब क्या कह सकता हूँ मैं नर।
जिन पापों से दुख पाता हूँ, उन पापों का संहार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥4॥
नरकों के दुख से जब निकला, फिर पशुगति पायी दुःख भरी।
जहाँ भूख प्यास के शीत उष्ण के, बहु दुख सहे न चैन घरी।
फिर भार वहन औ वध बंधन के, बहु दुःखों से पार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥5॥
जब अज मृग कुक्कुट आदि बना, तो वधिकों ने काटा मुझको।
जब बैल गधा बन चल न सका तो, सोटों से पीटा मुझको।

एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय के, दुःखों से अब उद्धार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥6॥
कुछ पुण्य उदय जब मम आया, सुर देह धरी बहु राग भरी।
तृष्णा वश भोगों को भोगा, अघ बंध किया तृष्णा न मरी।
इन तरह-तरह के भोगों से इस दुखिया का उद्धार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥7॥
फिर सुरी-विरह का दुख करके, मैं पशु आयुष का बंध किया।
परिणाम हुआ एकाक्ष बना, तो तिर्यंचों में जन्म लिया।
इन गर्भ जन्म के कष्टों से, जिनवर मेरा उद्धार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥8॥
अब मात गरभ के कष्ट कहूँ, कहने में जिह्वा शक्त नहीं।
जहँ अंगों की सकुड़ाई थी, तब मम पीड़ा अव्यक्त रही।
मैं कह न सका ना हिल ही सका, उस पीड़ा का परिहार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥9॥
जब माता खाती कटुक तिक्त, तब मैंने तन संताप सहा।
यदि गरम-गरम खाती माँ तो, फिर देह जलन का कष्ट अहा!
उल्टे मुख शीर्षासन दुख से, हे जिन! अब तो उद्धार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥10॥
फिर जन्म समय जो दुःख लहे, मुनि भी अक्षम उसको कहने।
जब भूख लगी तब हाय-हाय! बस सक्षम कहाँ लहें कहने।
जो पीड़ा भोगी प्रभु मैंने, उस पीड़ा का परिहार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥11॥
मैं बालपने में हिताहितों के, द्वय विवेक से शून्य रहा।
ज्यों नीर बिना मछली के सम, मैं धर्म ज्ञान से न्यून रहा।
तुम ज्ञान ज्योति मन में राजो, अब मेरा अघ अँधियार हरो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥12॥
नर तरुणाई विषयों में गई, जब वृद्ध हुआ कुछ कर न सका।
तीनों पन यूँ ही नष्ट हुए, गुरु धर्म बिना हित सध न सका।

दुर्लभ तन पाये नर भव में, 'मृदुमति' कर मम उद्धार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥13 ॥
हे वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, मुझको दुख से पार करो।
तुमने अपना उद्धार किया, अब मेरा भी उद्धार करो ॥
जन्म दोष से मुक्त को, जो अर्चे भवि लोग।
निश्चित वे शिव पायेंगे, छूटे दुख संयोग ॥

आचार्य स्तवन

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

विद्याब्धि छन्द (22 मात्रिक)

(तर्ज- हे दीनबन्धु..............।)

विद्याब्धि सूरि उपकारी याद आ गये।
आचार्य देव मेरे उर में समा गये ॥ध्रुव ॥

जितने भी सिद्ध बन गये पहले श्रमण बने,
उवझाय सूरि अरिहंतों को नमन घने।
स्वात्मोपलब्धि के लिए अम्बर प्रथम तजे,
निर्ग्रन्थ लिंग के बिना जैनी नहीं भजे ॥1 ॥

इस ढाई द्वीप में विदेह क्षेत्र सिद्ध है,
सतयुग सदा से वर्त रहा श्रुत प्रसिद्ध है।
इस भरत क्षेत्र में अभी जिन तीर्थ चल रहा,
यह काल तीसरे से पाँचवें में खिल रहा ॥2 ॥

अवसर्पिणी सुषम-दुषम में जन्म ऋषभ का,
दुष्षम-सुषम में जन्म था तीर्थेश शेष का।
पुरुदेव से वीरान्त में अनगिन श्रमण हुए,
जो सिद्धि प्राप्त कर चुके उनके चरण छुएँ ॥3 ॥

तीर्थंकरों ने गणधरों ने मार्ग बताया,
जिस पे चले अनन्त सन्त मुक्ति को पाया।

छह सो तिरासी वर्ष हुए वीर मोक्ष के,
धरसेन सूरि श्रुत दिया षट्खण्ड नाम से ॥4 ॥

मुनि पुष्पदन्त भूतबली ग्रन्थ लिख गये,
षट्खण्ड जैन आगम हम सबको दे गये।
गुरु के बिना न शास्त्र हों न मार्ग ही मिले,
गुरु के बिना न भव्य के अन्तर नयन खुलें ॥5 ॥

गुरुओं का क्रम अनादि से चलता ही रहा है,
होते रहें अनन्त काल सन्त यहाँ हैं।
तीर्थंकरों के भव में यदपि गुरु नहिं होते,
पर पूर्वभव में गुरु चरण में व्रत को सँजोते ॥6 ॥

जिनसुविधि से जिन शान्ति बीच सात बार में,
जिन तीर्थ का विच्छेद हुआ मुनि अभाव में।
दीक्षा के बिना तीर्थ प्रवर्तन नहीं रहा,
इस हेतु नग्न सन्त भव्य तीर्थ हैं महाँ ॥7 ॥

दीक्षा लिए बिना न मोक्षमार्ग लख सकें,
निर्ग्रन्थ दिगम्बर से ही सन्मार्ग दिख सके।
ज्यों वस्तु बिना वस्तु का गुण धर्म ना दिखे,
त्यों साधु बिना मुक्ति का सन्मार्ग ना दिखे ॥8 ॥

विजयी थे कुन्दकुन्द श्वेतपट विवाद में,
सत्पंथ दिगम्बर रहा निर्ग्रन्थ मार्ग में।
जिनमत प्रभावना हुई समन्तभद्र से,
पाषाण से प्रकटे चन्द्रनाथ भद्र भक्ति से ॥9 ॥

आचार्य गुण धरादि श्रुतधरों को मैं नमूँ,
यतिवृषभ सूरि पूज्यपाद आर्य को नमूँ।
अकलंक देव वीरसेन नेमिचन्द्र को,
जिनसेन श्री गुणभद्र नमूँ विद्यानन्दि को ॥10 ॥

बन्धन से मुक्त मानतुंग भक्ति नजारा,
वृषभेश संस्तवन में भक्त-अमर सहारा।

जिनधर्म की महिमा के लिए कुष्ट मिटाया,
मुनि वादिराज ने प्रजा के भ्रम को हटाया ॥11॥

आचार्य शान्तिसिन्धु ने मुनिमार्ग सुधारा,
निर्ग्रन्थ मुनि विहार का अवरोध निवारा।
फिर वीरसिन्धु शिव-उदधि ज्ञान-जलधि से,
आचार्य विद्यासागर पाये सुभक्ति से ॥12॥

भारत के मध्य कुण्डलपुर तीर्थ कहाना,
बाबा बड़े का मंदिर नव गिरि पे सुहाना।
विद्याब्धि तप प्रभाव से अवरोध ढा गये,
फूलों से उड़ के बाबा मंदिर में आ गये ॥13॥

मंदिर में डोम रखने को विरोध हट गया,
मंदिर शिखर बनाने हेतु रोध मिट गया।
गुरु मन में धर्म की प्रभावना का चाव था,
पुरुदेव को नव वेदि पे बिठाना भाव था ॥14॥

पूजा रचाओ सर्वमुनि की 'श्रमण चक्र' में,
गुरु भक्ति करो फिर न फँसो मोह चक्र में।
हर हाल के नव कोटि त्रि-कम श्रमण पूजिये,
छठवें से चौदमें गुणी को धर 'मृदु'ल हिये ॥15॥

नन्दीश्वर द्वीप स्तवन

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

दोहा

नन्दीश्वर में राजतीं, प्रतिमा दिव्य स्वरूप।
मनुज लोक से मैं नमूँ, उन सम बनूँ अनूप॥
प्रतिमा दर्पण रूप हैं, भक्त लखें निज रूप,
वीतरागता प्राप्ति को, पूजूँ शिव सुख कूप॥

तर्ज : देख तेरे संसार की हालत ......।

वीतरागता झलके जिनसे, वीतराग प्रतिमान,
नमूँ मैं जिनप्रतिमा अभिराम।

जिन प्रतिमाओं के जो मंदिर, रहे शांति के धाम,
करूँ मैं बारम्बार प्रणाम ॥ध्रुव॥
इक सौ त्रेसठ कोटि प्रतिदिश, योजन लाख चुरासी युत बस,
सर्व मध्य से पूर्व दिशा में, अंजन गिरि नग रँग यामा में।
दश हजार योजन को तजकर, चार वापिका मान,
कहा यह नन्दीश्वर परिमाण ॥1॥
पैंसठ सौ पैंतालिस योजन, चउ वापी अन्दर अन्तर गुन,
दोय लाख तेबीस सहस्सर, छह सौ इकसठ बाहर अन्तर।
प्रतिदिश वापी के चतुवन हैं, अशोक वन इक नाम,
सप्त छद वन चम्पक वन आम ॥2॥
इक अंजनगिरि चार वापियाँ, चार दिशा की सोल वापियाँ,
एक वापि प्रति सौलहवन हैं, चारों के मिल चौंसठ वन है।
इन पर अवतंसादिक चौंसठ, देव बसे द्युतिमान,
निजी आवासों में विश्राम ॥3॥
प्रतिवापी में दधिमुख पर्वत, दुग्ध समान श्वेत प्रतिपर्वत,
वापि कोन दो-दो रतिकर हैं, लाल रंग रतिकर गिरिवर हैं।
एक दिशा में इक अंजनगिरि, चउ दधिमुख गिरि भान,
आठ रतिकर मिल तेरह गान ॥4॥
तेरह पर्वत पर जिन मंदिर, इसी तरह हर दिश में मंदिर,
वापी वन भी प्रतिदिश सोहे, जिनमंदिर भविजन मन मोहे।
बावन मंदिर में प्रति मंदिर, शत अठ प्रतिमा जान,
नमूँ मैं वीतराग भगवान ॥5॥
नंदा नंदवती उद्घोषा, नंद-उत्तरा नंदीघोषा,
अरजा विरजाऽशोका नामा, नाम वीतशोका भी माना,
विजया वैजन्ती जयअन्ती, अपराजित पूर्वादिक त्रिदिशी।
रम्या रमणीया सुप्रभा है, सर्वतोभद्रा जान,
चार उत्तर के वापी नाम॥
कार्तिक फाल्गुन आषाढ़ों के, अन्तिम आठ दिवस पर्वों के,

सौधर्मादिक इन्द्र देवगण, भक्ति करें परिवार देविगण।
नंदीश्वर जिनप्रतिमा पूजन, चौसठ प्रहरी ठान,
सुदृष्टि गण करें अशुभ की हान ॥7 ॥
कल्पवासिकृत पूरब पूजा, भवनवासि पूजें दक्षिण जा,
व्यन्तरगण पश्चिम में भजते, ज्योतिष सुर उत्तर में यजते।
दो-दो प्रहर करे दिशि पूजन फिर बदले जिन थान
परिक्रम सम बढ़ते बहुमान ॥8 ॥
प्रतिदिन एक बार क्रम आता, पूर्वादिक चारों भज पाता,
दिवस दूसरे फिर चारों दिश, इस प्रकार पूजें अठदिन निश।
अष्ट प्रहर में चार दिशा के, पूजें जिन भगवान,
अष्टमी से पूनम तक जान ॥9 ॥
ऐरावत हाथी पर आता, अपने कर में श्रीफल लाता,
दिव्य भूतियों से शोभित हैं, सौधर्मेन्दर सुफल सहित है।
विविध विनय युत इन्द्रदेव भी, पूजन करता आन,
देखकर सुरगण करें प्रणाम ॥10 ॥
उत्तम हाथी पर आता है, हाथ सुपारी फल लाता है,
दिव्य रत्न से भूषित होता, ईशानेन्द्र विभव मद खोता।
पूग फलों के गुच्छे लेकर, पूजें इन्द्र प्रधान,
शेष सुर झुक-झुक करें प्रणााम ॥11 ॥
श्रेष्ठ सिंह पर चढ़कर आता, आम्रफलों को कर में लाता,
नवरवि सम कुण्डल से सज्जित, सनत इन्द्र जिन पूजा मज्जित।
आम्र गुच्छ ले जहाँ इन्द्र भी, पूजन करता आन,
शेष सुर करते जय-जयगान ॥12 ॥
श्रेष्ठ अश्व पर आरोहण कर, नम्रीभूत सुभक्ति भावकर,
उत्तम शोभा धारी साँचा, परिकर सहित महेन्दर नाचा।
केले गुच्छे कर में लेकर, इन्द्र करे बहुमान,
देवियाँ नाचें गावें गान ॥13 ॥
शशि सम धवल हंस पर आता, ब्रह्म इन्द्र सुकेतकी लाता,
क्रोंच पक्षि पर ब्रह्मोत्तर है, चामर छत्र कमल निज कर है।

लान्तव औ कापिष्ठ इन्द्र भी, पहुँचे द्वीप महान,
जहाँ जिन बावन मंदिर भान ॥14 ॥
चक्रवाक पर शुक्र इन्द्र है, कुण्डल शोभे बाजुबन्द हैं,
कर में पुष्प लिये सेवंती, भक्ति भरा मन तन दिव्यन्ती।
सहयोगी सुर अष्ट द्रव्य ले, करे सुमंगल गान,
रहे सब अनुचर शुक्र प्रधान ॥15 ॥
तोता पक्षी पर आरूढ़ी, दिव्य विभूति युक्त तन रूपी,
विविध कुसुम मालायें कर में, महाशुक्र नाचे मन्दर में।
द्वीप आठवें नन्दीश्वर में, जाकर करें विधान,
आठ दिन भक्ति करे इकतान ॥16 ॥
कोयल वाहन पर सवार है, रत्न अलंकृत इन्द्र शतार है,
कर में नील कमल शोभित है, जिनार्चना से वह प्रेरित है।
कोकिल कण्ठी इन्द्र स्वयं ही, करे भक्ति गुणगान,
भक्ति में नहीं काल का ध्यान ॥17 ॥
गरुड़ विमानारोही आता, सहस्रार कर अनार लाता,
विहगाधिप आरूढ़ सुहाता, आनतेन्द्र कर कटहल भाता।
अनार कटहल गुच्छे कर ले, इन्द्र करे बहुमान,
विभव युम करे विनय सम्मान ॥18 ॥
पद्म विमानारूढ़ी चलता, आभरणों से तन को सजता,
प्राणतेन्द्र भाक्तिक बन आते, कर में तुम्बुरू गुच्छे लाते।
मनुज जन्म को तरसे फिर भी, सफल करें सुर प्राण,
संयमी बनने में कल्याण ॥19 ॥
आरणेन्द्र हैं कुमुदविमानी, कर में गन्ने सरस निशानी,
अच्युतेन्द्र का मयूर वाहन, कर में चँवर देह में भासन।
रहे अलंकृत विविध रूप में, फिर भी विनय महान,
कल्प के इन्द्र जजें भगवान ॥20 ॥
नानाविध वाहन पर आते, ज्योतिष व्यन्तर भवन कहाते,
विविध फूल फल कर में लाते, दिव्य-दिव्य विभूति युत आते।

भक्ति भाव से जिन प्रतिमा की, पूजन रचते आन,
करें वे विन भक्ति सम्मान ॥21 ॥
पूर्वाण्हे अपराण्हे काले, पूर्व रात्रि अपरा निशि काले,
पूर्वादिक दिश के वे क्रम से, कल्पादिक सुर योग्य विनय से।
नन्दीश्वर जिन प्रतिमाओं का, करें सुमंगल गान,
प्रहर चौसठ तक फिर निज थान ॥22 ॥
वीतरागता छलके जिनसे, वीतराग प्रतिमान,
नमूँ मैं जिनप्रतिमा अभिराम।
जिन प्रतिमाओं के जो मंदिर, रहे शांति के धाम,
करूँ मैं बारम्बार प्रणाम ॥ध्रुव ॥

दोहा

जिन चरित्र गातीं हुईं, करती सुरियाँ नृत्य।
जिन चरित्र नाटक करें, सुरसमूह बन भृत्य॥
नन्दीश्वर की वंदना, अल्पा मति कृत जान।
'मृदुमति' क्षम्य रहे सदा, हे गुरो! कृपानिधान॥

नवेदव स्तवन

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

विद्याब्धि छन्द

तर्ज : हे सदलगा के संत तूने ...

नवदेव चक्र मेरे उर में सदा बसो।
मोहान्धकार नाशने को सूर्य सम लसो॥ध्रुव॥
जय जय जय नवदेव महान............।
घनघाति कर्म जीत के अरिहंत पद लहा,
शुचि ज्ञान में अलोक लोक सब झलक रहा।
उपदेश से इस काल में भी भव्य तिर रहे,

शत इन्द्र भक्ति युक्त नमस्कार कर रहे ॥1 ॥
जय जय जय अरिहंत महान............।
जो कर्म- मुक्त देह-मुक्त सिद्ध हो गये,
जो ज्ञान-चेतना में जग प्रसिद्ध हो गये।
योगीश जिन्हें ध्यान में ध्याते हैं नित महाँ,
उन सिद्धप्रभु की वंदना करते हैं हम यहाँ ॥2 ॥
जय जय जय जय सिद्ध महान...........।
आचार्य देव आपने छत्तीस गुण धरे,
उवझाय साधु के गुणों से पूर्ण हो भरे।
तीनों पदों गुणों को सूरि अवश पालते,
दीक्षाएँ देके चार संघ को सम्हालते ॥3 ॥
जय जय जय आचार्य महान..........।
उवझाय बाह्य अंतर छब्बीस श्रुत धरें,
गुरु नित्य ज्ञानदीप से अज्ञान तम हरें।
कल्याण हेतु भव्य को शिव पथ प्रकाशते,
अध्यात्म साधना से आत्म गुण विकासते ॥4 ॥
जय जय जय उवझाय महान...........।
यम से नियम से आसनों से प्राणायाम से,
हो ध्यान धारणा समाधि प्रत्याहार से।
साधा है लक्ष्य सिद्ध से अविरल ही बढ़ रहे,
अठबीस मूलगुण धरें, शिवपथ पे चल रहे ॥5 ॥
जय जय जय योगीश महान...........।
जिनधर्म चक्र चल रहा चलता ही रहेगा,
है मूल में दया तो कभी रुक न सकेगा।
इस चक्र में अहिंसा सत्य ब्रह्म के आरे,
अस्तेय निष्परिग्रह मिल धर्म उजारें ॥6 ॥
जय जय जय जिनधर्म महान............।
नैकान्तमयी वस्तुएँ सर्वज्ञ ने कहीं,

स्याद्वाद के सिद्धान्त से आगम में हैं सही।
श्रुत के समुद्र में सदा अवगाहना करें,
वे आत्मज्ञान अमृत से पारणा करें ॥7॥
जय जय जय जिनशास्त्र महान............।
नरलोक के कृत्रिम रहे जिनबिम्ब संख्य में,
त्रैलोक्यवर्ति बिन बनाये हैं असंख्य में।
सो बिन बनाये चैत्य जिन अनाद्यनंत हैं,
पद्मासनी धनु पाँच सौ उत्तुंग जिन कहें ॥8॥
जय जय जय जिन चैत्य महान............।
व्यन्तर के ज्योतिषी के अकृत्रिम असंख्य हैं,
त्रिभुवन के शेष कृत्रिमाकृत्रिम ससंख्य हैं।
नरलोक के त्रिलोक के जिनगेह वंद्य हैं,
सुर नर मुनीन्द्र वंदित 'मृदुमति' प्रवंद्य हैं ॥9॥
जय जय जय जिन निलय महान............।

श्री सम्मेदशिखर जी स्तुति (मंगलाचरण)

(लय- माता तू दया...)

सम्मेदशिखर जी का, अभिनन्दन करते हैं।
श्रद्धा से नमोऽस्तु कर, हम वन्दन करते हैं॥
है शाश्वत तीर्थ यही, तीर्थंकर मोक्ष धरा।
निर्वाण भूमि न्यारी, कण-कण में धर्म भरा॥
हम सिद्धालय पाने, प्रभु दर्शन करते हैं।
श्रद्धा से...
यह तीर्थ निराला है, दे मोक्ष अनन्तों को।
संसार भ्रमण हरकर, दे आश्रय संतों को॥
इसकी रज लेकर के, चित पावन करते हैं।
श्रद्धा से...
यह तीर्थ वन्दना तो, बस भव्यों को मिलती।

इसकी पूजन करके, शुद्धातम सी खिलती॥
कर परिक्रमा इसकी, पुण्यार्जन करते हैं।
श्रद्धा से...
जो भाव सहित इसकी, यात्रायें करते हैं।
वे नरक पशु गति के, दुख बन्धन हरते हैं॥
फिर नर गति में संयम, धरकर शिव वरते हैं।
श्रद्धा से...
जब तक ना मोक्ष मिले, तब तक सम्मेद शिखर।
बस हृदय हमारे हो, तो फिर काहे का डर॥
सब मिले खिले जीवन, यों भाव उभरते हैं।
श्रद्धा से...
चारित्र धारकर हम, सम्मेद शिखर पूजें।
कर भाव सहित वंदन, हम निजानंदन खोजें॥
सुख ऋद्धि-सिद्धि पाने, 'सुव्रत' सिर धरते हैं।
श्रद्धा से...

ज्ञानविद्या यशोगान

बाल ब्रह्मचारी गणी, ज्ञानसागराचार्य।
महामनीषी महाकवि, कुन्दकुन्द सम आर्य॥

ज्ञानविद्या (लय-ज्ञानोदय)

शिवसागर के प्रथम शिष्य गुरु, ज्ञानसिन्धु के गुण गाते।
जिनके शिष्य हमारे गुरुवर, विद्यासागर कहलाते॥
जिनने जीवन के अथ से ले, इति तक मुनि जीवन साधा।
उन ज्ञानोदधि सूरीश्वर को, झुका रहे हम मृदु माथा ॥1॥
सीकर जिला जन्म राणोली, बाल व्रती पण्डित ज्ञानी।
भूरामल ने लिखा जयोदय, महाकाव्य अतिशय धानी॥
मुनि दीक्षा ले ज्ञानसिन्धु बन, रचे अनेकों ग्रन्थ महाँ।
गुरु विद्यासागर चेतन कृति, रची सूरि अजमेर जहाँ ॥2॥

ज्ञान सूर्य जब अस्ताचल की, तरफ बढ़े थे जिनभाषी।
तभी युवक दक्षिण से आया, 'विद्याधर' कन्नड़ भाषी॥
ज्ञानसिन्धु बोले जब उससे, नाम कहो जिन विश्वासी।
तब विद्याधर नाम बताया, मैं विद्या का अभिलाषी॥3॥
इतना सुन बोले तब गुरुवर, कैसे मानूँ ये बातें।
कितने आये ज्ञान प्राप्त कर, विद्यासम उड़ जाते॥
तभी वीर विद्याधर जी ने, झट रथ वाहन त्याग दिये।
आजीवन मैं रहूँ शरण में, कहकर दृढ़ संकल्प लिये॥4॥
कठिन परीक्षाओं में 'विद्या', नहीं कभी भी विफल हुए।
तभी आप गुरु प्रथम शिष्य को, दीक्षा देकर सफल हुये॥
तीस जून उन्नीस सौ अड़सठ, षाढ़ पञ्चमी सित दीक्षा।
नाम दिया मुनि 'विद्यासागर', बाद मिली आगम दीक्षा॥5॥
अष्टसहस्री सु परीक्षामुख, बिना ग्रन्थ ही समझाते।
कष्ट सहस्री मिष्ट-सहस्री, बनती जब गुरु बतलाते॥
मूलाचार दिखे जीवन में, समयसार रस स्वादी थे।
प्रथम शिष्य विद्यासागर को, दिया 'ज्ञान' स्याद्वादी थे॥6॥
जो मन चाहा हुआ वही है, वचन कहा जो हुआ वही।
किया कार्य जो शिष्य शीश पर, अंकित टंकित हुआ सही॥
मूलगुणों सह छह आवश्यक, यथा समय पालें साँचा।
गुरु कुलाल घट शिष्य बनाया, विद्या को परखा जाँचा॥7॥
अद्भुत शिल्पी ज्ञानसिन्धु ने, एक अनोखा शिष्य रचा।
दूजा रूप न दिखता वैसा, लगा अन्य न द्रव्य बचा॥
सूरीश्वर के कर साँचे में, विद्यासागर समा गये।
मूलगुणों के अनुपम हीरे, गुरु ने उसमें जड़ा दिये॥8॥
शिष्य पारखी ज्ञानसिन्धु ने, शिष्य रत्न का चयन किया।
तपः निकष पर योग्य बनाकर, जग को विद्या श्रमण दिया॥
ज्ञान-जौहरी ने विद्या को, स्वयं जौहरी बना दिया।
एक पारखी गुरु ने जिसको, लक्ष-पारखी बना दिया॥9॥

जिस विध प्रभु का रूप बिम्ब में, तदाकर बिम्बित होता।
ज्ञानजलधि का नूर शिष्य में, तथाकार दर्शित होता॥
नाम भिन्न है अर्थ एक है, एक ज्ञान है इक विद्या।
भाजन बदला सुधा वही है, वही ज्ञान है गुरु विद्या॥10॥
पञ्चाचारों रत्नत्रय के, दोनों गुरुवर साधक है।
'ज्ञान' कहो या 'विद्या' कह दो, दोनों जिन आराधक हैं॥
महाकाव्य लिख महाकवीश्वर, उपमायें लगती इक सी।
बाल ब्रह्म हैं गौर वर्ण हैं, द्रव्य जुदा पर्यय इक सी॥11॥
दीर्घ काल के अनुभव द्वारा, अल्प काल में स्रजा जिसे।
सुघढ़ शिष्य विद्यासागर सा, नहीं अन्य ने रचा उसे॥
यही बात है एक अनोखी, तुमने इक मूरत साधी।
और शिष्य ने लाख बनायीं, तथा न तुम सम आराधी॥12॥
श्रमण मार्ग के इतिहासों में, इक अनुपम इतिहास लिखा।
ज्ञानोदधि ने विद्योदधि के, सिर पर अपना ताज रखा॥
है दिनांक बाईस नवम्बर, मर्गासर असित दोज का दिन।
सन् उन्नीस बहत्तर बेला, नगर नसीराबाद सदन॥13॥
सल्लेखन व्रत धारण करने, तजा 'ज्ञानगुरु' उच्चासन।
निम्नासन पर स्वयं बैठकर, दिया शिष्य को सिंहासन॥
सूरि ज्ञानसागर गुरुवर ने, नमन किया उस गागर को।
जिन्हें पढ़ाया था अकार से, ऐसे विद्यासागर को॥14॥
फिर बोले मैं लघु हूँ गुरुवर, आप सूरि विद्यासागर।
हे निर्यापक! रखो शरण में, सल्लेखन व्रत दो भवहर॥
इक सौ बान्नव दिवस समाधि, साध जून इक तेहत्तर।
ज्येष्ठ अमावस स्वर्ग सिधारे, प्रात दस बजे तन तजकर॥15॥

दोहा - बने शिष्य गुरु शिष्य के, 'ज्ञानसिन्धु' गुरुराज।
बना लिया निज शिष्य को, अपने सर का ताज॥1॥
'विद्योदधि'- उपदेश को, सुनते 'ज्ञान' महान।
मान त्याग का दृश्य मृदु, देखो! जगत प्रधान॥2॥

ॐ ह्रीं महाकवि-आचार्यश्रीज्ञानसागर मुनीन्द्राय पूर्णार्घं नि. स्वाहा।

शुभकामना

विद्यासागर सूरि की, कृपा रही हितकार।
'मृदुमति' आर्या भक्ति से, रचती गुरु गुण हार ॥3 ॥

रक्षाबन्धन कथा गाथा

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

विद्योदधि छन्द–तर्ज– आओ बच्चों तुम्हें बतायें..........

रक्षाबन्धन पर्व मनाने, जानो कथा ऋषीश की।
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥ध्रुव ॥
जय मुनि रक्षा पर्व, जय मुनियों का धर्म।
सर्वोत्कृष्ट जैन होने से, नगर नाम उज्जैन पड़ा,
बड़े- बड़े मुनि संघ चरण से, सार्थक है उज्जैन बड़ा।
जैनधर्म की प्रभावशाली, उज्जैनी भूमीश थी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥1 ॥

इसी नगर में नीति निपुण नृप, प्रजापाल श्रीवर्मा थे,
किन्तु चार मन्त्री बलि आदिक, अभिमानी वैधर्मा थे।
सप्त शतक मुनि नायक आते, अकम्पनादि गणीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पादि मुनीश की ॥2 ॥

संत ठहर जाते नगरी के, बाह्य भाग इक उपवन में,
जन-जन में आगमन सूचना, फैल गई कुछ ही क्षण में।
किन्तु धर्मप्रेमी राजा को, खबर मिली न मुनीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥3 ॥

सूरि अकम्पन देश काल की, लोक स्थिति के ज्ञाता थे,
तभी दुष्ट मन्त्री मण्डल के, दुःस्वभाव के ज्ञाता थे।
सर्व संघ को मौन रूप से, रहना कहा गणीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥4 ॥

राजा दर्शन को आ सकता, मन्त्री मण्डल आ सकता,
धर्म द्वेष वश मन्त्री मण्डल, अनिष्ट संकट ढा सकता।
शिष्यों के संकेत समय में, नहिं थे साधु श्रुतीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥5 ॥

श्रीवर्मा नृप प्रजा साथ ले, गुरु दर्शन को आते हैं,
ज्ञान ध्यान तप लीन साधु को, देख नृपति हर्षाते हैं।
किन्मु मौन में अविनय देखी, मन्त्री ने अवनीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥6 ॥

चारों मन्त्री बोले नृप से, मौन लिये क्यों बैठे हैं,
निजी मूर्खता ढकने को मुनि, मौन वस्त्र ले ऐंठे हैं।
नहीं आप को देखा उनने, अविनय की अवनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥7 ॥

जिनके पास न धन लक्ष्मी है, वे क्या दे सकते नृप को,
वचनों से कुछ भी नहिं बोला, कैसे हर लें संकट को।
अकिंचनों के दर्शन से अब, होय अमंगल ईश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥8 ॥

राजा कहते सुनो मन्त्रियों! धर्म द्वेषता तजो जरा,
अग्नि दर्श से कोई जला क्या, विष लखने से कोई मरा।
दुर्गति होगी यदि निन्दा की, शील गुणाढय मुनीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥9 ॥

राजा मन्त्री प्रजा सहित ही, नगरी वापिस आते हैं,
भिक्षा करके लौटे पथ में, श्रुतसागर मिल जाते हैं।
पीत तक्र यह वृषभ आ रहा, बलि बोला अवनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥10 ॥

श्रुतसागर जी बोले सुनिये! तक्र पीत कब होता है,
यह सुन निज अपमान समझ बलि, नृप के पीछे होता है।
और कपट का जाल बनाता, हत्या करूँ मुनीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥11 ॥

पथ विवाद श्रुतसागर मुनि ने, गुरु को सत्य बताया है,
गुरुवर बोले विवाद करके, संघ कष्ट उपजाया है।
तब मुनि कहते मुझे दण्ड दो, संकट टले गणीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥12॥

जहाँ विवाद हुआ था बलि से, उसी जगह तुम ध्यान करो,
गुरु आज्ञा से श्रुतसागर जी, करते हैं निज ध्यान खरो।
'नहिं विवाद करना' यह आज्ञा, नहिं सुन पाये श्रुतीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥13॥

बलि आदिक चारों मन्त्री ने, घृणित योजना कर डाली,
अर्द्ध रात्रि में साधु संघ को, पूर्ण मारने तैयारी।
पथ में भेंट हुई चारों को, श्रुतसागर श्रुत ईश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥14॥

बलि बोला विवाद था इससे, वे सब मुनि थे मौन धरें,
करो इसी पर वार किन्तु पर, कौन प्रथम असि वार करे?
तब सब साथ उठाते असि को, लेने जान मुनीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥15॥

मुनि रक्षा हित वनदेवी ने, दुष्टों के कर कील दिये,
प्रात प्रजा ने देखे मन्त्री, मुनि हत्यारे क्रूर हिये।
राजा ने आकर धिक्कारी, दुष्ट क्रिया पापीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥16॥

मुनि हत्या का घृणित कार्य लख, मृत्यु दण्ड की आज्ञा दी,
मृत्यु दण्ड सुनते ही मुनि ने, ध्यानी मुद्रा झट तज दी।
अन्य दण्ड दे इन्हें सुधारो, नृप से कहें मुनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥17॥

तब राजा ने मुँह काला कर, देश निकाला दण्ड दिया,
मुनि हत्या का पाप दण्ड यह, सभी प्रजा ने जान लिया।
अपने गुरु को हाल सुनाकर, पाते शान्ति श्रुतीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥18॥

एक समय वह दुष्ट मण्डली, हस्तिनागपुर पहुँच गयी,
वचन चातुरी से यह टोली, राजपदों पर पहुँच गयी।
कुरु जांगल की यह रजधानी, पद्मराय अवनीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥19॥

शान्ति कुन्थु अर तीर्थंकर के, जहाँ तीन कल्याण हुये,
महापद्म चक्री के सुत ये, विष्णु पद्म गणमान्य हुये।
इस हथिनापुर में मुनियों पर, संकट क्रिया बलीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥20॥

सूरि अकम्पन संघ साथ ले, हस्तिनागपुर आते हैं,
सप्त शतक मुनि संघ जानकर, बलि आदिक घबराते हैं।
उज्जैनी के मुनि प्रहार को, जान न लें अवनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥21॥

मुनियों का यह भक्त नगर है, राजा भी मुनि भक्त रहा,
जिन प्रभावना सहन न होगी, भारी मुनिवर भक्त यहाँ।
तब बलि ने सोचा खुद पाऊँ, रजधानी धरणीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥22॥

बलि ने कभी सिंहोदर नृप को, जीत पद्म का दास किया,
तब राजा ने मुँहमाँगा वर, देने का विश्वास दिया।
सप्त दिनों की सत्ता माँगी, मौका देख क्षितीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥23॥

पद्मराय तो छलि को वर दे, उसी समय से हार गये,
देना पड़ा राज बलि खल को, मुनि रक्षा अधिकार गये।
मुनियों को पीड़ित करने की, थी दुर्नीति बलीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥24॥

मुनियों की बलि देने बलि ने, मुनि उपवन को घेर लिया,
मुनियों की हत्या करने को, अग्नि कुण्ड तैयार किया।
नर पशु मेध यज्ञ के छल युत, दानेच्छा बलि ईश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥25॥

महा अग्नि की प्रचंड लपटें, मुनियों का तन झुलसातीं,
किन्तु साधना की शीतलता, साधक का मन हर्षाती।
पूर्व कर्म को विनाश करने, दृढ़ता लखो मुनीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥26॥

मिथिला नगरी के उपवन में, सागरचन्द्र मुनि ध्यान रता,
अर्द्ध रात्रि को नभ में देखा, इक नक्षत्र श्रवण हिलता।
ज्योतिष से मुनि संकट जाना, निकली आह मुनीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥27॥

पुष्पदन्त क्षुल्लक ने पूछा, गुरु क्या कहीं अनिष्ट हुआ?
गुरु ने कहा हस्तिनापुर में, मुनियों पर उपसर्ग हुआ।
विष्णु विक्रिया बल से उनको, बचा सके ऋद्धीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥28॥

तत्क्षण क्षुल्लक विद्या बल से, धरणीभूषण गिरि आते,
बलि द्वारा उपसर्ग साधु पर, जान विष्णुमुनि कँप जाते।
आप विक्रिया बल से टालें, मुनि उपसर्ग मुनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥29॥

ऋद्धि जानने हाथ उठा तो, ज्योतिष मण्डल छू जाते,
बिन विलम्ब आकाश मार्ग से, विष्णु हस्तिनापुर आते।
पूर्व भ्रात गृह पहुँच डाँटते, लेते खबर क्षितीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥30॥

ऋषभनाथ के आहारों से, पवित्र यह धरती प्यारी,
शान्ति कुन्थु अर तीर्थंकर की, कल्याणक नगरी न्यारी।
हे नृप तूने कीर्ति मलिन की, कुरुवंशी भूमीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥31॥

हे मुनिवर! मैं बलि को वर दे, फँसा दुष्ट के जालों में,
क्षमा करो उपसर्ग निवारो, कृपा करो हर हालों में।
छली बली को छलने याचक, बनते विष्णु ऋषीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥32॥

सुन्दर बौना वटु ब्राह्मण का, रूप देख बलि चकित हुआ,
भिक्षां देहि सुन बलि बोला, क्या दूँ कह मन मथित हुआ।
मम त्रय पग से माप भूमि लूँ, इच्छा वटुक मुनीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥33॥

हस्तिनागपुर नरेश आगे, यह वटु इच्छा बौनी है,
तन बौना तो मति भी बौनी, लगता कुछ अनहोनी है।
अहंकारमय बोली निकली, छलिया भूप बलीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥34॥

बलि से विष्णु महामुनि बोले, देना हो तो झट दीजे,
बलि बोला सत्संग हेतु कुछ, और अधिक भू ले लीजे।
अमूल्य क्षण क्यों खराब करते, बोले विष्णु मुनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥35॥

रुष्ट न हो ऋषिराज तीन ही, पग धरती को ले लीजे,
अन्य किसी ऊँचे मनुष्य से, नाप उचित भू ले लीजे।
कौन रहा बौना ऊँचा यह, कहते विष्णु मुनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥36॥

फिर ठीक जहाँ चाहो ले लीजे, इक चबूतरा बाहर हो,
कटि टूटेगी छोटी कुटि में, आऊँगा शुभ अवसर हो।
बलि के मद ने हँसी उड़ायी, वटु कद विष्णु मुनीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥37॥

विप्र विष्णु बोले कटि टूटे, अहंकार का भार जहाँ,
कुटिया महल नहीं प्रासंगिक, तिपग भूमि दो सार कहा।
दान वचन के साथ जलाञ्जलि, दीजे कहा मुनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥38॥

तीन बार संकल्प करा मुनि, रूप विशाल बना लेते,
इक पग से सुमेरु दूजे से, नग मनुजोत्तर छू लेते।
तृतीय पग रखने भू दो बलि, कहते विष्णु मुनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥39॥

भू पर चौपाये पशु जैसा, बलि ने पीठ स्वयं की दी,
वटुक काय का विराट मानस, समझ बली ने शिक्षा ली।
क्षमा करो, अपराध हुआ है, बलि ने कहा मुनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥40॥
मुनि ने तत्क्षण साधु रूप को, प्रकट किया सम्मुख सबके,
पद्मराय नृप ने परिकर सह, तोड़े बन्धन उपवन के।
सूरि अकम्पन आदि साधु को, नमोऽस्तु किया मुनीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥41॥
विष्णु मुनीश्वर सह जनता को, गुरु ने आशीर्वाद दिया,
मुनि उपसर्ग निवारक मुनि का, जनता ने जयनाद किया।
मोक्षमार्ग को किया प्रकाशित, अकम्पनादि ऋषीश जी,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥42॥
धन्य आपकी तपः साधना, धन्य संघ मुनि का नामी,
दूर हुआ उपसर्ग आपका, भिक्षा चर्या हो स्वामी।
श्रावकजन ने सर्व संघ की, वैय्यावृत्ति सहर्ष की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥43॥
धूम्र विषैला होने से सब, मुनि के कण्ठ खराब हुये,
तब उनको पय पाक खीर दे, श्रावकजन सब धन्य हुये।
यह तिथि श्रावण शुक्ल पूर्णिमा, मुनि रक्षा दिन मान्य की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥44॥
मुनि रक्षा का सूत्र हाथ में, तब से जैनों ने बाँधा,
रक्षाबन्धन पर्व तभी से, सभी मनाते बिन बाधा।
विद्यासागर सूरि कृपा से, 'मृदुमति' भक्ति प्रणीत की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥45॥
रक्षाबन्धन पर्व मनाने, जानो कथा ऋषीश की,
विष्णु महामुनि ने रक्षा की, अकम्पनादि मुनीश की ॥
उपसर्गों को सह लिया, करके निज का ध्यान।
सूरि अकम्पन आदि सह, विष्णु मुनीश प्रणाम ॥

निर्वाणकाण्ड -1

वीतराग वन्दौं सदा, भावसहित सिरनाय ।
कहूँ काण्ड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय ॥

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुरि नामि ।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दौं भाव-भगति उर धार ॥1॥
चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर ।
शिखरसमेद जिनेसुर बीस, भावसहित वन्दौं निश-दीस ॥2॥
वरदत्तराय रू इन्द मुनिन्द, सायरदत्त आदि गुणवृन्द ।
नगर तारवर मुनि अठकोडि, वन्दौं भावसहित कर जोड़ि ॥3॥
श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात ।
सम्बु प्रद्युम्न कुमार द्वैभाय, अनिरूद्ध आदि नमूँ तसु पाय ॥4॥
रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिन्द आदि गुणधीर ।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरी वन्दौं निरधार ॥5॥
पाण्डव तीन द्रविड-राजान, आठ कोडि मुनि मुकति पयान ।
श्रीशत्रुंजयगिरि के सीस, भावसहित वन्दौं निश-दीस ॥6॥
जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये ।
श्रीगजपन्थ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहूँ काल ॥7॥
राम हणु सुग्रीव सुडील, गवय गवाख्य नील महानील ।
कोड़ि निन्यानवै मुक्तिपयान, तुंगी गिरि वन्दौ धरि ध्यान ॥8॥
नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि शीश, ते वन्दौं त्रिभुवनपति ईस ॥9॥
रावण के सुत आदि कुमार, मुक्ति गये रेवा- तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास ॥10॥
रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट ।
द्वै चक्री दश कामकुमार, ऊठकोडि वन्दौं भव पार ॥11॥
बड़वानी बड़नयन सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग ।
इन्द्रजीत अरू-कुम्भ जु कर्ण, ते वन्दौं भव-सागर-तर्ण ॥12॥

सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर शिखर मँझार ।
चेलना नदी-तीर के पास, मुक्ति गये वन्दौं नित तास ॥13॥
फलहोडी बड़ग्राम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप ।
गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ, मुक्ति गए वन्दौं नित तहाँ ॥14॥
बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय ।
श्रीअष्टापद मुक्ति मँझार, ते वन्दौं नित सुरत सँभार ॥15॥
अचलापुर की दिशा ईसान, तहाँ मेढगिरि नाम प्रधान ।
साढे तीन कोडि मुनिराय तिनके चरण नमूँ चित लाय ॥16॥
वंशस्थल वनके ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय ।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम ॥17॥
जसधर राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करुँजोरि जुग पान ॥18॥
समवसरण श्रीपार्श्व-जिनन्द, रेसिन्दीगिरी नयनानन्द ।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वन्दौं नित धरम-जिहाज ॥19॥
मथुरापुर पवित्र उद्यान, जम्बूस्वामीजी निर्वाण ।
चरमकेवली पंचमकाल, ते वन्दौं नित छरम जिहाज ॥20॥
तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजै तहाँ ।
मनवचकायसहितसिरनाय, वन्दनकरहिं भविक गुणगाय ॥21॥
संवत सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दसमी सुविशाल।
'भैया' वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाण काण्ड गुणमाल ॥22॥

नवीन निर्वाणकाण्ड -2

दोहा

तीर्थंकर मुनि शिव गए, वही क्षेत्र निर्वाण।
नंत सिद्ध को नित नमूँ, पाने को शिवधाम॥1॥

(चौपाई)

वृषभदेव तीर्थंकर स्वामी, महाबाल मुनि बाल सु-नामी।
नागकुमार मुनीश्वर प्यारे, अष्टापद से मोक्ष पधारे॥2॥

अजितनाथ संभव अभिनंदन, सुमति पद्म और सुपार्श्व वंदन।
चंद्रप्रभ औ सुविधि जिनेश्वर, शीतल जिन श्रेयांस गणीश्वर॥3॥
विमल अनंत धर्म गुणनामी, शांति कुंथु जिन अर सुखधामी।
मल्लिनाथ मुनिसुव्रत न्यारे, नमि पार्श्व भव पार उतारें॥4॥
वंदन करूँ बीस जिनराई, शिखर सम्मेद से मुक्ति पाई।
नंत मुनीश्वर सिद्ध हुए हैं, दर्शन से दुःख दूर हुए हैं॥5॥
चंपापुर से वासुपूज्य जिन, नमन करूँ मैं प्रभो रात-दिन।
नेमिनाथ अनिरुद्ध मुनीश्वर, शंबु प्रद्युम्न विमुक्त यतीश्वर॥6॥
कोटि बहत्तर सात सौ मुनिवर, मुक्त हुए गिरनार शिखर पर।
महावीर प्रभु को प्रणाम है, पावापुर निर्वाण धाम है॥7॥
सत बलभद्र हुए परमेश्वर, आठ कोटि यदुवंशी मुनिवर।
शिवपुर गए शिखर गजपंथा, वंदन से पाते शिवपंथा॥8॥
वरदत्तराय आदि ऋषिराजा, साढ़े तीन कोटि मुनिराजा।
तारंगा गिरि से शिव पाये, मन-वच-तन हम शीश नवाये॥9॥
रामचंद्र सुत लव मंदनांकुश, लाट देश नृप सुख के इच्छुक।
पाँच करोड़ मुनीश्वर सारे, पावागिरि से मोक्ष पधारे॥10॥
पांडव के सुत तीन महाना, आठ कोटि नृप द्रविड सु-जाना।
श्री शत्रुंजय गिरि शिखर से, मुक्त हुए वंदूँ त्रियोग से॥11॥
राम हनु सुग्रीव गवय हैं, गवाक्ष मुनि महानील नील हैं।
कोटि निन्यानवें मुनि सुखकारी, तुंगीगिरि वंदूँ शिवकारी॥12॥
नंग अनंग कुमार ख्यात हैं, मुनि साढ़े पन कोटि साथ हैं।
सिद्ध हुए नाशे हैं अरिगण, सोनागिर से सर्व ऋषीगण॥13॥
रावण के सुत आदिमुनि संग, साढ़े पाँच करोड़ मुनिगण।
रेवानदि तट से शिव पाये, श्रद्धा से हम शीश नवाये॥14॥
रेवानदि का तीर जहाँ है, क्षेत्र सिद्धवर कूट वहाँ है।
दो चक्री दश कामदेव ने, साढ़े तीन कोटि मुनिवर ने॥15॥
अष्ट कर्म का नाश किया है, सिद्धालय में वास किया है।
बड़वानी इक नगर सुहाना, दक्षिण दिशि गिरि चूल महाना॥16॥

इन्द्रजीत आदिक मुनिराजा, हुए कर्म क्षय कर जिनराजा।
नदी चेलना के तटाग्र पर, पावागिरि के श्रेष्ठ शिखर पर ॥17 ॥
सुवरण भद्रादिक मुनि चारों, मुक्त हुए मुझे पार उतारो।
फलहोड़ी बड़ग्राम अनूपा, पश्चिम द्रोणगिरि सुखरूपा ॥18 ॥
गुरुदत्तादि मुनी शिव पहुँचे, ऊर्ध्व लोक में सबसे ऊँचे।
अचलापुर ईशान दिशा में, मुक्तागिरी की चरम शिखा पे ॥19 ॥
साढ़े तीन कोटि मुनिराया, मोक्ष गए अनुपम सुख पाया।
वंशस्थलपुर परम समीपा, पश्चिम दिश कुंथलगिरि नीका ॥20 ॥
कुलभूषण-दिशभूषण स्वामी, प्राप्त किया निर्वाण सु-धामी।
राज यशोधर के सुत प्यारे, पन शत इक करोड़ मुनि न्यारे ॥21 ॥
कलिंग देश जहँ कोटि शिला है, पाई शाश्वत सिद्धशिला है।
गुरुदत्तादि पंच मुनिराजा, भवदधि तारण-तरण जहाजा ॥22 ॥
समवसरण श्रीपार्श्व जिनंदा, वरदत्तादि पंच मुनिवृंदा।
नैनागिर से कर्म नशाये, महामुनि मम हृदय समाये ॥23 ॥
मथुरापुर उद्यान सु-प्यारा, अंतिम केवलि ज्ञान सितारा।
पंचमकाल में मुक्ती पाई, जंबूस्वामी शिव सुखदाई ॥24 ॥
ढाई द्वीप से सिद्ध हुए हैं, कर्म क्षयंकर शुद्ध हुए हैं।
उनको नितप्रति वंदन मेरा, मिट जाये भव-भव का फेरा ॥25 ॥
जहाँ-जहाँ से शिवपथ गामी, मोक्ष गए हैं अंतर्यामी।
अष्ट द्रव्य से अर्चन कर लूँ, दुष्ट अष्ट कर्मों को हर लूँ ॥26 ॥
पूर्व काल अज्ञान वशी हो, सिद्धों की ना श्रद्धा की हो।
करूँ भाव से नंत नमन अब, दूर कीजिए जगत भ्रमण सब ॥27 ॥
निजात्म में हो ज्ञान सवेरा, सिद्ध करे मम हृदय बसेरा।
'पूर्ण' ज्ञान निर्वाण धाम हो, सिद्ध भक्ति से सुबह शाम हो ॥28 ॥

शिरोधार्य हो,
गुरु-पद-रज, सो,
नीरज बनूँ।

परिषहजय गीता

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

अंगीकृत शिव मार्ग में, स्थिर रहने मुनिराज।
कर्म बन्ध उच्छेद को, परिषह सहते आज ॥

जिनगीतिका

जब हो असाता का उदय औ,देह भी निर्बल बना।
फिर उदर खाली अनशनों से, हो क्षुधा की वेदना॥
आहार कम बहु विघ्न हों तब, भूख नरकों की लखें।
मुनि ज्ञान भोजन से क्षुधा को, जीतते समता रखें॥
कष्टों भरी शिवराह चलके, पथ बनाया आपने।
निर्भीक तुमको देखकर गुरो! चल पड़ा तुम साथ में ॥1 ॥
तन की प्रकृति अति उष्ण हो औ, सूर्य-उग्र विहार हो।
भोजन मिला पर जल मिला ना, कण्ठ शुष्क बुखार हो॥
तब नीर बिन नरकीय तृष्णा, साधु नित्य विचारते।
मुनि धन्य समरस पान करते, तृषा परिषह धारते ॥2 ॥
जब हाथ तक बाहर न करते, ओढ़ते गृहि वसन को।
तब शीत ऋतु में शयन करते, खुले नभ में श्रमण ओ॥
मुनि नरक के अतिशय भयंकर, शीत कष्ट विचारते।
शुचि नग्न तन पर ध्यान घर में, धैर्य कंबल धारते ॥3 ॥
गुरु शीत ऋतु में सिन्धु तट पर, ग्रीष्म में गिरि पर बसें।
वर्षा समय में वृक्ष नीचे, तप करें अघ विधि नशें॥
तन प्रकृति पित्तज ग्रीष्म ऋतु हो, गिरि शिखर संवास हो।
या वसतिका में हों मुनीश्वर, लू लपट संत्रास हो॥
तब उष्णता नरकीय चिन्तै, ना यहाँ वैसी कदा।
जब उष्ण परिषह स्ववश सहते, तब करम होते विदा ॥4 ॥

परवश उठाते दुःख नारक, नहीं संयम गंध है।
यदि मनुज ने संयम लिया तो, कर्म क्षय संबंध है॥
यह चिन्त्य मुनि समता गुफा में, तन विमुख हो जा बसें।
तब उष्ण परिषह जीत करके, कर्मक्षय करते लसें॥
यदि डाँस मच्छर पिस्सु मत्कुण, नग्न तन पर काटते।
तो द्वेष ना करते मुनीश्वर, देह राग निवारते॥5॥
तन रक्त उनका भोज्य है औ, मनुज भोजन अन्न है।
इस तरह चिन्तन कर रहे मुनि, देह चेतन भिन्न है॥
मुनि आत्म शक्ति उघाड़ने को, विविध संयम तप धरें।
उज्ज्वल बनानें आतमा को, रात दिन जिन जप करें॥6॥
मुनि जन्मजात सु बाल के सम, निर्विकार रहें सदा।
तन पर वसन नहिं छाल पहनें, आवरण त्यागें मुदा॥
भय लाज वश इस नग्नता को, ना छिपाते श्रमण हैं।
ऐसे दिगम्बर साधु गुरु के, पूजते हम चरण हैं॥7॥
प्रतिकूल जन संयोग हों तब, अरति भाव निवारते।
यम नियम संयम के समय, उत्साह साहस धारते॥
बिन ग्लानि सब विध अशुचि लखते, धर्म रुचि अतिशय वरें।
ऐसे श्रमण को नमन करते, जो अरति पर जय करें॥8॥
यदि हाव-भाव विलास पूर्वक, नव युवतियाँ देखतीं।
पर साधु उनको देखते ना, दृष्टि-शर जो फेंकतीं॥
दुर्भाव से मन को बचाते, स्त्री परीषह जय करें।
उन ब्रह्मव्रत लवलीन मुनि की, वंदना कर जय करें॥9॥
मुनि नग्न पैरों से विहरते, योजनों अविरल चलें।
कंकर नीकीले शूल पथ में, पैर छिलते लहु झरे॥
पर आह तक मुख से न निकले, कर्म संवर कर रहे।
मुनि मार्ग को अच्युत बनाते, चर्य परिषह सह रहे॥
कष्टों भरी शिवराह चलके, पथ बनाया आपने।
निर्भीक तुमको देखकर गुरो! चल पड़ा तुम साथ में॥10॥

मुनि वीर-आसन पद्म-आसन, आदि में अविचल रहें।
एकान्त में जब ध्यान करते, मोह जय अविरल लहें॥
इक दो मुहूर्त प्रधान करके, उचित बैठें या खड़े।
अविचलित रखते योग्य आसन, तब निषद्या जय करें॥11॥
स्वाध्याय संयम आदि का श्रम, दूर करने को यदा।
भू काष्ठ पर इक पार्श्व में मुनि, शयन करते हैं तदा॥
यति दण्ड धनु आकार में या, शव समान शयन करें।
भू विषमता में रखें समता, शयन कष्ट सहन करें॥12॥
आहार और निहार वंदन, हेतु सन्त विहार हो।
तब अज्ञ जन उपहास करते, असहनीय प्रहार हो॥
कटु वचन सुन क्रोधित न होते, दुर्वचन सहते सदा।
आक्रोश परिषह जीत करके, शान्त रहते सर्वदा॥13॥
चंदन जले सौरभ बिखेरे, छोड़ता न स्वभाव को।
त्यों साधुजन भी पीड़कों पर, धारते सम भाव को॥
मुनि दुष्ट जन के भी हितों का, नित्य चिंतन कर रहे।
उन वध परीषह विजय रत की, अर्चना हम कर रहे॥
गुरु आपके पद पंकजों में, मेघ सम बरसे कृपा।
परिषह तपन को शान्त करने, आप बन जाते प्रपा॥14॥
आहार औषध आदि इच्छित, वस्तुएँ नहिं प्राप्त हों।
तो मन वचन तन से न याञ्चें, प्राण भी प्राणान्त हों॥
जब याचना परिषह विजय से, मोक्ष सुख ही मिल रहा।
तब लाज तज याञ्चा करें क्यों, आत्मसुख जब खिल रहा॥15॥
आहार आदि अलाभ में मुनि, लाभ सम अतिशय गिनें।
है अन्तराय उदय हमारा, चिन्त्य चिन्ता को हनें॥
निज भाग्य बिन दाता जनों की, बुद्धि इसमें चूकती।
क्या विघ्न है आहार में यह, श्रमण परिषह पूछती॥16॥
मंदिर रहा तन व्याधियों का, गहन अनगिन रोग हों।
फिर श्रमण की चर्या पराश्रित, किस तरह नीरोग हों॥

औषधि मिले पर पुण्य के बिन, किस तरह उपकार हो।
तब साम्य भावों से करें मुनि, रोग के उपचार को ॥17॥
यदि बैठने उठने गमन में, शयन में तृणस्पर्श हो।
कंकर चुभें पत्थर गड़ें, या पग छिलें कटु स्पर्श हो॥
तब पाद-त्राण न याद करते, मृदुल संस्तर परिहरें।
यदि रक्त टपके पैर से तो, साम्य मल्हम उर धरें॥18॥
अस्नान व्रत पालक दयाधन, तन मलिनता ना गिनें।
परिस्वेद युत रज कण चिपकते, मूल गुणता ना हनें॥
मल मार्जने की हो न इच्छा, कर्म मल वारण करें।
मुनि मल परिषह नित्य सहकर, देह मल धारण करें॥19॥
मुनि पूज्य योग्य रहें तपस्वी, ज्ञान ध्यान प्रधान हों।
पर योग्यता अनुकूल उनको, मिल रहा नहिं मान हो॥
सत्कार मिलता या न मिलता, पुरस्कृत यदि ना करें।
तब भाव को कलुषित न करते, श्रमण गण समता धरें॥20॥
श्रुत ज्ञान की मानें अथिरता, मान मर्दन कर रहे।
मुनि अल्प ज्ञानी साधुजन का, भी समादर कर रहे॥
जब पूर्ण ज्ञानी मैं नहीं फिर, अल्प प्रज्ञा मूल्य क्या?
मुनि यदपि ज्ञानी तदपि उनको, श्रुत क्षयोपशम मूल्य क्या॥21॥
मुनि अज्ञ होकर ज्ञानियों में दीनता लाते नहीं।
भव दुःखहारी सुगुणकारी, अल्प शिक्षा लें सही॥
यदि कोई कहता इस श्रमण में, ज्ञान किंचित् भी नहीं।
तब साम्य धर अज्ञान परिषह, सह रहे गुणवान ही॥22॥
सम्यक्त्व से च्युतकारि कारण, यदि उपस्थित हों कहीं।
तो तत्त्व रुचि से ना चलित हों, जैनदर्शन है यही॥
वे श्रमण दर्शन युक्त जिनवर, लिंग को धारण करें।
निर्ग्रंथ बन सहते अदर्शन, अन्य दृग वारण करें॥23॥
गुरु आपके पद पंकजों में, मेघ सम बरसे कृपा।
परिषह तपन को शान्त करने, आप बन जाते प्रपा॥

क्षमा वंदना

क्षमा करना क्षमा करना, क्षमा शांति का दाता है।
क्षमा के भाव से प्राणी, ''विशद'' मुक्ति को पाता है॥
क्षमा करता सकल जन को, क्षमा करना सभी मुझको।
अभी छदमस्थ हूँ मैं भी, नहीं है ज्ञान कुछ मुझको॥
रहे मैत्री सभी जन से, किसी से बैर न मेरा।
हृदय में भावना मेरी, किसी से हो नहीं फेरा॥
क्षमा करना क्षमा करना, क्षमा ही जग का त्राता है।
क्षमा के भाव से प्राणी, ''विशद'' मुक्ति को पाता है॥
पाप का कर सकें छेदन, रहे यह भाव में वेदन।
क्षमा उनसे भी चाहूँगा, मेरे हाथों हुए भेदन॥
त्याग दूँ दोष इस जग के, यही है भावना मेरी।
पटे खाई हृदय की जो, बनी हो पूर्व से तेरी॥
क्षमा करना क्षमा करना, क्षमा समता को लाता है।
क्षमा के भाव से प्राणी, ''विशद'' मुक्ति को पाता है॥
दया मय भाव हो जावें, हृदय करुणा से भर जावे।
रहे भावों में शीतलता, कभी भी क्रोध न आवे॥
क्षमा की तरणी बह जावे, सदा मैं भाव करता हूँ।
क्षमा भूषण है तन मन का, उसे मैं आप धरता हूँ॥
क्षमा करना क्षमा करना, क्षमा उर में समाता है।
क्षमा के भाव से प्राणी, ''विशद'' मुक्ति को पाता है॥
कभी जाने या अनजाने, हुए हों दोष जो मेरे।
क्षमा हमको सभी करना, बड़े उपकार हों तेरे॥
वीर का धर्म ये कहता, हृदय में शांति तुम धरना।
क्षमा धारण ''विशद'' दिल में कि अर्पण प्राण तुम करना॥
क्षमा करना क्षमा करना, क्षमा को धर्म गाता है।
क्षमा के भाव से प्राणी, ''विशद'' मुक्ति को पाता है॥

श्रुतधारकों का क्रमिक काल

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

दोहा

तीर्थंकर सर्वज्ञ की, वाणी गंगा धार।
बह-बह कर आयी यहाँ, भव्यो उर में धार॥1॥

ज्ञानोदय छन्द-तीर्थंकरो से

तीर्थंकर श्री ऋषभदेव से, वर्द्धमान जिन तक आयी।
गणधर मुनियों ने अपनाकर, मुक्ति निराकुलता पायी॥
ऐसी जिनवर वाणी गंगा, भव्यों के कल्मष हरती।
ग्रन्थों के लिपिबद्ध कुण्ड में, डूबो मन पावन करती॥2॥

महावीर और अनुबद्ध केवलियों से समय

महावीर की तीर्थ देशना, तीस वर्ष तक सतत खिरी।
गौतम सुधर्म केवलि द्वय की, बारह बारह बरस झरी॥
तीस-आठ बरसों जम्बू जिन, हितकारी उपदेश दिया।
गौतमादि अनुबद्ध केवली, बासठ बरस विहार किया॥3॥

पाँच श्रुत केवलियों से समय

द्वादशांग के ज्ञाता विष्णु, नन्दिमित्र अपराजित थे।
गोवर्द्धन मुनि भद्रबाहु श्रुत, केवलि क्रमशः राजित थे॥
चौदह सोलह बाइस उन्निस, उनतिस बरस विहार किया।
क्रमशः होते सौ वर्षों में, सत्य धर्म परचार किया॥4॥

11 अंग और 10 पूर्वो के 11 आचार्यो से

ग्यारह अंग सुदश पूर्वों के, ज्ञाता ग्यारह सूरि हुए।
ख्यात विशाखाचार्य प्रौष्ठिल, क्षत्रिय मुनि जयसेन हुए॥
नागसेन सिद्धार्थ मुनीश्वर, धृतीसेन व विजय रहे।
बुद्धिलिंग मुनिदेव मुनीश्वर, धर्मसेन जयवंत रहे॥5॥

11 आचार्यों का समय

इनका काल रहा है क्रमशः, दश उन्नीस सप्तदश है।
इक विंशति अट्ठारह सत्रह, अठरा तेरह बीस रहे॥
चौदह-चौदह अथवा सोलह, धर्म प्रभावन काल रहा।
सभी मिलाकर शत तेरासी, वर्ष धर्म अवतार रहा॥6॥

11 अंगों एवं कुछ पूर्वों के ज्ञाता 5 आचार्यों का समय

ग्यारह अंगों के कुछ पूर्वों के, ज्ञाता पाँचों आर्य रहे।
है नक्षत्र नाम जयपाला, पाण्डव श्री ध्रुवसेन रहे॥
कंससूरि इनकी प्रभावना, अठरा बिस उनचालिस वर्ष।
चौदह बत्तिस क्रमिक मिलाकर शत तेईस हुए सब वर्ष॥7॥

10-9-8 अंगों के ज्ञाता चार आचार्यों का समय

क्रमशः हीन अंग के ज्ञाता, दश नव आठा अंगधारी।
सुभद्र यशभद्र भद्रबाहु जी, लोहाचार्य सुगणधारी॥
क्रमशः काल रहा छह अठरा, तेईस त्रेपन या पच्चास।
निन्यानव सन्तानव दो मत, गुरु वचनों में ना व्यत्यास॥8॥

1 अंगधारी का समय

क्रमशः काल रहा अट्ठाइस, इक्किस उन्निस तीस व बीस।
इनका जोड़ एक सौ अठरा, कुल छह सौ तेरासी गीत॥
एक अंगधारी अर्हद्वलि, माघनन्दि धरसेन महान।
पुष्पदन्त मुनि भूतबली को ''मृदुमति'' नमन करे धरध्यान॥9॥

चलो करें हम तीर्थ वन्दना

नाभिराय के जो लघुनंदन, ऋषभदेव गुणगाऊँ जी।
अजितनाथ से वीर प्रभु तक, सादर शीश झुकाऊँ जी॥1॥
सकल तीर्थंकर के गुण गाऊँ, विहरमान शिर नाऊँ जी।
जिनग्रह, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, जैनधर्म को ध्याऊँ जी॥2॥

सबसे न्यारा तीर्थ हमारा, सम्मेदाचल न्यारा जी।
चंपापुर में वासुपूज्य हैं, सिद्धक्षेत्र अतिप्यारा जी ॥3॥
अष्टापद से मुक्त हुए जो, ऋषभदेव को ध्याऊँ जी।
भरत बाहुबली सुत थे जिनके, आदि प्रभु चित लाऊँ जी ॥4॥
कोड़ी बहत्तर मोक्ष स्थली, गिरनारी को वंदूँ जी।
शत्रुंजय जी क्षेत्र हमारा, तारंगा को वंदूँ जी ॥5॥
पावापुर के पद्म सरोवर, से जो मोक्ष पधारे जी।
अंतिम है तीर्थेश हमारे, महावीर मन भाये जी ॥6॥
पिसनहारी की मढ़िया ऊपर, नीचे हैं नंदीश्वर जी।
नगर पनागर शांतिप्रभु हैं, पुरवा के आदीश्वर जी ॥7॥
निरूपम शिवनगरी के पारस, पद्मासन में ध्याऊँ जी।
तिलवारा की प्रतिभाओं को, देख-देख हर्षाऊँ जी ॥8॥
गोसलपुर भी क्षेत्र बन गया, बहोरीबंद किनारे जी।
शांतिनाथ का है प्रसाद जो, भव से सबको तारो जी ॥9॥
कुण्डलपुर की छटा निराली, बड़े बाबा मनहारी जी।
श्रीधर स्वामी मोक्ष पधारे, सबके संकट टारो जी ॥10॥
नगर कटंगी रहा किनारे, कोनी जी को वंदूँ जी।
अतिशय तारादेही देखो, शांतिधाम को वंदूँ जी ॥11॥
नोहटा के आदीश्वर न्यारे, आपचंद को वंदूँ जी।
पारस प्रभुवर जहाँ विराजे, क्षेत्र पटेरिया वंदूँ जी ॥12॥
रहली पटनागंज क्षेत्र है, वीर नाम को वंदूँ जी।
निर्भय होकर जय जय करके, चैत्यालय को वंदूँ जी ॥13॥
बीना - बारहा सबसे न्यारा, शांतिनाथ गुण गाऊँ जी।
शांतिधारा देख देख सब, दया भाव चित लाऊँ जी ॥14॥
तीन पदों के धारी प्रभु को, ईशुरवारा ध्याऊँ जी।
भाग्योदय का मंदिर न्यारा, पजनारी शिर नाऊँ जी ॥15॥
जल मंदिर के पारस प्रभु को, नैनागिर में पाऊँ जी।
द्रौणागिरी आहार पपौरा, तीर्थक्षेत्र मन लाऊँ जी ॥16॥

बंधा क्षेत्र के भौंरासे में, अजितनाथ को ध्याऊँ जी।
मुझे निरापद पद मिल जावे, यही भावना भाऊँ जी ॥17॥
खजुराहो की कला अनूठी, पवा क्षेत्र को वंदूँ जी।
गिरार जी में आदिप्रभु हैं, वृषभगिरि को वंदूँ जी ॥18॥
मदन-पुर की गौरव गाथा, क्षेत्र नवागढ़ वंदूँ जी।
विदिशा शीतलनाथ विराजे, सिरोंजजी को वंदूँ जी ॥19॥
मानतुंग की तपस्थली है, भोजपुरी को वंदूँ जी।
आदिनाथजी जहाँ विराजे, क्षेत्र समसगढ़ वंदूँ जी ॥20॥
गोलाकोट व पचराई के आदि प्रभु को ध्याऊँ जी।
कलाकृति प्रतिमा की लखकर, मन ही मन हरषाऊँ जी ॥21॥
पुष्पगिरी के पारस प्रभु जी, सिद्ध-वर-कूट को वंदूँ जी।
ऊन शतक श्री जिनमंदिर जी, भक्तिभाव गुण गाऊँ जी ॥22॥
क्षेत्र देवगढ़ रही विराजित, अनगिन प्रतिमा पाऊँ जी।
नंग अनंग निर्वाण पधारे, सोनागिर शिर नाऊँ जी ॥23॥
कोलारस की खड़ी ये प्रतिमा, गौरव गाथा गाऊँ जी।
गोपाचल की प्रतिमाओं को, सादर शीश झुकाऊँ जी ॥24॥
रामटेक की छटा निराली, चौबीसी को वंदूँ जी।
भातकुली का अतिशय भारी, आदिनाथ को वंदूँ जी ॥25॥
चंद्रगिरी के चंद्रप्रभु को, जिनमंदिर में पाऊँ जी।
प्रतिमा की प्रतिभा है न्यारी, भक्तिभाव से ध्याऊँ जी ॥26॥
साढ़े तीन कोड़ि मुनिवर की, मोक्षस्थली जाऊँ जी।
मुक्तागिरी जी सिद्धक्षेत्र को, सादर शीश झुकाऊँ जी ॥27॥
द्वादश चक्री मुक्त हुए हैं, बड़वानी अतिन्यारा जी।
आठ कोड़ि मुनि मोक्ष गये हैं, गजपंथा भी प्यारा जी ॥28॥
राम हनु सुग्रीव नील अरु, महानील को ध्याऊँ जी।
मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र को, सादर शीश झुकाऊँ जी ॥29॥
कुलभूषण देशभूषण मुनि को, कुंथलगिरी में वंदूँ जी।
शांतिसागरा तप - स्थली को, भाव सहित मैं वंदूँ जी ॥30॥

नेमगिरि का अतिशय भारी, बीजापुर को वंदूँ जी।
अंतरिक्ष के पारस प्रभु हैं, क्षेत्र बदामी वंदूँ जी ॥31॥
क्षेत्र एलोरा है अतिप्यारा, पार्श्व प्रभु को वंदूँ जी।
मूढ़बद्री धर्मस्थल न्यारा, कनकगिरि को वंदूँ जी ॥32॥
खण्डगिरी वा, उदयगिरी वा, चंद्रगिरी को वंदूँ जी।
बड़े खड़े भगवान हमारे, गोमटेश को वंदूँ जी ॥33॥
पद्मपुरी तिजारा अतिशय, महावीरा को वंदूँ जी।
सांगानेर के आदिनाथ को, भाव सहित मैं वंदूँ जी ॥34॥
चाँदखेड़ी और चूलगिरी के क्षेत्र की गाथा गाऊँ जी।
बीनागंज की प्रतिमाओं को, देख - देख हर्षाऊँ जी ॥35॥
थूवौनजी की खड़ीं ये प्रतिमा, गौरव गाथा गाऊँ जी।
बड़े खड़े खंदारगिरि के, आदि प्रभु को ध्याऊँ जी ॥36॥
चन्देरी की चौबीसी को भाव सहित सिरनाऊँ जी।
पार्श्व प्रभु जी सीरोंन क्षेत्र के, देख देख हर्षाऊँ जी ॥37॥
जम्बूस्वामी मथुरा वंदूँ, सेठ सुदर्शन पटना जी।
पार्श्व प्रभु की काशी वंदूँ, विघनहरण कचनेरा जी ॥38॥
राजगृही की पंच पहाड़ी, भक्तिभाव से अर्चूं जी।
जहाजपुर के सुव्रत प्रभु की, महिमा कैसे वर्णूं जी ॥39॥
पारस चंबलेश्वर के ईश्वर, कम्पिलाजी को वंदूँ जी।
शांति कुन्थु और अरनाथ को, बजरंगगढ़ में वंदूँ जी ॥40॥
सर्वोदय के आदि प्रभु को, पुण्योदय को वंदूँ जी।
बिजौलिया के पार्श्व प्रभु को, अंदेश्वर को वंदूँ जी ॥41॥
कौशाम्बी काकंदीपुर अरु, हस्तिनागपुर वंदूँ जी।
सिंहपुरी श्रावस्ती आरा, और अयोध्या वंदूँ जी ॥42॥
शौरीपुर के नेमीश्वर को, भाव सहित चित लाऊँ जी।
क्षेत्र बटेश्वर है अति प्यारा, अजितनाथ को ध्याऊँ जी ॥43॥
पूरब पश्चिम उत्तर दक्षिण, जिन प्रतिमा मन ध्याऊँ जी।
तीन लोक के जिन चैत्यालय, मन वच तन शिर नाऊँ जी ॥44॥

भवनवासी, व्यंतर ज्योतिष के, जिन मंदिर को वंदूँ जी।
वैमानिक देवों के गृह में, चैत्यालय को वंदूँ जी ॥45॥

जिनवाणी स्तवन

धवलाजी अरु महाधवल को, नियमसार को वंदूँ जी।
समयसार पंचास्तिकाय को, षट्प्राभृत को वंदूँ जी ॥46॥
मोक्षशास्त्र, गोमट्टसार द्वय, त्रिलोकसार को वंदूँ जी।
चरित पुराण लिखे हैं जितने, उन ग्रंथों को वंदूँ जी ॥47॥

गुरु स्तवन

सुधर्म गौतम जम्बूस्वामी, विष्णुनंदी को वंदूँ जी ।
अपराजित गोवर्धन स्वामी, भद्रबाहु को वंदूँ जी ॥48॥
श्रुत केवली के बाद एकादश, अंगपूर्व के ज्ञाता जी।
विशारवादि आचार्य को वंदू , समंत सूरि श्रुत दाता जी ॥49॥
धरसेनादि श्रेष्ठ श्रमणों को, भाव सहित मैं वंदूँ जी।
माघनंदि श्रीपुष्पदंत अरु, भूतबली को वंदूँ जी ॥50॥
कुन्दकुन्द श्री समंतभद्र अरु, उमास्वामी को वंदूँ जी।
पूज्यपाद अकलंक देव को, भाव सहित मैं वंदूँ जी ॥51॥
और अनेकों श्रुत के लेखक, कैसे नाम गिनाऊँ जी।
मेरा श्रुत सम्यक् हो जावे, यही भावना भाऊँ जी ॥52॥
शांति वीर शिव ज्ञान गुरु को, भक्तिभाव से वंदूँ जी।
वर्तमान के वर्द्धमान सम, विद्या गुरु को वंदूँ जी ॥53॥
समय योग और नियम के सागर, क्षमा के सागर वंदूँ जी।
तीर्थक्षेत्र के जो उद्धारक, सुधा के सागर वंदूँ जी ॥54॥
प्रमाण से संधान जो करते, निर्णय मुनि को वंदूँ जी।
अक्षय अभय वीर के सागर, आगम मुनि को वंदूँ जी ॥55॥
प्रशान्त, शीतल, निर्ग्रन्थ मुनि को, प्रणम्य भाव से अर्चूं जी।
दोष, लोभ, मद, मोह रहित की, निश्चिन्त्य महिमा वर्णूं जी ॥56॥
वर्तमान के सब मुनियों को, निर्ग्रन्थ मुनि को वंदूँ जी।
मुझे मुनिपद शीघ्र मिले मैं, इसी भाव से वंदूँ जी ॥57॥

तीर्थक्षेत्र के नमन से, संकट कटें हजार ।
श्रुत के नित अभ्यास से, बेड़ा होवे पार ॥58॥
गुरु कृपा हमपे बने, ऐसी मन से प्यास ।
एक यही विश्वास है, पूरी होगी आस ॥59॥
विद्यासागर मम गुरु, रख लो अपने पास ।
मुझको गुरु आधार दो, होंय सफल मम काज ॥60॥
ऋणी रहूँगा में गुरु, चरणों में है माथ।
जब तक घट में श्वास है, सिद्ध बनने की चाह ॥61॥

****

कौन-कौन सी भक्ति कब करना

- **जिनप्रतिमावन्दना**- चैत्यभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति।
- **आचार्यवन्दना**- लघुसिद्धभक्ति, लघुआचार्य भक्ति।
- **सिद्धान्तवेत्ता आचार्य की वन्दना**- सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, आचार्यभक्ति।
- **साधारण मुनियों की वन्दना**- सिद्धभक्ति।
- **सिद्धान्तवेत्ता मुनियों की वन्दना**- सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति।
- **स्वाध्याय का प्रारम्भ**- लघुश्रुतभक्ति, आचार्यभक्ति।
- **स्वाध्याय की समाप्ति**- लघुश्रुतभक्ति।
- **आचार्य की अनुपस्थिति में पहले दिन उपवास वा प्रत्याख्यान ग्रहण किया हो तो दूसरे दिन आहार के समय**- सिद्धभक्ति पढ़कर उसका त्याग वा आहार के लिये गमन।
- **आहार की समाप्ति पर अगले दिन के उपवास वा प्रत्याख्यान का ग्रहण करने में**- सिद्धभक्ति।
- **आचार्य की उपस्थिति में आहार लिये जाने के पहले**- लघुसिद्धभक्ति, लघुयोगिभक्ति।
- **आहार के अनन्तर प्रत्याख्यान वा उपवास की प्रतिज्ञा के लिये**- लघुसिद्धभक्ति, लघुयोगिभक्ति।
- **चतुर्दशी के दिन त्रिकालवन्दना के लिये**- चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति,

पंचमहागुरुभक्ति अथवा सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति और समाधिभक्ति।
- **नन्दीश्वरपर्व में**- सिद्धभक्ति, नन्दीश्वरभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति, समाधिभक्ति।
- **सिद्धप्रतिमा के सामने**- सिद्धभक्ति।
- **तीर्थंकर के जन्म दिन**- चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंच-महागुरुभक्ति अथवा सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, श्रुतभक्ति, पंच-महागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **अष्टमी-चतुर्दशी की क्रिया में अपूर्व चैत्यवन्दना वा त्रिकाल नित्यवन्दना के समय**- चैत्यभक्ति, पंच-महागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **अभिषेकवन्दना**- सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **स्थिरबिम्बप्रतिष्ठा**- सिद्धभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **चलबिम्ब-प्रतिष्ठा**- सिद्धभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **चलबिम्बप्रतिष्ठा के चतुर्थ अभिषेक में**- सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति, पंचमहागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **तीर्थंकरों के गर्भ-जन्मकल्याणक में**- सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **दीक्षाकल्याणक में**- सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **ज्ञानकल्याणक में**- सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, निर्वाणभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **निर्वाणकल्याणक में**- सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, चारित्रभक्ति, योगिभक्ति, निर्वाणभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **वीरनिर्वाण-सूर्योदय के समय**- सिद्धभक्ति, निर्वाणभक्ति, पंच महागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **श्रुतपंचमी**- बृहत्सिद्धभक्ति, बृहत्श्रुतभक्ति, श्रुतस्कन्ध की स्थापना, वृहद् वाचना, बृहत् श्रुत-आचार्य भक्ति पूर्वक स्वाध्याय, श्रुतभक्ति द्वारा स्वाध्याय की पूर्णता, अन्त में शान्तिभक्ति कर क्रि‍ा की पूर्णता।
- **श्रुतपंचमी के दिन गृहस्थों को**- सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, शान्तिभक्ति।
- **सिद्धान्तवाचना**- स्वाध्याय का प्रारम्भ श्रुतभक्ति, आचार्य-भक्ति द्वारा करके वाचना करे और अन्त में श्रुत और शान्तिभक्ति।

❖ **गृहस्थों को संन्यास के प्रारम्भ में-** सिद्ध, श्रुत, शान्तिभक्ति।
❖ **गृहस्थों को संन्यास के अन्त में-** सिद्धभक्ति, श्रुतभक्ति, शान्तिभक्ति।
❖ **वर्षायोग धारण करते समय-** सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, चैत्यभक्ति।
❖ **वर्षायोग धारण की प्रदक्षिणा में-** यावन्ति जिनचैत्यानि, स्वयंभूस्तोत्र की स्तुति, चैत्यभक्ति।
❖ **वर्षायोग स्वीकार करते समय-** वपंचमहागुरुभक्ति, शान्तिभक्ति।
❖ **वर्षायोग की समाप्ति में-** वर्षायोग धारण करने की पूर्व विधि।
❖ **प्रतिमायोग धारण करने वाले मुनि की वन्दना करते समय-** सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, शान्तिभक्ति।
❖ **दीक्षा ग्रहण करते समय-** बृहत्सिद्धभक्ति, योगिभक्ति।
❖ **दीक्षा के अन्त में-** सिद्धभक्ति।
❖ **केशलोंच करते समय-** लघुसिद्धभक्ति, लघुयोगिभक्ति।
❖ **लोंच के अंत में-** सिद्धभक्ति।
❖ **प्रतिक्रमण में-** सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति, चतुर्विंशति-तीर्थंकरभक्ति।
❖ **रात्रियोग धारण करते समय-** योगिभक्ति।
❖ **रात्रियोग के त्याग समय-** योगिभक्ति।
❖ **देववन्दना में दोष लगाने पर-** समाधिभक्ति।
❖ **सामान्य ऋषि के स्वर्गवास होने पर उनके शरीर और निषद्या की क्रिया में-** सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, शान्तिभक्ति।
❖ **पाक्षिकप्रतिक्रमण में-** सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति, चतुर्विंशतितीर्थंकरभक्ति, चारित्रालोचना, पंचमहागुरुभक्ति, बृहदालोचना, लघु आचार्यभक्ति।
❖ **चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में-** सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति, चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति, चारित्रालोचना, पंचमहागुरुभक्ति, बृहदालोचना, लघु-आचार्यभक्ति।
❖ **वार्षिक प्रतिक्रमण में-** सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, वीरभक्ति, चतुर्विंशति-तीर्थकरभक्ति, चारित्रालोचना, पंचमहागुरुभक्ति, बृहदालोचना, लघु-आचार्यभक्ति।

सिद्धभक्ति

पद्यानुवाद - प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

(ज्ञानोदय छन्द)

जिनके शुचि गुण परिचय पाकर वैसा बनने उद्यत हूँ।
विधि मल धो-धो, निजपन साधा वन्दू सिद्धों को नत हूँ।
निजी योग्यता बाह्य योग से कनक कनकपाषाण यथा
शुचि गुणनाशक दोष नशन से आत्मसिद्धि वरदान तथा॥1॥
गुणाभाव यदि अभाव निज का सिद्धि रही, तप व्यर्थ रहे।
सुचिरबद्ध यह विधि फल-भोक्ता कर्म नष्ट कर अर्थ गहे।
ज्ञाता - द्रष्टा स्वतन बराबर फैलन सिकुड़नशाली है
ध्रुवोत्पादव्यय गुणीजीव है यदि न, सिद्धि सो जाली है॥2॥
बाहर-भीतर यथाजात हो रत्नत्रय का खड्ग लिए।
घाति कर्म पर महाघात कर प्रकटे रवि से अंग लिए।
छत्र चंवर भासुर भामण्डल समवसरण पा आप्त हुए
अनन्त दर्शन बोध वीर्य सुख समकित गुण चिर साथ हुए॥3॥
देखें जानें युगपत् सब कुछ सुचिर काल तक ध्वान्त हरें
परमत-खण्डन जिनमत मण्डन करते जन-जन शान्त करें।
निज से निज में निज को निज ही बने स्वयंभू वरत रहे
ज्योति पुंज की ज्ञानोदय यह जय जय जय जय करत रहे॥4॥
जड़ें उखाड़ी अघातियों की सुदूर फैली चेतन में।
हुए सुशोभित सूक्ष्मादिक गुण अनन्त क्षायिक वे क्षण में।
और और विधि विभाव हटते-हटते अपने गुण उभरे
ऊर्ध्व स्वभावी अन्त समय में लोक शिखर पर जा ठहरे॥5॥
नूतन तन का कारण छूटा, मिला हुआ कुछ कम उससे
सुन्दर प्रतिछवि लिए सिद्ध हैं अमूर्त दिखते ना दृग से।
भूख-प्यास से रोग-शोक से राग-रोष से मरणों से।
दूर दुःख से शिव सुख कितना कौन कहे जड़ वचनों से॥6॥

घट-बढ़ ना हो विषय-रहित है प्रतिपक्षी से रहित रहा।
निरुपम शाश्वत सदा सदोदित सिद्धों का सुख अमित रहा।
निज कारण से प्राप्त अबाधित स्वयं सातिशय धार रहा।
परनिरपेक्षित परमोत्तम है अन्त-हीन वह सार रहा ॥7॥
श्रम निद्रा जब अशुचि मिटी है शयन सुमन आदिक से क्या?
क्षुधा मिटी है तृषा मिटी है सरस अशन आदिक से क्या?
रोग शोक की पीर मिटी है औषध भी अब व्यर्थ रहा?
तिमिर मिटा सब हुआ प्रकाशित दीपक से क्या अर्थ रहा? ॥8॥
संयम-यम-नियमों से नय से आत्म बोध से दर्शन से
महायशस्वी महादेव हैं बने कठिन तपघर्षण से।
हुये हो रहे होंगे वन्दित सुधी जनों से सिद्ध महा।
उन सम बनने तीनों सन्ध्या उन्हें नमूं कर-बद्ध यहाँ ॥9॥

दोहा

सिद्ध गुणों की भक्ति का करके कायोत्सर्ग ।
आलोचन उसका करूँ! ले प्रभु! तव संसर्ग ॥ 10॥
समदर्शन से साम्य बोध से समचारित से युक्त हुए
दुष्ट धर्म से पुष्ट हुए जो अष्ट कर्म से मुक्त हुए।
सम्यक्त्वादिक अष्ट गुणों से मुख्य रूप से विलस रहे
ऊर्ध्वस्वभावी बने तुरत जा लोक शिखर पर निवस रहे ॥ 11॥
विगत अनागत आगत के यूँ कुछ तो तप से सिद्ध हुए
कुछ संयम से कुछ तो नय से कुछ चारित से सिद्ध हुए।
भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर कर निज मन को
पूजूँ वन्दू अर्चन करलूँ नमन करूँ सब सिद्धन को ॥12॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ!॥

उन्नति के मार्ग में, कुछ बाधाएँ आएँगी।
मुलाकात करना उनसे, कुछ देकर जाएँगी॥

चैत्यभक्ति

रचयिता- प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

ज्ञानोदय छंद

अजेय अघहर अद्‌भुत-अद्‌भुत पुण्य बन्ध के कारक हैं।
करें उजाला पूर्ण जगत् में, सत्य तथ्य भव तारक हैं॥
गौतम-पद को, सन्मति-पद को, प्रणाम करके कहता हूँ।
''चैत्यवन्दना'' जग का हित हो, जग के हित में रहता हूँ॥1॥
अमर मुकुटगत मणि आभा जिन को सहलाती सन्त कहे।
कनक कमल पर चरण कमल को, रखते जो जयवन्त रहे॥
जिनकी छाया में आकर के, उदार उर वाले बनते।
अदय क्रूर उर धारे आरे, मान दम्भ से जो तनते॥2॥
जैनधर्म जयशील रहे नित सुर-सुख, शिव-सुख का दाता।
दुर्गति दुष्पथ दुःखों से जो, हमें बचाता है त्राता॥
प्रमाणपण औ विविध नयों से दोषों के जो वारक हों।
अंग-बाह्य औ अंग-पूर्वमय जिनवच जग उद्धारक हों॥3॥
अनेकान्तमय वस्तु तत्त्व का सप्तभंग से कथन करे।
तथा दिखाता सदा द्रव्य को ध्रौव्य-आय-व्यय वतन अरे!॥
पूर्णबोध की इस विध द्युति से निरुपम सुख का द्वार खुले।
दोष रहित औ नित्य निरापद, संपद का भण्डार मिले॥4॥
जन्म-दुःख से मुक्त हुए हैं, अरहन्तों को वन्दन हो।
सिद्धों को भी नमन करूँ मैं, जहाँ कर्म की गन्ध न हो॥
सदा वन्द्य हैं सर्ववन्द्य हैं, साधुजनों को नमन करूँ।
गणी पाठकों को वन्दूँ मैं, मोक्ष-धाम को गमन करूँ॥5॥
मोह-शत्रु को नष्ट किये हैं, दोष-कोष से रहित हुये।
तदावरण से दूर हुये हैं, प्रबोध-दर्शन सहित हुये॥
अनन्त बल के धनी हुये हैं, अन्तराय का नाम नहीं।
पूज्य योग्य अरहन्त बने हैं, तुम्हें नमूँ वसु याम सही॥6॥

वीतरागमय धर्म कहा है, जिनवर ने शिवपथ नेता।
साधक को जो सदा संभाले, मोक्षधाम में धर देता॥
नमूँ उसे मैं तीन लोक के, हित सम्पादक और नहीं।
आर्जव आदिक गुणगण जिससे, बढ़ते उन्नति ओर सही ॥7 ॥
सजे चतुर्दश पूर्वों से हैं, औ द्वादश विध अंगों से।
तथा वस्तुओं और उपांगों से गुंथित बहु भंगों से॥
अजेय जिनके वचन रहे ये, अनन्त अवगम वाले हैं।
इन्हें नमन अज्ञान-तिमिर को, हरते परम उजाले हैं ॥8 ॥
भवनवासियों के भवनों में स्वर्गिक कल्प विमानों में।
व्यन्तर देवावासों में औ, ज्योतिष देव विमानों में॥
विश्ववन्द्य औ मर्त्यलोक में जितने जिनवर चैत्य रहें।
मन-वच-तन से उन्हें नमूँ, वे मम मन के नैवेद्य रहे ॥9 ॥
सुरपति नरपति धरणेन्द्रों से तीन लोक में अर्चित हैं।
अनन्य दुर्लभ सभी सम्पदा, जिनचरणों में अर्पित हैं॥
तीर्थकरों के जिनालयों को, तन-वच-मन-परिणामों से।
नमूँ, बनूँ बस शान्त, बचूँ मैं भव-भवगत दुख-अनलों से ॥10 ॥
इस विध जिनको नमन किया है, पावनपण को हैं धारे।
पञ्चपदों से पूजे जाते, परम पुरुष हैं जग सारे ॥
जिनवर जिनके वचन धर्म औ, बिम्ब जिनालय ये सारे।
बुधजन तरसे विमल-बोधि को, हमें दिलावे शिव-द्वारे ॥11 ॥
नहीं किसी से गये बनाये स्वयं बने हैं शाश्वत हैं।
चम-चम चमके, दम-दम दमके, बाल-भानुसम भास्वत हैं॥
और बनाये जिनालयों में, नरों-सुरों से पूजित हैं।
जिनबिम्बों को नमन करूँ मैं, परम पुण्य से पूरित हैं ॥12 ॥
आभामय भामण्डल वाली, सुडौल हैं बेजोड़ रहीं।
जिनोत्तमों में उत्तम जिन की प्रतिमाएँ युग मोड़ रहीं॥
विपदा हरतीं वैभव लातीं सुभीक्ष करतीं त्रिभुवन में।
कर युग जोड़ूँ विनम्र तन से, नमूँ उन्हें हरखूँ मन में ॥13 ॥

आभरणों से, आवरणों से, आभूषण से रहित रही।
हस्त निरायुध, उपांग जिनके, विराग छवि से सहित सही॥
प्रतिमाएँ अ-प्रमित रहीं हैं, कान्ति अनूठी है जिनकी।
क्लान्ति मिटे, चिर शान्ति मिले बस, भक्ति करूँ निशदिन उनकी ॥14 ॥
बाहर का यह रूप जिनों का, स्वरूप क्या? है बता रहा।
कषाय कालिख निकल गई है, परम शान्ति को जता रहा॥
स्वभाव-दर्शक भव-भवनाशक, जिनबिम्बों को नमन करूँ।
साधन से सो साध्य सिद्ध हो, कषाय-मल को शमन करूँ ॥15 ॥
लगा भक्ति में जिन बिम्बों की, हुआ पुण्य का अर्जन है।
सहजरूप से अनायास ही, हुआ पाप का तर्जन है ॥
किये पुण्य के फल ना चाहूँ विषय नहीं सुरगात्र नहीं।
जन्म-जन्म में जैनधर्म में, लगा रहे मन मात्र यही ॥16 ॥
सब कुछ देखे सब कुछ जाने, दर्शनधारी ज्ञानधनी।
गुणियों में अरहन्त कहाते, चेतन के द्युतिमान मणी॥
मिली बुद्धि से उन चैत्यों का, भाग्य मान गुणगान करूँ।
अशुद्धियों को शीघ्र मिटाकर, विशुद्धियों का पान करूँ ॥17 ॥
भवनवासियों के भवनों में, फैली वैभव की महिमा।
नहीं बनाई बनी आप हैं, आभा वाली हैं प्रतिमा॥
प्रणाम उनको भी मैं करता, सादर सविनय सारों से।
पहुँचा देवें पञ्चमगति को, तारें मुझको क्षारों से ॥18 ॥
यहाँ लोक में विद्यमान हैं, जितने अपने आप बने।
और बनाये चैत्य अनेकों, भविकजनों के, पाप हने॥
उन सब, चैत्यों को वन्दूँ मैं, बार-बार संयत मन से।
बार-बार ना एक-बार बस, आप भरूँ अक्षय धन से ॥19 ॥
व्यन्तरदेवों के यानों में, प्रतिमा-गृह हैं, भास्वर हैं।
संख्या की सीमा से बाहर, चिर से हैं, अविनश्वर हैं॥
सदा हमारे दोषों के तो, वारण के वे कारण हों।
ताकि दिनों दिन उच्च-उच्चतर, चारित का अवधारण हो ॥20 ॥

ज्योतिषदेव विमानों में भी, रहे जिनालय हैं प्यारे।
कितनी संख्या कही न जाती, अनगिन माने हैं सारे॥
विस्मयकारी वैभव से जो, भरे हुये हैं अघहारी।
उनको भी हो वन्दन, अपना वन्दन हो शिव सुखकारी॥21॥
वैमानिक देवों के यानों में भी जिन की प्रतिमा हैं।
जिन की महिमा कही न जाती चम-चम-चमकी द्युतिमा हैं॥
सुरमुकुटों की मणि छवियाँ वे जिनके पद में बिम्बित हैं।
उन्हें नमूँ मैं सिद्धि लाभ हो, गुणगण से जो गुम्फित हैं॥22॥
उभय सम्पदा वाले जिनकी, वर्णों से ना वर्णन हो।
अरि-विरहित अरहंत कहाते, जिनबिम्बों का अर्चन हो॥
यशः कीर्ति की नहीं कामना, कीर्तन जिन का किया करूँ।
कर्मास्रव का रोकनहारा कीर्तन करता जिया करूँ॥23॥
महानदी अरहन्त देव हैं, अनेकान्त भागीरथ हैं।
भविकजनों का अघ धुलता है, यहाँ यही वर तीरथ है॥
और तीर्थ में लौकिक जो है, तन की गरमी है मिटती।
वही तीर्थ परमार्थ जहाँ पर, मन की भी गरमी मिटती॥24॥
लोकालोकालोकित करता, दिव्यबोध आलोक रहा।
प्रवाह बहता अहोरात यह, कहीं रोक ना टोक रहा॥
जिसके दोनों ओर बड़े दो, विशाल निर्मल कूल रहे।
एक शील का, दूजा व्रत का, आपस में अनुकूल रहे॥25॥
धर्म - शुक्ल के ध्यान धरे हैं राजहंस ऋषि चेत रहे।
पञ्च समितियाँ तीन गुप्तियाँ, नाना गुणमय रेत रहे॥
श्रुताभ्यास की अनन्य दुर्लभ, मधुर-मधुर धुनि गहर रही।
महातीर्थ का मुझ बालक पर रहा, रहे नित महर सही॥26॥
क्षमा भँवर है जहाँ हजारों, यति-ऋषि-मुनि मन सहलाते।
दया कमल हैं खुले खिले हैं, सब जीवों को महकाते॥
तरह-तरह के दुस्सह परिषह, लहर-लहर कर लहराते।
ज्ञानोदय के छन्द हमें यों, ठहर-ठहर कर कह पाते॥27॥

भविक व्रती जन नहीं फिसलते, राग-रोष शैवाल नहीं।
सार-रहित हैं कषाय तन्मय, फेनों का फैलाव नहीं॥
तथा यहाँ पर मोहमयी उस कर्दम का तो नाम नहीं।
महा भयावह दुस्सह दुख का, मरण-मगर का काम नहीं॥28॥
ऋषि-पति मृदुधुनि से थुति करते श्रुत की भी दे सबक रहे।
जहाँ लग रहा श्रवण मनोहर विविध विहंगम चहक रहे॥
घोर-घोरतम तप तपते हैं बने तपस्वी घाट रहे ।
आस्रव रोधक संवर बनता, बँधा झर रहा पाट रहे॥29॥
गणधर, गणधर के चरणों में, ऋषि-यति-मुनि अनगार रहे।
सुरपति, नरपति और -और जो, निकट भव्यपन धार रहे॥
ये सब आकर परम-भक्ति से परम तीर्थ में स्नान किये।
पञ्चम युग के कलुषित मन को, धो-धोकर छविमान किये॥30॥
नहीं किसी से जीता जाता, अजेय है गम्भीर रहा।
पतितों को जो पूत बनाता, परमपूत है क्षीर रहा॥
अवगाहन करने आया हूँ, महातीर्थ में स्नान करूँ।
मेरा भी सब पाप धुले बस, यही प्रार्थना दान करूँ॥31॥
नयन युगल क्यों लाल नहीं हैं? कोप अनल को जीत लिया।
हाव-भाव से नहीं देखते, राग आपमें रीत गया॥
विषाद-मद से दूर हुये हैं प्रसन्नता का उदय रहा।
यूँ तव मुख कहता-सा लगता दर्पण-सम है हृदय रहा॥32॥
निराभरण होकर भासुर हैं राग-रहित हैं अघहर हैं।
कामजयी बन, यथाजात बन, बने दिगम्बर मनहर हैं॥
निर्भय हैं सो बने निरायुध, मार-काट से मुक्त हुये।
क्षुधा-रोग का नाश हुआ है, निराहार में तृप्त हुये॥33॥
अभी खिले हैं नीरज चन्दन-सम, घम-घम-घम-वासित है।
दिनकर शशिकर हीरक आदिक, शतवसु लक्षण भासित हैं॥
दश-शत रवि-सम भासुर फिर भी, आँखें लखतीं ना थकती।
दिव्यबोध जब जिन में उगता देह दिव्यता यूँ जगती।

बाल बढ़े नाखून बढ़े ना, मलिन धूलि आ ना लगती ॥34॥
शिवपथ में हैं बाधक होते, मोह-भाव हैं राग घने।
जिनसे कलुषित जन भी तुम को लखते वे बेदाग बने॥
किसी दिशा से जो भी देखे, उसके सम्मुख तुम दिखते।
शरदचन्द्र-से शान्त धवलतम, संत सुधी जन यूँ लिखते ॥35॥
सुरपति मुकुटों की मणिकिरणें, झर-झुर झर-झुर करती हैं।
पूज्यपाद के पदपद्मों को, चूम रही मन हरती हैं॥
वीतराग जिन! दिव्य रूप तव सकल लोक को शुद्ध करे।
अन्ध बना है कुमततीर्थ में, शीघ्र इसे प्रतिबुद्ध करे ॥36॥
मानथंभ सर पुष्पवाटिका, भरी खातिका शुचि जल से।
स्तूप महल बहु कोट नाट्यगृह सजी वेदियाँ ध्वज-दल से॥
सुरतरु घेरे वन उपवन है, और स्फटिक का कोट लसे।
नर सुर मुनि की सभा, पीठिका- पर जिनवर हैं और बसे।
समवसरण की ओर देखते, पाप ताप का घोर नसे ॥37॥
क्षेत्र-पर्वतों के अन्तर में, क्षेत्रों मन्दरगिरियों में।
द्वीप आठवाँ नन्दीश्वर में, और अन्य शुभ पुरियों में॥
सकल-लोक में जितने जिन के चैत्यालय हैं यहाँ लसे।
उन सबको मैं प्रणाम करता, मम मन में वे सदा बसे ॥38॥
बने बनाये, बिना बनाये, यहाँ धरा पर गिरियों में।
देवों-राजाओं से अर्चित, मानव-निर्मित पुरियों में॥
वन में, उपवन में, भवनों में, दिव्य विमानों यानों में।
जिनवर बिम्बों को मैं सुमरूँ, अशुभ दिनों में, सुदिनों में ॥39॥
जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध में, लाल कमल-सम तन वाले।
कृष्ण मेघ-सम, शशी कनक-सम, नील कण्ठ आभा वाले॥
साम्य-बोध-चारितधारक हो, घातिकर्म को नष्ट किया।
विगत अनागत-आगत जिन को नमूँ नष्ट हो कष्ट जिया ॥40॥
रतिकर रुचके चैत्य वृक्ष पर, औ दधिमुख अञ्जन भूधर-
रजत कुलाचल कनकाचल पर, वृक्ष शाल्मली- जम्बू पर॥

इष्वाकारों वक्षारों पर, व्यन्तर-ज्योतिष सुर जग में।
कुण्डल मानुषगिरि पर-प्रतिमा नमूँ उन्हें अन्तर जग में ॥41॥
सुरासुरों से नर नागों से, पूजित वंदित अर्चित हैं।
घंटा तोरण ध्वजादिकों से, शोभित बुधजन चर्चित हैं॥
भविक जनों को मोहित करते, पाप-ताप के नाशक हैं।
वन्दूँ जग के जिनालयों को दया धर्म के शासक हैं ॥42॥

अञ्चलिका दोहा

पूज्य चैत्य सद्भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करुँ! ले प्रभु! तव संसर्ग ॥1॥
अधोलोक में, ऊर्ध्वलोक में, मध्यलोक में उजियारे।
बने बनाये हैं बनवाये, चैत्य रहे अनगिन प्यारे॥
देव चतुर्विध अपने-अपने, उत्साहित परिवार लिए।
पर्वों, विशेष तिथियों में औ, प्रतिदिन शुभ श्रृंगार किये ॥2॥
दिव्यगन्ध ले, दिव्य दीप ले, दिव्य दिव्य दिव्य ले सुमनलता।
दिव्य चूर्ण ले, दिव्य न्हवन ले, दिव्य दिव्य ले वसन तथा॥
अर्चन, पूजन, वन्दन करते, सविनय करते नमन सभी।
भाग्य मानते, पुण्य लूटते, बने पाप का शमन तभी ॥3॥
मैं भी उन सब जिन चैत्यों को भरतखण्ड में रहकर भी।
पूजूँ, वन्दूँ, अर्चन कर लूँ, नमन करूँ सर झुककर ही॥
कष्ट दूर हो, कर्म चूर हो, बोधि लाभ हो, सद्गति हो।
वीर-मरण हो, जिनपद मुझको, मिले सामने सन्मति ओ! ॥4॥

चारित्रभक्ति

ज्ञानोदय छंद

त्रिभुवन के जो इन्द्र बने हैं सजे-धजे आभरणों से।
हीरक-हारों कनक कुण्डलों किरीट-मणिमय किरणों से॥
जिससे मुनियों ने निज-पद में झुका लिए इन इन्द्रों को।
पूज्य पंच-आचार उसे मैं वन्दूँ, कह दूँ भविकों को ॥1॥

शब्द अर्थ औ उभय विकल ना यथाकाल उपधान तथा।
गुरु निह्नव ना बहुमति होना यथायोग्य सम्मान कथा॥
महाजाति कुल रजनीपति से तीर्थंकरों ने समझाया।
वसुविध ज्ञानाचार नमूँ मैं कर्म नष्ट हो मन भाया॥2॥
जिनमत-शंका परमत-शंसा विषयों की भी चाह नहीं।
सहधर्मी में वत्सलता हो साधु संत से डाह नहीं॥
जिनशासन को करो उजागर पथ च्युत को पथ पर लाना।
नमूँ दर्शनाचार नम्र हो उपगूहन में रस आना॥3॥
नियमों से चर्या को बाँधे अनशन ऊनोदर करना।
इन्द्रिय गज-मदमत्त बने ना रसवर्जन बहुतर करना॥
शयनासन एकान्त जहाँ हो, और तपाना निज तन को।
बाह्य हेतु शिव के छह तप इनकी थुति में रखता मन को॥4॥
करे ध्यान स्वाध्याय विनय भी तनूत्सर्ग भी सदा करे।
वृद्ध रुग्ण लघु यतियों के, नित तन-मन की व्यथा हरे॥
दोष लगे तो तुरत दण्ड ले बने शुद्ध तप हैं प्यारे।
कषायरिपु के हनक भीतरी, इन्हें नमूँ बुध उर धारे॥5॥
जिसके लोचन सत्य बोध हैं आस्था जिसकी जिनमत में।
बिना छुपाये निज बल यति का तपना चलना शिव-पथ में॥
अछिद्र नौका सम भव-दधि से, शीघ्र कराता पार यहाँ।
नमूँ वीर्य-आचार इस मैं बुध अर्चित गुण सार महा॥6॥
तीन गुप्तियाँ मन-वचन-तन की तथा महाव्रत पाँच सही।
ईर्या, भाषा, क्षेपण, एषण आदि समितियाँ पाँच रहीं॥
अपूर्व तेरह विध चारित है मात्र वीर के शासन में।
भावभक्ति से पूर्ण शक्ति से इसे नमन हो क्षण-क्षण में॥7॥
शाश्वत् स्वाश्रित सुषमा लक्ष्मी अनुपम सुख की आली है।
केवल दर्शन-बोध ज्योति है मनोरमा उजयाली है॥
उसको पाने दिगम्बरों को सब यतियों को नमन करूँ।
परम तीर्थ आचार यही है मंगल से अघ शमन करूँ॥8॥

पाप पुराना मिटता नूतन रुकता आना हो जिससे।
ऋद्धि सिद्धि पर सिद्धि ऋषि में, बढ़े चरित से औ किससे?
प्रमाद वश यदि इस यतिपन में, यतिपन से प्रतिकूल किया।
करता निज की निंदा निंदित मिथ्या हो अघ मूल किया॥9॥
निकट भव्य हो एक लव्य हो दूर पाप से आप रहे।
केवल शिव सुख के यदि इच्छुक भव-दुःखों से काँप रहे॥
जैन-चरित सोपान मोक्ष का विशालतम है अतुल रहा।
आरोहण तुम इस पर कर लो आत्म तेज जब विपुल रहा॥10॥

दोहा अञ्चलिका

महाचरित वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करुँ! ले प्रभु! तव संसर्ग॥1॥
सब में जिसको प्रधान माना, कोई जिसके समा नहीं।
कर्म-निर्जरा जिसका फल है जिसका भोजन क्षमा रही॥
समकित पर जो टिका हुआ है सत्य बोध को साथ लिया।
ज्ञान-ध्यान का साधनतम है रहा मोक्ष का पाथ जिया!॥2॥
गुप्ति तीन से रहा सुरक्षित महाव्रतों का धारक है।
पञ्च समितियों का पालक है पातक का संहारक है॥
जिससे संयत साधु सहज ही समता में है रम जाता।
सुनो! महा चारित्र यही है 'ज्ञानोदय' निशि-दिन गाता॥3॥
अहो भाग्य है महाचरित को तन से मन से वचनों से।
पूजूँ, वन्दू, अर्चन कर लूँ नमन करूँ दो नयनों से॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि-लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ!॥4॥

सिर में चाँद,
अच्छा निकल आया,
सूर्य न उगा।

निर्वाणभक्ति

ज्ञानोदय छंद

अतुल रहा है, अचल रहा है, विपुल रहा है, विमल रहा।
निरा निरामय निरूपम शिवसुख मिला वीर को सबल रहा॥
नर-नागेन्द्रों खगपतियों से, अमरेन्द्रों से वन्दित हैं ।
भूतेन्द्रों से, यक्षेन्द्रों से, कुबेर से अभिनन्दित हैं ॥1॥
औरों का वह भाग्य कहाँ है, पाँच-पाँच कल्याण गहे।
भविक जनों को तुष्टि दिलाते, वर्धमान वरदान रहे॥
तीन लोक के आप परमगुरु, पाप मात्र से दूर रहे।
स्तवन करूँ तव भाव-भक्ति से पुण्य भाव का पूर रहे॥2॥
दीर्घ दिव्य सुख-भोग भोगते, पुष्पोत्तर के स्वामी हो।
आयु पूर्णकर अच्युत से च्युत हो शिवसुख परिणामी हो॥
आषाढ़ी के शुक्लपक्ष की, छटी-छठी तिथि में उतरे।
हस्तोत्तर के मध्य शशी है, नभ में तारकगण बिखरे॥3॥
विदेहनामा कुण्डपुरी है, प्रतिभा-रत इस भारत में।
प्रियंकारिणी देवी त्रिशला, सेवारत सिद्धारथ में॥
शुभफल देने वाले सोलह, स्वप्नों को तो दिया दिखा।
वैभवशाली यहाँ गर्भ में बालक आया ''दिया'' दिखा॥4॥
चैत्र मास है, शुक्लपक्ष है, तेरस का शुभ दिवस रहा।
महावीर का, धीर वीर का, जनम हुआ यश बरस रहा॥
तभी उत्तरा फाल्गुनि पर था, शशांक का भी संग रहा।
शेष सौम्य ग्रह निज उत्तम पद, गहे लग्न भी चंग रहा॥5॥
अगला दिन वह चतुर्दशी का, हस्ताश्रित है सोम रहा।
उषाकाल से प्रथम याम में, शान्त-शान्त भू-व्योम रहा॥
पाण्डुक की शुचि मणी शिला पर, बिठा वीर को इन्द्रों ने।
न्हवन कराया रत्नघटों से, देखा उसको देवों ने॥6॥
तीन दशक तक कुमार रहकर, अनन्त गुण से खिले हुये।
भोगों उपभोगों को भोगा, देवों से जो मिले हुये॥

तभी यकायक उदासीन से, अनासक्त हो विषयों से।
और वीर ये सम्बोधित हो, ब्रह्मलोक के ऋषियों से॥7॥
झालर झूमर मणियाँ लटकीं, झरझुर-झरझुर रूपवती।
'चन्द्रप्रभा' यह दिव्य पालिका रची हुई बहुकूटवती॥
वीर हुये आरूढ़ इसी पर, कुण्डपुरी से निकल गये।
वीतराग को राग देखता जन-जन परिजन विकल हुये॥8॥
मगशिर का यह मास रहा है और कृष्ण का पक्ष रहा।
यथा जन्म में हस्तोत्तर के, मध्य शशी अध्यक्ष रहा॥
दशमी का मध्याह्न काल है, बेले का संकल्प किया।
वीर आप जिन बने दिगम्बर, मन को चिर अविकल्प किया॥9॥
ग्राम नगर में प्रतिपट्टण में, पुर-गोपुर में गोकुल में।
अनियत विहार करते प्रतिदिन, निर्जन जन-जन संकुल में॥
द्वादश वर्षों द्वादश विध तप, उग्र-उग्रतर तपते हैं।
अमर समर सब जिन्हें पूजते, कष्टों में ना कँपते हैं॥10॥
ऋजुकूला सरिता के तट पर बसा जृंभिका गाँव रहा।
शिला बिछी है सहज सदी से, शाल वृक्ष की छाँव जहाँ॥
खड़े हुये मध्याह्न काल में दो दिन के उपवास लिए।
आत्मध्यान में लीन हुए हैं तन का ना अहसास किए॥11॥
तिथि दशमी वैशाख मास है, शुक्लपक्ष का स्वागत है।
हस्तोत्तर के मध्य शशी है, शान्त कान्ति से भास्वत है॥
क्षपक श्रेणी पर वीर चढ़ गये निर्भय हो भव-भीत हुये।
घाति-घात कर दिव्य बोध को पाये, मृदु नवनीत हुये॥12॥
नयन मनोहर हर दिल हरते, हर्षित हो प्रति अंग यहाँ।
महावीर वैभारगिरी पर लाये चउविध संघ महा॥
श्रमण-श्रमणियाँ तथा श्राविका-श्रावकगण सागारों में।
गौतम गणधर प्रमुख रहे हैं, ऋषि यति मुनि अनगारों में॥13॥
दुम-दुम-दुम-दुम दुंदुभि बजना, दिव्य ध्वनि का वह खिरना।
सुरभित सुमनावलि का गिरना चउसठ चामर का ढुरना॥

तीन छत्र का सर पर फिरना औ भामण्डल का घिरना।
स्फटिक मणी का सिंहासन सो, अशोक तरु का भी तनना।
समवसरण में प्रातिहार्य का, हुआ वीर को यूँ मिलना ॥14॥
सागारों को ग्यारह प्रतिमाओं का है उपदेश दिया।
अनगारों को क्षमादि दशविध धर्मों का निर्देश दिया॥
इस विध धर्मामृत की वर्षा करते विहार करते हैं।
तीस वर्ष तक वीर निरन्तर जग का सुधार करते हैं॥15॥
कई सरोवर परिसर जिनमें, भांति-भांति के कमल खिले।
तरह-तरह के लघु-गुरु तरुवर फूले महके सफल फले॥
अमर रमे रमणीय मनोरम पावानगरी उपवन में।
बाह्य खड़े जिन तनूत्सर्ग में, भीतर में तो चेतन में॥16॥
कार्तिक का यह मास रहा है, तथा कृष्ण का पक्ष रहा।
कृष्ण पक्ष की अन्तिम तिथि है, स्वाती का तो ऋक्ष रहा॥
शेष रहे थे चउकर्मों को वर्द्धमान ने नष्ट किया।
अजर अमर बन अक्षयसुख से आतम को परिपुष्ट किया॥17॥
प्राप्त किया निर्वाण दशा को वीर चले शिव-धाम गए।
ज्ञात किया बस इन्द्र उतरते धरती पर जिन नाम लिए॥
धरती दुर्लभ देवदारू है, स्वर्ग सुलभ लहु-चन्दन है।
कालागुरु गोशीर्ष साथ है लाए सुरभित नन्दन है॥18॥
धूप फलों से जिनवर तन का, गणधर का अर्चन करके।
अनलेन्द्रों के मुकुट अनल से जला वीर तन पल भर में॥
वैमानिक सुर तो स्वर्गों में ज्योतिष नभ में यानों में।
व्यन्तर बिखरे निज-निज वन में, शेष गये बस भवनों में॥19॥
इस विधि दोनों संध्याओं में तन से, मन से भाषा से।
वर्द्धमान का स्तोत्र-पाठ जो करते हैं बिन आशा से॥
देव लोक में, मनुज लोक में, अनन्य दुर्लभ सुख पाते।
और अन्त में शिवपद पाते, किन्तु लौटकर ना आते॥20॥
गणधर देवों श्रुतपारों के तीर्थंकरों के अन्त जहाँ।
वहीं बनी निर्वाणभूमियाँ भारत सो यशवन्त रहा॥

शुद्ध वचन से, मन से, तन से, नमन उन्हें शत बार करूँ।
स्तवन उन्हीं का करूँ आज मैं, बार-बार जयकार करूँ॥21॥
प्रथम तीर्थंकर महामना वे पूर्ण-शील से युक्त हुए।
शैल-शिखर कैलाश जहाँ पर कर्म-काय से मुक्त हुए॥
चम्पापुर में वासुपूज्य ये, परम पूज्य पद पाये हैं ।
राग-रहित हो, बन्ध-रहित हो अपनी धी में आये हैं॥22॥
जिसको पाने स्वर्गों में भी देवलोक भी तरस रहे।
साधु गवेषक बने उसी के उसीलिए कट दिवस रहे॥
ऊर्जयन्त गिरनारगिरि पर निज में निज को साध लिया।
अरिष्टनेमी कर्म नष्टकर, सिद्धि सुधा का स्वाद लिया॥23॥
पावापुर के बाहर आते विशाल उन्नत थान रहा।
जिसको घेरे कमल-सरोवर नन्दन सा छविमान रहा॥
''यहीं'' पाप धो धवलिम होकर वर्धमान निर्वाण गहे।
पूजूँ वन्दूँ अर्चन कर लूँ ''ज्ञानोदय'' गुणखान रहे॥24॥
मोहमल्ल को जीत लिया जो बीस तीर्थंकर शेष रहे।
ज्ञान-भानु से किया प्रकाशित, त्रिभुवन को अनिमेष रहे॥
तीर्थराज सम्मेदाचल पर योगों का प्रतिकार किया।
असीम सुख में डूब गये फिर, भवसागर का पार लिया॥25॥
विहार रोके चउदह दिन तक, वृषभदेव फिर मुक्त हुये।
वर्धमान को लगे दिवस दो, अयोग बनकर गुप्त हुये॥
शेष तीर्थकर तनूत्सर्ग में, एक मास तक शान्त रहे।
सयोगपन तज अयोगगुण पा, लोकशिखर का प्रान्त गहे॥26॥
वचनमयी थुदि कुसुमों से जो मालाओं का बना-बना।
मानस-कर से दिशा-दिशा में बिखराए हम सुहावना॥
इन तीर्थों की परिक्रमा भी सादर सविनय सदा करें।
यही प्रार्थना किन्तु करें हम सिद्धि मिले आपदा टरे॥27
पक्षपात तज कर्मपक्ष पर पाण्डव तीनों टूट पड़े ।
शत्रुञ्जयगिरि पर शत्रुञ्जय बने बन्ध से छूट पड़े ॥

तुंगीगिरि पर अंग-रहित हो राम सदा अभिराम बने।
नदी तीर पर स्वर्णभद्र मुनि बने सिद्ध विधिकाम हने ॥28॥
सिद्धकूट वैभार तुंग पर, श्रमणाचल विपुलाचल में।
पावन कुण्डलगिरि पर मुक्तागिरि पर श्री विंध्यांचल में॥
तप के साधन द्रोणगिरि पर पौदनपुर के अंचल में।
सिंह दहाड़े सह्याचल में दुर्गम बलाहकाचल में ॥29॥
गजदल टहले गजपंथा में हिम गिरता हिमगिरिवर में।
दंडात्मक पृथुसार यष्टि में पूज्य प्रतिष्ठक भूधर में॥
साधु-साधना करते बनते निर्मल पञ्चमगति पाते।
स्थान हुये ये प्रसिद्ध जग में करलूँ इनकी थुदि तातैं ॥30॥
पुण्य पुरुष ये जहाँ विचरते पुजती धरती माटी है।
आटे में गुड़ मिलता जैसे, और मधुरता आती है ॥31॥
गणधर देवों अरहन्तों की मौनमना मुनिराजों की।
कहीं गईं निर्वाणभूमियाँ मुझसे कुछ गिरिराजों की॥
विजितमना जिन शान्तमना मुनि जो हैं भय से दूर सदा।
यही प्रार्थना मेरी उनसे सद्गति दें सुख पूर सुधा ॥32॥
'वृषभ' वृषभ का चिह्न अजित का 'गज' शंभव का 'घोट' रहा।
अभिनन्दन का 'वानर' माना, और सुमति का 'कोक' रहा॥
छटे सातवें अष्टम जिन का 'सरोज' 'स्वास्तिक' 'चन्दा' है।
नवम दशम ग्यारहवें जिन का, 'मकर' 'कल्पतरु' 'गेंडा' है ॥33॥
वासुपूज्य का 'भैंसा' 'सूकर' विमलनाथ का औ 'सेही'।
अनन्त का है 'वज्र' धर्म का शान्तिनाथ का 'मृगदेही'॥
कुन्थु अरह का 'अज' 'मीना' है 'कलश' मल्लि का 'कूर्म' रहा।
मुनिसुव्रत का, नमी नेमि का 'नीलकमल' है 'शंख' रहा।
पार्श्वनाथ का 'नाग' रहा है वर्धमान का 'सिंह' रहा ॥34॥
उग्रवंश के पार्श्वनाथ हैं नाथवंश के वीर रहे।
मुनिसुव्रत औ नेमिनाथ हैं, यदुवंशी हैं धीर रहे!॥
कुरुवंशी हैं शान्तिनाथ हैं, कुन्थुनाथ अरनाथ रहे।
रहे शेष इक्ष्वाकुवंश के इन पद में मम माथ रहे ॥35॥

अञ्चलिका

दोहा

निर्वाणों की भक्ति का, करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु तव संसर्ग ॥1॥
काल बीतता चतुर्थ में जब पक्ष नवासी शेष रहे।
कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के सौ-सौ श्वाँसें शेष रहे॥
भोर स्वाति की पावा में है वर्धमान शिव-धाम गये।
देव चतुर्विध साथ स्वजन ले, लो आते जिन नाम लिये ॥2॥
दिव्य गन्ध ले, दिव्य दीप ले, दिव्य-दिव्य ले सुमनलता।
दिव्य चूर्ण ले, दिव्य न्हवन ले, दिव्य-दिव्य ले वसन तथा॥
अर्चन, पूजन, वन्दन करते, करते नियमित नमन सभी।
निर्वाणक कल्याण मनाकर करते निज घर गमन तभी ॥3॥
सिद्धभूमियों को नित मैं भी, यही भाव निर्मल करके।
अर्चन, पूजन, वन्दन करता प्रणाम करता झुक करके॥
कष्ट दूर हो, कर्म चूर हो, बोधिलाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको, मिले सामने सन्मति ओ! ॥4॥

योगि भक्ति

पद्यानुवादः प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

नरक-पतन से भीत हुए हैं जाग्रत-मति हैं मथित हुये,
जनम-मरण-मय शत-शत रोगों से पीड़ित हैं व्यथित हुये।
बिजली बादल-सम वैभव है जल बुदबुद्-सम जीवन है,
यूँ चिन्तन कर प्रशम हेतु मुनि वन में काटे जीवन है ॥1॥
गुप्ति-समिति-व्रत से संयुत जो मन शिव-सुख की ओर रहा,
मोहभाव के प्रबल-पवन से जिनका मन ना डोल रहा।
कभी ध्यान में लगे हुए तो श्रुत-मन्थन में लीन कभी,
कर्म-मलों को धोना है सो तप करते स्वाधीन सुधी ॥2॥

रवि-किरणों से तपी शिला पर सहज विराजे मुनिजन हैं,
विधि-बन्धन को ढीले करते जिनका मटमैला तन है।
गिरि पर चढ़ दिनकर के अभिमुख मुख करके हैं तप तपते,
ममत्व मत्सर मान रहित हो बने दिगम्बर-पथ नपते ॥3॥
दिवस रहा हो रात रही हो बोधामृत का पान करें,
क्षमा-नीर से सिंचित जिनका पुण्यकाय छविमान अरे!
धरे छत्र-संतोष भाव के सहज छाँव का दान करें,
यूँ सहते मुनि तीव्र ताप को 'ज्ञानोदय' गुणगान करें॥4॥
मोर कण्ठ या अलि-सम काले इन्द्रधनुष युत बादल हैं,
गरजे बरसे बिजली तड़की झंझा चलती शीतल है।
गगन दशा को देख निशा में और तपोधन तरुतल में,
रहते सहते कहते कुछ ना भीति नहीं मानस-तल में॥5॥
वर्षा ऋतु में जल की धारा मानों बाणों की वर्षा,
चलित चरित से फिर भी कब हो करते जाते संघर्षा।
वीर रहे नर-सिंह रहे मुनि परिषह रिपु को घात रहे,
किन्तु सदा भव-भीत रहे हैं इनके पद में माथ रहे॥6॥
अविरल हिमकण जल से जिनकी काय-कान्ति ही चली गई,
साँय-साँय कर चली हवायें हरियाली सब जली गई।
शिशिर तुषारी घनी निशा को व्यतीत करते श्रमण यहाँ,
और ओढ़ते धृति-कम्बल हैं गगन तले भू-शयन अहा!॥7॥
एक वर्ष में तीन योग ले बने पुण्य के वर्धक हैं,
बाह्याभ्यन्तर द्वादश-विध तप तपते हैं मद-मर्दक हैं।
परमोत्तम आनन्द मात्र के प्यासे भदन्त ये प्यारे,
आधि-व्याधि औ उपाधि-विरहित-समाधि हममें बस डारे॥8॥
ग्रीष्मकाल में आग बरसती गिरि-शिखरों पर रहते हैं,
वर्षा-ऋतु में कठिन परीषह तरुतल रहकर सहते हैं।
तथा शिशिर हेमन्त काल में बाहर भू-पर सोते हैं,
वन्द्य साधु ये वन्दन करता दुर्लभ-दर्शन होते हैं॥9॥

दोहा-

योगीश्वर सद्भक्ति का, करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करु! ले प्रभु! तव संसर्ग॥10॥
अर्ध सहित दो द्वीप तथा दो सागर का विस्तार जहाँ,
कर्म-भूमियाँ पन्द्रह जिनमें संतों का संचार रहा।
वृक्षमूल-अभ्रावकाश औ आतापन का योग धरें,
मौन धरें वीरासन आदिक का भी जो उपयोग करें॥11॥
बेला तेला चौला छहला पक्ष मास छह मास तथा,
मौन रहें उपवास करें हैं करे न तन की दास कथा।
भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर कर निज मन को,
वन्दूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करुँ इन मुनिजन को॥12॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो,
वीर मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ!॥

नंदीश्वर भक्ति

पद्यानुवादः प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

जय जय जय जयवन्त जिनालय, नाश रति हैं शाश्वत् हैं।
जिनमें जिनमहिमा से मण्डित जैनबिम्ब हैं भास्वत हैं॥
सुरपति के मुकुटों की मणियाँ, झिलमिल-झिलमिल करती हैं।
जिनबिम्बों के चरण-कमल को धोती हैं, मन हरती हैं॥1॥
सदा-सदा से सहज रूप से शुचितम प्राकृत छवि वाले।
रहें जिनालय धरती पर ये, श्रमणों की संस्कृति धारे॥
तीनों संध्याओं में इनको, तन से, मन से, वचनों से।
नमन करूँ धोऊँ अघ-रज को छूटूँ भव-वन भ्रमणों से॥2॥
भवनवासियों के भवनों में, तथा जिनालय बने हुये।
तेज कान्ति से दमक रहे हैं, और तेज सब हने हुये॥
जिनकी संख्या जिन आगम में, सात कोटि की मानी है।
साठ-लाख, दस लाख और दो लाख, बताते ज्ञानी हैं॥3॥

अगणित द्वीपों में अगणित हैं, अगणित गुण गण मण्डित हैं।
व्यन्तर देवों से नियमित जो, पूजित संस्तुत वन्दित हैं॥
त्रिभुवन के सब भविकजनों के, नयन मनोहर सुन प्यारे।
तीन लोक के नाथ जिनेश्वर, मन्दिर हैं शिवपुर द्वारे॥4॥
सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्रादिक, तारक दल गगनांगन में।
कौन गिने वह अनगिन हैं ये, अनगिन जिनगृह हैं जिनमें॥
जिन के वन्दन प्रतिदिन करते, शिव-सुख के वे अभिलाषी।
दिव्य देह ले देव-देवियाँ ज्योतिर्मण्डल अधिवासी॥5॥
नभ[3]-नभ स्वर-रस केशव-सेना मद हो सोलह कल्पों में।
आगे-पीछे तीन बीच दो[3] शुभतर कल्पातीतों में॥
इस विधि शाश्वत ऊर्ध्वलोक में सुखकर ये जिनधाम रहे।
अहो भाग्य हो नित्य निरन्तर, होठों पर जिन नाम रहे॥6॥
अलोक का फैलाव कहाँ तक, लोक कहाँ तक फैला है?
जाने जो जिन हैं जय-भाजन, मिटा उन्हीं का फेरा है॥
कही उन्हीं के मनुज लोक के, चैत्यालय की गिनती है।
चार शतक अट्ठावन[4] ऊपर, जिन में मन रम विनती है॥7॥
आतम-मद-सेना-स्वर-केशव-अंग-रंग फिर याम कहे।
ऊर्ध्वमध्य औ अधोलोक में यूँ सब मिल जिन-धाम रहे॥8॥
किसी ईश से निर्मित ना हैं शाश्वत हैं स्वयमेव सदा॥
दिव्य भव्य जिन मंदिर देखो छोड़ो मन अहमेव मुधा॥
जिनमें आर्हत प्रतिभा-मण्डित प्रतिमा न्यारी प्यारी हैं।
सुरासुरों से सुरपतियों से पूजी जाती सारी हैं॥9॥
रुचक-कुण्डलों-कुलाचलो पर क्रमशः चउ-चउतीस रहें॥
वक्षारों-गिरि विजयार्द्धों पर शत शत-सत्तर ईश कहें॥
गिरि इषुकारों उत्तरगिरियों कुरुओं में चउ चउ दश हैं।
तीन शतक छह बीस जिनालय गाते इनके हम यश हैं॥10॥
द्वीप रहा हो अष्टम जिसने 'नंदीशवर' वर नाम धरा।
नन्दीश्वर सागर से पूरण आप घिरा अभिराम खरा॥

शशि-सम-शीतल जिसके अतिशय, यश से दश दिशा खिली।
भूमण्डल भी हुआ प्रभावित, इस ऋषि को भी दिशा मिली॥11॥
इसी द्वीप में चउ दिशियों में चउ गुरु अञ्जन गिरिवर हैं।
इक-इक अञ्जन गिरि सम्बन्धित, चउ-चउ दधिमुख गिरिवर हैं॥
फिर प्रति दधिमुख कोनों में दो-दो रतिकर-गिरि चर्चित हैं।
पावन बावन गिरि पर बावन जिनगृह हैं, सुर अर्चित हैं॥12॥
एक वर्ष में तीन बार शुभ अष्टाह्निक उत्सव आते।
एक प्रथम आषाढ़ मास में, कार्तिक फाल्गुन फिर आते॥
इन मासों के शुक्ल पक्ष में, अष्ट दिवस, अष्टम तिथि से।
प्रमुख बना सौधर्म इन्द्र को, भूपर उतरे सुर गति से॥13॥
पूज्य द्वीप नंदीश्वर जाकर, प्रथम जिनालय वन्दन ले।
प्रचुर पुष्प-मणिदीप धूप ले दिव्याक्षत ले चन्दन ले॥
अनुपम अद्‌भुत जिन प्रतिमा की, जग-कल्याणी गुरुपूजा।
भक्ति-भाव से करते हे मन! पूजा में खोजा तू जा॥14॥
बिम्बों के अभिषेक कार्यरत, हुआ इन्द्र सौधर्म महा।
'दृश्य बना' उसका क्या वर्णन भाव-भक्ति सो धर्म रहा॥
सहयोगी बन उसी कार्य में, शेष इन्द्र जयगान करें।
पूर्णचन्द्र-सम निर्मल यश ले, प्रसाद गुण का पान करें॥15॥
इन्द्रों की इन्द्राणी मंगल, कलशादिक लेकर सर पै।
समुचित शोभा और बढ़ातीं गुणवन्ती इस अवसर पै॥
छां-छुम, छां-छुम नाच नाचतीं सुर-नटियाँ हैं सस्मित हो।
सुनो! शेष अनिमेष सुरासुर, दृश्य देखते विस्मित हो॥16॥
वैभवशाली सुरपतियों के भावों का परिणाम रहा।
पूजन का यह सुखद महोत्सव, दृश्य बना अभिराम रहा॥
इसके वर्णन करने में जब सुनो! बृहस्पति विफल रहा।
मानव में फिर शाक्ति कहाँ वह? वर्णन करने मचल रहा॥17॥
जिन-पूजन अभिषेक पूर्णकर, अक्षत केसर चंदन से।
बाहर आये देव दिख रहे, रंगे-रंगे से तन-मन से॥

तथा दे रहे प्रदक्षिणा हैं, नन्दीश्वर जिनभवनों की।
पूज्य पर्व को पूर्ण मनाते, स्तुति करते जिन-श्रमणों की॥18॥
सुनो! वहाँ से मनुज लोक में सब मिलकर सुर आते हैं।
जहाँ पाँच शुभ मन्दरगिरि हैं, शाश्वत चिर से भाते हैं॥
भद्रशाल, नन्दन, सुमनस औ, पाण्डुक वन ये चार जहाँ।
प्रति-मन्दर पर रहे तथा प्रतिवन में, जिनगृह चार महा॥19॥
मन्दर पर भी प्रदक्षिणा दे, करें जिनालय वन्दन हैं।
जिन-पूजन अभिषेक तथा कर करें शुभाशय नन्दन हैं॥
सुखद पुण्य का वेतन लेकर, जो इस उत्सव का फल है।
जाते निज-निज स्वर्गों को सुर यहाँ धर्म ही सम्बल है॥20॥
तरह-तरह के तोरण द्वारे दिव्य वेदिका और रहें।
मानस्तम्भों, यागवृक्षों औ, उपवन चारों और रहें॥
तीन-तीन प्राकार बने हैं विशाल मण्डप ताने हैं।
ध्वजा-पंक्ति का दशक लसे चउ-गोपुर गाते गाने हैं॥21॥
देख सकें अभिषेक बैठकर, धाम बने नाटक गृह हैं।
जहाँ सदन संगीत साध के, क्रीड़ागृह, कौतुकगृह हैं॥
सहज बनीं इन कृतियों को लख शिल्पी होते अविकल्पी।
समझदार भी नहीं समझते, सूझ-बूझ सब हो चुप्पी॥22॥
थाली-सी है गोल वापिका, पुष्कर हैं चउ-कोन रहे।
भरे लबालब जल से इतने, कितने गहरे कौन कहे?
पूर्ण खिले हैं, महक रहे हैं, जिन में बहुविध कमल लसे।
शरदकाल में जिस विध नभ में, शशिग्रह तारक विपुल लसें॥23॥
झारी, लोटे घट कलशादिक, उपकरणों की कमी नहीं।
प्रति जिनगृह में शत-वसु शत-वसु, शाश्वत मिटते कभी नहीं॥
वर्णाकृति भी निरी-निरी है, जिनकी छवि प्रतिछवि भाती।
जहाँ घंटियाँ झन-झन, झन-झन बजती रहतीं ध्वनि आती॥24॥
स्वर्णमयी ये जिन मन्दिर यूँ ,युगों-युगों से शोभित हैं।
गन्धकुटी में सिंहासन भी, सुन्दर-सुन्दर द्योतित हैं॥

नाना दुर्लभ वैभव से ये, परिपूरित हैं रचित हुये।
सुनो! यहीं त्रिभुवन के वैभव, जिनपद में आ प्रणत हुये॥25॥
इन जिनभवनों में जिनप्रतिमा, ये हैं पद्मासन वाली।
धनुष पञ्चशत प्रमाणवाली, प्रति-प्रतिमा शुभ छवि वाली॥
कोटि-कोटि दिनकर आभा तक, मन्द-मन्द पड़ जाती है।
कनक रजत मणि निर्मित सारी झग-झग, झग-झग भाती हैं॥26॥
दिशा-दिशा में अतिशय शोभा महातेज यश धार रहें।
पाप मात्र के भंजक हैं ये, भवसागर के पार रहें॥
और और फिर भानुतुल्य इन, जिनभवनों को नमन करूँ।
स्वरूप इनका कहा न जाता, मात्र मौन हो नमन करूँ॥27॥
धर्मक्षेत्र ये एक शतक औ सत्तर हैं, षट् कर्म जहाँ।
धर्मचक्रधर तीर्थकरों से, दर्शित है जिनधर्म यहाँ॥
हुये हो रहे होंगे उन सब तीर्थकरों को नमन करूँ।
भाव यही है ''ज्ञानोदय'' में रमण करूँ भव-भ्रमण हरूँ॥28॥
इस अवसर्पिणि में इस भूपर ''वृषभनाथ'' अवतार लिया।
भर्ता बन युग का पालन कर धर्म-तीर्थ का भार लिया॥
अन्त-अन्त में ''अष्टापद'' पर तप का उपसंहार किया।
पाप मुक्त हो, मुक्ति सम्पदा, प्राप्त किया उपहार जिया॥29॥
बारहवें जिन ''वासुपूज्य'' हैं परम पुण्य के पुञ्ज हुये।
पाँचों कल्याणों में जिनको, सुरपति पूजक पूज गये॥
''चम्पापुर'' में पूर्ण रूप से कर्मों पर बहु मार किये।
परमोत्तम पद प्राप्त किये औ, विपदाओं के पार गये॥30॥
प्रमुदित मति के राम-श्याम से ''नेमिनाथ'' जिन पूजित हैं।
कषाय-रिपु को जीत लिए हैं प्रशमभाव से पूरित हैं॥
''ऊर्जयन्त गिरनार शिखर'' पर जाकर योगातीत हुये।
त्रिभुवन के फिर चूड़ामणि हो, मुक्तिवधू के प्रीत हुये॥31॥
''वीर'' दिगम्बर श्रमण गुणों को पाल बने पूरण ज्ञानी।
मेघनाद-सम दिव्य नाद से जगा दिया जग सद्ध्यानी॥

''पावापुर'' वर सरोवरों के मध्य तपों में लीन हुये।
विधि गुण विगलित कर अगणित गुण, शिवपद पा स्वाधीन हुये ॥32॥
जिसके चारों ओर वनों में मद वाले गज बहु रहते।
''सम्मेदाचल'' पूज्य वही है पूजो इसको गुरु कहते॥
शेष रहे ''जिन बीस तीर्थकर'' इसी अचल पर अचल हुये।
अतिशय यश को शाश्वत सुख को पाने में वे सफल हुये ॥33॥
मूक तथा उपसर्ग अन्तकृत, अनेक विध केवलज्ञानी।
हुये विगत में यति मुनि गणधर, कु-सुमत ज्ञानी विज्ञानी॥
गिरि वन तरुओं गुफा कंदरों सरिता सागर तीरों में।
तप साधन कर, मोक्ष पधारे, अनल शिखा मरु टीलों में ॥34॥
मोक्ष साध्य के हेतुभूत ये, स्थान रहें पावन सारे।
सुरपतियों से पूजित हैं सो, इनकी रज शिर पर धारें॥
तपो भूमि ये, पुण्य-क्षेत्र ये तीर्थ- क्षेत्र ये अघहारी।
धर्मकार्य में लगे हुये हम, सबके हों मंगलकारी ॥35॥
दोष रहित हैं, विजितमना हैं, जग में जितने जिनवर हैं।
जितनी जिनवर की प्रतिमायें, तथा जिनालय मनहर हैं॥
समाधि साधित भूमि जहाँ मुनि-साधक के हो चरण पड़े।
हेतु बने ये भविकजनों के भव-लय में हम चरण पड़ें ॥36॥
उत्तम यशधर जिनपतियों का, स्तोत्र पढ़े निजभावों में।
तन से मन से और वचन से, तीनों संध्या कालों में॥
श्रुतसागर के पार गए उन, मुनियों से जो संस्तुत है।
यथाशीघ्र वह अमित पूर्णपद पाता सम्मुख प्रस्तुत है ॥37॥

जन्मातिशय

मलमूत्रों का कभी न होना रुधिर क्षीर-सम श्वेत रहे।
सर्वांगों में सामुद्रिकता, सदा- सदा ना स्वेद रहे॥
रूप सलोना, सुरभित होना, तन-मन में शुभ लक्षणता।
हित-मित-मिश्री मिश्रितवाणी, सुन लो! और विलक्षणता ॥38॥

अतुल-वीर्य का सम्बल होना, प्राप्त आद्य संहननपना।
ज्ञात तुम्हें हो ख्याल रहे हैं स्वतिशय दश ये गुणनपना॥
जन्म-काल से मरण-काल तक, ये दश अतिशय 'सुनते हैं'
तीर्थकरों के तन में मिलते अमितगुणों को गुनते हैं ॥39॥

केवलज्ञानातिशय

कोश चार शत सुभिक्षता हो अधर गगन में गमन सही।
चउविध कवलाहार नहीं हो किसी जीव का हनन नहीं॥
केवलता या श्रुतकारकता उपसर्गों का नाम नहीं।
चतुर्मुखी का होना तन की, छाया का भी काम नहीं ॥40॥
बिना बढ़े वह सुचारुता से, नख केशों का रह जाना।
दोनों नयनों के पलकों का, स्पन्दन ही चिर मिट जाना॥
घातिकर्म के क्षय के कारण, अर्हन्तों में होते हैं।
ये दश अतिशय इन्हें देख बुध, पल भर सुध-बुध खोते हैं ॥41॥

देवकृतातिशय

अर्धमागधी भाषा सुख की, सहज समझ में आती है।
समवसरण में सब जीवों में मैत्री घुल-मिल जाती है॥
एक साथ सब ऋतुएँ फलती, ''क्रम'' के सब पथ रुक जाते।
लघुतर गुरुतर, बहुतर तरुवर फूल फलों से झुक जाते ॥42॥
दर्पण-सम शुचि रत्नमयी हो, झग-झग करती धरती है।
सुरपति नरपति यतिपतियों के, जन-जन के मन हरती है॥
जिनवर का जब विहार होता, पवन सदा अनुकूल बहे।
जन-जन परमानन्द गन्ध में, डूबे दुख-सुख भूल रहे ॥43॥
संकटदा विषकंटक कीटों कंकर तिनकों शूलों से।
रहित बनाता पथ को गुरुतर, उपलों से अतिधूलों से॥
योजन तक भूतल को समतल करता बहता वह साता।
मन्द-मन्द मकरन्द गन्ध से, पवन मही को महकाता ॥44॥

तुरत इन्द्र की आज्ञा से बस, नभ-मण्डल में छा जाते।
सघन मेघ के कुमार गर्जन करते बिजली चमकाते॥
रिम-झिम रिम-झिम गन्धोदक की, वर्षा होती हर्षाती।
जिस सौरभ से सब की नासा, सुर-सुर करती दर्शाती ॥45॥
आगे पीछे सात-सात इक पदतल में तीर्थंकर के।
पंक्तिबद्ध यों अष्ट दिशाओं और उन्हीं के अन्तर में॥
पद्म बिछाते सुर माणिक-सम केशर से जो भरे हुये।
अतुल परस है सुखकर जिनका, स्वर्ण दलों से खिले हुये ॥46॥
पकी फसल ले शाली आदिक, धरती पर सर धरती है।
सुन लो फलतः रोम-रोम से रोमाञ्चित सी धरती है॥
ऐसी लगती त्रिभुवनपति के वैभव को ही निरख रही।
और स्वयं को भाग्यशालिनी कहती-कहती हरख रही ॥47॥
शरदकाल में विमल सलिल से, सरवर जिस विध लसता है।
बादल-दल से रहित हुआ नभमण्डल उस विध हँसता है॥
दशों दिशायें धूम्र-धूलियाँ, शामभाव को तजती हैं।
सहज रूप से निरातरणा उज्ज्वलता को भजती हैं ॥48॥
इन्द्राज्ञा में चलने वाले देव चतुर्विध वे सारे।
भविक जनों को सदा बुलाते, समवसरण में उजियारे॥
उच्चस्वरों में दे दे करके आमन्त्रण की ध्वनि ''ओ जी''!
''देवों के भी देव यहाँ हैं'' शीघ्र पधारो आओ जी! ॥49॥
जिसने धारे हजार आरे स्फुरणशील मन हरता है।
उज्ज्वल मौलिक मणि किरणों से झर-झुर झर-झुर करता है॥
जिसके आगे तेज भानु भी, अपनी आभा खोता है।
आगे-आगे सबसे आगे, धर्मचक्र वह होता है ॥50॥
वैभवशाली होकर भी ये, इन्द्र लोग सब सीधे हैं।
धर्म राग से रंगे हुये हैं, भाव-भक्ति में भीगे हैं॥
इन्हीं जनों से इस विध अनुपम, अतिशय चौदह किये गये।
वसुविध मंगल पात्रादिक भी, समवसरण में लिये गये ॥51॥

अष्ट प्रातिहार्य

नील-नील वैडूर्य दीप्ति से जिसकी शाखाएँ भाती।
लाल-लाल मृदु प्रवाल आभा, जिनमें शोभा औ लाती॥
मरकत मणि के पत्र बने हैं, जिसकी छाया शाम घनी।
अशोक तरु यह अहो शोभता, यहाँ शोक की शाम नहीं ॥52॥
पुष्पवृष्टि हो नभ से जिसमें, पुष्प अलौकिक विपुल मिले।
नील कमल हैं, लाल-धवल है, कुन्द बहुल है बकुल खुले॥
गन्धदार मन्दार मालती, पारिजात मकरन्द झरे।
जिनपर अलिगण ''गुन-गान'' गाते, निशिगन्धा अरविन्द खिले ॥53॥
जिनकी कटि में कनक करधनी कलाइयों में कनक कड़े।
हीरक के केयूर हार हैं, पुष्ट कण्ठ में दमक पड़े॥
सालंकृत दो यक्ष खड़े जिन-कर्णों में कुण्डल डोलें।
चमर ढुराते हौले-हौले, प्रभु की जो जय-जय बोलें ॥54॥
यहाँ यकायक घटित हुआ जो कोई सकता बता नहीं।
दिवस रात का भला भेद वह, कहाँ गया कुछ पता नहीं॥
दूर हुये व्यवधान हजारों रवियों के वह आप कहीं।
भामण्डल की यह सब महिमा, आँखों को कुछ ताप नहीं ॥55॥
प्रबल पवन का घात हुआ जो विचलित होकर तुरत मथा।
हर-हर, हर-हर सागर करता, हर मन हरता मुदित यथा॥
वीणा मुरली दुम-दुम दुंदभि, ताल-ताल करताल तथा।
कोटि कोटियों वाद्य बज रहे, समवसरण में सार कथा ॥56॥
महादीर्घ वैडूर्य रत्न का, बना दण्ड है जिस पर हैं।
तीन चन्द्र-सम तीन छत्र ये, गुरु-लघु-लघुतम ऊपर हैं॥
तीन भुवन के स्वामीपन की स्थिति अति प्रकट रही।
सुन्दरतम हैं मुक्ताफल की, लड़ियाँ जिस पर लटक रहीं ॥57॥
जिनवर की गंभीर भारती, श्रोताओं के दिल हरती।
योजन तक जो सुनी जा रही, अनुगुंजित हो नभ धरती॥
जैसे जल से भरे मेघदल, नभ-मण्डल में डोल रहे।
ध्वनि में डूबे दिगन्तरों में, घुमड़-घुमड़ कर बोल रहे ॥58॥

रंग-बिरंगी मणि-किरणों से, इन्द्रधनुष की सुषमा ले।
शोभित होता अनुपम जिस पर, ईश विराजे गरिमा ले॥
सिंहों में वर बहु सिंहों ने, निजी पीठ पर लिया जिसे।
स्फटिक शिला का बना हुआ है, सिंहासन है जिया! लसे ॥59॥
अतिशय गुण चउतीस रहें ये जिस जीवन में प्राप्त हुये।
प्रातिहार्य का वसुविध वैभव, जिन्हें प्राप्त हैं आप्त हुये॥
त्रिभुवन के वे परमेश्वर हैं महागुणी भगवन्त रहे।
नमूँ उन्हें अरहन्त सन्त हैं, सदा-सदा जयवन्त रहें ॥60॥

(अञ्चलिका)

दोहा

नन्दीश्वर वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु! तव संसर्ग ॥1॥

नन्दीश्वर के चउ दिशियों में, चउ गुरु अंजन गिरिवर हैं।
इक-इक अंजनगिरि संबंधित चउ-चउ दधिमुख गिरिवर हैं॥
फिर प्रति दधिमुख कोनों में दो-दो रतिकर गिरि चर्चित हैं।
पावन बावनगिरि पर बावन, जिनगृह हैं सुर अर्चित हैं ॥2॥
देव चतुर्विध कुटुम्ब ले सब, इसी द्वीप में हैं आते।
कार्तिक, फागुन, आषाढ़ों के, अन्तिम वसु-दिन जब आते॥
शाश्वत जिनगृह जिनबिम्बों से, मोहित होते बस तातैं।
तीनों अष्टाह्निक पर्वों में, यहीं आठ दिन बस जाते ॥3॥
दिव्य गंध ले, दिव्य दीप ले, दिव्य-दिव्य ले सुमन लता।
दिव्य चूर्ण ले, दिव्य न्हवन ले दिव्य-दिव्य ले वसन तथा॥
अर्चन, पूजन, वन्दन, करते नियमित करते निजघर नमन सभी।
नंदीश्वर का पर्व मनाकर, करते निजघर गमन सभी ॥4॥
मैं भी उन सब जिनालयों का भरतखण्ड में रहकर भी।
अर्चन, पूजन, वन्दन करता, प्रणाम करता झुककर ही॥
कष्ट दूर हो कर्मचूर हो, बोधिलाभ हो सद्गति हो।
वीर मरण हो, जिनपद मुझको, मिले सामने सन्मति ओ! ॥5॥

पंचमहागुरु भक्ति

पद्यानुवादः प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

सुरपति शिर पर किरीट धारा, जिसमें मणियाँ कई हजारा।
मणि की द्युति-जल से धुलते हैं, प्रभु पद-नमता सुख फलते हैं ॥1॥
सम्यक्त्वादिक वसु-गुण-धारे, वसु-विध विधि-रिपु नाशन हारे।
अनेक सिद्धों को नमता हूँ, इष्ट-सिद्धि पाता समता हूँ ॥2॥
श्रुत-सागर को पार किया है, शुचि संयम का सार लिया है।
सूरीश्वर के पद-कमलों को, शिर पर रख लू दुख-दलनों को ॥3॥
उन्मार्गी के मद-तम हरते, जिनके मुख से प्रवचन झरते।
उपाध्याय ये सुमरन कर लूँ, पाप नष्ट हो सु-मरण कर लूँ ॥4॥
समदर्शन के दीपक द्वारा, सदा प्रकाशित बोध सुधारा।
साधु चरित के ध्वजा कहाते, दे-दे मुझको छाया तातैं ॥॥
विमल गुणालय-सिद्ध जिनों को, उपदेशक मुनि-गणी गणों को।
नमस्कार पद पंच इन्हीं से, त्रिधा नमूँ शिव मिले इसी से ॥6॥
नमस्कार वर मंत्र यही है, पाप नसाता देर नहीं है ।
मंगल-मंगल बात सुनी है, आदिम मंगल मात्र यही है ॥7॥
सिद्ध शुद्ध है जय अरहन्ता, गणी पाठका जय ऋषि संता।
करे धरा पर मंगल साता, हमें बना दे शिव सुख धाता ॥8॥
सिद्धों को जिनवर चन्द्रों को, गण नायक पाठक वृन्दों को।
रत्नत्रय को साधुजनों को, वन्दूँ पाने उन्हीं गुणों को ॥9॥
सुरपति चूड़ामणि-किरणों से, लालित सेवित शतों दलों से।
पाँचों परमेष्ठी के प्यारे, पादपद्म ये हमे सहारे ॥10॥
महाप्रतिहार्यों से जिनकी, शुद्ध गुणों से सुसिद्ध गण की।
अष्ट मातृकाओं से गणि की, शिष्यों से उपदेशक गण की।
वसु विध योगांगों से मुनि की, करूँ सदा थुति शुचि से मन की ॥11॥

दोहा -

पंचमहागुरु भक्ति का करके कायोत्सर्ग
आलोचन उसका करुँ! ले प्रभु तव संसर्ग ॥12॥

लोक शिखर पर सिद्ध विराजे अगणित गुणगण मंडित हैं,
प्रातिहार्य आठों से मण्डित जिनवर पण्डित-पण्डित हैं।
पंचाचारों रत्नत्रय से शोभित हो आचार्य महा,
शिवपथ चलते और चलाते औरों को भी आर्य यहाँ॥13॥
उपाध्याय उपदेश सदा दे चरित बोध का शिव पथ का,
रत्नत्रय पालन में रत हो साधु सहारा जिनमत का।
भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को,
वन्दूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करुँ मैं गुरुगण को॥14॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ॥15॥

शान्तिभक्ति

पद्यानुवादः प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

नहीं स्नेह वश तव पद शरणा, गहते भविजन पामर हैं
यहाँ हेतु है बहु दुःखों से, भरा हुआ भवसागर है॥
धरा उठी जल, ज्येष्ठ काल है, भानु उगलता आग कहीं।
करा रहा क्या छाँव शशी के, जल के प्रति अनुराग नहीं?॥1॥
कुपित कृष्ण अहि जिसको डँसता, फैला हो वह विष तन में।
विद्या औषध हवन मन्त्र जल से मिल सकता है क्षण में॥
उसी भाँति जिन तुम पद-कमलों, की थुति में जो उद्यत है।
पाप शमन हो, रोग नष्ट हो, चेतन मन के संगत है॥2॥
कनक मेरु आभा वाले या, तप्त कनक की छवि वाले।
हे जिन! तुम पद नमते, मिटते दुस्सह दुख हैं शनि वाले॥
उचित रहा रवि उषाकाल में, उदार उर ले उगता है।
बहुत जनों के नेत्रज्योति-हर, सघन तिमिर भी भगता है॥3॥
सब पर विजयी बना तना है, नाक-मरोड़ा, दम तोड़ा।
देवों देवेन्द्रों को मारा, नरपति को भी ना छोड़ा॥
दावा बन कर काल घिरा है, उग्र रूप को धार घना।

कौन बचावे? हमें कहो जिन! तव पद थुति नद-धार बिना॥4॥
लोकालोकालोकित करते, ज्ञानमूर्ति हो जिनवर हे!।
बहुविध मणियाँ जड़ी दण्ड में तीन छत्र शित तुम सर पे॥
हे जिन! तव पद-गीत धुनी सुन, रोग मिटे सब तन-मन के।
दाढ-उघाड़े सिंह दहाड़े, गज-मद गलते वन-वन के॥5॥
तुम्हें देवियाँ अथक देखतीं, विभव मेरु पर तव गाथा।
बाल भानु की आभा हरता, मण्डल तव जन-जन भाता॥
हे जिन! तव पद थुति से ही सुख मिलता निश्चय अचल रहा।
निराबाध नित विपुल सार है, अचिंत्य अनुपम अटल रहा॥6॥
प्रकाश करता प्रभा पुञ्ज वह, भास्कर जब तक ना उगता।
सरोवरों में सरोज दल भी, तब तक खिलता ना जगता॥
जिसके मानस-सर में जब तक, जिनपद पंकज ना खिलता।
पाप-भार का वहन करे वह, भ्रमण भवों में ना टलता॥7॥
प्यास शान्ति की लगी जिन्हें है, तव पद का गुण गान किया।
शान्तिनाथ जिन शान्त भाव से, परम शान्ति का पान किया॥
करुणाकर! करुणा कर मुझको, प्रसन्नता में निहित करो।
भक्ति मग्न है भक्त आपका, दृष्टि-दोष से रहित करो॥8॥
शरद शशी सम शीतल जिनका, नयन मनोहर आनन है।
पूर्ण शील के व्रत संयम के, अमित गुणों के भाजन है॥
शत वसु लक्षण से मण्डित है, जिनका औदारिक तन है।
नयन कमल हैं जिनवर जिनके, शान्तिनाथ को वन्दन है॥9॥
चक्रधरों में आप चक्रधर, पञ्चम हैं गुण मंडित हैं।
तीर्थकरों में सोलहवें जिन, सुर-नरपति से वंदित हैं॥
शान्तिनाथ हो विश्वशान्ति हो, भाँति-भाँति की भ्रान्ति हरो।
प्रणाम ये स्वीकार करो लो, किसी भाँति मुझ कान्ति भरो॥10॥

चौपाई छन्द

दुंदुभि बजते पुष्प बरसते आतप हरते चामर ढुरते।
भामण्डल की आभा भारी सिंहासन की छटा निराली॥

अशोक तरु सो शोक मिटाता भविक जनों से ढोक दिलाता।
योजन तक जिन घोष फैलता समवसरण में तोष तैरता ॥11॥
झुका-झुका कर मस्तक से मैं, शान्तिनाथ को नमन करूँ।
देव जगत भूदेव जगत से, वन्दित पद में रमण करूँ॥
चराचरों को शान्तिनाथ वे, परम शान्ति का दान करें।
थुति करने वाले मुझमें भी, परम तत्त्व का ज्ञान भरें॥12॥
पहने कुण्डल मुकुट हार हैं, सुर हैं सुरगण पालक हैं।
जिनसे निशि-दिन पूजित अर्चित, जिनपद भवदधि तारक हैं॥
विश्व विभासक-दीपक हैं जिन, विमलवंश के दर्पण हैं।
तीर्थंकर हो शान्ति विधायक, यही भावना अर्पण हैं॥13॥
भक्तों को, भक्तों के पालन-हारों को औ यक्षों को।
यतियों-मुनियों-मुनीश्वरों को, तपोधनों को, दक्षों को॥
विदेश-देशों उपदेशों को, पुरों गोपुरों नगरों को।
प्रदान कर दें शान्ति जिनेश्वर, विनाश कर दें विघ्नों को॥14॥
क्षेम प्रजा का सदा बली हो, धार्मिक हो भूपाल फले।
समय-समय पर इन्द्र बरस ले, व्याधि मिटे, भूचाल टले॥
अकाल, दुर्दिन, चोरी आदिक, कभी रोग ना हो जग में।
धर्मचक्र जिनका हम सबको, सुखद रहे सुर शिव मग में॥15॥
ध्यान शुक्ल के शुद्ध अनल से, घातिकर्म को ध्वस्त किया।
पूर्णबोध-रवि उदित हुआ सो भविजन को आश्वस्त किया॥
वृषभदेव से वर्धमान तक, चार-बीस तीर्थंकर हैं।
परम शान्ति की वर्षा जग में यहाँ करें क्षेमंकर हैं॥16॥

(अञ्चलिका)

दोहा

पूर्ण शान्ति वर भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु! तव संसर्ग॥1॥
पञ्चमहाकल्याणक जिनके, जीवन में हैं घटित हुये।
समवसरण में महा-दिव्य वसु प्रातिहार्य से सहित हुये॥

नारायण से, रामचन्द्र से, छहखण्डों के अधिपति से।
यति अनगारों ऋषि मुनियों से, पूजित जो हैं गणपति से॥2॥
वृषभदेव से महावीर तक, महापुरुष मंगलकारी।
लाखों स्तुतियों के भाजन हैं, तीस-चार अतिशयधारी॥
भक्ति भाव से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वन्दूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ मैं जिनगण को॥3॥
कष्ट दूर हो, कर्म चूर हो, बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो, जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ!॥

समाधि भक्ति

(लय-मेरी भावना)

निज आतम संवेदन मय प्रभु, श्रुत-नयनों से मैं लखकर।
केवलज्ञान-चक्षु से मण्डित, देख रहा हूँ अब जिनवर॥1॥
सदा शास्त्र अभ्यास करूँ मैं, सन्त समागम प्रभु वन्दन।
सज्जन के गुणगान करूँ अरु, दोष-कथन में मौन-वचन॥2॥
सबसे हित-मित-प्रिय मैं बोलूँ, आत्म तत्त्व को नित ध्याऊँ।
जब तक मुझको मिले मोक्ष ना, भव-भव में बस ये पाऊँ॥3॥
जिन-पथ रुचि हो पर से विरक्ति, निर्मल जिनवाणी ध्याऊँ।
रहे भावना जिनगुण थुति में, जनम-जनम में यह पाऊँ॥4॥
चैत्य, घोष-सिद्धान्त-सिन्धु हो, यति समूह गुरु चरण जहाँ।
हो संन्यास सहित नित मेरा, जनम-जनम में मरण वहाँ॥5॥
जनम करोड़ों में संचित जो, जनम-जरा मृति का कारण।
किये पाप जो जनम-जनम में, जिन वन्दन से हों वारण॥6॥
सेवक जन को कल्पवेल सम, श्री जिनपद की कर सेवा।
बाल-दशा से अब तक बीता, मम जीवन हे जिनदेवा!॥7॥
अब उसका फल यह चाहूँ मैं, मरण-समय मेरा जब हो।
कण्ठ आपके नाम-शब्द के, पढ़ने में अवरुद्ध न हो॥8॥

जब तक मैं निर्वाण न पाऊँ, तब तक जिनवर यह रटना।
तव चरणों में मम हिय थित हो, मेरे हिय में तव चरणा ॥9॥
जिन भक्ति ही जिन भक्तों की, दुर्गति हरने वाली है।
पुण्य पूर्ण दे मुक्ति रमा दे, यह सबसे बलशाली है ॥10॥
पाँच अरिंजय पाँच यशोधर, पाँचों मतिसागर वन्दूँ।
पाँचों सीमंदर जिन वन्दूँ, निज बीसों जिनवर वन्दूँ ॥11॥
चौबीसों जिन को नित वन्दूँ, रत्नत्रय को भी वन्दूँ।
चारण ऋद्धी-धारी मुनि अरु, पंच महागुरु को वन्दूँ ॥12॥
जो परमेष्ठी सिद्ध वर्ग या, शुचि आतम को बतलाये।
अर्हम् उत्तम बीजाक्षर को, पूर्ण यन्त्र से हम ध्याये ॥13॥
सम्यक्त्वादिक गुण युत हैं जो, अष्ट-कर्म का करके क्षय।
नमूँ सिद्ध सब परमेष्ठी को, मुक्ति रमा के जो आलय ॥14॥
सुर संपद का आकर्षण जो, मुक्ति रमा का वशीकरण।
चतुगति आपद निराकरण जो, निज पापों का दूरकरण ॥15॥
कुगति गमन को रोक रही जो, करे मोह का सम्मोहन।
नमन पंच पद आराधना माँ, करे हमारा नित रक्षण ॥16॥
अनन्तभव परम्परा की, छेदन का जो कारण है।
जिनवर चरण कमल का सुमरण, शरणभूत मम तारण है ॥17॥
मेरी शरण नहीं है कोई, शरण आप ही हो जिनवर।
रक्षा करिए! रक्षा करिए! सो करुणा करके मुझपर ॥18॥
त्रय जग में तुम सा पालक ना, नहीं सुरक्षक त्राता ना।
वीतराग सा अन्य देव भी, नहीं हुआ है होगा ना ॥19॥
सदा भक्ति हो सदा भक्ति हो, सदा भक्ति हो जिनपद में।
भव-भय में हो प्रतिदिन मेरी, श्री जिनपद में-जिनपद में ॥20॥
हे जिनवर! तव चरणकमल की, भक्ति प्रार्थना नित्य करूँ।
उसी-उसी की बार-बार मैं, भक्ति याचना नित्य करूँ ॥21॥
श्री जिनवर की थुति करने से, विघ्न-जाल नश जाते हैं।
विष निर्विष हो भूत शाकिनी, सर्प दूर हो जाते हैं ॥22॥

अञ्चलिका (दोहा)

प्रिय भक्ति व्युत्सर्ग में, कमियाँ जो भगवान।
इच्छा से उनका करूँ, आलोचन का काम।

(ज्ञानोदय)

रत्नत्रय मय परमातम को, ध्यान रूप जिसका लक्षण।
सदा समाधि भक्ति में अर्चूं, वन्दूँ पूजूँ करूँ नमन॥
मेरे दुख कर्मों का क्षय हो, बोधि लाभ हो सुगति गमन।
और समाधिमरण हो मेरा, मुझे मिले जिनपद गुणधन॥

आचार्यभक्ति

पद्यानुवादः प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

सिद्ध बने शिव-शुद्ध बने जो जिन की थुति में निरत रहे
दावा-सम अति-कोप अनल को शान्त किये अति-विरत रहे।
मनो-गुप्ति के वचन-गुप्ति के काय-गुप्ति के धारक हैं
जब जब बोलें सत्य बोलते भाव शुद्ध-शिव साधक हैं ॥1॥
दिन दुगुणी औ रात चउगुणी मुनि और पद महिमा बढ़ा रहे
जिन शासन के दीप्त दीप हो उजाला दिला रहे।
बद्ध-कर्म के गूढ़ मूल पर घात लगाते कुशल रहे
ऋद्धि-सिद्धि परसिद्धि छोड़कर शिवसुख पाने मचल रहे ॥2॥
मूलगुणों की मणियों से है जिनकी शोभित देह रही
षड् द्रव्यों का निश्चय जिनको जिनमें कुछ संदेह नहीं।
समयोचित आचरण करे हैं प्रमाद के जो शोषक हैं
समदर्शन से शुद्ध बने हैं निज गुण तोषक, पोषक हैं ॥3॥
पर-दुख-कातर सदय हृदय जो मोह-विनाशक तप धारे
पंच-पाप से पूर्णपरे हैं पले पुण्य में जग प्यारे।
जीव जन्तु से रहित थान में वास करें निज कथा करें
जिनके मन में आशा ना है दूर कुपथ से तथा चरे ॥4॥

बड़े बड़े उपवासादिक से दण्डित ना बहुदण्डों से
सुडोल सुन्दर-तन मन से हैं मुख-मण्डल-कर-डण्डों से।
जीत रहे दो-बीस परीषह किरिया-करने योग करे ,
सावधान संधान ध्यान से प्रमाद हरने योग हरे ॥5॥
नियमों में हैं अचल मेरुगिरि कन्दर में असहाय रहे
विजितमना हैं जित-इन्द्रिय हैं जितनिद्रक जितकाय रहे।
दुस्सह दुखदा दुर्गति-कारण लेश्याओं से दूर रहे
यथाजात हैं जिनके तन हैं जल्ल-मल्ल से पूर रहे॥6॥
उत्तम उत्तम भावों से जो भावित करते आतम को
राग लोभ मात्सर्य शाठ्य मद तो तजते हैं अधतम को।
नहीं किसी से तुलना जिनकी जिनका जीवन अतुल रहा
सिद्धासन मन जिनके, चलता आगम मन्थन विपुल रहा॥7॥
आर्तध्यान से रौद्रध्यान से पूर्णयत्न से विमुख रहे
धर्मध्यान में शुक्लध्यान में यथायोग्य जो प्रमुख रहे।
कुगति मार्ग से दूर हुये हैं सुगति ओर गतिमान हुये
सात ऋद्धि रस गारव छोड़े पुण्यवान् गणमान्य हुये॥8॥
ग्रीष्म काल में गिरि पर तपते वर्षा में तरुतल रहते
शीतकाल आकाश तले रह व्यतीत करते अघ दहते।
बहुजन हितकर चरित धारते पुण्य पुंज हैं अभय रहे
प्रभावान के हेतुभूत उन महाभाव के निलय रहे॥9॥
इस विध अगणित गुणगण से जो सहित रहे हितसाधक हैं
हे जिनवर! तव भक्तिभाव में लीन रहे गण धारक हैं।
अपने दोनों कर-कमलों को अपने मस्तक पर धरके
उनके पद कमलों में नमता बार-बार झुक-झुक करके॥10॥
कषायवश कटु-कर्म किये थे जन्म मरण से युक्त हुए
वीतरागमय आत्म-ध्यान से कर्म नष्ट कर मुक्त हुये।
प्रणाम उनको भी करता हूँ अखण्ड अक्षय-धाम मिले
मात्र प्रयोजन यही रहा है सुचिर काल विश्राम मिले॥11॥

दोहा (अञ्चलिका)

मुनिगण-नायक-भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु! तव संसर्ग॥12॥
पञ्चाचारों रत्नत्रय से, शोभित हो आचार्य महा।
शिवपथ चलते और चलाते औरों को भी आर्य महा॥
उपाध्याय उपदेश सदा दे चरित बोध का शिवपथ का।
रत्नत्रय पालन में रत में हो, साधु सहारा जिनमत का॥13॥
भावभक्ति से चाव भक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वंदूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ मैं गुरुगण को॥
कष्ट दूर हो, कर्म चूर हो बोधिलाभ हो, सद्गति हो।
वीरमरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ!॥14॥

ईर्यापथ-भक्ति

(पद्यानुवाद-ज्ञानोदय छन्द-लय मेरी भावना)

निस्पृह हो नित बुद्धि सहित मैं, पूज्य जिनालय मंदिर आ।
तीन प्रदक्षिण दे थित होकर, थुति करता स्वर मन्द बना॥
इन्द्रपूज्य निर्मल अविनाशी, ज्ञानभानु मम अघहर हो।
हे सर्वज्ञ! भक्ति से वन्दूँ, सिर पर धर दोनों कर को॥1॥
शोभामय पावन निर्दोषी, सबका मंगल करते जो।
अनन्त कल्प आदि तीरथ जी, सदा पर्वमय रहते जो॥
ऐसे जिनदेवों के मन्दिर, तीन लोक के भूषण हैं।
सहज बने जो मणिमय जिनकी, शरणा पाते भविगण हैं॥2॥
अंतरंग बहिरंग रमा से, हो व्यापक प्रभुवर नामी।
तीनलोक के अधिपतियों के, शासक हो जिनवर स्वामी॥
शुभ अगाथ स्याद्वाद चिह्न से, तुम उदार अत्यन्त रहे।
ऐसी महिमामय जिनशासन, सदा-सदा जयवन्त रहे॥3॥

वीतरागता रूप रमामय, जिनवर का मुख लखने से।
मुक्ति रमा का दर्शन होता, सुख होता है अपने से॥
जिनवर के सम्यक्-दर्शन से, रहित जीव जो रहते हैं।
वे कैसे? वह अविनाशी-सुख, जीवन में पा सकते हैं॥4॥
नाथ आपके पदकमलों के, पावन दर्शन आज किये।
जिससे मेरे प्यासे नयना, सफल हुए गुण सुधा पिये॥
तीन लोक के तिलक जिनेश्वर, आज मुझे लगता ऐसा।
मेरा खारा भवसागर अब, शेष बचा चुल्लू भर सा॥5॥
हे जिनवर! हे वीतरागजी! शुभ दर्शन करके तेरे।
आज हुआ मेरा तन पावन, निर्मल नयन हुए मेरे॥
और किये जिन दर्शन जब से, मैंने अनुभव यह पाया।
मंगलमय धार्मिक तीर्थों में, नहा लिया पायी छाया॥6॥
आप भव्य कमलों के सूरज, सब जीवों का हित करते।
ऐसे महावीर भगवन को, सदा-सदा ही हम नमते॥
लोकालोक अनन्त देखते, पूजित हो देवों द्वारा।
देवाधिदेव ऐसे जिनवर को, नमस्कार बारम्बारा॥7॥
नष्ट हुये जिनके सब दोषा, श्रेष्ठ गुणों के सागर जो।
देवों से अर्चित रजित जो, नमस्कार उन जिनवर को॥
मुक्ति मार्ग के उपदेशक जो, करते पावन जग सारा।
देवाधिदेव ऐसे जिनवर को, नमस्कार बारम्बारा॥8॥
हे देवाधिदेव परमेश्वर, वीतराग सर्वज्ञ प्रभो।
हे तीर्थंकर! हे सिद्धेश्वर! निर्मल महानुभाव विभो॥
हे त्र्यलोक्यनाथ जिन पुंगव! वर्धमान है जिनस्वामी।
मुझे युगल तव पद कमलों की, मिली शरण हे शिवधामी॥9॥
जीत लिये मद हर्ष द्वेष को, सभी कषायों को जीते।
जनम मरण रोगों को जीते, मोह परिषह सब जीते॥
ईर्ष्या भाव जिन्होंने जीते, वे जिनवर भगवन्त रहे।
सदा-सदा जिनकी जय होवे, जिनशासन जयवन्त रहे॥10॥

धरम चक्र रूपी दिनकर हो, भव्य कमल विकसित करते।
जिनके लाल गुलाबी चरणा, तीन लोक का हित करते॥
इन्द्र मुकुट झिलमिल मणियों की, किरणों से शोभित चरणा।
से जिनवर वर्धमानजी, हों जयवन्त महाशरणा॥11॥
शोभित त्रयजग-वर्ग-शिखामणि, तुमरी जय हो जयजय हो।
जग कमलों के सूर्य हमारा, क्षय-क्षय उर तम क्षय कर दो॥
दे दो, दे दो स्वामिन! दे दो परम शान्ति अक्षय हमको।
नहीं नहीं रक्षक दूजा ना, एक मित्र जग के तुम हो॥12॥
हे स्वामिन! जो शीघ्र आपकी, श्रेष्ठ भक्ति मन से करते।
और यथारथ थुति जो अपने, मुख से उच्चारित करते॥
कर कमलों को सिर पर धरकर, बना अंजलि नमन करें।
धन्य वही हैं! धन्य वही है! विनंती जो तव शरण करें॥13॥
जिन्हें छूटना जनमों से वे, तव पद कमलों को पूजें।
यदि न मिले तो इच्छित धूगें, पर दुर्देव नहीं पूजें॥
सुलभ अन्न ज्यों भूखे खाते, और अगर दुर्लभ है तो।
भूख मिटाने काल कूट विष, कौन मूर्ख खाते है वो॥14॥
नयन हजारों से लखने को, रूप कुतूहल तव करता।
निरुपम सुन्दर रूप देख यों, जो वाणी गद्गद् करता॥
हाथ जोड़ तन पुलकित करके, हर्षित नयना बहा रहा।
शीश झुका संतुष्ट चित्त वो, दशा अन्य ना बना रहा॥15॥
हे त्रिकाल विद! त्रय जग त्राता, मंगलमय, रिपुनाशक हो।
जग-कल्याणी श्रेष्ठ रमा निधि, शरणभूत सुर नायक हो॥
हो प्रसन्न जिन तजो उपेक्षा, बिन उपाय हम शरण गहें।
सुन लो अर्जी हमकी पालो, हम क्यों गाथा गुप्त रखें॥16॥
त्रय जग स्वामी राजेन्द्रो के, मुकुटों की झिलमिलमणियाँ।
जिनके पद कमलों को शोभित, करती झुकती जग निधियाँ॥
और जिन्होंने कर्मवृक्ष को, जड़ से उखाड़ फेंका है।
उन जिनचन्द्र ईश को मैंने, भक्ति सिर टेका है॥17॥

प्रमाद वश यदि हमसे कोई, चलने में जो पाप हुआ।
हाथ-पैर या तन के द्वारा, जिन जीवों का घात हुआ॥
भय या जीव घात से जनमे, दोषों के उन्मूलन को।
त्यागे गमनागमन कार्य हम, पापों के निर्मूलन को॥18॥
ईर्यापथ में अगर आज कुछ, चलते हुये प्रमाद हुआ।
जिससे यदि एकेन्द्रिय आदिक, जीव वर्ग का घात हुआ॥
चार हाथ भू-अन्तर लख यदि, किया नहीं हमने चलना।
तो गुरु-भक्ति कृपा से हमरा, पाप नष्ट हो दुख दलना॥19॥

अंचलिका (दोहा)

ईर्यापथ व्युत्सर्ग में, कमियाँ जो भगवान।
इच्छा से उनका करूँ, आलोचन का काम॥
शीघ्र गमन में और गमन में, चलना शुरुकर जाने में।
तन अंगों की क्रिया कार्य में, जहाँ कहीं एक जाने में॥
हरितकाच बीजों पर अथवा जीवों पर चल जाने में।
कफ-मल-मूत्र-थूँक इत्यादिक, तन विकार तज जाने में॥20॥
इक-दो-वा त्रय चतु-पंचेन्द्री, -जीवों को रोका पीसा।
पर थामो पर फेंका रगड़ा, किया इकट्ठा दी मूर्च्छा॥
छेदन भेदन या उत्तापन, अथवा परितापन जो भी।
थित चलते ऐसे जीवों की, विराधना हुई हो जो भी॥21॥
प्रायश्चित उन्हीं का करने, उत्तर गुण को शोधन को।
प्रतिक्रमण हम उनका करते, पाप बुराई रोकन को॥
जब तक भगवन् अरहन्तों की, उपासना कर नमन करूँ।
तब तक अशुभ पाप कर्मों को, छोडूँ नाशूँ हनन करूँ॥22॥

अनंत जिन
ने जाना सो कहते
हैं भाव लोक

आचार्य वन्दना

सिद्ध भक्ति

नमोऽस्तु पौर्वाह्निक/अपराह्निक आचार्य-वन्दना-क्रियायां, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं,भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री-सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(9 बार णमोकार)

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुमं तहेव अवगहणं।
अगुरुलहु-मव्वावाहं, अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ॥1॥
तव-सिद्धे, णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे, चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मि य, सिद्धे सिरसा णमस्सामि ॥2॥

इच्छामि भंत्ते! सिद्ध-भत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्मविप्पमुक्काणं अट्ठगुण-संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं, चरित्त-सिद्धाणं, अतीदाणागद-वट्ठमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं समाहि मरणं, जिण गुणसंपत्ति होउ मज्झं।

श्रुत भक्ति

नमोऽस्तु पौर्वाह्निक/अपराह्निक आचार्य-वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल कर्म क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री-श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्। (9 **बार णमोकार**)

कोटि शतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्य-शीतिस्-त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाश-दष्टौ च सहस्र-संख्य-मेतच्-छ्रुतं पंच-पदं नमामि ॥1॥
अरहंत - भासियत्थं - गणहर - देवेहिं गंथियं सम्मं
पणमामि भत्ति-जुत्तो, सुद-णाण-महोवहिं सिरसा ॥2॥

इच्छामि भंत्ते! सुदभत्ति-काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं -अंगोवंग-पइण्णय-पाहुडय-परियम्म-सुत्त पढमाणि-ओग-पुव्वगय-चूलिया-चेवसुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं, सया णिच्च-कालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि-दुक्खक्खओ

कम्मक्खओ बोहि लाहो सुगइ-गमणं, समाहि मरणं जिण गुण संपत्ति होउ-मज्झं।

आचार्य भक्ति

नमोऽस्तु पौर्वाह्णिक/अपराह्णिक श्री आचार्य-वन्दना-क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल कर्म क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्रीआचार्य भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(9 बार णमोकार)

श्रुतजलधि-पारगेभ्यः,स्व-पर-मत-विभावना-पटुमतिभ्यः।
सुचरित-तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो-गुण-गुरुभ्यः ॥1॥
छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच-विहाचार-करण-संदरिसे।
सिस्सा-णुग्गह-कुसले, धम्मा-इरिये सदा वंदे ॥2॥
गुरु-भत्ति-संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति ॥3॥
ये नित्यं-व्रत-मंत्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः।
षट्कर्माभिरतास्-तपोधनधनाः, साधु क्रियाः साधवः ॥4॥
शील-प्रावरणा-गुणप्रहरणाश्-चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः।
मोक्षद्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणंतु मां साधवः ॥5॥
गुरवः पान्तु नो नित्यं, ज्ञान दर्शन - नायकाः ।
चारित्रार्णव - गम्भीरा, मोक्ष - मार्गोपदेशकाः ॥6॥

अञ्चलिका

इच्छामि भन्ते ! आयरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण- सम्मदंसण - सम्मचरित्त-जुत्ताणं पंच विहाचाराणं आयरियाणं आयारादि-सुद - णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण- गुण - पालण-रयाणं सव्वसाहूणं, णिच्च-कालं, अच्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहि-लाओ, सुगइ- गमणं, समाहि - मरणं, जिणगुण - सम्पत्ति होउ मज्झं ।

नोट - आचार्य वन्दना के उपरांत प्रातः काल दो कायोत्सर्ग के रूप में 18 बार णमोकार मंत्र एवं सायंकाल 4 कायोत्सर्ग के रूप में 36 णमोकार मंत्र का जाप प्रायश्चित्त स्वरूप करें

हम उन्हीं के हो गये

रचयिताः प.पू. मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज

ग्रीष्म की धूप में, शीत की धुंध में, वर्षा में तरु तले, ठूँठ से जो खड़े।
सबका परमात्मा बन गया आत्मा, खुद में ही खो गये हैं॥
हम उन्हीं के हो गये हैं ...॥
नग्न जर्जर सी देह, ज्ञान करुणा स्नेह, शाम का सूर्य था, कृत्य का बोध था।
पद्वी को छोड़कर, मोह को तोड़कर, दे उजाला, जगत से गये हैं॥
हम उन्हीं के हो गये हैं ...॥
ज्ञान रवि की तपन, विद्याधर का बदन,विद्या ज्योति जली, जग की प्रज्ञा जगी।
शिष्य को गुरु बना, ज्ञान देकर घना, देह को बस बदल जो गये हैं॥
हम उन्हीं के हो गये हैं ...॥
मेरे गुरु हैं महाँ, इन-सा जग में कहाँ, पाया जब से दरश, हुआ सम्यक् दरश।
हो समाधि मरण, फिर मिलें गुरु चरण, इक यही कामना कर चले हैं॥
हम उन्हीं के हो गये हैं ....॥

भजनः सिद्ध नाम सत्य है

रचयिताः मिश्रीलाल जी गुना

आगे-आगे अपनी अर्थी के मैं गाता चलूँ,
सिद्ध नाम सत्य है अरिहंत नाम सत्य है।
पीछे-पीछे दूर तक दिख रही जो भीड़ है,
पंछी शाख से उड़ा, खाली पड़ा नीर है,
सृष्टि सारी देख ले, पर्याय ही अनित्य है,
सिद्ध नाम सत्य है अरिहंत नाम सत्य है।
जिनको मेरे सुख दुखों से कुछ नही था वास्ता,
उनके ही कांधों में मेरा कट रहा है रास्ता,
आँख जब मुंदी तो कोई शत्रु है न मित्र है,
सिद्ध नाम सत्य है अरिहंत नाम सत्य है।
डोरियों से मैं बंधा नहीं यह मेरा संस्कार था,

एक कफन पर बस मेरा रह गया अधिकार था,
तुम उसे उतारने जा रहे ये सत्य है,
सिद्ध नाम सत्य है अरिहंत नाम सत्य है।
आपके अनुराग को आज यह क्या हो गया,
मैं चिता पर चढ़ा महान कैसे हो गया,
सत्य देख हँस रहा कि जल रहा असत्य है,
सिद्ध नाम सत्य है अरिहंत नाम सत्य है।
आपके ही वंश से भटका हुआ हूँ देवता,
आत्म तत्व छोड़ कर मैं जगत को देखता,
यह अनादि काल की भूल का ही कृत्य है,
सिद्ध नाम सत्य है अरिहंत नाम सत्य है।
आगे-आगे अपनी अर्थी के मैं गाता चलूँ,
सिद्ध नाम सत्य है अरिहंत नाम सत्य है।

भजन: जब जीवन का अंत हो

जब जीवन का अंत हो, मेरे सामने एक संत हो।
मेरे होठों पर अरिहंत हो, महावीर का वह पंथ हो॥
कषायों की आग में जलता-जलता आया हूँ।
वासना की राह पे चलता-चलता आया हूँ॥
दु:ख भरी इस यात्रा काऽऽऽ... होऽऽऽ......।
दु:ख भरी इस यात्रा का सुखद अंत हो॥
जब जीवन का अंत ....
जन में जब तक श्वास है, मन में एक विश्वास है।
मुक्ति की ही प्यास है, पंडित मरण (गुरु चरण) की आस है॥
तन अचल और मन अमल होऽऽऽ... होऽऽऽ...।
तन अचल और मन अमल हो, अब ना कोई द्वंद हो॥
जब जीवन का अंत ....
धर्म में मेरी प्रीत हो, वेदना में जीत हो।

आगम का संगीत हो, प्रभु नाम का गीत हो॥
साधना के नंदन वन में होऽऽऽ... ।
साधना के नंदन वन में भावना बसंत हो॥
जब जीवन का अंत हो, मेरे सामने एक संत हो।
मेरे होठों पर अरिहंत हो, महावीर का वह पंथ हो॥

भजन: चलो चिड़िया ...

चलो चिड़िया हुआ पूरा यहाँ का आबदाना है,
पुरानी हो गई बस्ती पुराना आशियाना है।
छोड़कर जायेगा जिस दिन तू अपनी धर्मशाला को,
तुझे उस रोज कमरे का किराया भी चुकाना है॥
चलो चिड़िया ...
पुराना हो गया आँगन पुरानी हो गई बस्ती,
जहाँ ताला लगाते थे वो दरवाजा पुराना है॥
चलो चिड़िया ...
गये जब राम, केशव, वीर, ईसा और मोहम्मद भी,
अगर हम भी चले जायें तो आसुँ क्या बहाना है॥
चलो चिड़िया ...
जन्म और मृत्यु के क्रम में जरा सा भेद होता है,
किसी से दूर होना है किसी के पास जाना है॥
चलो चिड़िया ...
इस युग में रजत और स्वर्ण के आकर्षण और विकर्षण से,
हमें हट के अब आगे भी ठिकाना तो बनाना है॥
चलो चिड़िया ...
जन्म और मृत्यु के क्रम में जरा सा भेद होता है,
कहीं दीपक जलाना है कहीं दीपक बुझाना है।
चलो चिड़िया हुआ पूरा यहाँ का आबदाना है,
पुरानी हो गई बस्ती पुराना आशियाना है॥

भजनः गुरुदेव अपना जलवा

रचयिता : मुनि श्री 108 भावसागर जी महाराज

तर्जः आये हो मेरी ....

आँखों में बस रहे हो, मन में समा रहे हो–2
गुरुदेव अपना जलवा हो–हो–2
गुरुदेव अपना जलवा सबको दिखा रहे हो॥
सुखकारी छवि प्यारी–मन में बसी तुम्हारी–2
मुखड़ा मुझे दिखा दो, देरी लगा रहे हो
गुरुदेव ....
जन–जन को तुमने तारा, अब मैंने भी पुकारा–2
है आसरा तुम्हारा, तुम क्यों भुला रहो हो
गुरुदेव ....
तारण तरण तुम्हीं हो, भव दुख हरण तुम्ही हो–2
कुछ तो तरस करो तुम, मुझको भुला रह हो
गुरुदेव ....
शिवमार्ग को बता दो, आवागमन मिटा दो –2
इस ''भाव सिन्धु'' को क्यों, इतना रूला रहे हो
गुरुदेव ....
आँखों में बस रहे हो मन में समा रहे हो
शिष्यों को दर्श देकर, सबको लुभा रहे हो
गुरुदेव अपना जलवा, सबको दिखा रहे हो

बेला अमृत गया...

बेला अमृत गया, वक्त तू खो रहा, आलसी सो रहा बन अभागा।
साथी सारे जगे तू न जागा ॥ टेक॥
कर्म उत्तम से नर तन है पाया, आलसी बन के हीरा गमाया।
हंस का रूप था, पानी गंदा पिया बन के कागा॥
साथी ....॥

झोलियाँ भर रहे भाग्य वाले, लाखों पतितों ने जीवन सम्हाले।
आतम रस से रंगा, ज्ञान रस से पगा बन विरागा॥
साथी ....॥
सार ग्रन्थों का देखा न भाला, सर से ऋषियों का ऋण न चुकाया।
सौदा घाटे का कर, हाथा पाये पे रख रोबन लागा॥
साथी ....॥
सीख सद्‌गुरु की अब मान ले तू, जानने को जो है जान ले तू।
मोह निद्रा भगा, आतम ज्योति जगा, कर्म भागा॥
साथी ....॥

भजनः परम दिगम्बर मुनिवर देखे .. ऽ

ऐसे परम दिगम्बर मुनिवर देखे,
हृदय हर्षित होता है, आनन्द उलसित होता है,
हो ऽऽऽऽऽ सम्यक् दर्शन होता है।
वास जिनका वन–पवन में, गिरि शिखर और नदी तटे
वास है चैतन्य गुफा में, आतम आनन्द में रमे
ऐसे परम दिगम्बर मुनिवर देख...
कन्चन, अरु, कामिनि के त्यागी, महातपस्वी, ज्ञानी,
ध्यानी
काया की ममता के त्यागी, तीन रतन गुण भण्डारी
ऐसे परम दिगम्बर मुनिवर देखे ....
परम पावन मुनिवरों के, पावन चरणों में नमो
शाऽन्त मूर्ति सौम्य मुद्रा, आतम आनन्द में रमूँ
ऐसे परम दिगम्बर मुनिवर देखे...
चाह नहीं है राज की, चाह नहीं है रमणी की
चाह हृदय में एक यही है, मुक्ति वधु को वरने की
ऐसे परम दिगम्बर मुनिवर देख...

भेद ज्ञान की ज्योति जलाकर, शुद्धातम में रमते हैं
क्षण-क्षण में अंतर्मुख होऽऽ, सिद्धों से बातें करते हैं
ऐसे परम दिगम्बर मुनिवर देखे
ऐसे परम दिगम्बर मुनिवर देखे

भजनः अरिहंतों की प्रतिमाओं का

रचयिताः प.पू. मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज

अरिहंतों की प्रतिमाओं का ध्यान धरो भाई।
कोई भी ना करे जिसे वो काम करो भाई ॥1॥
भोगों की चाहत में राहत किसको यहाँ मिली,
बगिया में वह कली कौन सी रहती सदा खिली।
मानव जिसमें धँसता जाता जीवन वह खाई,
कोई भी ना करे जिसे वो काम करो भाई ॥2॥
साँसों की चाबी से चलता तेरा देह खिलौना।
बच्चों सा यह खेल सदा ही तुझको लगा सलौना॥
समय मिला ना आत्म ध्यान का अब मृत्यु आई।
कोई भी ना करे जिसे वो काम करो भाई ॥3॥
तन अपना जब धोखा देता क्यों पर को चाहे,
पंछी मर जाता पिंजरे में उड़ना ना चाहे।
अपने को पहचान यहाँ अरुँ सबसे माँग विदाई,
कोई भी ना करे जिसे वो काम करो भाई ॥4॥
यदि तू चाहे नहीं डूबना इस भव सागर में,
अरिहंतों को नहीं भूलना घर में बाहर में।
इसी नाम का रटना से तू प्रीत लगा भाई,
कोई भी ना करे जिसे वो काम करो भाई ॥5॥

सर्वविघ्ननिवारक श्री पार्श्वनाथ मन्त्रात्मक स्तोत्र

स्रग्धरा

श्री मद्देवेन्द्र- वृन्दारक-मुकुटमणिज्योतिषां चक्रवालै-
र्व्यालीढं पादपीठं शठ-कमठ-कृतोपद्रवैर्बाधितस्य।
लोकालोकावभासिस्फुरदुरु-विमलज्ञानसदीपप्रदीपः,
प्रध्वस्त-ध्वांतजालः स वितरतु सुखं पार्श्वनाथोऽत्र नित्यम् ॥1॥
ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः एतैर्मरकत-मणि-भाक्रान्त-मूर्तेहि वं मं,
हं सं तं बीजमन्त्रेः कृतसकल-जगत्क्षेम-रक्षोरुवक्षः।
क्षां क्षीं क्षूं क्षें समस्त-क्षितितल-महितज्योति-रुद्योतितार्थः,
क्षैं क्षों क्षौं: क्षः सिप्तबीजात्मक-सकलतनुर्नः सदा पार्श्वनाथः ॥2॥
ह्रींकारं रेफयुक्तं र र र र र र र र रं देव सं सं प्रयुक्तं,
ह्रीं क्लीं ब्लूं द्रां सरेफं विषदलनकला-पंचकोद्भासि हूँ हूँ।
धूं धूं धूं धूम्रवर्णै-रखिलमिह-जगन्मे विधेह्यामुवश्यं,
वौषट्मन्त्रं पठन्तं त्रिजगदधिपते, पार्श्व, मां रक्ष रक्ष ॥3॥
आं क्रौं ह्रीं सर्ववश्यं कुरु-कुरु सरसं क्रामणं तिष्ठ तिष्ठ,
हूं हूं हूं रक्ष रक्ष प्रबल-बलमहाभैरवारातिभीतेः।
द्रां द्रीं द्रूं द्रावयेति द्रव हन हन फट् फट् वषट् भिन्दि भिन्दि,
स्वाहामन्त्र पठन्तं त्रिजगदधिपत, पार्श्व, मां रक्ष रक्ष ॥4॥
हं सः झ्वीं क्ष्वीं सं हं सः कुवलय-कलितै-रर्चितांगप्रसूनैः,
झं वं हं पक्षि हं हं हर हर हर हूं पक्षिपः पक्षिकोपं।
वं झं हं सं भवं सः सर सर सर समं सः स्वधाबीजमन्त्रैः,
स्त्रायस्व स्थावरादि-प्रबलविषमुखं हारिभिः पार्श्वनाथः ॥5॥
क्ष्मां क्ष्मीं क्ष्मूं क्ष्मौं क्ष्मः एतैरहिपति-विनुतै-र्मन्त्रबीजैश्च नित्यं,
हाहाकारोग्रनादै-र्ज्वल-दनलशिखा-कल्पदीर्घोर्ध्वकेशैः।
पिंगाक्षैर्लोलजिह्वै - विषमविषधरालंकतैस्तीक्ष्णदंस्ट्रै,
भूतैः प्रेतैः पिशाचै-रनघकृत-महोपद्रवाद्रक्ष रक्ष ॥6॥
ॐ झौं झः शाकिनीनां सपदि हरमिदं भिन्धि शुद्धेद्ध बुद्धे,
ग्लौं क्ष्मं ठं दिव्य जिह्वागतिमतिकुपित स्तम्भनं संविधेहि।

फट् फट् फट् सर्वरोग–ग्रहमरण भयोच्चाटनं चैव पार्श्वः,
त्रायस्वाशेष–दोषा–दमर–नरवरैर्नूतपादारविन्दः ॥7 ॥
स्फ्रां स्फ्रीं स्फ्रूं स्फ्रौः स्फ्रः एवं प्रबल–बल–फलं मन्त्रबीजं,
जिनैद्र, रां रीं रूं रौं रःएभिः परमतरहितं पार्श्वदेवाधिदेवम् ।
क्रां क्रीं क्रूं कौं क्रः एतैः ज ज ज ज ज जरा जर्जरीकृत्यदेहं,
धूं धूं धूं धूम्रवर्ण दुरितविरहितं पार्श्व मां रक्ष नित्यं ॥8 ॥
ह्रींकारे चन्द्रमध्ये बहिरपि वलये षोडशं वर्णपूर्ण,
बाह्ये ठंकार–वेष्ट्यं वसुदलसहितं मूलमन्त्रेण युक्तं।
साक्षात्–त्रैलोक्यवश्यं सकल सुखकरं सर्वरोगं प्रणाशम्,
स्वादेतद् यन्त्ररूपं परमपदमिदं पातु मां पार्श्वनाथः ॥9 ॥
इत्थं मंत्राक्षरार्थं वचनमनुपमं पार्श्वनाथस्य नित्यम्,
विद्वेषोच्चाटन–स्तम्भन–जनवर कृत्पाप–रोगापनोदि।
प्रोत्सर्पज्जंगम–स्थावरविषमविष–ध्वंसनं चायुदीर्घं–
मारोग्यैश्वर्य–भक्त्या स्मरति पठति यः स्तौति तस्येष्ट–सिद्धिः ॥10 ॥
(भक्तामर या कल्याण मन्दिर स्तोत्र एवं शान्तिभक्ति पढ़ें।)

उपसर्गहर पार्श्वनाथ स्तोत्र

''श्रीभद्रबाहुप्रसादात् एष योगः फलतु''

उवसग्गहरं पासं, पासं वंदामि कम्मघण मुक्कं।
विसहर–विस–णिण्णासं, मंगल–कल्याण–आवासं ॥
विहर–फुलिंगमंतं, कण्ठे धारेदि जो सया मणुवो।
तस्स गह–रोग–मारी, दुट्ठ–जरा जंति उवसामं ॥
चिट्ठदु दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होदि।
णर–तिरियेसु वि जीवा, पावंति ण दुक्ख–दोगच्चं ॥
तुह सम्मत्ते लद्धे, चिन्तामणि–कप्पपायव–सरिसे।
पावंति अविग्घेणं जीवा अयरामरं ठाणं ॥
इह संथुदो महायस, भत्तिब्भर–हिदयेण।
ता देव, दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास जिणचंद ॥

ॐ अमरतरु–कामधेणु–चिन्तामणि–कामकुंभमादिया।
सिरि–पासणाह–सेवाग्गणे सव्वे वि दासत्तं ॥
उवसग्गहरं त्थोत्तं, कादूणं जेण संघकल्लाणं।
करुणायरेण विहिदं, स भद्दबाहू गुरू जयदु ॥7 ॥

मन्त्र – ॐ अर्हं णमिदूण पास विसहर विसणिण्णण्णासणं जिण फुलिंग ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः।

महावीराष्टक

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भान्ति–ध्रौव्य–व्यय–जनि–लसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्ग–प्रकटन–परो भानुरिव यो,
महावीरस्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः) ॥1 ॥
अताम्रं यच्चक्षुः कमल – युगलं स्पन्द – रहितं,
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तर – मपि।
स्फुटं मूर्ति – र्यस्य प्रशमित–मयी वाति – विमला,
महावीर–स्वामी नयन पथ गामी भवतु में (नः) ॥ 2 ॥
नमन्नाकेन्द्राली – मुकुट – मणि – भा – जाल – जटिलं,
लसत्पादाम्भोज – द्वय – मिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्वाला शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर – स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः) ॥ 3 ॥
यदर्चा – भावेन – प्रमुदित – मना दर्दुर इह,
क्षणा–दासीत्स्वर्गी गुण–गण–समृद्धः सुख–निधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिव–सुख–समाज किमु तदा,
महावीर–स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः) ॥ 4 ॥
कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत – तनुर्ज्ञान – निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपति – वर – सिद्धार्थ – तनयः।
अजन्मापि – श्रीमान् विगत – भव रागोऽद्भुत–गतिर्,
महावीर–स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः) ॥ 5 ॥

यदीया वाग्गङ्गा विविध - नय - कल्लोल - विमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानी - मप्येषा बुधजन - मरालैः परिचिता,
महावीर-स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः) ॥ 6॥
अनिर्वा-रोद्रेकस् - त्रिभुवन - जयी काम सुभटः,
कुमारावस्थाया - मपि निज बलाद्येन विजितः।
स्फुरन् नित्यानन्द - प्रशम पद - राज्याय स जिनः,
महावीर-स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः) ॥ 7॥
महा-मोहातङ्क- प्रशमन - पराकस्मिक - भिषग्
निरापेक्षो - बन्धु - विंदित महिमा मङ्गलकरः ।
शरण्यः साधूनां भव - भय - भृता - मुत्तम-गुणों,
महावीर-स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे (नः) ॥ 8॥
महावीरष्टकं स्तोत्रं, भक्त्या 'भागेन्दुना' कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि, स याति परमां गतिम् ॥9॥

सुप्रभात स्तोत्र

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षा ग्रहणोत्सवे यदखिल, ज्ञानप्रकाशोत्सवे ।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः,
संङ्गीतस्तुति मङ्गलैः प्रसरतां, मे सुप्रभातोत्सवः ॥1॥
श्रीमन्नतामर किरीटमणिप्रभाभि-
रालीढपाद युग-दुर्धर कर्मदूर ।
श्रीनाभिनन्दन ! जिनाजित ! शम्भवाख्य,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥2॥
छत्रत्रय प्रचल चामर-वीज्यमान,
देवाभिनन्दनमुने ! सुमते ! जिनेन्द्र ।
पद्मप्रभारूण मणि द्युतिभासुराङ्ग,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥3॥

अर्हन् सुपार्श्व! कदलीदलवर्ण गात्र,
प्रालेयतारगिरि मौक्तिक वर्णगौर ।
चन्द्रप्रभ! स्फटिक पाण्डुर पुष्पदंत !
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥4॥
सन्तप्त काञ्चनरुचे जिन! शीतलाख्य,!
श्रेयान्! विनष्ट दुरिताष्ट कलङ्कपङ्क ।
बंधूक बंधुररुचे जिन वासुपूज्य!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥5॥
उद्दण्डदर्पकरिपो विमलामलांग!
स्थेमन्ननन्तजिदनंतसुखाम्बुराशे ।
दुष्कर्म कल्मष विवर्जित-धर्मनाथ!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥6॥
देवामरी कुसुमसन्निभ शान्तिनाथ!
कुन्थो ! दयागुण विभूषण भूषितांग ।
देवाधिदेव! भगवन्नर तीर्थनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥7॥
यन्मोह मल्ल मद भञ्जन-मल्लिनाथ,!
क्षेमङ्गरावितथ शासन-सुव्रताख्य !
सत्सम्पदा प्रशमितो नमि नामधेय,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥8॥
तापिच्छ गुच्छ रुचिरोज्ज्वल नेमिनाथ!
घोरोपसर्ग-विजयिन् जिन! पार्श्वनाथ!
स्याद्वादसूक्तिमणिदर्पण! वर्धमान!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥9॥
प्रालेयनील हरितारुण-पीतभासं,
यन्मूर्तिमव्ययसुखावसथं मुनीन्द्राः ।
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां,

त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥10॥
सुप्रभातं सुनक्षत्रं, मांगल्यं परिकीर्तितम् ।
चतुर्विंशति तीर्थाणां, सुप्रभातं दिने-दिने ॥11॥
सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभि नन्दितम् ।
देवता ऋषयः सिद्धाः, सुप्रभातं दिने-दिने ॥12॥
सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः ।
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्व सुखावहम् ॥13॥
सुप्रभातं जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलित चक्षुषाम् ।
अज्ञान तिमिरांधानां, नित्यमस्तमितो रविः ॥14॥
सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः ।
येन कर्माटवी दग्धा, शुक्लध्यानोग्रवह्निना ॥15।
सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमंगलम् ।
त्रैलोक्यहितकर्तृणां[1], जिनानामेव शासनम् ॥16॥

गोमटेश अष्टक

रचयिताः प.पू. आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

नील कमल के दल-सम जिन के युगल- सुलोचन विकसित हैं।
शसिम मनहर सुख कर जिनका मुख-मण्डल मृदु प्रमुदित है॥
चम्पक की छवि शोभा जिनकी नम्र नासिका ने जीती।
गोमटेश जिन-पाद-पद्म की पराग नित मम मति पीती॥1॥
गोल-गोल दो कपोल जिन के उज्ज्वल सलिल सम छवि धारे।
ऐरावत-गज की सुण्डा सम बाहुदण्ड उज्ज्वल-प्यारे॥
कन्धों पर आ, कर्ण-पाश वे नर्तन करते नन्दन है।
निरालम्ब वे नभ-सम शुचि मम, गोमटेश को वन्दन है॥2॥
दर्शनीय तव मध्य भाग है गिरि-सम निश्चल अचल रहा।
दिव्य शंख भी आप कण्ठ से हार गया वह विफल रहा॥

पाठान्तर : 1. कर्तणां

उन्नत विस्तृत हिमगिरि-सम है, स्कन्ध आपका विलस रहा।
गोमटेश प्रभु तभी सदा मम तुम पद में मन निवस रहा॥3॥
विंध्याचल पर चढ़ कर खरतर तप में तत्पर हो बसते।
सकल विश्व के मुमुक्षु जन के, शिखामणी तुम हो लसते॥
त्रिभुवन के सब भव्य कुमुद ये खिलते तुम पूरण शशि हो।
गोमटेश तुम नमन तुम्हें हो सदा चाह बस मन वशि हो॥4॥
मृदुतम बेल लताएँ लिपटी पग से उर तक तुम तन में।
कल्पवृक्ष हो अनल्प फल दो भवि-जन को तुम त्रिभुवन में॥
तुम पद-पंकज में अलि बन सुर-पति गण करता गुन-गुन है।
गोमटेश प्रभु के प्रति प्रतिपल वन्दन अर्पित तन-मन है॥5॥
अम्बर तज अम्बर-तल थित हो दिग अम्बर नहिं भीत रहे।
अम्बर आदि विषयन से अति विरत रहे भव भीत रहे॥
सर्पादिक से घिरे हुए पर अकम्प निश्चल शैल रहे।
गोमटेश स्वीकार नमन हो धुलता मन का मैल रहे॥6॥
आशा तुम को छू नहिं सकती समदर्शन के शासक हो।
जग के विषयन में वांछा नहिं दोष मूल के नाशक हो॥
भरत-भ्रात में शल्य नहीं अब विगत-राग हो रोष जला।
गोमटेश तुम में मम इस विध सतत राग हो होत चला॥7॥
काम-धाम से धन-कंचन से सकलसंग से दूर हुए।
शूर हुए मद मोह-मार कर समता से भरपूर हुए॥
एक वर्ष तक एक थान थित निराहार उपवास किये।
इसीलिए बस गोमटेश जिन मम मन में अब वास किये॥8॥

दोहा

नेमीचन्द्र गुरु ने किया प्राकृत में गुणगान ।
गोमटेश थुति अब किया भाषा-मय सुख खान॥1॥
गोमटेश के चरण में नत हो बारम्बार ।
'विद्यासागर' कब बनूँ भवसागर कर पार॥2॥

जिनदर्शन की महिमा

दर्शनं स्वर्ग सोपानं दर्शनं मोक्ष साधनम्

जिनदर्शन से फल पाता है

1. जो जिन दर्शन का विचार करता है	= 2 उपवास का फल
2. जो जिनदर्शन के लिए स्वयं तैयार होता है	= 3 उपवास का फल
3. जो मंदिर जाने की तैयारी करता है	= 4 उपवास का फल
4. जो मंदिर जाने के लिए घर से चलता है	= 5 उपवास का फल
5. जो कुछ दूरी तक पहुँच जाता है	= 12 उपवासों का फल
6. जो बीच रास्ते तक पहुँच जाता है	= 15 उपवास का फल
7. जो दूर से मंदिर या शिखर देखता है	= 30 उपवास का फल
8. जो मंदिर के आँगन में पहुँच जाता है	= 6 माह के उपवास का फल
9. जो मंदिर के द्वार में प्रवेश करता है	= 1 वर्ष के उपवास का फल
10. जो मंदिर की प्रदक्षिणा देता है	= 100 वर्ष के उपवास का फल
11. जो जिन प्रतिमा का मुख मंडल देखता है	= 1000 वर्ष के उपवास का फल
12. जो जिन प्रतिमा के समक्ष भक्ति, पूजा करता है	= अनंत उपवास का फल

नोट- (उपवास के बराबर पुण्य मिलेगा इसका यह भाव समझना)

साभार- पद्म पुराण- आचार्य रविषेण 178-182 श्लोक, सर्ग 2

महत्वपूर्ण जानकारी

1. जिन प्रतिमा के दर्शन से मिथ्यात्व और निधत्ति, निकाचित रूप घोर पाप कर्मों का अभाव हो जाता है।
2. सम्मेद शिखर के दर्शन के प्रभाव से देवगढ़तीर्थ निर्माता देवपत-खेवपत के मक्का दाने मोती बन गये थे।
3. अहिच्छत्र पार्श्वनाथ भगवान के दर्शन से पात्र केशरी आचार्य को सम्यग्दर्शन हुआ, फिर दीक्षा ली थी।
4. जिन प्रतिमा दर्शन सम्यग्दर्शन का कारण है। (स.सि./पूज्यपादाचार्य धवला/पूष्पदंत भूतवली)

5. दर्शन प्रतिज्ञा के प्रभाव से 'मनोवती' ने सौधर्म इन्द्र का आसन हिला दिया था।
6. नरकायु का बंधक जीव सम्मेदशिखर का दर्शन, नहीं कर सकता।
7. मानस्तंभ के दर्शन से गौतम स्वामी को सम्यग्दर्शन हुआ था।
8. भगवान का मुख देखने से सभी अच्छे कार्य हो जाते है।
9. जिनेन्द्र दर्शन स्वर्ग की सीढ़ी और मोक्ष का साधन है।
10. मनोवती गज मोती चढ़ाकर दर्शन करती थी।
11. मोह घर बुलाता है, और मोक्ष मंदिर बुलाता है।

जिन मंदिरों में दान की महिमा

कहा है जिनकी संस्कृति जीवन्त है, उसके संस्कार जीवन्त होते हैं, जिन मंदिर हमारी संस्कृति है, आज भी जब भूगर्भ से जिन प्रतिमा या जिनालय खुदाई के द्वारा निकलते हैं और उसे हम देखते हैं कि यह प्रतिमा 10,000 वर्ष पुरानी है, तो हमारे अन्दर सोया-श्रावकपना जागृत हो जाता है कि देखो। हमारे बुजुर्ग लोग कितने धर्मात्मा थे अगर वह जिनालय नहीं बनवाते तो क्या आज हम संस्कृति की पहचान कर पाते? नहीं, संस्कृति के सम्वर्द्धन के लिए हमें जिनेन्द्र प्रभु की नवीन कई कृति जिन मंदिर के रूप में बनाते रहना चाहिए। जिससे आने वाली पीढ़ी हमारी संस्कृति से परिचित बनी रहे।

मनुष्य का मन अति चंचल है ऐसे चंचल मन को रोकने के लिए धर्मायतन जिनालयादि के अतिरिक्त और कोई समर्थ नहीं है। इसी मन को अगर जिनेन्द्र भगवान के गुणानुराग में लगाया जाये तो कर्मबन्ध ढीले पड़ जाते हैं। मनुष्य कई प्रकार के पाप करके धन का अर्जन करता है। इस धन को कमाने के लिए वह भूख-प्यास, मान-अपमान न जाने कितने कष्टों को उठाता है- अगर मनुष्य सोचे की उसकी इस चंचल लक्ष्मी का सही उपयोग क्या है तो आचार्यों ने कहा है कि मनुष्य अपने धन को भोगे या फिर जिनबिम्ब, जिनालय आदि में दान कर दे, अगर वह ऐसा नहीं करता है तो यह नियम है कि वह धन नष्ट को प्राप्त हो जाता है। आचार्यों ने गृहस्थ को उपदेश दिया कि जो गृहस्थ अपनी क्षमता के अनुसार प्रभु का मंदिर बनवाता है। शिल्प रत्नाकर 13/84 ग्रंथ के अनुसार -

उसको करोड़ों वर्षों के उपवास का फल, जन्म जन्मातरों में किया गया तप तथा करोड़ों दानों में करोड़ दान का फल यदि किसी को एक साथ मिल जाये तो वह एक नवीन जिन मंदिर निर्माण कराने वाले को मिलता है अर्थात् नवीन जिन मंदिर बनाने वालों को असीम पुण्यार्जन होता है। शिल्प रत्नाकर 13/85 ग्रंथ के अनुसार –

जो प्रभु का भक्त लकड़ी अथवा पाषाण का मंदिर निर्माण करवाता है, उसे इतना अधिक पुण्य मिलता है कि वह चिरकाल तक देव लोक में सुख भोगता है। प्रसाद मण्डन 8/84 ग्रंथ में कहा है कि –

जो प्रभु का भक्त है उसे स्वशक्ति के अनुरूप लकड़ी, ईंट, पाषाण, स्वर्ण आदि धातु रत्न का देवालय उपासक को निर्माण करना चाहिए, ऐसा करने में चारों पुरुषार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि होती है। ऐसी बात को लेकर और भी आचार्यों ने कहा है कि जो देव प्रतिमा की स्थापना, पूजा, दर्शन करने से उपासक के पापों का हनन होता है तथा उसके चारों पुरुषार्थों की स्वयमेव सिद्धि हो जाती है। प्रसाद मण्डन 1/35 में लिखा है कि

जो कोई घास का जिनालय बनाता है तो वह करोड़ गुना पुण्य का अर्जन करता है मिट्टी का मंदिर बनाने वाला उससे दस गुना पुण्य कमाता है। ईंट का देवालय बनाने वाला उससे सौ गुना पुण्य का अर्जन करता है पाषाण का जिनालय निर्माण कराने वाला अनन्त गुणा पुण्यार्जन करता है।

अतएव सुख की इच्छा रखने वाले गृहस्थ को चाहिए कि वह अपने जीवनकाल में अपनी शक्ति के अनुसार जिनालय बनाये। असंख्य जीव इस मंदिर के दर्शन कर पुण्य लाभ कमायेंगे। सभी शास्त्रों में मंदिर निर्माणकर्ता के लिए असीम पुण्य फल प्राप्ति का वर्णन देखने में आता है।

आचार्य उमास्वामी का श्रावकाचार में स्पष्ट निर्देश है कि जिन मंदिर जिन प्रतिमा का निर्माण यथाशक्ति करना चाहिए उन्होंने तो यहां तक लिखा है कि जो भव्य जीव एक अंगुल प्रमाण की प्रतिमा को भी प्रतिष्ठा कराकर उसकी स्थापना करता है या करवाता है उस पुण्य संचय को कहने में शब्द नहीं है। जो पुरुष विम्बाफल (भिलावा) के पत्ते के समान अत्यंत लघु चैत्यालय/मंदिर बनवाता है तथा उसमें जौ के बराबर की प्रतिमा प्रतिष्ठा करवाकर स्थापित करता है उस गृहस्थ का पुण्य अत्यंत महान होता है,

अर्थात् ? उसका दुखमय संसार अंजुली भर पानी के समान रह जाता है अर्थात् वह शीघ्र मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करता है। (उमास्वामी श्रावकाचार पृष्ठ 114/115)

दान की महिमा-1

- दान उत्साह पूर्वक दें। शक्ति से अधिक दान संक्लेशता का कारण बन सकता है।
- कर्ज लेकर दान नहीं दें।
- मंदिर में घोषित राशि समय पर जमा करें।
- सम्मान पाने की आकांक्षा से दिया गया दान, दान के फल को कम करने वाला है।
- गुप्त दान से दिया दान करोड़ गुना फल देता है।
- यदि हम अस्वस्थ हैं तो इसका मतलब है कि हमने पूर्व में औषधि दान नहीं दिया–औषधि दान दें।
- आहार दान दें, यदि भोजन सामग्री का अभाव है तो समझना हमनें पूर्व में आहार दान नहीं दिया।
- ज्ञान दान दें, यदि हम बुद्धि से हीन है तो समझना हमने पूर्व में ज्ञान दान नहीं दिया।
- यदि हम भयभीत रहते हैं तो समझना हमने पहले कभी अभय दान नहीं दिया– अभय दान दें, गौशाला में दान दें, धर्मायतन बनवायें।

धन का सदुपयोग

धन का नाश पाप के उदय में होता है और धन का संयोग पुण्य के उदय में होता है। विषयों में उपयोग दुर्गति का कारण है और श्रेष्ठ कार्यों में उपयोग सद्गति का कारण है। इस पाठ से जानें धन का उपयोग कैसे करें?

- जिस तरह उपजाऊ भूमि में बोया छोटा-सा बीज विशाल फल को देता है, उसी तरह समय पर उत्तम क्षेत्र में दिया हुआ अल्प दान भी महाफल को देता है।

- ❊ धन की तीन गति हैं- दान, भोग, नाश।
- ❊ पंचेन्द्रिय के विषय भोगों में उपयोग होने वाला धन संसार का कारण है।
- ❊ उत्तम क्षेत्र में किया गया दान संसार सागर से पार होने में कारण है।
- ❊ दान इस भव और पर भव दोनों में हमारी आत्मा का हित करने वाला है।
- ❊ दान के भाव एवं निमित्त दुर्लभ होते हैं इसलिए जब अवसर मिले लाभ लेना चाहिए।
- ❊ दान की मात्रा महत्त्वपूर्ण नहीं दान की भावना महत्त्वपूर्ण है।

दान के श्रेष्ठ क्षेत्र-

1. जिनबिम्ब स्थापना, 2. जिनालय निर्माण, 3. शिखर निर्माण, 4. कलशारोहण, 5. ध्वजारोहण, 6. वेदी निर्वाण, 7. सिंहासन स्थापना, 8. छत्र स्थापना, 9. चँवर स्थापना, 10.कमलासन स्थापना, 11. अभिषेक कलश 12. शांतिधारा कलश, 13. जीवाणी की बाल्टी, 14. प्रक्षाल का छन्ना, 15. हथकरघा का पानी का छन्ना, 16. चौका, बैंच, टेबिल, 17. ग्रन्थों का प्रकाशन करवाना, 18. सिद्धचक्र विधान करना, 19. असहाय असमर्थ बच्चों को ज्ञानार्जन कराना, 20. पाठशाला हेतु दान देना, 21. गौशाला में दान देना, 22. औषधालय खुलवाना, 23. असहाय एवं असमर्थ व्यक्तियों को तीर्थयात्रा कराना, 24. पंचकल्याणक में दान करवाना, 25. पूजन के लिए द्रव्य दान देना, 26. पूजन के वस्त्र देना, 27. अपने परिवार, रिश्तेदार एवं समाज के असमर्थ व्यक्तियों को व्यापार में सुदृढ़ करने हेतु सहयोग करना।

दान की महिमा-2

- ❊ धन के देने से गौरव प्राप्त होता है संग्रह से नीचे मेघों की उच्च स्थिति देने से है और समुद्र की नीचे स्थिति संग्रह से हैं।
- ❊ कंजूस धन का दान नहीं करता है वह छोड़ जाता है तो दूसरे उसका उपयोग करते हैं।
- ❊ धन के चार उत्तराधिकारी हैं - 1. धर्म 2. चोर 3. अग्नि 4. राजा इनमें धर्म का अपमान होने पर आदर से सहित शेष तीन पुरुष पर कुपित हो जाते है।

- ❊ धन त्याग से शोभित होता है।
- ❊ प्रतिष्ठा धन की नहीं त्याग की होती है।
- ❊ त्याग अवगुणों का नाश करने वाला है।
- ❊ दान देने वाले का हृदय विशाल होता है।
- ❊ सूर्य किरणों को त्याग करके लोक प्रकाशित करता है।
- ❊ मनुष्य लेना तो जानता है और देने में संकोच करता है।
- ❊ मनुष्य कमाता दो हाथ से और खाता एक हाथ से है।
- ❊ पुण्य से कमाओ और पुण्य में लगाओ।
- ❊ अनादिकाल से संचय किये हुए पापों को नाश करने के लिए सर्वोत्तम माध्यम दान है।
- ❊ धन की गति 3 होती है - दान, भोग, नाश। दान देने से कभी कोई गरीब नहीं हुआ।
- ❊ दान अपनी आमदनी अनुसार देना चाहिए।
- ❊ दान का सीधा मतलब है अपने तन, मन और धन से औरों की सहायता करना।
- ❊ जो दिया जाता है वह स्वर्ण सा हो जाता है।
- ❊ पेड़ फलों का त्याग करते हैं, बादल जल का त्याग करते हैं, पर्वत पत्थर का त्याग करते हैं। त्याग अवगुणों का नाश करने वाला है।
- ❊ धन की यदि अच्छी गति है तो केवल दान ही है।
- ❊ अपने साधनों के अनुरूप दान करें अन्यथा ईश्वर तुम्हारे दान के अनुरूप तुम्हारे साधन कर देगा।
- ❊ वह स्वर्ग में ऊँचा स्थान पाता है जो अधिक धन नहीं होने पर भी दान देता है।
- ❊ दान विघ्नों का नाश करने वाला है शत्रुओं का बैर दूर करने वाला है। पुण्य का उपादान है तथा बहुत भारी यश का कारण है।(पद्मपुराण)
- ❊ दान देने से धन, मन, तन और जीवन सफल होता है।
- ❊ जो मनुष्य अपने बढ़ते हुए धन को सर्वदा धर्म के कार्यों में देता है, उसका धन सदा सफल है।

❉ धन को गाड़कर रखने की अपेक्षा दान देकर धन गाढ़ा करो।
❉ दान से इंसान का नसीब खुलता है पुण्य का संचय होता है।
❉ दान देने की विशुद्धि से तीर्थंकर प्रकृति का बंध भी हो सकता है।
❉ देन हार कोई और है, देता है दिन रैन।
लोग भरम मुझ पर करें, तातें नीचे नैन॥
पानी बढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥
बिन मांगे दे दूध बराबर मांगे दे सो पानी।
वह देना है खून बराबर जामें खेचा तानी॥
मर जाऊँ माँगू नहिं अपने तन के काज।
पर स्वारथ के कारणे मोह न आवे लाज॥
❉ दान देने से पूरी दुनिया में यश कीर्ति फैलती है। लोगों में चर्चा होती है। परिग्रह कम होता है।
❉ दान किये बिना सोना नहीं और दान देकर रोना नहीं।
❉ मान नहीं माया नहीं, नहीं नाम की चाह।
वह नर नारी दान भंडार में डाले द्रव्य अपार॥
❉ सैकड़ों मनुष्यों में एक मनुष्य वीर होता है, हजारों में एक विद्वान पंडित तथा लाखों में एक वक्ता और दाता करोड़ों में एक मिलता है।
❉ मान नाम हित किया दान तो, अनर्थ और निस्सार रहा।
पुण्य लक्ष्य से दान किया तो, दान नहीं व्यापार रहा।
पुण्य खरीद निज को भूला, अपना क्यों नुकसान करें।
अहं भाव से रहित दान कर, भगवत् पद आसान करें। (आत्मबोधशतक)
❉ जोड़-जोड़ के जो रखता है, उसके धन में जंग लगे,
गाढ़-गाढ़ के जो रखता है, उसको सर्प भुजंग लगे।
खाता-पीता जो रहता है, उसका धन तो अंग लगे,
अपने धन का दान करे जो, भव भव में संग लगे।
अतः कमाओं धर्म नीति से, खर्च रीतिसे धन करना,
भोग भोगना सदा भीति से, दान प्रीति से सब करना। (अक्षय तृतीया

पूजन)
❉ दान जीवन को सँवारता है।
❉ दान के आभूषण है आनंद के आंसू आना, शरीर रोमाञ्चित होना, बहुमान होना, प्रिय वचन बोलना और बाद में दान की अनुमोदना करना।
❉ दान के दूषण है अनादर पूर्वक देना, देरी करना, विकृत मुख बनाकरदेना, कठोर वचन बोलना, दान देकर पश्चाताप करना और दुःखी होना।
❉ स्व और पर के उपकार के लिए अपने धन का त्याग करना दान कहलाता है।
❉ कोई दानी है, कोई प्रिय बोलने वाले है किन्तु दानी और प्रिय बोलने वाले लाखों में भी दुर्लभ है।
❉ दान अंश का होता है और त्याग सर्वस्य का होता है।
❉ सम्पदा रोज अपना पति बदलती है।
❉ तुम्हारे जोड़े गये धन से समाज, देश, समूह का कल्याण हो, धर्म की प्रभावना हो, संस्कृति की रक्षा हो, राष्ट्र का उत्थान हो और मानवता की सेवा हो।
❉ हमारे देश में त्यागी की पूजा होती है और दानी की प्रशंसा।
❉ याचना करने पर देने से सौ गुना पुण्य होता है।
बिना मांगे देने पर लाख गुना पुण्य होता है।
गुप्त दान देने से करोड़ गुना पुण्य होता है।
किन्तु सेवा के बदलें निष्फल होता है।
❉ भवन बनाने वाला शिल्पी जिस प्रकार ऊपर उठता जाता है इसी प्रकार दान देने वाला ऊपर उठता जाता है।
❉ गृहस्थाश्रम में सिवाय दान के दूसरा कोई कल्याण करने वाला नहीं है।
❉ मिली हुई विभूति का उपयोग पूजा, शास्त्र, मंदिर, गौशाला, पाठशाला, जिनवाणी रक्षण में जो करता है महा भाग्यशाली होता है।
❉ योग्य संपदा को पाकर जो दान नहीं देता है उस मनुष्य को मिली हुई संपदा किसी काम की नहीं।
❉ जो धनी होकर दान नहीं देता उसे मालिक नहीं समझना चाहिए।

- ❇ मनुष्य को दान, पूजन आदि में कदापि लोभ नहीं करना चाहिए।
- ❇ कृपण मनुष्य का इस लोक में जीना व्यर्थ है।
- ❇ उदार का धन तो दान आदि कार्यों में खर्च होता है और कृपण का एक जगह रखा ही रहता है।
- ❇ जो जिनमंदिर बनाने के लिए अथवा सुधार के लिए भूमि, धन, स्वर्ण, चाँदी, धन देता है वह जैनधर्म का रक्षक होता है।
- ❇ त्याग वस्तुओं का होता है, दान अच्छी वस्तुओं का होता है।
- ❇ धन की सफलता दान में, देह की सफलता तत्व के चिंतन में ही है।
- ❇ दान मिले सम्मान मिले, सुख सम्पत्ति का वरदान मिले।
  कदम-कदम पर मिले सफलता, सदियों तक पहिचान मिले॥
- ❇ खजुराहो में जैन मंदिर की प्रशस्ति में लिखा है कि जो एक मंदिर की पूजन आदि की व्यवस्था करेगा में उसका दासानुदास रहूँगा।
- ❇ दिल्ली के लाल मंदिर बनाने वाले महानुभाव ने मंदिर पूरा बनाने के बाद भी कही नाम तक नहीं लिखा।

भक्ति की महिमा

- ❇ जिनेन्द्र भक्ति ही समस्त पापों को नष्ट करने वाली है सातिशय पुण्य का बंध कराने वाली एवं परम्परा से मुक्ति प्रदान करने वाली है।
- ❇ भक्ति और स्तुति प्रभु परमात्मा से मिलाने में व आत्मा से साक्षात्कार कराने में श्रेष्ठतम साधन है।
- ❇ हे प्रभु! आपका स्तवन तो दूर रहे आपके गुणों की कथा भी भव्य जीवों के पापों को नष्ट करने वाली होती है।
- ❇ जिनेन्द्र प्रभु के नाम स्मरण करने मात्र से समस्त विघ्नों का नाश होता है। कोई भय नहीं होता, बाहरी शक्तियाँ कभी उपद्रव नहीं कर सकती अच्छे पदार्थों की प्राप्ति होती है। (धवला पुस्तक)
- ❇ हे पुण्य कीर्ति मुनीन्द्र! आपका कीर्तन भी हमें पवित्र करता है।
- ❇ प्रभु! नाम कीर्तन रूपी जल से समस्त प्रकार की अग्नियाँ स्वयमेव शांत हो जाती है यहाँ तक कि भवाताप भी नाम मात्र का स्मरण करने से शांत

हो जाते है। (भक्तामर स्तोत्र 41)

- ❇ जिन भव्य पुरुष के हृदय में आपकी नाम रूपी नाग दमनी विद्यमान है उस भव्य पुरुष का कर्म रूपी विषधर भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते। (भक्तामर स्तोत्र 41)
- ❇ हे जिनेन्द्र प्रभु आपके दर्शन से आज मेरा शरीर प्रक्षालित हो गया। दोनों नेत्र निर्मल हो गए और मैंने धर्मतीर्थों में स्नान कर लिया।
- ❇ हे शांति प्रभु शांति को देने वाले आपको प्रणाम करता हूँ मुझ पर विशेष कृपा दृष्टि कर शीघ्र ही उत्कृष्ट शांति प्रदान कीजिए।
- ❇ आत्म हितेषु जीव मात्र रूपी नौका के द्वारा ही भव वारिधि को पार करने में समर्थ होते हैं।
- ❇ सच्ची जिनेन्द्र भक्ति कठिन कर्मों का क्षय करने में सक्षम है।

जिन कीर्तन की महिमा

विघ्नाः प्रणश्यन्ति भयं न जातु न दुष्ट देवाः परिलङ्घयन्ति।
अर्थान्यथेष्टाश्च सदा लभन्ते जिनोत्तमानां परि कीर्तनेन॥21॥

अर्थ - जिनेन्द्र देव के गुणों का कीर्तन करने से विघ्न नाश को प्राप्त होते हैं, कभी भी भय नहीं होता है, देवता आक्रमण नहीं कर सकते हैं और निरन्तर यथेष्ट पदार्थों की प्राप्ति होती है। (धवला पुस्तक 1 पृष्ठ 42 श्लोक सं. 21)

णमोकार मंत्र माहात्म्य

(आचार्य श्री उमास्वामी विरचित)

यह मन्त्रराज ज्ञानावरणादि कर्मसमूह को दूर करने वाला है, भव-भ्रमण रूप पर्वतों का नाशक है, स्वर्ग और निर्वाणपुरी में प्रवेश कराने वाला है, सज्जन भव्यजीवों के विघ्नों का निवारक है, मोहरूप सघन अन्ध गर्त में पतित जीवों को हस्तावलम्ब देने वाला है, प्राणिमात्र को जीवनदान देने वाला है, ऐसा यह मन्त्र समस्त चर और अचर जगत् की रक्षा करे॥1॥

यदि कोई व्यक्ति तराजू के एक पलड़े पर पञ्चपरमेष्ठी के अक्षरसमूह को स्थापित करे तथा दूसरे पलड़े पर त्रिलोक को स्थापित करे तो प्रथम पलड़ा भारी

होगा। ऐसे महान् गौरवशाली पञ्चनमस्कारमन्त्र को मैं त्रियोग की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करता हूँ ॥2 ॥

इस असार एवं दुःखपूर्ण संसार में अनंत अवसर्पिणी काल व्यतीत हो गए, उन समस्त कालों में यही मन्त्रराज महत्त्वपूर्ण रहा है अर्थात् अतीत काल में जिन भव्य प्राणियों ने मुक्ति पाई है, विदेहादिक से वर्तमान काल में पा रहे हैं, पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्र से भविष्यत् काल में मुक्ति पायेंगे, यह सब मन्त्रराज का ही प्रभाव जानना ॥3 ॥

जो भव्य प्राणी उठते समय, गिरते समय, धरापीठ पर विश्राम करते समय, शयन के समय, जाग्रत होने के समय, श्मशान एवं वन में, भय के अवसर पर, विकट मार्ग में, नूतन गृह-प्रवेश में यानी कार्य में पञ्च नमस्कार मन्त्र का स्मरण करता है, उसके समस्त विघ्न दूर होकर इच्छित कार्य की सिद्धि नियम से होती है ॥4 ॥

पञ्चपरमेष्ठी मन्त्र का जाप करने से संग्राम, समुद्र, गजराज, भुजंग, सिंह, भयंकर दुःसाध्य रोग, अग्नि, शत्रु, वन्धन, चोर, ग्रहबाधा, शाकिनी-डाकिनी आदि सभी प्रकार के भय दूर होते हैं ॥5 ॥

जो श्रद्धावान्, जितेन्द्रिय भव्य श्रावक एकाग्रचित हो सुगन्धित श्वेत पुष्पों से विधिपूर्वक सर्वभयनाशक मन्त्रराज का एक लाख जाप करता है वह प्राणी त्रिलोकपूज्य तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है ॥6 ॥

णमोकार मंत्र के प्रभाव से चंद्रमा सूर्यरूप, सूर्य चन्द्रमारूप, पाताल आकाशरूप और समस्त पृथ्वी स्वर्गरूप हो जाती है। अधिक कहने से क्या? तीनों लोकों में जो-जो विषम स्थितियाँ हैं, वे सर्व ही समरूप हो जाती हैं ॥7 ॥

संसार-शरीर-भोगों से विरक्त साधुजन भी मन्त्रराज के जाप के बिना मुक्ति को नहीं प्राप्त कर सके, तब दीन संसारीजन तीनों लोकों के जीवों का उद्धार करने वाले मन्त्रराज के जाप के बिना कैसे स्वर्ग-मोक्ष के सुखों को प्राप्त कर सकते हैं अर्थात् कदापि नहीं कर सकते ॥8 ॥

इस लोक में हिंसक, असत्यभाषी, परधनहर्ता, परस्त्रीरत इत्यादि तथा अन्य भी अनेक लोकनिन्दित कुकर्म में रत रहने वाले प्राणिगण मरणकाल में श्रद्धापूर्वक मन्त्रराज के जाप के प्रभाव से अपने दुष्कर्म की निन्दा-गर्हा करके

स्वर्ग को प्राप्त हुए ॥9 ॥

इस मन्त्रराज की अधिक प्रशंसा क्या करें? यह णमोकार मंत्र कल्याणकारी धर्मरूप है, आराधने योग्य जिनदेव रूप है, स्वर्गमोक्ष सुखदायी व्रत रूप है, अतएव प्रत्येक प्राणी को इस मन्त्रराज की नित्य उपासना करनी चाहिए ॥10 ॥

प्रत्येक प्राणी को शयन से पहले, निद्रात्याग के पश्चात्, किसी स्थान पर निवास करते समय, मार्गगमन के अवसर पर, गृहप्रवेश के समय, इतस्ततः भ्रमण के अवसर पर, आमोद-प्रमोद के अवसर पर, वनप्रवेश के समय, पर्वत पर आरोहण एवं अवरोहण के समय, समुद्र से पार होने के अवसर पर इत्यादि अवसरों पर मन्त्रराज का जाप अवश्य करना चाहिए ॥11 ॥

दुःख में, सुख में, भय के स्थान में, मार्ग में, दुर्गमस्थान में, युद्ध के अवसर पर पञ्चनमस्कार मंत्र का जाप करना चाहिए ॥12 ॥

णमोकार मंत्र महिमा

यह अनादि-अनिधन मन्त्रराज समस्त अङ्गों, पूर्वों तथा जिनशासन में श्रेष्ठ सार है ॥1 ॥

जो पञ्चगुरुओं के नमस्कार रूप लक्षण से सहित है तथा जगत् के जीवों को पवित्र करने में समर्थ है, ऐसे श्रेष्ठतम नमस्कार मन्त्र का ध्यान करो ॥2 ॥

जो मुनि इस मन्त्र का मन वचन काय की शुद्धिपूर्वक एक सौ आठ बार चिन्तन करता है, वह आहार करता हुआ भी एक उपवास का पूर्ण फल प्राप्त करता है ॥3 ॥

जिन्होंने पञ्चपरमेष्ठियों के नाम से उत्पन्न, समस्त विघ्नों को हरने वाले एवं नित्य ऐश्वर्य के साधक नमस्कार मन्त्रों का पूर्व में जाप किया था अथवा जो त्रिशुद्धिपूर्वक निरन्तर वर्तमान में उनका जाप करते हैं वे ज्ञानवान् अतिशय धार्मिक पुरुष परलोक में त्रिलोकीनाथ क्यों न होवें-अवश्य होवें ॥4-5 ॥

विद्वानों को विश्वकल्याण की सिद्धि के लिए तथा विश्वविघ्नों को नष्ट करने के लिए कहीं भी इस दुर्लभ मन्त्र को हृदय तथा वचन से नहीं छोड़ना चाहिए ॥6 ॥

जिस प्रकार अणु से कोई छोटा और आकाश से कोई बड़ा नहीं है, उसी

प्रकार इस मन्त्रराज से बढ़कर कोई दूसरा मन्त्र सब सिद्धियों को करने वाला नहीं है ॥7 ॥

कल्याण के इच्छुक मनुष्य कल्याण की प्राप्ति के लिए निरन्तर सभी अवस्थाओं और सभी स्थानों में नित्य मन्त्र का ध्यान करें और वचन से जाप करें ॥8 ॥

जिस प्रकार अग्नि से संतप्त सुवर्ण शुद्ध हो जाते हैं उसी प्रकार महान् पापों से कलङ्कित मनुष्य भी इस मन्त्र की ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा संतप्त होकर शुद्धि को प्राप्त होते हैं ॥9 ॥

स्थिरचित्त वाले मनुष्यों को वचन अथवा मन से णमोकार मन्त्र का जाप करना चाहिए। वचन से जाप करने में सौ गुणा फल प्राप्त होता है तो मन से जाप करने में हजार गुणा फल होता है ॥10 ॥

यह अपराजित मन्त्र-णमोकार मन्त्र सब विघ्नों को नष्ट करने वाला है तथा समस्त मङ्गलों में पहला मङ्गल है ॥11 ॥

अपवित्र हो चाहे पवित्र हो, सुस्थित हो चाहे दुःस्थित हो, जो नमस्कार मन्त्र का ध्यान करता है वह सब पापों से मुक्त हो जाता है ॥12 ॥

इस सम्पूर्ण मन्त्र का स्पष्ट उच्चारण सहित आनन्दविभोर होता हुआ जो जाप करता है निःसन्देह उसके सर्व मनोरथों की सिद्धि होती है ॥13 ॥

मनोरथों को पूर्ण करने के लिए कामधेनु तथा पापरूपी वृक्ष को जलाने के लिए अग्नि-स्वरूप इस मन्त्र के रहते हुए अनिश्चित फल वाले अन्य मन्त्र में क्यों लगा जावे? ॥14 ॥

इस लोक तथा परलोक में निश्चित ही वाञ्छित फल की सिद्धि के लिए पञ्चपरमेष्ठी वाचक मन्त्र के सिवाय दूसरा मन्त्र न हुआ है, न है और न होगा ॥15 ॥

अन्य मन्त्र के फलदायक होने पर भी यही मन्त्र सेवनीय है क्योंकि यद्यपि वृक्ष अग्रभाग में फल देता है तथापि इसकी जड़ ही सींची जाती है। भावार्थ-यह मन्त्र सब मन्त्रों का मूल है ॥16 ॥

सिद्ध किया हुआ यह एक मन्त्र ही समस्त मन्त्रों का कार्य करने वाला होता है और वे अन्य सब मन्त्र इसके एकदेश का भी कार्य नहीं कर सकते हैं ॥17 ॥

मुनि परमपद की प्राप्ति के लिए अन्तिम समय अर्थात् सल्लेखना के काल में पैंतीस अक्षर वाले इसी मन्त्र का निरन्तर जाप करते हैं ॥18 ॥

यह णमोकार मन्त्र संसार में सारभूत है, तीनों जगत् में अनुपम है, समस्त पापों का शत्रु है, संसार को नष्ट करने वाला मन्त्र है, विषम विष को हरने वाला है, कर्मों को निर्मूल करने का मन्त्र है, सिद्धि को देने वाला मन्त्र है, मोक्षसुख को उत्पन्न करने वाला है, केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाला मन्त्र है। हे भव्यजन इस जैनमन्त्र का बार-बार जाप करो क्योंकि जपा हुआ यह मन्त्र संसार से निर्वाण प्राप्त कराने वाला मन्त्र है ॥19 ॥

जिनका चित्त इस समीचीन मन्त्र में लग रहा है उनके दुष्टराजा आदि से उत्पन्न होने वाले समस्त विघ्नों के समूह आधेक्षण में विघट जाते हैं-दूर हो जाते हैं ॥20 ॥

इस मन्त्र के द्वारा कीलित हुए शाकिनी, ग्रह तथा भूत आदि, दुष्ट सर्पों के समान सत्पुरुषों का कहीं भी परिभव नहीं करते हैं ॥21 ॥

चोर, शत्रु, दुष्ट राजा तथा दुर्जन आदि से उत्पन्न हुए बुद्धिमान् मनुष्यों के उपद्रव महामन्त्र के द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥22 ॥

वज्र से पर्वतों के समान, मन्त्र-जाप से कुष्ठ तथा त्रिदोष से उत्पन्न होने वाले समस्त महान रोग क्षय को प्राप्त हो जाते हैं ॥23 ॥

दुष्ट भूत, पिशाच, शाकिनी और दुर्बुद्धि देव मन्त्र में संलग्न चित्त वाले मनुष्यों का पराभव करने में समर्थ नहीं हैं ॥24 ॥

साँकल आदि बड़े-बड़े पाश तथा दृढ़ बंधन आदि, मन्त्र के स्मरण मात्र से शतखण्ड हो जाते हैं ॥25 ॥

सप्त व्यसनों में आसक्त जो अञ्जन आदि चोर तथा क्रूर परिणाम वाले जो तिर्यंच थे, वे भी मृत्यु के समय इस मन्त्र को प्राप्त कर स्वर्ग को प्राप्त हुए थे ॥26 ॥

मन्त्र से उत्पन्न धर्म के द्वारा सर्प सत्पुरुषों के लिए हार हो जाता है, विष निर्विषता को प्राप्त हो जाता है और तलवार पुष्पमाला के समान हो जाती है ॥27 ॥

मन्त्रध्यान में कुशल मनुष्यों के लिए वज्राग्नि शीतलता को प्राप्त हो जाती

है, समुद्र स्थल के समान हो जाता है और सिंह आदिक सेवा करने लगते हैं ॥28 ॥

आश्चर्य की बात नहीं है कि मन्त्र की शक्ति से इस जगत् में धर्मात्मा जनों पर आई हुई समस्त विपदाएँ सम्पदारूप हो जाती हैं और दुःख-सुखरूप परिणत हो जाते हैं ॥29 ॥

जिस प्रकार सूर्य के द्वारा अन्धकार नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार मन्त्र के ध्यान से बुद्धिमान् पुरुषों के सैकड़ों अनिष्ट करने वाले बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं ॥30 ॥

पापपङ्क में फँसे हुए जीव इसी मन्त्र से विशुद्ध होते हैं और बुद्धिमान् मनुष्य इसी मन्त्र के द्वारा संसार सम्बन्धी क्लेश से मुक्त होते हैं ॥31 ॥

इस जगत में यह मन्त्र ही भव्य जीवों को कष्ट से बचाने वाला बन्धु है। इसे छोड़कर जीवों पर कृपा करने वाला कोई अन्य नहीं है ॥32 ॥

दुःखदायक बीमारी में, समुद्र में, वन में, मृत्यु में, भयंकर युद्ध में तथा सब आपदाओं में यह मन्त्र ही जीवों का शरण है- रक्षक है अन्य नहीं ॥33 ॥

रण में, राजदरबार में, अग्नि में, जल में, भारी संकट में, श्मशान में, वन में और शत्रु के विषय में यह मन्त्र निश्चय से सिद्धिदायक है ॥34 ॥

सुमन्त्र का ध्यान करने में तत्पर रहने वाले मनुष्य इन्द्र, अहमिन्द्र, चक्रवर्ती तथा बलभद्र आदि के उत्तम पद एवं अन्य महान् पदों का उपभोग करते हैं ॥35 ॥

णमोकार मन्त्र के प्रभाव से सर्प ने नागेन्द्र पद, अञ्जन चोर ने मोक्ष पद और सुभग ग्वाला ने अभीष्ट फल प्राप्त किया ॥36 ॥

इस जगत् में जो कोई मुनिराज अविनाशी लक्ष्मी को प्राप्त हुए हैं वे एक इसी महामन्त्र की आराधना कर प्राप्त हुए हैं ॥37 ॥

मन्त्र के प्रभाव से कुत्ते ने भी देव पद, धनपति सेठ ने नीरोगता और जिनदत्त सेठ ने आकाशगामित्व-आकाशगामिनी विद्या प्राप्त की थी ॥38 ॥

हजारों पाप करके तथा सैकड़ों जीवों को मार कर तिर्यञ्च भी इस मन्त्र की आराधना कर स्वर्ग को प्राप्त हुए हैं ॥39 ॥

इस मन्त्र का समस्त प्रभाव योगियों के भी अगोचर है, उसे जो अनभिज्ञ-

अज्ञानी जीव कहता है, वह वायुरोग से पीड़ित है ऐसा मैं मानता हूँ ॥40 ॥

महामन्त्र के प्रसाद से, त्रिभुवन में होने वाली धर्मनिमित्तक लक्ष्मियाँ धर्मात्मा मनुष्यों के पास दासियों के समान चली आती हैं ॥41 ॥

यह मन्त्र सत्पुरुषों को कल्पवृक्ष के समान अभीष्ट सुख को देने वाला है और अमूल्य चिन्तामणि के समान चिन्तित अर्थ को प्रदान करने वाला है ॥42 ॥

समुद्र में, विषम वन में, दावानल में, भयंकर युद्ध में और सभी आपदाओं में यह मन्त्र प्राणियों का समीचीन बन्धु तथा रक्षक है ॥43 ॥

यह मन्त्र अभिलषित समस्त वस्तुओं को देने वाली कामधेनु है, यह मन्त्र ही प्राणियों का भण्डार है, स्वामी है, पिता है, माता है और इससे बढ़कर दूसरा हितकारी मित्र नहीं है ॥44 ॥

इस जगत् में जो कुछ भी दुःसाध्य, दूरवर्ती अथवा अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है, वह सब मन्त्रराज का ध्यान करने वाले मनुष्यों के हाथ में शीघ्र ही आ जाती है ॥45 ॥

इस विषय में बहुत कहने से क्या लाभ है? इतना ही कहना पर्याप्त है कि प्राणी जिस-जिस वस्तु की इच्छा करता है, मन्त्रराज के प्रसाद से उसे वही-वही वस्तु निश्चित ही प्राप्त होती है ॥46 ॥

देवदर्शन प्रशंसा

प्रातः काल उठकर मङ्गलों के देने में समर्थ, पापप्रणाशक, श्रेष्ठ पुण्य के हेतु तथा सुर-असुरों के द्वारा सेवित चरण-कमलों से युक्त श्रीजिनेन्द्र प्रतिमा का अच्छी तरह दर्शन करना चाहिए ॥1 ॥

हे भगवन्! आज आपके दर्शन से मेरे नेत्र कृतकृत्य हो गये। जन्म सफल हो गया और सब पाप विलीन हो गये ॥2 ॥

हे देव! आपके चरण युगल के दर्शन से कर्मों का क्षय होता है। दर्शन करने वाला व्यक्ति बोधि तथा समाधि को, संसार की निकटता को, पाप के मूल कारण के विनाश को तथा परलोक में सर्वार्थसिद्धि के विपुल सुख को प्राप्त होता है ॥3 ॥

दोषों को दूर करके गुणों को ग्रहण करना ही संस्कार हैं।

अष्टाह्निक पर्व की महिमा

अष्टाह्निक पर्व सभी पर्वों में सबसे बड़ा पर्व है। पर्व में की गई भक्ति-आराधना, व्रत, उपवास, संयम की आराधना उत्कृष्ट कर्म निर्जरा का साधन है, इस पर्व में की गई आराधना इस भव में सुख-शांति-समृद्धि का कारण है। और परभव में मुक्ति का कारण है। इस पाठ से जानें अष्टाह्निक पर्व की महिमा।

तीन लोक में सबसे बड़ा पर्व-

तीन लोक में सबसे बड़ा पर्व अष्टाह्निक पर्व है।

अष्टाह्निक पर्व - अष्टाह्निक पर्व वर्ष में तीन बार आता है- कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़। इन महीनों के अंतिम आठ दिन पर्व के कहलाते हैं।

अष्टाह्निक पर्व विशेष पर्व क्यों है

1. अष्टाह्निक पर्व ऋतुओं का संधिकाल है।
2. यह पर्व विशेष कर्म निर्जरा का साधन है।
3. इस अष्टाह्निक पर्व में चतुर्निकाय के देव स्वर्गों के अपार वैभव एवं भोग सामग्री को गौण करके अष्टाह्निक पर्व में नंदीश्वर द्वीप जाकर विशेष आराधना करते हैं।
4. प्रायः सभी तीर्थंकरों ने पूर्व में अष्टाह्निक पर्व की आराधना करके अद्भुत पुण्य संचय किया, जो उनके निर्वाण में निमित्त कारण बना।
5. अष्टाह्निक पर्व में मन-वचन-काय की शुद्धि पूर्वक की गई व्रतों की आराधना तीन भवों में संसार से पार लगा देती है।

अष्टाह्निक पर्व ऐसे मनाना चाहिए -

1. हम मनुष्य हैं, हमारा पुण्य और सामर्थ्य इतनी नहीं कि हम नंदीश्वर द्वीप जा सकें पर हमारा पुण्य इतना क्षीण भी नहीं कि हम स्थापना निक्षेप से अष्टाह्निक पर्व की आराधना न कर सकें।
2. कृत्रिम जिनालय एवं जिनबिम्बों में अकृत्रिम जिनालयों और जिनबिम्बों की परिकल्पना करें।
3. पर्व के दिनों में आरम्भ के कार्यों से बचें।
4. पर्व के दिनों में उदासीन वृत्ति रखें।

5. कषायों को यथासंभव मंद रखने का प्रयास करें।
6. ब्रह्मचर्य से रहें।
7. पर्व के दिनों में सादगी पूर्ण जीवन शैली बनायें।
8. मर्यादित शुद्ध आहार करें।
9. चटाई या पाटे पर शयन करें।
10. तीनों संधिकालों में सामायिक करें।
11. अष्टाह्निक पर्व पर नंदीश्वर पूजा, नंदीश्वर विधान या सिद्धचक्र विधान करें।
12. पर्व के दिनों में अपनी सामर्थ्य अनुसार उत्तम-मध्यम-जघन्य रीति से व्रत करें।

नंदीश्वर द्वीप की विशेषताएँ -

1. इस द्वीप में 52 अकृत्रिम चैत्यालय हैं।
2. नन्दीश्वर द्वीप का विस्तार एक दिशा में 163 करोड़ 84 लाख योजन है।
3. इस द्वीप में चारों दिशाओं में 84 हजार योजन विस्तार वाले चार अंजनगिरि पर्वत हैं।
4. सभी चैत्यालय एवं प्रतिमाएँ अकृत्रिम हैं।
5. प्रत्येक चैत्यालय में 108-108 प्रतिमाएँ हैं।
6. नन्दीश्वर द्वीप में कुल प्रतिमाओं की संख्या 5616 है।
7. सभी प्रतिमाएँ पद्मासन, रत्नमयी 500 धनुष ऊँची हैं।
8. प्रतिमाएँ करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा की कांति को हरने वाली हैं।
9. अंजनगिरि पर्वत के चारों ओर चार-चार निर्मल जल से भरी हुई बावड़ियाँ हैं।
10. जिनके मध्य में दधिमुख पर्वत हैं, जो श्वेत रंग के हैं।
11. प्रत्येक दधिमुख पर्वत के बाह्य कोण पर दो-दो रतिकर पर्वत हैं, जो लाल रंग के हैं।
12. इस तरह एक दिशा में कुल तेरह पर्वत हैं। प्रत्येक पर्वत पर एक-एक चैत्यालय हैं।
13. सभी पर्वत ढोल के समान गोल हैं।

14. 4 अंजनगिरि, 16 दधिमुख तथा प्रत्येक दधिमुख पर्वत के बाहरी कोने पर 2-2 रतिकर पर्वत इस प्रकार 32 रतिकर पर्वत हैं। इस प्रकार कुल 4+16+32=52 पर्वत हैं।
15. एक-एक शिखर पर एक-एक रत्नमयी चैत्यालय हैं।
16. सभी देवगण अष्टाह्निक पर्व में परिवार के साथ आठ दिन तक नन्दीश्वर द्वीप में अभिषेक-पूजन करने जाते हैं।
17. अष्टाह्निक के अलावा अन्य दिन में भी देवगण नन्दीश्वर द्वीप में अभिषेक पूजन करने जाते हैं।
18. इस द्वीप में मनुष्य गण नहीं जा सकते।
19. नन्दीश्वर द्वीप की एक-एक दिशा में क्रमशः भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक देव अपने-अपने समूह के साथ पूजन करते हैं। प्रत्येक छह-छह घण्टे के बाद सभी देवगण एक दिशा से दूसरी दिशा में पूजन करने चले जाते हैं।

अकृत्रिम चैत्यालय

मध्यलोक के 458 अकृत्रिम चैत्यालय

चैत्य- प्रतिमा

आलय- निवास, भवन

चैत्यालय- जिन प्रतिमा का स्थान

1. पंचमेरु संबंधी- 5×16=80

प्रत्येक मेरु में	-	भद्रसाल वन	4	
	-	नंदन वन	4	
	-	सोमनस वन	4	चारों दिशाओं में एक एक
	-	पाण्डुक वन	4	
			16	

2. पंचमेरुओं के गजदंत सम्बन्धी 5×4=20
(सौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन, माल्यराज)
3. पाँचों उत्तरकुरु, देवकुरु संबंधी 5×2=10
4. पाँचों विदेहों के वक्षार गिरियों सम्बन्धी 5×16=80

5. अढ़ाई द्वीप के षट् कुलाचलों सम्बन्धी 5×6=30
(हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मि, शिखरिण)
6. अढाई द्वीप के विजयार्धों 5×34=170
7. धातकी तथा पुष्करद्वीप के इष्वाकारों संबंधी 2×2=4
8. मानुषोत्तर पर्वत पर चारों दिशाओं संबंधी 1×4=4
9. नन्दीश्वर द्वीप में चारों दिशाओं संबंधी 13×4=52
(प्रत्येक दिशा में 13 मंदिर) (1 मूल, 4 दिशा, उनमें एक-एक दिशा में दोनों कोनों पर दो दो और)
10. कुण्डलवर द्वीप में चारों दिशाओं संबंधी 1×4=4
11. रुचकवर द्वीप में चारों दिशाओं संबंधी 1×4=4

इस प्रकार अढ़ाई द्वीप

जम्बूद्वीप संबंधी	78
धातकीखण्ड संबंधी	156
पुष्करार्ध संबंधी	156
	390

अढ़ाई द्वीप से बाहर

इष्वाकार के	4
मानुषोत्तर पर्वत के	4
नन्दीश्वर द्वीप	52
कुण्डलपर्वत	4
रुचकपर्वत	4
	68

390+68=458

❖ प्रत्येक मन्दिर में 500, 500 धनुष प्रमाण की 108, 108 प्रतिमाएँ है। अर्थात् 458×108=49464 प्रतिमायें हैं।

❖ अधोलोक संबंधी अकृत्रिम जिनमन्दिर

भवनवासी के दश भेदों में-

असुरकुमार के 6400000

नागकुमार के	8400000
सुपर्णकुमार के	7200000
द्वीपकुमार के	7600000
उदधिकुमार के	7600000
स्तनितकुमार के	7600000
विद्युतकुमार के	7600000
दिक्कुमार के	7600000
अग्निकुमार के	7600000
वायुकुमार के	9600000

77200000 जिन मंदिर × 108 प्रतिमायें = 8,33,76,00,000 प्रतिमायें हैं।

नोट- अधोलोक में भवनवासी देवों के सात करोड़ बहत्तर लाख भवन है, अतः वहाँ इतने ही जिनमन्दिर हैं।

ऊर्ध्वलोक संबंधी अकृत्रिम जिनमन्दिर-

सौधर्म स्वर्ग के	3200000	
ईशान स्वर्ग के	2800000	
सानत्कुमार के	1200000	
माहेन्द्र के	800000	
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर के	400000	
लांतव कापिष्ठ के	50000	
शुक्र महाशुक्र के	40000	8496700
शतार सहस्रार के	6000	
आनत प्राणत+आरणच्युत के	700	
तीन अधोग्रैवेयक के	111	
तीन मध्यग्रैवेक के	107	309
तीन ऊर्ध्वग्रैवेक के	91	
नव अनुदिश के	9	
पंच अनुत्तर के	5	14

84,97,023×108 = 91,76,78,444 प्रतिमायें हैं।

❈ ज्योतिषीदेवों के असंख्यात विमानों में असंख्यात जिनमन्दिर हैं।

❈ व्यन्तर देवों के असंख्यात निवास स्थानों में असंख्यात जिनमन्दिर हैं।

❈ **तीनों लोकों के अकृत्रिम चैत्यालय एवं प्रतिमाओं का कुल योग**

स्थान	**चैत्यालय**	**प्रतिमायें**
अधोलोक- भवनवासी	77200000×108=	8,33,76,00,000
मध्यलोक	458×108=	49,484
ऊर्ध्वलोक-कल्प(16 स्वर्ग) एवं कल्पातीत	84,97023×108=	91,76,78,474
कुलयोग		8,56,97,481×108= 9,25,53,27,948=प्रतिमाएं

कहा भी है-

णवकोडिय पणवीसा लक्खा तेवण्ण सहस्स सगवीसा।
णव सय तह अडयाला जिणपडिमाकिट्टिमां वंदे॥

❈नौ अरब,पच्चीस करोड, त्रेपन लाख, सत्ताईस हजार, नौ सौ अड़तालीस जिनबिम्व है। तीनों लोकों की इन समस्त अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं की मैं वंदना करता हूँ।

*** यावंति जिनचैत्यानि विद्यंते भुवनत्रये।**
तावंति सततं भक्त्या त्रिःपरीत्य नमाम्यहम्॥

***अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणाम्,**
वन-भवन-गतानां दिव्य वैमानिकानाम्।
इह मनुज-कृतानां देव-राजार्चितानाम्,
जिनवर-निलयानां भवतोऽहं स्मरामि॥ (लघु चैत्यभक्ति, 2)

***ज्योतिर्व्यन्तर भावनामरगृहे मैरो कुलाद्रौ स्थितः,**
जम्बूशाल्मलि चैत्यशाखिषु तथा वक्षार रूप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु में मङ्गलम्॥

उच्चारण निर्देश

लेखकः क्षुल्लक श्री ध्यान सागर जी महाराज

1. संयुक्ताक्षर के पूर्व यदि लघु अक्षर हो तो स्वराघात पूर्वक उच्चारण करें। दो या दो से अधिक व्यंजनों वाला अक्षर संयुक्ताक्षर कहलाता है।
जैसे- क्ष= क्+ष्+अ त्र = त्+ र् + अ
ज्ञ = ज्+ञ्+अ द्य = द्+य् + अ प्र = प्+र्+अ
1. स्व= स्+व! स्वर अथवा स्वर युक्त व्यंजन को अक्षर (वर्ण) कहते हैं। संयुक्ताक्षर में आगत प्रथम व्यंजन के पिछले लघु वर्ण के साथ बलपूर्वक उच्चारित करना स्वराघात है। जैसे- भक्त शब्द से भक्+त, विश्वास में विश्+वास, श्रद्धा में श्रद्+धा, विद्या में विद्+या लक्ष्य में लक्+क्ष्य, सप्रेम में सप्+रेम इत्यादि।
2. रेफ के नीचे वाले अक्षर को रुकते हुए उच्चारित करें। जैसे- विभु र्विधातुम में विभुर् पर अटक कर विधातुम बोलें। रेफ र् है, उसे र बोलने से एक अक्षर बढ़ जाता है। अधिक विराम देने पर ताल भंग हो जाता है। इसी तरह = शिशुर्यदि, जलधेर्ननु, इत्यादि।
3. आगामी अक्षर का उच्चारण स्थान ही अनुस्वार का उच्चारण स्थान हो। जैसे- संसार- सन् सार, मंदिर- मन्दिर, अंघ्रि-अड़+घ्रि, सन्स्तवन (सन्+स्तवन) मंगल - मङ्गल, चंचल - चञ् चल, संजय- सञ् जय, अकंप- अकम्+प आदि।
4. कुछ वर्णोच्चार अंग्रेजी भाषनुसार करने पर शुद्ध उच्चारण आ जाते हैं। जैसे- Moksh : Mox मोक्ष, Dixit दीक्षित, Laxmi लक्ष्मी।
5. विसर्ग (:) का उच्चारण दीवार से टकराकर लौटी हुई ह की ध्वनि के समान हो।
6. ज को ज़, फ को फ़, ढ को ड, द्य को ध्य या द्ध, मृ को म्र न बोलें। फ को दोनों ओंठ मिलाकर बोलें।
7. स, श एवं ष के शुद्धोच्चारण का प्रयोगात्मक प्रशिक्षण लें।
स = इसके उच्चारण में दन्त स्पर्श होता है, इसे दन्ति स कहते हैं।
श = इसके उच्चारण में तालु स्पर्श होता है, इसे तालब्य श कहते हैं।

ष = इसके उच्चारण में मूर्धा (उपरिम भाग) का स्पर्श होता है, इस मूर्धन्य ष कहते हैं।

8. संस्कृत व्याकरण भाषा स, श, ष को क्रमशः दन्ति स, तालव्य श एवं मूर्धन्य ष कहते हैं, क्योंकि इनके उच्चारण के समय इस स्थानों की सहायता लेनी पड़ती है। सहस्र को सहस्त्र, ज्ञान को ग्यान, प्रवत्तः को प्रव्रत्त या प्रवर्तः क्ष को छण, मोक्ष को मोक्छ उच्चारण न करें।
9. स्तोत्र, स्तव, स्तुति आदि शब्दारम्भ में 'इ' न जोड़े किन्तु स् के उच्चारण स्थान पर जिह्वा लगाकर किञ्चित् वायु निकालते हुए तोत्र, तुति या पष्ट आदि का उच्चारण करें। अन्य उच्चारणगत समस्याओं का समाधान योग्य प्रशिक्षण द्वारा संभव है।

छन्द ज्ञान

छन्द का नाम	छन्द के पढ़ने का तरीका	छन्द का प्रकार
शार्दूलविक्रीडित	12-7 वर्ण संवृत्त	वर्णिक
आर्या	12-15, 12-18	मात्रिक
दोधक	6-5 वर्ण संवृत्त	वार्णिक
वसन्ततिलका	8-6 वर्ण संवृत्त	वार्णिक
उपजाति	5-6 वर्ण संवृत्त	वार्णिक
स्रग्धरा	7-7 वर्ण संवृत्त	वार्णिक
अनुष्टुप्	8-8 वर्ण संवृत्त	वार्णिक
मन्दाक्रान्ता	4-6-7 वर्ण संवृत्त	वार्णिक
रथोद्धता	4-7/3-8 वर्ण संवृत्त	वार्णिक
हरिणी	6-7-7 वर्ण संवृत्त	वार्णिक
वियोगिनी	14-16 वर्ण संवृत्त	मात्रिक
आर्यागीति/स्कन्ध	12-20 मात्रिक संवृत्त	मात्रिक
दुबई		
भद्रिका		
प्रहर्षिणी	3-10 वर्ण संवृत्त	वार्णिक

(साभार : वीरचर्या)

संस्कृत सरल उच्चारण विधि

लेखकः मुनि श्री अमितसागर जी महाराज

शुद्ध उच्चारण करना नहीं आया इसलिये आचार्य उमास्वामी ने स्वाध्याय के 5 भेदों में एक आम्नाय नाम का स्वाध्याय भी लिखा है। आम्नाय का अर्थ है शास्त्रों को छन्द, व्याकरण आदि नियमों के अनुसार शुद्ध पढ़ना। नीतिकारों ने कहा है कि -

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किं।
लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणः किं करिष्यति?

अतः इस विषय में विचार किया जाए तो आज के व्यक्ति के पास शास्त्र तो बहुत हैं पर पढ़ने की प्रज्ञा नहीं है या आज-कल के युवक-युवती इसलिए धर्मशास्त्रों को पढ़ने की, भक्ति, स्तुति पढ़ने की उपेक्षा करते हैं, क्योंकि उनका उच्चारण सही नहीं हो पाता या उच्चारण सही बताने वाला नहीं मिल पाता, अतः हमने व्याकरण की दृष्टि से स्वराघात विधि में शब्द खण्ड (स्ह्लह्वड्डड्ढ्यद्र) की रीति से शब्दों के बीच में (-) डेस लगाकर शब्दों का उच्चारण सरल कर दिया, क्योंकि जिनकी शिक्षा कान्वेंट संस्कृति से हुई हो, उन्हें जब हिन्दी का उच्चारण ही शुद्ध नहीं आता तब संस्कृत भाषा के बड़े-बड़े समासान्त-सन्धि युक्त वाक्यों को पढ़ने में अवश्य ही कठिनाई होती है।

हमारे वर्तमान के संस्कृत के विद्वानों ने इस बात का कतई ध्यान नहीं दिया कि इतने बड़े-बड़े समासान्त-सन्धि युक्त श्लोकों, सूत्रों को पाठकगण या तो पढ़ ही नहीं पाते या पढ़ते हैं तो अशुद्ध उच्चारण करते हैं, जिससे आज-कल के युवक-युवतियाँ धर्मशास्त्र या भक्तामर, तत्त्वार्थसूत्र, द्रव्य संग्रह जैसे भक्तिपूर्ण चमत्कारिक, वैज्ञानिक शोध के रहस्यपूर्ण, अध्यात्म की अनुभूतियों से भरे ग्रन्थों को पढ़ने की उपेक्षा कर देते हैं।

हाँ, वर्तमान की पद्धति में सङ्गीत की धुनों में स्तुति-स्तोत्र पाठ भले ही सुनने में अच्छे लगें, लेकिन सङ्गीत की ध्वनि में शब्दों की; ह्रस्व, दीर्घ, अनुस्वार, विसर्ग आदि मात्राओं का महत्त्व लुप्त हो जाता है, जिससे उच्चारण स्पष्ट नहीं हो पाता।

अतः इस ''सरल उच्चारण पाठ संग्रह'' को सङ्गीत की ध्वनि से दूर

रखकर ही सही उच्चारण देने का प्रयास किया गया। जब आप उच्चारण करना सीख जायेंगे तब आप इस पढ़ने की विधि को 'सेल्फ कोचिंग' प्रणाली कह सकते हैं।

आज के भौतिक वैज्ञानिक युग में भले ही मेडिकल साइन्स का बोलवाला है, लेकिन कहते हैं कि जब दवा काम नहीं करती तब दुआ काम करती है। जब व्यक्ति सब ओर से हताश हो जाता है तब वह धर्मशक्ति की शरण में आता है। यदि उसे धर्म शक्ति पर विश्वास नहीं है तो आत्महत्या करना, मानसिक संतुलन खो देना, टेन्शन में रहना जैसी प्रवृत्तियाँ आ जाती है।

ऐसे जीवन से निराश प्राणियों के लिए, भक्ति- स्तुति आदि का अवलम्बन महत्त्वपूर्ण हो जाता है, लेकिन यथार्थ जानकारी के अभाव में, तन्त्र- मन्त्र आदि से ठगने वालों के चक्कर में आकर, तन-मन-धन सब बर्बाद कर देते हैं। अतः आप स्वयं अपने बल परआध्यात्मिक शक्ति को, भक्ति-स्तुति के माध्यम से अपने अन्दर पैदा करें, जिससे आपकी शारीरिक, मानसिक, दैविक, आर्थिक समस्यों के समाधान हो सकें, क्योंकि जिन भगवान की भक्ति में संसार से मुक्ति तक मिलती हो, उन भगवान की भक्ति से यदि व्यवहारिक बिगड़े हुए कार्य ठीक हो जायें तो क्या आश्चर्य?

आशा ही नहीं, हमें पूर्ण विश्वास है कि आप इन मूल पाठों का उच्चारण सीखकर, अपनी आत्मिक सुख-शान्ति का अनुभव करेंगे।

सरल उच्चारण पाठ सीखने के लिये निम्न बिन्दुओं का ध्यान रखें-

(1) रिकार्डिंग प्रारम्भ कर लें एवं साथ वाली 'सरल उच्चारण पाठ संग्रह' की पुस्तक खोल लें। जिसमें से स्तुति सुनकर याद कर लें, जिसे शास्त्र सभा या किसी धार्मिक प्रोग्राम में मङ्गलाचरण के रूप में बोल सकते हैं तथा छोटे बच्चों में शारदा, सरस्वती, जिनवाणी के प्रति आदर का भाव जाग्रत हो, अतः उन्हें भी बोलना सिखा देना चाहिए। सरस्वती भवन में भी इन छन्दों को पेन्टर से लिखवा सकते हैं।

(3) भक्तामर स्तोत्र ''बसन्त तिलका'' छन्द में पढ़ा जाता है। जिसके नाम ''सिंहोन्मत्ता'', ''उद्धर्षिणी'', ''मधु माधवी'' छन्द भी हैं।

इसके प्रत्येक छन्द में 4-4 चरण (लाइनें) हैं तथा प्रत्येक चरण में 14-

14 वर्ण हैं।

इन 14-14 वर्णों में भी 7 ह्रस्व एवं 7 दीर्घ वर्ण हैं। एक काव्य के इन चारों चरणों में कुल 56 वर्ण हैं। 48 काव्यों में कुल 2688 वर्ण या अक्षर हैं।

(4) ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

भक्ता म र प्र ण त मौ लि म णि प्र भा णा

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14

ऽ= दीर्घ (दो मात्रा), । =(एक मात्रा) गिनने के चिन्ह हैं। इन 14 वर्णों में 1, 2, 4, 8, 11, 13, 14 वाँ, ये 7 वर्ण दीर्घ हैं तथा 3, 5, 6, 7, 9, 10, 12 वाँ, ये 7 वर्ण ह्रस्व हैं।

(5) कहीं- कहीं छन्द में अन्त का 14 वाँ वर्ण ह्रस्व भी होता है। जैसे- पीठ, मुनीश, धाम, हन्ति, करोति, भूत आदि।

(6) लेकिन छन्द में चरण के मध्य कहीं भी मात्राओं के हिसाब से, दीर्घ मात्रा की आवश्यकता हो, किन्तु वहाँ पर यदि ह्रस्व मात्रा हो एवं उसके आगे संयुक्ताक्षर हो तो ह्रस्व मात्रा को दीर्घ मात्रा बनाने के लिए स्वराघात विधि होती है, जिससे ह्रस्व मात्रा को दीर्घ मात्रा में गिना जाता है।

(7) **स्वराघात विधि के नियम-**

यहाँ ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ,लृ) के बाद में (सामने) संयुक्ताक्षर (दो व्यञ्जनों के जोड़ को संयुक्ताक्षर कहते हैं। जैसे- प्र, द्य, ध्व, क्र, क्ष, त्र, ज्ञ, द्वि, त्त, स्व; आदि) हों तो स्वराघात विधि होती है।

अथवा

छन्द में जहाँ कहीं भी संयुक्ताक्षर के पहले ह्रस्व स्वर के उच्चारण में जोर या खिचाव पड़ता हो वहाँ स्वराघात विधि होती है। (छन्दशास्त्र, पिंगल पीयूष)

जैसे- भक्तामर-प्रणत को लोग; उच्चारण करते समय भक्तामरा या भक्तामरे पढ़ जाते हैं, परन्तु भक्तामर के र में जोर या खिचाव है एवं उसके आगे प्रणत का प्र संयुक्ताक्षर है, अतः यहाँ स्वराघात विधि होगी।

ह्रस्व स्वर को संयुक्ताक्षर के प्रथम व्यञ्जन वर्ण से आघात (टकराने)

होने पर उस संयुक्ताक्षर के प्रथम व्यञ्जन वर्ण का दो बार उच्चारण होता है, उसे ही **स्वराघात** कहते हैं।

जैसे- भक्तामर प्रणत, इसमें भक्तामर के र वर्ण में अकार ह्रस्व है और प्रणत का प्र संयुक्ताक्षर है, अतः भक्तामर शब्द के उच्चारण के साथ प्र के प् का संयुक्ताक्षर है, इसलिए भक्तामर शब्द में उच्चारण के साथ प्र के प् का उच्चारण एक बार भक्तामर शब्द के साथ भक्तामरप् के रूप में होगा और प्रणत शब्द का पूरा उच्चारण होता है। इसी प्रकार मणि-प्रभाणा में मणि के ण् में इ ह्रस्व स्वर होने से प्रभाणा के प्र के प् का उच्चारण पहले मणि शब्द के साथ मणिप् के रूप में होता है पुनः प्रभाणा का उच्चारण, **जैसे-** मणिप्-प्रभाणा। इसी प्रकार गुरु-प्रतिमोऽपि को गुरुप्-प्रतिमोऽपि, । रपि-प्रवृत्तः को रपिप्-प्रवृत्तः। अल्प-श्रुतं को अल्पश्-श्रुतं। तव-प्रभावात् को तवप् प्रभावात्। फल-द्युति को फलद्-द्युति। मति-क्रम को मतिक्-क्रम। इसी प्रकार आगे भी लगाना चाहिए।

भक्तामर जी में प्रायः द्वित्व उच्चारण में स्वराघात होने वाले स्वरों को नीचे लाईन (-) लगाकर चिन्हित कर दिया है। बस इतना ध्यान रहे कि जो अक्षर संयुक्त हैं, उसमें पहले व्यञ्जन का ही द्वित्व उच्चारण होगा।

(8) व्यञ्जन, विसर्ग, अनुस्वार एवं दीर्घ मात्रा के बाद यदि संयुक्ताक्षर है तब स्वराघात विधि नहीं होगी।

जैसे- सम्यक्, प्रणम्य, तं प्रथमं, जगत् त्रितय, नमः क्षिति, कस्ते क्षमः आदि शब्दों में स्वराघात विधि नहीं होगी, क्योंकि सम्यक् में क् व्यञ्जन है, तं में म् अनुस्वार है। जगत् में भी त् व्यञ्जन है। नमः क्षिति के नमः में विसर्ग है। कस्ते क्षमः के ते में दीर्घ मात्रा है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिए।

(9) छन्द में जिस स्कार का उच्चारण इस् जैसा होता है।

जैसे- इस्तोत्र, इस्तुति, इस्पष्ट,; होता है एवं ऐसा स्कार चरण के पहले, बीच में या विसर्ग के सामने (बाद में) हो तो उस स्कार का उच्चारण लोप (साइलेन्ट) हो जाता है।

जैसे- नॉलेज (चठुश्2द्यद्गस्त्रद्गद्ग) शब्द में द्य-स्त्र साइलेन्ट हैं। उच्चारण लोप (साइलेन्ट) का अर्थ है, अक्षर या वर्ण लिखा होने पपर भी उसका उच्चारण न हो।

जैसे- स्तोत्रैर् को इस्तोतैर् न पढ़कर तोत्रैर्, स्तोष्ये को तोष्ये, स्तुति को तुति। इसी तरह मुच्चैः स्थितं को मुच्चैः थितं। स्थगित को थगित। श्च्योतन् को च्योतन् पढ़ना। इन सबमें स्, श् साइलेन्ट हैं। इसी प्रकार छन्द के अन्य प्रसङ्गों में भी जानना चाहिए।

(10) जो स्कार, स्वर के सामने हैं तथा जिसका उच्चारण इस् जैसा होता है, उस स्कार का उच्चारण पहले स्वर के साथ हो जाता है, लेकिन स्वराघात विधि (द्वित्व उच्चारण) नहीं होती है। **जैसे**- भक्तामरस्-तोत्र/परमागमस्-तुति/ शिखरस्-थित/गुणस्-थान/ परास्-थिति आदि।

(11) जिस स्कार का उच्चारण इस् जैसा नहीं होता है, उसका उच्चारण लोप (साइलेन्ट) नहीं होता है, लेकिन स्वर के सामने आने पर उस स्कार का स्वराघात (द्वित्व उच्चारण) हो जाता है। **जैसे**- महावीरस् स्वामी नयन पथ गामी भवतु मे। ज्ञान स्वरूप को ज्ञानस् स्वरूप, लेकिन जिस स्कार का उच्चारण इस् जैसा नहीं होता और जो छन्द के चरण में पहले है, उसका लोप नहीं होता है, उसे साथ में ही बोलते हैं।

जैसे- स्वस्ति, स्वाति, स्वामी, श्याम, स्वाहा, स्वभाव।

(12) अनुस्वार (.) के सामने स्कार हो तो साइलेन्ट न होकर अनुस्वार के साथ ही उच्चारण हो जाता है।

जैसे- जल संस्थित- जल संस्- थित/ कर्तुंस्तवं- कर्तुंस्-तवं/ संस्तवनं-सन्स्-तवनं/ संस्मरण- सन्स्मरण।

(13) विभक्ति का उच्चारण बाद में ही होता है। जैसे- मुद्द्योतकं को मुद्द्यो-तकं न बोलकर मुद्द्योत-कं, वालम्बनं को वालम्-बनं न बोलकर वालम्ब-नं, परमात्मने को परमात्-मने न बोलकर परमात्म-ने बोलना चाहिए।

(14) शब्दों में उपसर्गों का उच्चारण पहले होता है तथा शब्दों में प्रत्ययों का उच्चारण बाद में होता है।

जैसे- उपसर्ग में-

अपवर्ग- अप उपसर्ग/उपवर्ग-उप उपसर्ग है

उपगता- उप उपसर्ग/उपयाति-उप उपसर्ग है

आपाद- आ उपसर्ग/ विगत-वि उपसर्ग है

अशेष- अ उपसर्ग/उद्भूत-उद् उपसर्ग है

जैसे- प्रत्यय में-

मनुजत्व - मनुज- त्व प्रत्यय है।

परमेश्वरत्व- परमेश्वर- त्व प्रत्यय है।

गुणवान्- गुण्- वान् प्रत्यय है।

जैसे-कुछ लोग क्षयोपशम एवं भोगोपभोग पदों को उच्चारण करते समय क्षयो-पशम एवं भोगो-पभोग पढ़ते हैं, किन्तु सही उच्चारण क्षयोप-शम एवं भोगोप-भोग पढ़ना चाहिए। इस प्रकार और भी उपसर्ग एवं प्रत्ययों के उच्चारण के नियम आगे कहेंगे फिर भी इस दोष को दूर करने के लिए सूत्रों में डेस (-) लगाकर उसे उच्चारण योग्य बनाया है।

(15) यदि स्वर-स्वर की सन्धि हो तो सन्धि स्वर का पहले उच्चारण होगा।

जैसे- स्वर्ग+अपवर्ग =स्वर्गा-पवर्ग

कृत+अवकाश= कृताव-काश

जीवित+आशाः = जीविताशाः

दावानल+अहि = दावानला-हि

(16) यदि सन्धि में व्यञ्जन, स्वर में जाकर मिला हो तो उस स्वर सहित व्यञ्जन का उच्चारण बाद में होता है।

जैसे- तरीतुम्+अलम्+अम्बुनिधिं=तरीतु-मल-मम्बु-निधिं

प्रभाणाम्+उद्द्योतकं = प्रभाणा-मुद्द्योतकं

वर्तिर्+अपवर्जित=वर्ति-रपवर्जित

(17) इसके कुछ अपवाद नियम भी हैं।

जैसे-सदसद् को स-दसद् न कहकर सद-सद् पढ़ना, क्योंकि इसका सन्धि विश्लेषण में सद्+असद् पढ़ा जाता है। यदि उच्चारण में स-दसद् पढ़ा जायेगा तो स का अर्थ सहित एवं दसद् का कोई अर्थ नहीं होने से अनर्थ होता है। सद् अस्तित्ववाची है, अतः सद-सद् पढ़ते समय, पहले सद को आराम से तथा दूसरे सद् को जल्दी बोलने से उच्चारण सही आ जाता है।

(18) शब्दों के बीच-बीच में जो एस(ऽ) आकार का चिन्ह है, उसे अविग्रह

कहते है। अ अर्थात् अ का, विग्रह यानि शरीर। जो अ का शरीर है, उसे अविग्रह कहते हैं।

इस अविग्रह चिन्ह का उच्चारण नहीं होता है।

ऽ=अ ह्रस्व/ ऽऽ= आ दीर्घ/ ऽऽऽ= आ प्लुत।

एक ''ऽ'' चिन्ह में ह्रस्व अ लुप्त है। दो ''ऽऽ'' चिन्ह में दीर्घ आ लुप्त है। तीन या इससे अधिक ''ऽऽऽऽ'' चिन्ह में प्लुत अर्थात् अवर्ण को जैसे सङ्गीत में बहुत देर तक खींचते हैं, उसे प्लुत मात्रा कहते हैं।

(19) रेफ (र्) की मात्रा तीन प्रकार से लगती है। र् को रेफ कहते हैं।

पहला- स्वर सन्धि में यदि र्, व्यञ्जन के पहले है तो रेफ (र्) ऊपर की ओर लगती है। जैसे- पूर्व, पर्व, पर्वत।

दूसरा- व्यञ्जन सन्धि में यदि र्, व्यञ्जन के बाद है तो रेफ (र्) नीचे की ओर लगती है। जैसे- प्रेम, प्राची, प्रखर, व्रत।

तीसरा- विसर्ग सन्धि के अनुसार रेफ (र्) का विसर्ग भी बन जाता है एवं विसर्ग का (र्) रेफ का भी बन जाता है।

स्तोत्रै-र्जगत् को स्तोत्रैर्-जगत्

भूतै र्गुणै-र्भुवि को भूतैर्-गुणैर्

इसी प्रकार भक्तामर में उच्चारण की सुविधा के लिए सन्धि स्थान में रेफ (र्) वाली मात्रा (र्-) को र् बनाकर लिख दिया है, क्योंकि (र्-) का उच्चारण र् ही होता है।

(20) विसर्ग (:) का उच्चारण कण्ठ से ह् जैसा होता है एवं जहाँ ह्रस्व मात्रा में विसर्ग हो, उसे दीर्घ मात्रा माना जाता है। विसर्ग सन्धि में वर्ग आदि के अनुसार, श्, ष्, स् इन तीनों का विसर्ग होता है। जैसे- दुःख, निःशेष, निश्शल्य।

(21) वर्ग वर्णों के उच्चारण स्थान-

1. क वर्ग- मुँह में कण्ठ के पास जीभ टकराती है।

क्-ख्-ग्-घ्-ङ्

2. च वर्ग- मुँह में तालु से जीभ टकराती है।

च्-छ्-ज्-झ्-ञ्

3. ट वर्ग- मुँह में मूर्धन्य के पास जीभ टकराती है।

ट्-ठ्-ड्-ढ्-ण।

4. त वर्ग- मुँह में ऊपर दाँतों की पंक्ति में जीभ टकराती है।

त्-थ्-द्-ध्-न्।

5. प वर्ग- मुँह में दोनों ओठों की सहायता से प वर्ग बोला जाता है।

प्-फ्-ब्-भ्-म्।

श्- तालुव्य श् कहलाता है, क्योंकि इसे तालु की सहायता से बोला जाता है। जैसे- शक्कर।

ष्- मूर्द्धन ष् कहलाता है, क्योंकि इसे मूर्द्धना अर्थात् जीभ के अग्रभाग को ऊपर को मोड़कर, मूर्द्धना से उच्चारण किया जाता है।

स्- दन्तीय स् कहलाता है, क्योंकि इसे दाँतों की सहायता से बोला जाता है। जैसे- सड़क, सरोंता।

(22) भक्तामर स्तोत्र के प्रत्येक चरण (लाइन) को तीन जगह हलका-सा विराम देकर उच्चारित किया जाता है, अतः उच्चारण के अभ्यास के लिए, उस शून्य (0) तक के शब्दों का उच्चारण करें पुनः नाक से श्वांस भरकर आगे पढ़ें। जिससे उच्चारण किये गए शब्दों का एवं आगे होने वाले शब्दों का, ह्रस्व, दीर्घ, विसर्ग, अनुस्वार, हलन्त (व्यञ्जन) आदि का बोधगम्य उच्चारण हो।

उच्चारण सीखने के बाद, आप किसी भी धुन-लय में पढ़ सकते हैं। भक्तामर स्तोत्र में कहीं-कहीं पाठ भेद हैं उन्हें, संख्या डालकर अन्त में लिख दिये हैं, वहाँ से मिला लें।

(23) जैसे- हिन्दुओं में गीता, मुस्लिम में कुरान, ईसाईयों में बाइबिल, सिक्खों में गुरु ग्रन्थ साहब का महत्त्व है। उसी प्रकार जैनियों में भी तत्त्वार्थ सूत्र- मोक्ष शास्त्र का महत्त्व है। प्रत्येक जैन बन्धु का कर्त्तव्य है कि तत्त्वार्थसूत्र सीखें-पढ़ें।

लगभग पच्चीस वर्षों से तत्त्वार्थसूत्र की संस्कृत टीकाओं सहित हिन्दी के संक्षिप्त सूत्रार्थ-टीकाओं को पढ़ने-पढ़ाने का क्रम जारी है, जिससे मूलसूत्र सम्बन्धी एवं संस्कृत टीकाओं सहित हिन्दी टीकाओं के मूल

शब्दों का विश्लेषण करने का अनुभव प्राप्त हुआ।

(24) मूलसूत्रों में कहीं-कहीं लिपिकारों के कारण व्याकरण से सन्धि के नियम टूटे हैं तो कहीं-कहीं पाठ भेदों से उन्हें स्वीकार कर लिया गया है। जैसे-

अविग्रह पद रहित- मतिः स्मृतिः संख्या चिन्ताभिनिबोध
इत्यनर्थान्तरम्।
एक समयाविग्रहा।
परतःपरतः पूर्वा पूर्वानन्तरा।
संख्येयासंख्येयाश्च।
शब्द बन्ध सौक्ष्म्य स्थौल्य संस्थान
भेद तमश्छायातपो-द्योतवन्तश्च।

अविग्रह पद सहित- मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध
इत्यनर्थान्तरम्।
एक समयाऽविग्रहा।
परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा।
संख्येयाऽसंख्येयाश्च।
शब्द बन्ध सौक्ष्म्य स्थौल्य संस्थान
भेद तमश्छायाऽऽतपो-द्योतवन्तश्च।

ऐसे कई प्रसङ्ग हैं जहाँ सवर्ण सन्धि में (ऽ) अविग्रह न्हि का प्रयोग हुआ है। एक बार कुछ व्रती-विद्वानों से चर्चा करने पर ज्ञात हुआ कि न्याय के आचार्यों ने, जैसे- समन्तभद्राचार्य, अकलङ्कदेवाचार्य आदि ने सन्धि विग्रह के दोष से बचने के लिए (ऽ) अविग्रह चिन्ह का प्रयोग किया है।

अकलङ्क स्वामी ने राजवार्तिक में कई स्थानों पर अवर्ण की सवर्ण सन्धि में अविग्रह का प्रयोग किया है, जिससे सन्धि विग्रह करते समय विश्लेषण का अतिक्रम न हो, अतः कुछ खास पदों के साथ ही इनका प्रयोग हुआ है।

जैसे- मतिः स्मृति संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध......... इसमें चिन्ताऽभिनिबोध में (ऽ) अविग्रह चिन्ह दिया हैं, कारण कि यदि बिना अविग्रह चिन्ह के सूत्र को चिन्ताभिनिबोध इस प्रकार लिखने से जब सूत्र का सन्धि विग्रह करेंगे तो

सन्धि विग्रह से अनविज्ञ एवं मूलशब्द के भाव से अनविज्ञ लोग चिन्ता-आभिनिबोध का विग्रह करेंगे, अतः इस दोष से बचने के लिए (ऽ) अविग्रह चिन्हों का उपयोग किया गया है। दीर्घ आकार के लिए (ऽऽ) अविग्रह चिन्ह दिया गया है, अतः यह कोई दोष नहीं है। इतना विशेष ध्यान रखना कि (ऽ-ऽऽ) विग्रह चिन्हों का उच्चारण नहीं होता है- वे साइलेन्ट रहते हैं।

(25) **दूसरा नियम- ''एदोत्पदान्ते लोपं अकारः''** सूत्र के अनुसार जब अकार का लोप होता हैं तब वहाँ भी (ऽ) अविग्रह चिन्ह लगाया जाता है। जैसे- यदि सोऽहं की जगह सोहं लिखे तो सन्धि विग्रह में स+उहं बनेगा, जिससे अर्थ का अनर्थ हो जायेगा, अतः सन्धि विग्रह की सुविधा के लिए अविग्रह चिन्ह का उपयोग किया जाता है।

(26) व्यञ्जन सन्धि में भी इसी प्रकार जहाँ पर व्यञ्जनों की वर्गों के अनुसार सन्धि होती है, वहाँ अनुस्वार (ं) का उपयोग किया गया है अर्थात् ङ्, ञ्, न्, ण्, म् को अनुस्वार कर दिया है।

इन्हीं पदों को निम्न तरीके से भी लिखा है-
जीवाजीवास्त्रव बंध संवर निर्जरा----------।
व्यंजनस्यावग्रहाः।
नैगम संग्रह ------------वंभूता नयाः।
ज्ञानाज्ञान ------------- पंच भेदाः।
संमूर्च्छन ------------ गर्भोपपादा जन्म।
सकषाय कषाययोः सांपरायिकेर्यापथयोः।

इसी प्रकार कई स्थलों पर पूर्ण पदों में व्यञ्जन सन्धि के नियम टूटे हैं, किन्तु व्यञ्जनों के वर्गों की सन्धि निम्न प्रकार से होना चाहिए-
जैसे- जीवाजीवास्रव बन्ध संवर निर्जरा------।
व्यञ्जनस्यावग्रहाः।
नैगम संग्रह-------वम्भूता नयाः।
ज्ञानज्ञान--------पञ्च भेदाः।
सम्मूर्च्छन गर्भोपपादा जन्म।
सकषायाकषायायोः साम्परायिकेर्यापथयोः।

(27) तत्त्वार्थसूत्र पढ़ने में सबसे बड़ी समस्या है, उसका उच्चारण। सन्धि ज्ञान के अभाव में शब्दों का उच्चारण सही नहीं हो पाता है। संस्कृत के उच्चारण का अर्थ है- ह्रस्व-छोटा (।); दीर्घ-बड़ा(ऽ); विसर्ग(:); अनुस्वार (ं);, इन चारों के उच्चारण को सही बोलना। ह्रस्व यानि छोटा, दीर्घ यानि बड़ा, विसर्ग यानि बराबर का, अनुस्वार यानि अहंकारी। छोटे, बड़े, बराबरी के एवं अहंकारी व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करना यह संस्कृति है।

(1) अधकांश गलती दूसरे अध्याय के सूत्र संख्या बत्तीस (32) में होती है-सचित्त शीत संवृता-------''तद्योनयः'' इसे तधो-नयः; इस तरह पढ़ते हैं, किन्तु इसे तद्-योनयः इस तरह पढ़ना चाहिए, क्योंकि योनि शब्द बहुवचन पद योनयः बनता है।

(2) इसी तरह तीसरे अध्याय का सूत्र संख्या उन्तालीस (39) तिर्यग्योनिजानां च को ''तिर्यग्यो-निजानां च'' पढ़ते हैं, किन्तु इसे ''तिर्यग-योनिजानाम् च'' इस तरह पढ़ना चाहिए, क्योंकि इस सूत्र का अर्थ- तिर्यञ्च योनियों में उत्पन्न होने वालों की आयु; मनुष्यों की आयु के समान होती हैं, ऐसा होता है।

(3) इसी तरह छटवें अध्याय के सूत्र संख्या सोलह (16) माया तैर्यग्योनस्य को माया तैर्यग्यो-नस्य ऐसा पढ़ते हैं, जबकि इसे माया तैर्यग-योनस्य ऐसा पढ़ना चाहिए।

(28) सूत्रों का शुद्ध उच्चारण करने के लिए सूत्रों के बीच-बीच में प्रसङ्गानुसार (-) डेस तो लगा ही है, लेकिन थोड़े रुकने, समझने के लिए अल्प विराम (,) का भी प्रयोग किया गया है। जिससे सूत्रों का उच्चारण सही एवं सामूहिक पाठ में भी एक साथ हो।

(29) **गद्य भाषा के उच्चारण में कहीं-कहीं स्वराघात होता है, सर्वत्र नहीं,** किन्तु कुछ उच्चारण सिखाने वाले सर्वत्र स्वराघात का नियम लगा देते हैं।

जैसे- प्रथम अध्याय के पहले सूत्र को ही लें-

सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः ॥1॥ इसे स्वराघात करके

इस तरह पढ़ते हैं- सम्यग्दर्शनग्ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः ऐसा स्वराघातपूर्ण उच्चारण गलत है।

(30) सूत्रों में स्वराघात के कुछ अपवादित पद; जिन्हें बिना स्वराघात के नहीं बोला जा सकता है। जैसे- अवग्रह को अवग्-ग्रह, अव्यय को अव्-व्यय, अव्याबाध को अव्-व्याबाध पढ़ते हैं। **वैसे तो स्वराघात विधि, छन्द-काव्य में मात्राएँ पूर्ण करने के लिए लगाई जाती है।**

(31) प्राचीन समय की व्याकरण के नियम अनुसार रेफ (र्-ˆ) से आक्रान्त वर्ण का द्वित्व विकल्प से होता है; ऐसा माना है, जैसे- धर्म को धर्म्म, अर्ध को अर्ध्द, चर्म को चर्म्म, शर्म को शर्म्म, स्पर्धक को स्पर्ध्दक, वर्धमान को वर्ध्दमान आदि लिखते थे, किन्तु अब इस का प्रचलन नहीं है, यदि किसी टीका या सूत्र में रेफ से आक्रान्त वर्ण पढ़ने में आवे तो अशुद्ध नहीं मानना।

(32) विसर्ग (:) का उच्चारण कण्ठ से ह् जैसा होता है। श्, ष्, स्; इन तीनों के विसर्ग भी होते हैं।

सन्धि विग्रह को समझने से सूत्र के मूल पदों के सामान्य अर्थ समझ में आने लगते हैं एवं उन सूत्रों में कथित उनके भेद-प्रभेदों को गिनने में भी सरलता हो जाती है।

(33) हिन्दी अनुवादक अब अनुनासिक (ँ) को, अनुस्वार (ं) लिखने लगे हैं। जैसे- यहाँ-वहाँ, जहाँ-कहाँ आदि को, यहां-वहां, जहां-कहां। मन्त्रों में ह्रीँ की ह्रीं लिखते हैं, जो अशुद्ध है।

(34) **सूत्रों के सन्धि विग्रह में मात्र स्वर सन्धि एवं विसर्ग सन्धि के विश्लेषण का ध्यान रखा है।**

(35) सोलह- सत्रह-सौ वर्ष से इन ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ बनती आ रहीं हैं। कभी-कभी एक गलती भूल से एक प्रति में हो गयी; वही गलती दूसरी प्रतिलिपियों में आ जाती है। प्रतिलिपिकार भी यदि भाषा विज्ञानी नहीं हुए तो वही गलती दूसरी प्रतिलिपियों में आ जाती है। जैसे- बन्ध को बंध।

व्यञ्जन को व्यंजन आदि; अधिकतम गलतियाँ ङ्, ञ्, न्, ण्, म् को

अनुस्वार (ं) करके या विसर्ग या ह्रस्व-दीर्घ की भूल लिपिकारों से होती गयी, जिससे मूलसूत्र एवं टीकाओं में भी भूल होती रही, अतः अब पुनः कई प्राचीन प्रकाशित मूल ग्रन्थों से मूलसूत्रों का मिलान करके एक मूलसूत्र की पाण्डुलिपि तैयार की है।

(36) मोक्षमार्ग और मोक्ष का प्रतिपादन होने से इसे मोक्षशास्त्र भी कहते हैं। इस प्रकार इस ग्रन्थ के तत्त्वार्थसूत्र और मोक्षशास्त्र-ये दो नाम प्रसिद्ध हैं।

(37) इस प्रकार इस छोटे से सूत्रग्रन्थ पर लिखे गए गम्भीर, विशाल और युक्ति-युक्त ग्रन्थों की समृद्ध परम्परा है। दिगम्बर जैन परम्परानुसार तत्त्वार्थसूत्र के दशों अध्यायों में कुल 357 सूत्र हैं-
प्रथम अध्याय में 33 सूत्र हैं। द्वितीय अध्याय में 53 सूत्र हैं। तृतीय अध्याय में 39 सूत्र हैं। चतुर्थ अध्याय में 42 सूत्र हैं। पञ्चम अध्याय में 42 सूत्र हैं। षष्टम अध्याय में 27 सूत्र हैं। सप्तम अध्याय में 39 सूत्र हैं। अष्टम अध्याय में 26 सूत्र हैं। नौवें अध्याय में 47 सूत्र हैं। दशम अध्याय में 9 सूत्र हैं।

(38) दशों अध्यायों में पाँचवें अध्याय का सूत्र संख्या ग्यारहवाँ में, सबसे अल्पाक्षर 'नाणोः' है। पूरे तत्त्वार्थसूत्र में वर्ण माला के दो वर्ण, झ एवं फ का प्रयोग नहीं हुआ है।

(39) **सूत्र 'क्रिया' पद रहित होते हैं, इनमें क्रिया का अध्याहार किया जाता है। दशवें अध्याय का पाँचवाँ सूत्र अपवाद है, जिसमें ''गच्छत्या'' क्रिया पद लगा हुआ है।**

(40) सूत्र उच्चारण विधि में सूत्र के साथ कॉमा(,) चिन्ह लगाया है, जिससे शब्द उच्चारण को समय मिले एवं उच्चारित वर्ण; आगे-पीछे न हों, इससे सामूहिक पाठ का भी अनुभव मिलता है तथा नये सीखने वालों को सरलता मिलती है। इतना ध्यान रखें कि कॉमा की जगह थोड़ा रुककर नाक से हल्की श्वांस अन्दर की ओर खींचे, जिससे सूत्र का उच्चारण सही गति से बना रहता है एवं अगले शब्द के उच्चारण की भूमिका भी बन जाती है।

(41) तत्त्वार्थसूत्र उमास्वामी आचार्य द्वारा लिखित संस्कृत भाषा का प्रथम ग्रन्थ है। इस तत्त्वार्थ सूत्र पर अनेक आचार्यों ने टीकायें लिखीं, परन्तु पूज्यपादाचार्य की सर्वार्थसिद्धि टीका है। मूल सूत्रों को कई प्राचीन प्रतियों से मिलाकर शुद्ध सूत्रों को संग्रहीत करने का प्रयास इस सरल उच्चारण पाठ संग्रह में किया गया है। 7 वें अध्याय के 29 वें सूत्र में **भाण्ड** शब्द सिरि भूवल ग्रन्थ से लिया गया है।

(42) तत्त्वार्थ सूत्र के बाद ''गागर में सागर'' की युक्ति को चारितार्थ करने वाली ''द्रव्य संग्रह'' नाम की प्राकृत भाषा में 58 गाथाओं वाली कृति है। जिसमें जीव एवं अजीव द्रव्य का स्वरूप, सामान्य और विशेष विधि से गाथाओं द्वारा समझाया गया है। 1. मूल गाथायें ''बृहद्-द्रव्य संग्रह'' ग्रन्थ से संशोधित की हैं। 2. गाथाओं का उच्चारण रिकार्डिग से सुनकर सीख लें तथा सामान्य अर्थ, ''सरल उच्चारण पाठ संग्रह'' की पुस्तक में गाथाओं के नीचे दिया है, उसे समझने की कोशिश करें। आपका थोड़ा-सा श्रम, समयदान आपके जीवन के लिये वरदान सिद्ध हो सकता है।

(43) आप अपनी सुविधानुसार प्रतिदिन यदि डेढ़-दो घण्टे का समय देते हैं तो आप अवश्य ही लगभग 45 दिन में भक्तामर जी, तत्त्वार्थसूत्र जी, द्रव्य संग्रह जी, इन तीनों के पाठों का शुद्ध उच्चारण करना सीख सकते हैं।

(44) प्रारम्भ के 7 दिन तक आप, मात्र रिकार्डिग से शब्द उच्चारण को सुनें तथा रिकार्डिग के उच्चारण के साथ ''सरल उच्चारण पाठ संग्रह'' वाली पुस्तक से उच्चारण का मिलान करें। मुख से न बोलें कान रिकार्डिग की ध्वनि में, आँख किताब पर रखें।
आठवें दिन आप स्वयं बेहिचक नया उच्चारण अपने कण्ठ से अवतरित कर लेगें, क्योंकि पहले हम उच्चारण को बार-बार सुनें, जिससे हमारी पूर्व उच्चारण की गलतियाँ मानसिक रूप से सुधर जायेंगी अथवा उच्चारण की गति पकड़ में आ जायेगी।

(45) यदि आपको पाठों का उच्चारण सरल लगने लगे तो आप छुट्टी के दिन,

अपने-दूसरों के 10 वर्ष से बड़े बच्चे-बच्चियों को भी 2-3 काव्यों का, तत्त्वार्थ सूत्र के एक अध्याय का, द्रव्य संग्रह की 2-4 गाथाओं का उच्चारण इस पुस्तक एवं रिकार्डिंग की सहायता से अवश्य करायें। जिससे उन्हें भी संस्कृत भाषा पढ़ने का शौक-चाव बनेगा एवं शब्दों का सही उच्चारण भी सीख लेंगे।

नोट :- पुराने ''सरल उच्चारण पाठ संग्रह'' में बहुत कमियाँ रह गयी थीं। जिन्हें शिविर में पढ़ाते समय पकड़ा। उन कमियों को इस संस्करण में दूर कर दिया है फिर भी प्रमादवश कोई अक्षर, मात्रा की भूल रह गई हो तो सूचित करें एवं विज्ञजन हमें क्षमा करें।

(साभार : सरल उच्चारण पाठ संग्रह)

मूर्ति पूजा का उद्देश्य

यद्यपि प्रतिमा निर्जीव है, तथापि अंतस् में वीतरागता संभव नहीं, तो भी बाह्य में वीतराग नग्न मुद्रा तो है ही यदि अंतस् में वीतरागता नहीं तो राग भी नहीं है, क्योंकि अचेतन में रागद्वेष नहीं होता है। निर्जीव प्रतिमा से भी वीतरागता की ओर दृष्टि जाती है, राग-द्वेष की ओर दृष्टि नहीं जाती है। यही तो मूर्ति के माध्यम से, मूर्तिमानों के गुणों को ध्यान करना, मूर्ति पूजा का मुख्य ध्येय हुआ करता है। मूर्ति स्थापित करके पूजा करते समय यह धातु की है या पाषाण की है, जयपुर में बनाया जाता है और फलाँ कारीगर ने बनाया है, इस प्रकार ध्यान करके भगवान् की पूजा नहीं की जाती है बल्कि आप वीतरागी हैं, अनंत गुणों से युक्त हैं और घातिया कर्मों को नष्ट किया है इत्यादि प्रकार से स्तुति की जाती है। जब पाषाण की प्रतिमा बनाते हैं, तब पाषाण की पूजा नहीं बल्कि उस पाषाण में जो छैनी-हथोड़े की मार से परमात्मा का आकार उभर कर आया फिर उसमें मंत्रों द्वारा गुणावरोपण किया, उन गुणों की पूजा है। उस पाषाण ने छैनी हथौड़ा गर्मी-वर्षा आदि उपसर्ग, परीषह को साक्षात् परमात्मा के समान जीता है। जो बताती है कि परीषह-उपसर्ग सहन करने पर ही पूज्यता आती है इसलिए वह पाषाण भी परमात्मा बनकर पूज्य हुआ है।

जिस प्रकार बच्चे के लिए छोटे-छोट कंकड़ आदि घटा-बढ़ाकर अंकों का बिन्दु-गोला डण्डा आदि आकृति बना-बनाकर शब्दों का ज्ञान कराया जाता है, उसी प्रकार परमात्मा का ज्ञान, धातु, पाषाण आदि की मूर्ति बनाकर किया जाता है, अतः मूर्ति को भगवान् का प्रतीक मानकर पूजा जाता है। जैसे ज्ञान की वृद्धि के लिए शब्दों को मिलाकर एक शास्त्र की रचना की जाती है। वैसे ही मूर्ति के दर्शन, भक्ति, पूजन आदि के द्वारा मिथ्यात्व , अज्ञान आदि को दूर किया जाता है। इस कलिकाल में ग्रंथ और मूर्ति धर्मध्यान का सशक्त साधन है। (लेखक-बा.ब्र. प्रतिष्ठाचार्य जयकुमार 'निशांत')

(साभार : जिन स्तुतीयम्)

परेशानियों से बचाती है नियमित पूजा अर्चना

नियमित रूप से भगवान् की पूजा करने से मन शांत रहता है, साथ ही परेशानियों में फँसने की संभावना भी कम हो जाती है, यह बात अमेरिका के शोधकर्ताओं द्वारा किए गए एक अध्ययन से सामने आयी है, चेपल हिल में स्थित यूनिवर्सिटी ऑफ नार्थ कैशलीना के समाज विज्ञानी डॉ. क्रिश्चियन स्मिथ ने 2478 किशोरों का अध्ययन कर के पाया कि धार्मिक अभिरुचि रखने वाले किशोरों का व्यवहार अच्छा होता है, जो किशोर नियमित रूप से मंदिर जाते हैं और धर्म को जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग मानते हैं, वे दूसरों के प्रति दुर्व्यवहार करने व परेशानियों में पड़ने से बच जाते हैं। स्कूल और परिवार में उन को सम्मानजनक दृष्टि से देखा जाता है।

इस अध्ययन से एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी सामने आयी है कि बचपन में जिन में पूजा, प्रार्थना करने का संस्कार रहता है, उन किशोरों का व्यवहार सकारात्मक हो जाता है जब-कि इस के अभाव में किशोरों में नकारात्मक प्रवृत्ति पड़ जाती है। नियमित पूजा, प्रार्थना करने वाले किशोर, शराब, सिगरेट व मांसाहार से दूर रहते हैं। अगर बुरी संगति में पड़कर वे कभी इन चीजों का सेवन करते हैं तो शीघ्र ही आत्मग्लानि होने से छोड़ देते हैं।

(साभार : जिन स्तुतीयम्)

देव दर्शन-विधि

❖ प्रातःकाल सूर्योदय से पहले उठकर सर्वप्रथम मन-वचन-काय की एकाग्रता एवम् भावपूर्वक नौ बार णमोकार मंत्र की आराधना करें। पंच परमेष्ठी का स्मरण करें। फिर दोनों हथेलियों को आपस में घिसकर थोड़ा गरम करके अपनी आँखों पर लगाएँ। (इससे आँखों की भी ज्योति ठीक रहेगी।)

❖ विस्तर का त्याग करें। हाथ-पैर धोकर रात्रि संबंधी कपड़े बदल कर, मंत्र जाप, भक्तामर स्तोत्र, स्तुति, मेरी भावना, आलोचना पाठ आदि का मंद उच्चारण से पाठ करें।

❖ सर्वप्रथम घर में छोटे- बड़े सभी से जय जिनेन्द्र बोलें, फिर अन्य कार्य करें।

❖ घर में सभी बड़े जनों का विनय/अभिवादन करें। आशीर्वाद लें कि हमारा दिन अच्छा रहे, सब अपना कार्य अच्छी तरह करें, सफल हों।

❖ फिर छने जल से जीव रहित स्थान पर अल्प पानी का व्यय कर स्नान करें। चर्बी रहित सामान साबुन आदि का कम से कम उपयोग करें। धुले वस्त्र पहनें। मंदिर की मर्यादा, कुल की मर्यादा के योग्य वस्त्रों से शरीर को ढँकें, व्यवस्थित दिखें।

❖ यदि बहुत दूर न जाना हो तो चप्पल, जूते पहनकर वाहन-सवारी से मंदिर न जाएँ तो सर्वश्रेष्ठ रहेगा।

❖ जूठे मुख मंदिर न जाएँ। घर, दुकान, व्यवसाय, नौकरी, रिश्ते-नाते, मित्रों संबंधी विकल्प घर पर ही त्याग करके जाएँ।

❖ मंदिरजी देवदर्शन के लिए जा रहे हैं, खाली हाथ न जाएँ। अन्यथा खाली ही लौटोगे। यथा शक्ति सुंदर-स्वच्छ, सुगंधित, श्रेष्ठ अष्ट द्रव्य की थाली या डिब्बा में द्रव्य लेकर ही जाएँ।

❖ रास्ते में किसी भी तरह की चर्चा न करें, मौन ही जाएँ। मन में मंत्र पाठ, स्तुति या मेरी भावना आदि पढ़ते हुए प्रभू गुणों का स्मरण करें।

❖ नीचे देखें, जीव दया का ध्यान रखें। गंदगी आदि पर पैर न रखा जाए।

❖ दूर से मंदिर दिख जाए या मंदिर का शिखर दिख जाए तो महा आनंद

का अनुभव करें कि मैं परम उपकारी भगवान के घर के निकट आ गया हूँ। मेरे सारे मनोरथ आज अवश्य ही पूरे हो गए। मेरे सौभाग्य का समय आ गया। आज मेरे सारे पुण्य फलीभूत हो गए हैं। तीन लोक के नाथ, अक्षय निधि के स्वामी का दर्शन मुझे मेरी आत्मनिधि का लाभ कराएगा। भगवान मेरे आत्म कार्य के समर्थ कारण हैं। इनके दर्शन बिना मैं आत्म दर्शन का मार्ग नहीं पा सकता। ऐसे शुभ चिंतन से जब मंदिर के बाहर पहुँचें तब वहाँ रखे छने या प्रासुक पवित्र पानी से ठीक तरह, दोनों पैर के पंजों को धोवें। यहाँ से और अधिक आनंद से विशुद्ध शुभ भाव पूर्वक भगवान के दर्शनार्थ भीतर मंदिर में प्रवेश करें।

❖ मंदिर जी के द्वार से ही 'निस्सही-निस्सही-निस्सही' कहते हुए प्रवेश करें और जिन प्रतिमा दिखते ही ओम् या ऊँ जय जय जय नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु को धीमी ध्वनि से उच्चारित करें। मंदिर में लगे घंटे को धीरे-धीरे बजाएँ। उसी के नीचे खड़े हो, उसकी तरंगावली का अनुभव कर विचारें- शरीर स्वस्थ हो रहा है, सभी रोगाणु शरीर से बाहर निकल गए हैं। हमारे शरीर की ऊर्जा धवल पवित्र हो गई है। प्रभु का प्रभाव उनकी दिव्य आभा हमारी आत्मा में अवतरित हो रही है।

❖ फिर प्रसन्न मन से आगे बढ़ें। भावपूर्वक णमोकार मंत्र, चत्तारि दंडक पढ़ें, द्रव्य चढ़ायें, बैठकर नमस्कार करें और देवाधिदेव की वेदी की तीन परिक्रमा चन्द्रमा-सूर्य की तरह लगाएँ। प्रत्येक परिक्रमा पूर्ण होने पर प्रभु के सामने मुकुलित रूप जुड़े हाथों को सीने के मध्य स्थापित करके माथा पूरी तरह झुका के नमोस्तु करें।

❖ परिक्रमा के बाद व्यवस्थित पूरी तरह बैठ के भगवान को बड़ी श्रद्धा से वंदना करके नमस्कार करें।

❖ फिर एक तरफ खड़े होकर (सम्मुख खड़े न हों, किसी को व्यवधान न हो) स्तुति पाठ करें। पुनः व्यवस्थित बैठकर नमस्कार करें।

❖ ध्यान रखें, किसी दर्शन करने वाले के, नमस्कार करते हुए दर्शनार्थी के सामने से न निकलें न ही उनके सामने से खड़े हो।

❖ वेदी के निकट ही सामने बैठकर जाप आदि न करें। इससे दूसरे दर्शनार्थियों

को भगवान को नमस्कार करने में असुविधा होती है।

- ❈ पूजा करने वालों को न छुएँ।
- ❈ स्त्रियाँ अपनी बाई और पुरुष अपने दाई और से दर्शन-पूजन करें। (इससे सुविधा भी रहेगी)

जिन दर्शन की महिमा

- ❈ जो जिन मंदिर बनवाता है उस सुचेता को अपूर्व भोगोत्सव मिलते हैं।
- ❈ जो जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा शुद्धि-विशुद्धि एवं श्रद्धा भाव पूर्वक प्रसन्न चित्त हो कर बनवाते हैं वह देवोपुनीत सुख पाकर शीघ्र ही मोक्ष/परम पद प्राप्त करते हैं।
- ❈ तीनों कालों और तीनों लोकों में व्रत-ज्ञान-तप और दान के द्वारा जो मनुष्यों को पुण्य कर्म का संचय होता है, उससे अधिक भावपूर्वक जिनप्रतिमा बनवाने से होता है जिसकी तुलना किसी से नहीं हो सकती। जिसका फल मनुष्य पर्याय में चक्रवर्ती आदि पद को पाकर भोगते हैं।
- ❈ जो अरिहंत, सिद्ध और मुनियों को श्रद्धाभाव पूर्वक नमस्कार करता है वह जिन शासन के भक्तों से स्नेह पाता है और शीघ्र ही सम्यक् मोक्ष मार्ग को प्राप्त करता है।
- ❈ जो स्वभाव से (भावों की निर्मलता से) जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार करता है वह पुण्य का घर होता है। पाप वृत्ति का अंश भी उसके पास नहीं रहता।
- ❈ जो जिनेन्द्र देव को भावपूर्वक उनके जैसे गुणों को प्राप्त करने की भावना से स्मरण करते हैं, उनके करोड़ों भवों के संचित पाप कर्म शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।
- ❈ जो लोक श्रेष्ठ, महारत्न जिनेन्द्र देव को हृदय में धारण करते हैं उनको सभी ग्रह, स्वप्न और शकुन सभी सदा शुभ ही रहते हैं।
- ❈ जो इस सम्यक् विधि से धर्म का सेवन करते हैं, वह शीघ्र ही भव्यत्व को प्राप्त करते हुए तीन लोक के शिखर पर सिद्ध भगवान बनके विराजमान होते हैं।

मंदिर जाने का फल

मंदिर जाते समय उपवास के बराबर फल।
कोड़ा कोड़ी अनंतफल जब प्रभु दर्श करेय॥

- ❈ जिन प्रतिमा के दर्शन करने का चिंतवन (इच्छा) करने से दो उपवास का फल प्राप्त होता है।
- ❈ जिन मंदिर के लिए आह्लाद भाव से जाने की तैयारी पर तीन उपवास का फल मिलता है।
- ❈ जो जिनमंदिर के लिए श्रेष्ठ अष्ट द्रव्य के साथ जाने का शुभारंभ करते हैं तब चार उपवास का फल मिलता है।
- ❈ जो स्नान पूर्वक, धुले वस्त्र पहिनकर जिन मंदिर जाते समय भक्ति भाव से, नीची निगाह करके, जो जीवों की रक्षा करके चलते हैं, किसी अपवित्र वस्तु पर पैर न पड़ जाए, यह सावधानी रखते हैं, उन्हें पाँच उपवास का फल मिलता है।
- ❈ जूते-चप्पल, वाहन-सवारी बिना (यदि घर से मंदिर बहुत दूर नहीं है तो) अपने घर से मंदिर ते पहुँचने पर बारह उपवास का फल मिलता है।
- ❈ जिन दर्शन के लिए पूरी श्रद्धा, आत्मरुचि से जिन मंदिर के निकट आ जाने पर पन्द्रह उपवास के फल की प्राप्ति होती है।
- ❈ जिन मंदिर के शिखर का, मंदिर का दर्शन समस्त कलुषित परिणामों को नाश कर एक माह के उपवास का फल प्रदान करता है।
- ❈ शुद्ध छने पानी से पैर धोकर, परम आनंद के अनुभव को प्राप्त करके मंदिर में प्रवेश करते समय निस्सही-निस्सही-निस्सही बोलकर, जिन प्रतिमा को देखते ही नमोस्तु-नमोस्तु-नमोस्तु कहते हैं तब छह मास के उपवास का फल मिलता है।
- ❈ जिनदेव के सम्मुख, वीतराग भगवान के गुणों की महिमा से भींग कर उनका गुणगान करते हैं तब एक वर्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है।
- ❈ जिनेन्द्र भगवान की वेदी को बीच में करके प्रदक्षिणा देते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं कि हे भगवन्! आप तो तीन लोक के नाथ हैं, तीन प्रकार के कर्ममल से रहित हैं, हमें सम्यक् रत्नत्रय की प्राप्ति हो, हमारे तीनों

प्रकार के कर्मों का क्षय हो, तब सौ वर्ष के उपवास का फल मिलता है।

- ❊ जिनेन्द्र भगवान के अलौकिक, नासाग्रदृष्टि के धारक, सहज प्रसन्न मुद्रा युक्त मुख का दर्शन करते हैं, तब हजार वर्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है।
- ❊ जो अंतरंग विशुद्ध भावों की दिव्य भावना से स्वाभाविक स्तुति (अपने अंदर स्वयं भक्ति का अनुभव करके गुणों को कहना) करते हैं तब अनंत उपवास के फल मिलते हैं।
- ❊ जिन दर्शन, जिन भक्ति से बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है। जिनेन्द्र देव की भक्ति से कर्मों का क्षय करने की पात्रता/शक्ति आती है। कर्मक्षय होने पर अनुपम अक्षय सुख से संपन्न परम पद प्राप्त होता है।
- ❊ मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के भाई भरत ने आचार्य द्युति महामुनिराज से यह जिनदर्शन महिमा को सुना। भक्ति से भरत ने गुरु चरणों में नमस्कार कर विधिपूर्वक गृहस्थ धर्म ग्रहण किया।
- ❊ जो त्रिकाल वंदना का नियम कर, मन-वचन-काय से स्तुति कर जिनदेव को नमस्कार करते हैं, उन्हें सुमेरु पर्वत के समान मिथ्यात्व का महाप्रलय क्षुभित/चलायमान नहीं कर सकता।
- ❊ सम्यग्दृष्टि को एक भी व्रत मोक्ष का बीज बनता है।

''जिनपूजन'' जीवन का महोत्सव

- ❊ गृहस्थ धर्म, मुनि धर्म का छोटा भाई है। इस श्रावक धर्म को प्रमाद रहित, बोधिलाभ की भावना से धारण करें। जैसे- रत्नद्वीप से प्राप्त रत्न चाहे छोटा हो या बड़ा, वह अमूल्य होता है। उसी तरह श्रावक द्वारा ग्रहण किया व्रत महारत्न की तरह अनमोल होता है। सभी अपने जीवन में व्रत धारण कर, मानव जन्म, जैनकुल को सार्थक बनाएँ।
- ❊ अहिंसा धर्म रत्न के साथ भक्तिपूर्वक पूजा करने से स्वर्ग में देव ऋद्धि प्राप्त होती है।
- ❊ सत्य व्रत पूर्वक भगवान की अर्चा करने से वचन प्रभाव तथा उज्ज्वल कीर्ति चारों तरफ फैलती है।
- ❊ चोरी की प्रवृत्ति से दूर रहकर जिनेन्द्र पूजन करने पर रत्नों से परिपूर्ण

निधियों का स्वामीपना प्राप्त होता है।

- ❊ स्वदार संतोष व्रतपूर्वक जिनेन्द्र पूजन नेत्रहारी परम सौभाग्य प्रदान करती है।
- ❊ परिग्रह की सीमा निश्चित कर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान की पूजा अतिशयकारी लाभ के साथ जगत पूज्य बनाती है।
- ❊ जो तीनों काल में जिनेन्द्र भगवान की वंदना करते हैं, उनके भाव शुद्ध रहते हैं तथा निरंतर पाप नष्ट होते जाते हैं। जिनेन्द्र देव की प्रतिमा बनवाना, जिनेन्द्र देव का आकार लिखवाना (चित्रांकन, मार्बल पर उकरवाना) पूजा करना, स्तुति करना आदि से संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता। वह राजा से, कुटुम्बीजनों से, धनवान, निर्धन से पूज्य होता है, तथा निर्धन भी धनवान होकर सभी की प्रीति का पात्र होता है।

पूजन द्रव्य की श्रेष्ठता

- ❊ सुगंधित पुष्पों से पूजन करने से पुष्पक विमान में इच्छित दिव्य भोग प्राप्त होते हैं।
- ❊ अतिशय निर्मल भावरूपी फूलों से जिनेन्द्र देव की पूजन करने से पूज्यता एवं सुंदरता मिलती है।
- ❊ चन्दन-काला गुरु धूप जिनेन्द्र भगवान के समक्ष जो खेते हैं वह मनोज्ञ देव होते हैं।
- ❊ जिन मंदिर में शुभ भाव से दीपदान करते हैं, वह स्वर्ग में दैदीप्यमान शरीर धारक होते हैं।
- ❊ जो जिन मंदिर को छत्र, चमर, फन्नूस, पताका तथा दर्पण आदि से विभूषित करते हैं वह आश्चर्यकारी लक्ष्मी, वैभव, समृद्धि पाते हैं।
- ❊ जो भक्ति पूर्वक जिन मंदिर में रंगावली, चित्रपट, महातप करने वाले साधुओं, महापुरुष, तीर्थंकर आदि के चित्रांकन करवाते हैं वह उत्तम हृदय वाले परम विभूति और स्वस्थ्य-सुंदर शरीर प्राप्त करते हैं।
- ❊ जो जिन मंदिर में गीत, नृत्य तथा संगीत वादित्रों से महापूजन, महोत्सव करते हैं वह स्वर्ग में महोत्सव प्राप्त करते हैं।

❈ राजा भरत निरंतर विचारकरता था, मैं जैन धर्म पाकर भी संसार से लिप्त हो रहा हूँ। मैं निस्पृहता से मोक्ष प्राप्त करने में समर्थ मुनिधर्म धारण नहीं कर पा रहा हूँ। हाय, मैं राज्य करते हुए निरंतर पाप का बंध कर रहा हूँ। इससे अनेक योनियों में भटकूँगा। इस प्रकार वह निरन्तर आत्मनिंदा करते हुए शुभ भावना भाता रहता था। भरत सदा साधुओं/मुनियों की कथा सुनता था।

'जिनेन्द्र गुणगान और आत्मनिन्दा'

पूर्व के बैर वश रावण ने कैलाश पर्वत पर तपस्या कर रहे मुनि बाली पर उपसर्ग किया था। जिसमें पराजित होकर अंततः उसने बाली मुनिराज से क्षमायाचना की और उनकी भक्ति करके धर्म की शरण लेते हुए इस प्रकार आत्मनिंदा की........

❈ मैं जिनेन्द्र देव को छोड़कर अन्य देव को नमस्कार नहीं करूँगा, यही श्रेष्ठ तप है। उसी का फल अनंत सुख है।

❈ इस तप के कारण आप तीन लोक को अन्यथा करने में समर्थ हैं।

❈ तप से समृद्ध मुनि थोड़े ही पुरुषार्थ से इन्द्रों की संपदा क्या तीन लोक की संपदा पा लेते हैं।

❈ गुण, कांति, बल, दीप्ति, धैर्य, शील सभी तप से अतिशयकारी होते हैं तप का पुण्य सुंदर स्वस्थ शरीर रचता है।

❈ आपने लोकोत्तर सामर्थ्य से सहित होकर भी पृथ्वी के सुख-वैभव का त्याग किया है।

❈ मैंने आपके प्रति जो अनुचित कार्य किया वह मुझ अज्ञानी-असमर्थ को केवल पाप बंध का ही कारण हुआ।

❈ मुझ पापी की शरीर-शक्ति को, हृदय को, वचन को, वैभव, पद को धिक्कार है।

❈ हे द्वेष रहित मुनिराज! आप में और मुझ जैसे दुष्ट पुरुषों में उतना ही अंतर है जितना मेरु और सरसों के एक दाने में।

❈ आपने मुझ मरते हुए की प्राण रक्षा की, ऐसे महा उपकारी के लिए मैं

कृतज्ञ बार-बार हूँ।

❈ पूर्वकृत कर्मोदय से मैं इतना पापी हूँ कि मुझे विषयों से वैराग्य नहीं होता।

❈ इस तरह दशानन/रावण ने बाली मुनिराज के समक्ष अपनी निंदा की, उनकी स्तुति कर तीन प्रदक्षिणा दे पश्चाताप करते हुए दुःख से बहुत रुदन किया।

समाज का दर्पण : मंदिर

1. मंदिर क्या है?
   जहाँ मन बाहर से हटकर अंदर आये, वह है मंदिर।
2. मंदिर कैसा होना चाहिए?
   मंदिर साफ सुथरा निर्मल होना चाहिए, पत्थर या मार्बल का मंदिर हो तो वह हजारों वर्ष की धरोहर होता है। मंदिर शिखरबंद होना चाहिए। मंदिर के चारों ओर घर ना हों तो अति उत्तम है।
3. मंदिर को सुंदर बनाने के लिए क्या करें?

❈ मंदिर में उपयोगी वस्तु रखें, अनुपयोगी वस्तु अलग कर दें। दीवाल, खिड़की, दरवाजे, टेबिल, चौकी पर रंग-रोगन करें।

❈ वेदिका को सुंदर रूप दें। मूलनायक श्री जी को उच्च कमलासन,सिंहासन पर विराजमान करें। (बराबर नहीं हो 1 इंच तो ऊँचा होना चाहिए)

❈ वेदी पर मूलनायक के दोनों तरफ श्रीजी की ऊँचाई एवं संख्या समान रखें।

❈ सभी धातु के श्री जी के सिंहासन सुंदर हों, समान हों। छत्र, चँवर, भामंडल को साफ रखें। (अभिषेक के समय सभी हाथों में चँवर लेकर ढुरायें)

❈ अभिषेक करने वाली टेबिल ढाई फुट लम्बी×ढाई फुट चौड़ी, पौने तीन फुट ऊँची रखें।

❈ प्रक्षाल के वस्त्र, साफ, हथकरघा के रखें। (15 दिन, महीने भर में रीठा आदि से साफ करें)

❈ मंदिर में बैठकर पूजन करने के लिए लकड़ी की बैंच 4×1×1 फुट की

रखें।
- ❖ बैंच या टेबिल लकड़ी की ही रखें, स्टील का सामान नकारात्मक ऊर्जा देता है। स्टील की टेबिलें गर्मी में गरम और ठंडी में ठंडी होती हैं।
- ❖ मंदिर में 4×25 फुट की चटाई बिछायें।
- ❖ पूजन के बर्तन पीतल के समान अनुपात वाले प्रयोग करें। 10 इंच थाली एवं कमल का ठोना प्रयोग करें।
- ❖ मंदिर में चौके डेढ़×डेढ़ फुट के रखें। सभी चौके एवं टेबिल की ऊँचाई समान रखें।
- ❖ अभिषेक के कलश, झारी चाँदी-सोने की रखें। पाण्डुकशिला 12 इंच ऊँची चाँदी की रखें। (गंधोदक का पात्र भी चाँदी, पीतल का हो)
- ❖ अभिषेक के लिए 12 इंच की चाँदी की थाली बनाएँ।
- ❖ पानी का छन्ना साफ-सुथरा रखें।
- ❖ जपमाला स्वच्छ हो। समय-समय पर सोड़ा से साफ कर केसरिया रंग से रंगें। (सूत की माला सोले में उपयोग नहीं करें माला स्फटिक आदि की हो)
- ❖ शिखर पर कपड़े की सुंदर एवं स्वच्छ ध्वजा लगायें। कपड़े की ध्वज अति मांगलिक होती है।
- ❖ सुंदर चंदोबा लगाएँ।
- ❖ मंदिर में अष्ट द्रव्य अति उत्तम होना चाहिए।
- ❖ आरती के लिए डिब्बी में बाती घी में डुबोकर रखें ताकि घी का अपव्यय ना हो।
- ❖ मंदिर में प्रतिदिन झाडू पोंछा करायें।
- ❖ पैर धोने के लिए सिनटेक्स की टंकी की फिटिंग के साथ जल व्यवस्था हो।
- ❖ मंदिर जी में ज्यादा फोटो ना लगावें। एक दीवाल घड़ी लगायें।
- ❖ मंदिर जी में दर्पण स्वच्छ एवं सुंदर हो। सुंदर तिथि दर्पण हो।
- ❖ द्रव्य चढ़ाने के लिए टेबिल सुंदर हो।
- ❖ प्रक्षाल के वस्त्र सुखाने के लिए सुंदर पाइप हो।

- ❖ जिनवाणी रखने के लिए व्यवस्थित अलमारी हों। (जो जमीन से 4 फुट ऊँची हो)
- ❖ अनुपयोगी जिनवाणी अलग रखें।
- ❖ वेदी के सामने खड़े होकर पूजन ना करें, साइड में खड़े हों।
- ❖ धोती-दुपट्टा सुखाने स्टील के पाइप की व्यवस्था करें।
- ❖ कार्यक्रम हो जाने के बाद पम्पलेट/फ्लैक्स दीवार से निकाल कर अलग कर दें।
- ❖ मंदिर के बोर्ड पर जो सूचना लिखी हो, कार्यक्रम हो जाने के बाद बोर्ड को साफ कर दें।
- ❖ पम्पलेट नोटिस बोर्ड पर लगाएँ।
- ❖ पाठशालाओं में पढ़ाने वाले शिक्षक-शिक्षिकाओं को उच्च आसन प्रदान करें।

ये सभी कार्य एक समर्पित व्यक्तित्व ही कर सकता है। उस व्यक्तित्व को समाज में न ढूँढ़ें बल्कि आप स्वयं बन जायें।

आराध्य के प्रति समर्पण का प्रतीक है द्रव्य का चढ़ाना

जब आप किसी आराध्य के पास जाते हैं तो कुछ पदार्थ लेकर जाते हैं क्यों-कि एक नीति वाक्य है कि वैद्य, ज्योतिषी, वकील, राजा, गुरु, सलाहकार आदि के पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिए क्यों-कि यह समर्पण का प्रतीक है और लौकिक व्यवहार में भी किसी के यहाँ शादी, जन्मदिन या अन्य महोत्सव आदि में जाते हैं तो मिठाई, कपड़े, गिफ्ट, फूल, गुलदस्ते, पैसे देते हैं इस से लेने और देने वालों को अच्छा लगता है। इसी प्रकार जब भी आप देव या गुरु के दर्शन करने को जाएँ तो हाथ में चावल, बादाम, इलायची, लौंग, श्रीफल आदि अपनी स्थिति के अनुसार ले जाएँ और समर्पित करें क्यों-कि जितनी अच्छी द्रव्य होगी उतने अच्छे भाव होंगे।

धार्मिक आयोजन में भाग लेने का वैज्ञानिक महत्त्व

यह मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है आत्मा, शरीर, प्रकृति आदि पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, हमारी आस्था और मोह भावना जिस से जुड़ी

होती है, उस को याद करते ही अथवा स्पर्श करते ही हमारी ग्रन्थियों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। हमारे शरीर में नलिका-विहीन एवं नलिका-सहित अनेक ग्रंथियाँ होती हैं, नलिका-विहीन ग्रंथियों में तो तत्काल ही प्रभाव पड़ता है, क्यों-कि शरीर की पिट्यूटरी (मास्टर) ग्रंथी में लगभग 12 प्रकार के रसायन भरे रहते हैं, वे रसायन हमारे आचार-विचार और आस्था के अनुसार निकलते हैं। हमारी जिस धर्म के प्रति आस्था और कर्तव्य जुड़ा होता है, उस के लिए दान देने से अथवा पूजन, दर्शन, बिम्ब-प्रतिष्ठा आदि कार्यक्रमों में भाग लेने से ग्रंथियों में स्थित रसायन निकलते हैं, जो विशेष आनंद की अनुभूति देते हैं। अत: ऐसे धार्मिक आयोजन से तन-मन प्रसन्न व स्वस्थ रहता है और मानसिक तनाव दूर होता है, इसके अलावा सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक लाभ भी होता है। (पूजा विधि विज्ञान)

संकट मोचन विनती (चमत्कार हुआ विनती पढ़ने से)

पं. वृन्दावनदास जी स्तुति बनाते जाते और भैरवी में गाते जाते थे। कविता करने की इन में अपूर्व शक्ति थी। जिनेन्द्र द्रेव के ध्यान में मग्न होकर धारा-प्रवाह कविता कर सकते थे।

कवि के श्वसुर काशी के बड़े भारी धनिक थे तथा इन के यहाँ टकशाल (सिक्के बनाने का कारखाना) का काम होता था। एक दिन एक अंग्रेज इनके श्वसुर की टकशाल देखने आया। वृन्दावन दास जी भी उस समय वहीं थे तो वृन्दावन ने फटकार दी और अँग्रेज को टकशाल नहीं देखने दी। वह अँग्रेज नाराज होकर चला गया। कालान्तर में वही अँग्रेज काशी में कलेक्टर बनकर आया तथा उस समय वृन्दावन सरकारी खजाँची थे। साहब बहादुर यानी कलेक्टर साहब ने प्रथम मुलाकात में ही पं. वृन्दावन दास जी को पहचान लिया। पूर्व वैरवश साहब- बहादुर ने एक जाल बनाकर कवि को 3 वर्ष की जेल की सजा दे दी। जेल में बैठे कवि ने उक्त भक्ति पद बनाया। इसी वक्त कलेक्टर साहब जेल का निरीक्षण करने आये। आप 'हे दीनबन्धु श्रीपति करुणानिधान जी' इस स्तुति को बनाते जा रहे थे और गाते जा रहे थे। कलेक्टर साहब इन की स्तुति से प्रभावित हुए और पूछा- खजाँची बाबू,

खजाँची बाबू पर ये ध्यानस्थ होने से नहीं बोले। फिर कलेक्ट्री में सिपाही द्वारा आप को बुलवाया गया और पूछा गया- तुम क्या गाटा और क्यों रोटा था? (तू रोता हुआ क्या गाता था?) तो कवि ने पूरी स्तुति गाकर अर्थ भी सुनाया तो साहब इतने प्रसन्न हुए कि इस घटना के तीसरे दिन ही उन्हें जेल से मुक्त कर दिया।

तभी से उक्त विनती संकटमोचन के नाम से प्रसिद्ध हो गयी है। वृन्दावन का जन्म उत्तरप्रदेश के शाहाबाद के निकट वारा गाँव में सं. 1842 में हुआ था। कवि इतने काव्य में प्रवीण थे कि वे प्रतिदिन पूजा, विनती या स्तुति बनाकर जिनमन्दिर में दर्शन करने जाते थे। आप ने कभी बासी पूजा नहीं की।

(साभार : जिन स्तुतीयम्)

पुण्य बढ़ाने के साधन

अभिषेक पूजन, जिनेन्द्र-भक्ति, स्तोत्र पाठ, अतिथि सत्कार, मौन का अभ्यास, गुरु सेवा, वैयावृत्ति, तीर्थ वंदना, चतुर्विध दान, मंत्र-जाप, जिनवाणी सेवा, धर्मायतनों की सेवा, पशु सेवा आदि।

मंदिर के उपकरण दान का फल -

जो जीव उपकरण दान करते हैं, उनका पुण्य निरंतर बढ़ता है। छत्र प्रदान करने वाला शत्रु रहित एक छत्र राज्य करता है। पताका दान करने वाला छह खण्ड का अधिपति होता है। पूजन के बर्तन प्रदान करने वाला जगत्पूज्य बनता है। कलश प्रदान करने वाला सुमेरु पर्वत पर क्षीरसागर के जल से इन्द्रों के द्वारा अभिषिक्त होता है। भामण्डल प्रदान करने से परिणामों में निर्मलता प्राप्त होती है। दीपक दान देने से यश बढ़ता है। पिच्छिका-कमण्डलु देने से रत्नत्रय निधि की प्राप्ति होती है।

आत्म विकास के बिन्दु

1. देव-शास्त्र-गुरु की विनय करना।
2. अपने नाम एवं फोटो के प्रकाशन की भावना से बचना।
3. पुस्तक प्रकाशन की होड़ नहीं रखना।

4. भोजन सामग्री और भोजन पद्धति संतुलित रखना।
5. मनोरंजन, हास्य, व्यंग्य एवं मनोरंजन से दूर रहना।
6. समय की पाबंदी रखना व समय पर कार्य करना।
7. बाह्य प्रदर्शन से दूर रहना। स्व प्रशंसा की भावना नहीं करना।
8. पर निंदा से दूर रहना।
9. प्रतिष्ठा की वांछा नहीं रखना।
10. हठाग्रह और क्रोध से दूर रहना।
11. चंचलता से दूर रहना।
12. पक्षपात नहीं करना।
13. आत्म हित की सतत भावना रखना।
14. प्रतिस्पर्धा नहीं रखना।
15. फोन वार्तालाप नहीं करना अथवा सम्यक् करना, सीमित करना।
16. भोजन करते समय हँसी-मजाक नहीं करना।
17. प्रवचन करते समय व्यक्ति विशेष की प्रशंसा नहीं करना।
18. सामाजिक विवाद से बचना।
19. गुरु आज्ञा में रहना।
20. अपने समूह में वात्सल्य बनाकर रखना।
21. किसी की बढ़ती को देखकर ईर्ष्या नहीं करना।
22. यदि स्वयं पर कोई दोषारोपण करे तो कर्म का उदय समझ कर सहन कर लेना।

मानवीय गुण धर्म

संसार में यह जीव अनेक पर्याय धारण करता है। किसी महान् पुण्य योग से उसे मनुष्य होने का सौभाग्य प्राप्त होता है, मनुष्य जीवन पाकर यदि मानवीय गुण प्राप्त नहीं किये तो मनुष्य जीवन पाना व्यर्थ है। हम विचार करें मानवीय गुण कौन से हैं।

1. किसी का भला करें या न करें, किन्तु बुरा न करें।
2. बड़ों के प्रति आदर भाव रखें।

3. अपशब्द न बोलें।
4. प्राणी मात्र के प्रति दया का पालन करें।
5. आपस में प्रेम वात्सल्य रखें।
6. धीरे बोलें, सीमित बोलें, प्रयोजनभूत बोलें।
7. माता-पिता के प्रति विनय रखें।
8. कोई भी व्यसन न करें।
9. दीन दुखियों की सेवा करें।
10. सत्साहित्य का पठन-पाठन करें।
11. अपने घर, मुहल्ले, नगर को साफ-सुथरा रखें।
12. अपने देश का सम्मान रखें।
13. मानव सेवा करें।
14. शिक्षा का दुरुपयोग न करें। सदुपयोग करें।

कुछ अच्छी बातें

1. आत्म कल्याण करने की भावना रखें।
2. संयुक्त परिवार को प्रोत्साहन दें।
3. बच्चों से उनके मन की बातें जानें।
4. घर में प्रभु अर्चना कक्ष बनायें।
5. घर में जिनवाणी की आरती, स्तोत्र पाठ, स्वाध्याय करें।
6. महीन पारदर्शी वस्त्र न पहनें।
7. बेटियों को जीन्स, टी-शर्ट व लर्घ (शॉर्ट) वस्त्र न पहनावें।
8. बेटियों को ऐसे संस्कार दें कि वे अपनी शादी का निर्णय मर्जी से न करें।
9. उतावली में निर्णय न लें।
10. भेदभाव से बचें।
11. लव जिहाद से बचें।
12. यदि कोई आपके बच्चों की चरित्र हीनता की जानकारी देता है, तो बात गंभीरता से लें।
13. शांतिधारा का श्रवण करें।

14. जिनालय की परिक्रमा करें।
15. अनुपयोगी वस्तुएँ घर से बाहर करें।
16. वजनदार सामान नैऋत्य दिशा में रखें।
17. ईशान दिशा को साफ सुथरा रखें।
18. रात्रि में जूठे बर्तन न छोड़ें।
19. कान्वेंट स्कूल की पढ़ाई से बच्चों को बचायें।
20. छोटी-छोटी घटनाएँ किसी को न बतायें सहन करें।
21. बिस्तर पर बैठकर भोजनशाला का कार्य न करें, न ही भोजन करें।
22. भोजन स्नान करके ही बनायें और स्नान करके ही भोजन करें।
23. सड़कों पर नृत्य न करें।
24. अर्हंत भगवान् की प्रतिदिन पूजा करें।
25. जो भगवान की पूजा करके दिन में भोजन करते हैं वे अतिशीघ्र अर्हंत् पद को प्राप्त करते हैं।
26. अहिंसा धर्म का पालन करें।
27. प्रतिदिन दान दें।
28. श्रावक के आवश्यकों का पालन निष्ठा से करें।
29. दिन में भोजन करें।
30. रात्रिभोजन करने से दुष्कर्म, कुकर्म करने वाले पुत्र होते है।
31. उत्तम द्रव्य भगवान् की पूजा करें।
32. जो उत्तम प्रकार के धोये चावल से जिनदेव के आगे पूजन करता है, वह अगले भव में स्वर्ग पद को प्राप्त करता है।
33. प्रतिदिन अभिषेक करें।
34. जो पुरुष जिनेन्द्र देव का भावपूर्वक अभिषेक करता है, वह परम सुख को प्राप्त करता है।
35. पालथी लगाकर भोजन करने के अभ्यासी बनें।
36. शुद्धि-अशुद्धि का ख्याल रखें।
37. पानी छानकर उपयोग करें।

सूक्तियाँ

❇ वही करो जो सुखकारी है, वही रखो जो हितकारी है।
❇ आत्मशांति बदला लेने में नहीं, बदलने में है।
❇ परस्पर उपकार की भावना रखने वालों के सभी कार्य स्वयमेव सिद्ध हो जाते है।
❇ संग्रह में संक्लेश और त्याग में संतोष होता है।
❇ अन्न का कण और साधु का क्षण कभी बर्बाद नहीं करना।
❇ भगवान के आगे माथा झुकाने से भाग्य का सितारा चमकता है।
❇ मोक्षमार्ग में अपरिचय का आनंद अद्भुत है।
❇ हम कहाँ? जहाँ हमारा उपयोग। हम कैसे? जैसे हमारे भाव।
❇ ज्ञान अर्जन से ज्यादा ज्ञान प्रयोग में प्रयत्न करना चाहिए।
❇ कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।
❇ मनुष्य भव संसार से तिरने के लिए मिला है मरने के लिए नहीं।
❇ शील के अभाव में अन्य गुणों की कोई कीमत नहीं।
❇ जो सरल होता है, उसकी सरल समाधि होती है।
❇ यदि अपने परिणामों को सुधारना चाहते हो तो किसी से कुछ मत कहो।
❇ व्रतों का निर्दोष पालन योग्य गुरु के सद्भाव में ही संभव है।
❇ गुणीजनों के गुणानुवाद से गुणों का वर्द्धन होता है।
❇ एक वृक्ष का संरक्षण 100 संतान के संरक्षण के बराबर है।
❇ संसार का दुख हमारी अज्ञानता का ही परिणाम है।
❇ जीवन को श्रेष्ठ बनाना हो तो एक धर्मात्मा मित्र अवश्य बनाओ।
❇ जो पापों से बचाये वह मित्र है, जो पापों में लगाए वह शत्रु है।
❇ झगड़े प्यार से निपटते हैं, टकराव से नहीं।
❇ तुमने किसी का बुरा नहीं किया घबराओ मत, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा।
❇ तुमने दूसरे का भला किया है तुम्हारा भला अवश्य ही होगा।
❇ अप्रभावना नहीं करना, सबसे बड़ी प्रभावना है।
❇ पुनः जैन कुल चाहते हो तो कुल के कुलाचार का पालन करो।
❇ जिसका सोच विशाल उसका भाग्य बेमिशाल।

- ❖ पाप-प्रवृति से ही हम संसार में भटकते हैं।
- ❖ भक्त पाल लो या व्रत पाल लो।
- ❖ जहाँ एक गुनाह भी माफ नहीं होता वह है न्यायालय। जहाँ हजारों गुनाह साफ हो जाते हैं, वह है जिनालय। जिनालय निर्माण, निर्वाण का कारण है।
- ❖ दान की मात्रा महत्त्वपूर्ण नहीं, दान की भावना महत्त्वपूर्ण है।
- ❖ पापी सफल हो सकते हैं, सम्पन्न हो सकते हैं, पर प्रसन्न नहीं हो सकते।
- ❖ धर्म इसलिए नहीं कि सम्पन्नता बढ़े, धर्म इसलिए कि प्रसन्नता बढ़े।
- ❖ बेईमान व्यक्ति मोक्षमार्गी नहीं हो सकता।
- ❖ जब तक संयम पलता है तब तक सल्लेखना नहीं लेना।
- ❖ भगवान् और गुरु के पास दर्शनार्थी बनकर नहीं शरणार्थी बनकर जाना।
- ❖ बाहरी आनंद छोड़ने पर ही आत्मीय आनंद प्राप्त होता है।
- ❖ ज्ञान वही है, जो पापों से छुटकारा दिलाये।
- ❖ जो भगवान् की वाणी प्रीति पूर्वक सुनता है, वह भव्य है।
- ❖ माँ-बाप की सच्ची सेवा उनका नाम रोशन करने में है।
- ❖ गुरु दीक्षा दे सकते हैं, गुणस्थान नहीं। गुणस्थान वृद्धि के लिए स्वयं पुरुषार्थ करना पड़ेगा।

सामंजस्य का सूत्र

मानव जीवन अनमोल है, जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आते हैं, जीवन की उन विषमताओं में समता रखना धर्म है। भगवान् श्रीराम, श्रीपाल, सती सोमा, सती अंजना जैसे श्रेष्ठ जीवों के जीवन में भी अनेक संघर्ष आये परन्तु उन्होंने सब कुछ समता से सहन किया फलस्वरूप उनका जीवन हर्षमय बना। हम भी जीवन के उन उतार-चढ़ाव में कैसे सामंजस्य बनाकर रख सकें, सीखें इस पाठ से।

- ❖ संसार बहुत बड़ा है इसमें जीना आसान नहीं है, आसान हो सकता है उनके लिए जो कुछ बर्दाश्त करके जीते हैं और कुछ नजर अंदाज करके।
- ❖ झगड़े प्यार से निपटते हैं, टकराव से नहीं।

- ❖ वैर विरोध समस्या का समाधान नहीं है।
- ❖ सफाई देना उचित नहीं, समय आने पर दूध का दूध और पानी का पानी हो जाता है।
- ❖ भाग्य के विपरीत होने पर कौन-सा ऐसा पुरुष अपमान को प्राप्त नहीं होता।
- ❖ जय जिनेन्द्र जरूर करते रहें। जय जिनेन्द्र का भाव सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न करता है और सकारात्मक ऊर्जा को प्रेषित करता है।
- ❖ शांति बदला लेने में नहीं बदलने में है।
- ❖ समस्या है तो समाधान भी है।
- ❖ मकान के पीछे मन को नहीं बिगाड़ना।
- ❖ मेरा मेरा है, तेरा तेरा है। तुझे संतोष नहीं तो तेरा तेरा है मेरा भी तेरा है, हकीकत ये है ना कुछ मेरा है ना तेरा है, चिड़िया रैन बसेरा है सुबह शाम का डेरा है।
- ❖ पैसे के पीछे परिणामों को नहीं बिगाड़ना।
- ❖ पैसा हाथ का मैल है, पैसा बहुत कुछ है पर सब कुछ नहीं।
- ❖ पुण्य होगा सो करोड़ों की संपत्ति चरणों में खेलेगी।
- ❖ जो आनंद मित्र बनकर जीने में आता है, वह आनंद दुश्मन बनकर जीने में नहीं आता।
- ❖ परस्पर उपकार की भावना रखने वालों के सभी कार्य स्वयमेव सिद्ध हो जाते हैं।
- ❖ अपने भी पराये हो जाते हैं, जब हमारा मन संकीर्ण हो जाता है।
- ❖ विद्वान् वही है, जो अपने अंदर विशालता, उदारता, गंभीरता और सहनशीलता रखता है।
- ❖ श्रावक के पास संतोष धन हो और साधु के पास समता धन हो, तो दोनों सुखी अन्यथा दोनों दुखी।
- ❖ आत्महत्या किसी समस्या का समाधान नहीं है।
- ❖ जिसका सोच विशाल उसका भाग्य बेमिशाल।
- ❖ उगते सूर्य को दुनिया नमस्कार करती है।
- ❖ कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।

❖ महान् वह नहीं जिसके पास समस्या नहीं, महान् वह है जो समस्याओं से हँसकर सामना करता है।

❖ मन की शांति में ही मन की शक्ति निहित है।

❖ मंदिर की शोभा मूर्ति से, भोजन की शोभा नमक से, जीवन की शोभा शांति से।

❖ श्रेष्ठ व्यक्ति अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन नहीं करता, यही तो उसकी श्रेष्ठता है।

❖ जितना समय और शक्ति शरीर इन्द्रियों के प्रसन्न करने में लगाते हैं, यदि उतना समय और शक्ति अपने आत्मा के दर्शन, चिंतन, मनन में लगायें तो आत्मा संसार सागर से पार हो जाये।

(साभार क्रमांक 1 से 9 तक जिनधर्म प्रवेशिका)

श्रावक के मूलगुण

श्रावक के मूलगुण आठ होते हैं। इस सम्बन्ध में आचार्यों की वाणी-संख्या की अपेक्षा समान होते हुए भी विषय में भिन्नता पाई जाती है जिसका स्पष्टीकरण निम्नांकित है।

1. आचार्य सोमदेव जी के शब्दों में-
   1. मद्य 2. मांस 3. मधु 4. बड़ 5. पीपल 6. ऊमर 7. कठूमर 8. पाकर (अंजीर) इन आठ वस्तुओं का त्याग आठ मूलगुण है।
2. आचार्य समन्तभद्र स्वामी के शब्दों में-
   5 अणुव्रत पालन और तीन मकार (मद्य, मांस, मधु) का त्याग ये आठ मूलगुण कहे हैं।
3. श्री जिनसेनाचार्य जी के शब्दों में-महा मांस मधु त्यागै सहाणुव्रत पांच अणुव्रत (पाँच पापों का स्थूल त्याग) पालन व मद्य, मांस व जुआ खेलने का त्याग ये आठ मूलगुण कहे हैं।
4. पंडित आशाधर जी के शब्दों में-
   1. मद्य 2. मांस 3. मधु 4. पंच उदम्बर फलों का त्याग 5. रात्रि भोजन त्याग 6. पानी छान कर पीना 7. देवदर्शन करना
8. जीव दया पालन करना ये आठ मूलगुण हैं।

भूतकाल तीर्थंकर

1. श्री निर्वाण 2. सागर 3. महासाधु 4 विमलप्रभ 5. श्रीधर 6. सुदत्त 7.अमलप्रभ 8. उद्धर 9. अंगिर 10. सन्मति 11. सिंधु 12. कुसुमांजलि 13. शिवगण 14. उत्साह 15. ज्ञानेश्वर 16. परमेश्वर 17. विमलेश्वर 18. यशोधर 19. कृष्णमति 20. ज्ञानमति 21. शुद्धमति 22. श्रीभद्र 23. अतिक्रांत 24. शांताश्चेति भूतकाल-संबंधि- चतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

वर्तमान काल तीर्थंकर

1 ऋषभनाथ 2. अजितनाथ 3. संभवनाथ 4. अभिनंदननाथ 5. सुमतिनाथ 6. पद्मप्रभ 7. सुपार्श्वनाथ 8. चन्द्रप्रभ 9. पुष्पदंतनाथ 10. शीतलनाथ 11. श्रेयांसनाथ 12. वासुपूज्य 13. विमलनाथ 14. अनन्तनाथ 15. धर्मनाथ 16. शान्तिनाथ 17. कुंथुनाथ 18. अरनाथ 19. मल्लिनाथ 20. मुनिसुव्रतनाथ 21. नमिनाथ 22. नेमिनाथ 23. पार्श्वनाथ 24. महावीराश्र्चेतिवर्तमानकालसंबंधिचतुर्विंशति तीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

भविष्यत काल तीर्थंकर

1. श्री महापद्म 2. सुरदेव 3. सुपार्श्व 4. स्वयंप्रभ 5. सर्वात्मभूत 6. श्री देवपुत्र देव 7. कुलपुत्र देव 8. उदंक देव 9. प्रोष्ठिल देव 10. जयकीर्ति 11. मुनिसुव्रत 12. अर (अप्तम) 13. निष्पाप 14. निष्कषाय 15. विपुल 16 निर्मल 17. चित्रगुप्त 18. समाधिगुप्त 19. स्वयंभू 20.अनिवर्तक 21. जय 22. श्रीविमल 23. देवपाल 24. अनन्तवीर्याश्चेति भविष्यत् कालसंबंधिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

विदेहक्षेत्र के बीस तीर्थंकर

1. सीमन्धर 2. युगमन्धर 3. बाहु 4. सुबाहु 5. सुजात 6. स्वयंप्रभ 7. वृषभानन 8. अनन्तवीर्य 9. सुरप्रभ 10. विशालकीर्ति 11. वज्रधर 12. चन्द्रानन 13. भद्रबाहु 14. भुजंगम 15. ईश्वर 16. नेम प्रभ (नमि) 17. वीरसेन 18. महाभद्र 19. देवयश 20. अजितवीर्याश्चेति विदेहक्षेत्रस्थविंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः।

योग्यता को विकसित करने की क्रिया को संस्कार कहते हैं।

अनुष्ठान में गोत्र परिवर्तन विधि

तीर्थंकर के गोत्रवत् होवे मेरा गोत्र, आशौच दोष लगे नहीं होवे ऐसा गोत्र॥ जयसेनाचार्य ने दिया यही सन्देश भक्ति भाव से पुण्य फल पाने का उपदेश

ॐ तत्सदद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादि जैनधर्म मतेऽवसर्प्पिण्या दुषमः कालस्य प्रथमाब्दे .... वीर निर्वाणे .... राशिस्थितार्के मासानुमुत्तमे .... मासे शुभे .... पक्षे .... तिथौ .... वासरे। अस्मिन् जम्बूद्वीपस्य भरत क्षेत्रे आर्यखण्डे .... नाम्नि नगरे सिद्धयोग भक्ति स्वस्ति वाचन पूर्वक मंत्राभिषव श्री मज्जिनेन्द्र ....(पंचकल्याणक बिम्ब प्रतिष्ठा) कर्मणि .... नाम्नो यजमानस्य (इक्ष्वाक्व ादि) .... वंशे श्री (वृषभनाथ) आदि सन्ताने (काश्यप) गोत्रे परावर्तनं यावदध्वरं भवतु क्रौं ह्रीं ह्रैं नमः (पुष्पं) (आचार्य इन्द्र परपुष्प क्षेपण करें)

ग्रन्थिबंधन- ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्ष्मांपद्मेपद्म कुटीति सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा। (इन्द्र इन्द्राणियों का गठजोड़ाकरायें) ग्रन्थि मोक्षण- ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अनंग कमलायै अनंत वसु ऋद्धिं कुरु कुरु स्वाहा। (गाँठ खोले)

आरती का अर्थ

आरती का अर्थ- परमात्मा के गुणों में मन वचन-शरीर से लीन होना या भक्ति सहित होना है। आरती का अर्थ विरक्ति भी कहा गया है।

आरती का वैज्ञानिक कारण- दीपक से आरती करने का वैज्ञानिक कारण है। दीपक ऊर्जा का बड़ा स्त्रोत माना गया है। उससे सतत् विद्युत प्रवाह बाह्य वातावरण की तरफ होता है। कभी अनुभव किया होगा कि जिस स्थान में हमेशा दीपक प्रज्वलित रहता है। वहाँ पहुँचने पर कुछ अतिरिक्त ऊर्जा का, तैजस का प्रभाव समझ में आता है।

आरती करते समय सावधानी-

1. दीपक में घी इतना डालें कि वह दीपक आरती करते समय तक जलता रहे। बाद में अधिक देर तक दीपक न जलायें।
2. आरती विवेक पूर्वक करना चाहिए। कुछ तथाकथित लोग आरती करने

में घोर हिंसा मानते हैं और विकल्प स्वरूप झालरी के छोटे-छोटे बल्ब एवं टार्च से आरती करते है। उनसे मैं कहना चाहता हूँ कि टार्च के सैल के निर्माण में क्या जीव हिंसा नहीं होती। घृत का जलाया हुआ दीपक ही आरती कहलाता है। यदि भोजन में मक्खी गिर जाती है तो भोजन का हमेशा के लिए त्याग नहीं किया जाता है। बल्कि विवेक पूर्वक भोजन रखा जाता है। जिसमें उसमें मक्खी न गिरे। आगम की आज्ञा का हमें लोप करने का कोई अधिकार नहीं है।

कैलाश पर्वत पर रावण द्वारा जिनेन्द्र देव की पूजा

स्वाभाविक भक्ति

समस्त शास्त्रों आभूषणों आदि को पृथ्वी पर फेंक, परिग्रह पाप से बचने, अपनी समस्त स्त्रियों के साथ रावण जिनेन्द्र पूजन हेतु मंदिर में गया। रावण के भाव भगवान की भक्ति में इतने लीन हुए कि उसने अपनी भुजा की नाड़ी खींचकर उससे तंत्री की तरह वीणा बजाई तथा अनेक प्रकार की स्तुति से जिनराज का गुणगान किया। उसने गाया-

आप देवों के देव, देवाधिदेव हो,
लोक-अलोक को देखने-जानने वाले हो...
आपने अपने तेज से समस्त लोक को प्रकाशित कर दिया है
आप कृतकृत्य हैं, महात्मा हैं।
तीनों लोक आपकी पूजा करते हैं।
आपने मोह रूपी महाशत्रु को नष्ट कर दिया।
आप वचन अगोचर गुणों को धारण करने वाले हैं।
आप महान ऐश्वर्य से सहित हैं।
आप मोक्ष मार्ग का उपदेश देने वाले हैं।
आपके सुख परम असीम और अक्षय रूप से समृद्ध हैं।
आपने समस्त कुत्सित वस्तुओं को दूर कर दिया है।
आप सभी प्राणियों को स्वर्ग और मोक्ष मार्ग के हेतु हैं।
आप महाकल्याणकों के मूल कारण हैं।
आपने ध्यानाग्नि से समस्त पापों को जला दिया है।

आप जन्म का विध्वंस करने वाले महागुरु हैं।
आपका कोई गुरु नहीं, आपको सब प्रणाम करते हैं।
आप आदि, मध्य, अंत से रहित हैं।
आपके परमार्थ को कोई नहीं जानता पर आप
समस्त परमार्थ को जानते हैं।
आपने संसारी जीवों के कल्याणार्थ छह द्रव्य, सप्त तत्त्व,
नव पदार्थों का विस्तार से स्वरूप चित्रण किया।
आत्मा रागादि विकारों से रहित है,
आपने सभी को यही उपदेश दिया है।
आपने आत्मा एवं परलोक के स्वरूप का उपदेश देकर
जीवों को आस्तिक बनाया है।
आपने बताया कि पर्यायार्थिक नय से संसार के
सभी पदार्थ क्षणिक/अनित्य हैं
द्रव्यार्थिक नय से सभी पदार्थ नित्य है, यह
उपदेश सभी को देकर असारता का परिचय कराया।
आत्मा अखंड है, पर पदार्थों से अलग है
यह कथन आपने किया।
अनेकान्त धर्म का कथन आपने किया।
आप कर्म शत्रुओं को जीतने वालों में श्रेष्ठ हैं।
आप सर्व पदार्थों को जानने वाले होने से सर्वरूप हैं।
आप अखंड चैतन्य पुंज के धारक होने से एकरूप हैं।
आप मोक्ष प्रदान करने वाले हैं, अतः आपको नमस्कार है।
मैं वर्तमान काल में चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूँ।
भूत-भविष्य काल संबंधी तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूँ।
साधु परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ।
मिथ्यात्व और एकांतवाद के नाशक
सम्यक् जिन दर्शन को नमस्कार करता हूँ।
सिद्ध परमेश्वर को सदा नमस्कार करता हूँ।

पूजन में आभूषण विज्ञान

धातु का प्रभाव

कानों में कुंडल पहनने से यौनशक्ति विषय भोगों की भावना नियंत्रित होती है। जिसके कान जितने लंबे होते है वह उतना ही शक्ति संपन्न होता है। महापुरुषों के लम्बे कान होते है। शरीर में शक्ति को इकट्ठा करने के मुख्यतः तीन स्थान है.... कंठ... नाभि....गुदा। यहाँ बहुत मात्रा में शक्तियां इकट्ठी होती है।

मुकुट पहनने से फायदा -

सिर पर मुकुट पहनने से टी.वी. के एन्टीना की तरह तैजस तरंगों ऊर्जाओं को एकत्रित कर मस्तिष्क में संगृहीत करता है। मस्तिष्क की ऊर्जा शक्ति बढ़ाता है। कोशिकाओं को जाग्रत करता है।

धातुओं का प्रभाव पड़ता है जैसे- पीतल में यदि नींबू का रस गिर जाये तो अलग प्रभाव पड़ता है। चाँदी पर अगर पारा गिर जाये तो उसकी चमक चली जाती है। इसलिए वैद्यराज कहते है कि हर धातु का शरीर पर प्रभाव पड़ता है।

तिलक लगाना फायदेमंद है

भौंहों के मध्य में आज्ञाचक्र की स्थिति मानी गई है और इस स्थान पर तिलक आदि धारण करने पर यह जाग्रत होने लगता है। आज्ञा चक्र के जाग्रत होने से मस्तिष्क की क्रिया शीलता और अंतर्मन की संवेदन शीलता में अप्रत्याशित रूप से वृद्धि हो जाती है वीटा एंडोर फिन और सेराटोनिन नामक रसायनों का स्राव संतुलित मात्रा में होने लगता है। इन रसायनों की कमी से उदासीनता और निराशा के भाव पनपने लगते है। इस प्रकार तिलक उदासीनता और निराशा के भाव से मुक्ति प्रदान करने में सहायक होता है।

सोने, चांदी के पात्र श्रेष्ठ क्यों?

सोना निःसंदेह एक मूल्यवान धातु है। धर्मग्रन्थों के अनुसार सोने को सर्वश्रेष्ठ धातु स्वीकार किया गया है। इसी कारण भगवान की मूर्तियाँ आभूषण, सिंहासन, कलश-छत्र आदि सोने से बनाये जाते है या उन पर

पत्ता चढ़ाया जाता है।

सोने में कभी जंग नहीं लगती है और न ही धातु विकृत होती है। इसकी कांति सदा बनी रहती है। इसी कारण इसे पवित्र माना जाता है। आयुर्वेद के अनुसार सोना बल-वीर्य और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक होता है।

चांदी भी एक मूल्यवान धातु है, किंतु सोने से कम। चांदी से भगवान की मूर्तियां- छत्र-सिंहासन भामण्डल बर्तन आदि बनाए जाते है। विकृत न होने के कारण चांदी को पवित्र धातु माना जाता है। आयुर्वेद के अनुसार चांदी पित्त प्रकोप दूर करने नेत्र ज्योति बढ़ाने शारीरिक शीतलता और मानसिक शांति बढ़ाने में सहायक होती है।

मंगल कलश की महिमा

कलश हमारे लिए समुद्र की भांति वैभवशाली रत्न सामग्री प्रदान करते है।

पुण्याह वाचन कब और क्यों?

आदिपुराण में लिखा है कि जिस नगरी में तीर्थंकर का जन्म होता है उस समय कुबेर आदि देवों ने पुण्य की वर्षा एवं भूमि शुद्धि के लिए, कल्याण के लिए पुण्याह वाचन किया।

पुण्याहवाचन से अनेक सम्पदाओं की प्राप्ति हुआ करती है। जीवन में मंगल का प्रवेश होता है। सौभाग्य का सूर्योदय होता। पुण्याह वाचन से तेज बढ़ता है। आत्मिक शांति प्राप्त होती है।

पुण्याह वाचन करने के लिए एक कलश में जल भरकर उस जल की शुद्धि करके पुनः पुण्याह वाचन मंत्र पढ़कर भूमि शुद्धि एवं आत्मिक शांति के लिए उस जल की पुण्य वर्षा के रूप में सिंचन करें।

पुण्याह वाचन का अर्थ हैं कुल की सब तरह से वृद्धि हो।

तीर्थंकर व चक्रवर्ती कैसा हार पहनते है

जिसमें एक हजार आठ लड़ियाँ हो उसे इन्द्रच्छन्द हार कहते है। वह हार सबसे उत्कृष्ट होता है। और उसे जिनेन्द्र देव या चक्रवर्ती पहनते है। पाँच सौ चार लड़िया हो उसे विजयच्छन्द हार कहते है। इसे अर्द्धचक्री व बलभद्र पहनते है।

चंवर ढुराने से क्या फायदा होता है

आचार्य जिनसेन स्वामी आदिपुराण में कहते है कि अमृत की राशि के समान निर्मल और अपरिमित तेज तथा कांति को धारण करने वाले चंवर जो भगवान के ऊपर ढोरता है उसको चन्द्रमा के समान और सूर्य जैसी कांति प्राप्त होती है। उसका शरीर निरोग हो जाता है उसकी चारों तरफ पताका फैल जाती है।

चतुर्दशी के उपवास का फल

14 दिन में एक उपवास अवश्य करें। जिन रोगों में दवायें भी असफल हो जाती है। उसमें भी उपवास रामवाण का कार्य करता है। उपवास रोग के प्राचीनतम उपचारों में से एक है। इससे शारीरिक ही नहीं मानसिक रोग भी दूर हो जाते है।

उपवास एक साधना है। जिस तरह स्नान करने से पवित्रता का अनुभव होता है। और मौन धारण करने से आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त किया जाता है। उसी तरह उपवास से हम अंतर्मुख होते है और सात्विक वृत्ति को भी विकसित कर सकते है। आपको पता है चतुर्दशी का लोग उपवास क्यों करते है?

तिथियों का सीधा संबंध ग्रह व उपग्रह से है। जैसे-जैसे चंद्रमा की कलाये बढ़ती हैं। तैसे तैसे उन कलाओं के प्रभाव से समुद्र में ज्वार आता है और जैसे-जैसे चंद्रमा की कलायें घटती है तैसे-तैसे समुद्र में भाटा आता है। समुद्र का जल खारा है उसमें नमक की मात्रा होती है। ऐसी ही हमारे शरीर में 70 प्रतिशत जल की मात्रा है। हमारे शरीर का जल खारा होता है जैसे चन्द्रमा का प्रभाव समुद्र पर पड़ता है। और चन्द्रमा की कलाओं के घटने बढ़ने से समुद्र में ज्वार भाटा आता है। वैसे ही चंद्रमा की कलाओं के घटने बढ़ने से हमारे शरीर के जल में भी ज्वार भाटा आता है। जब ज्वार आता है तो हममें उत्तेजना होती है क्रोध आता है। इसीलिए पूर्णमासी व अमावस्या के दिन सबसे ज्यादा क्रोध आता है। इसीलिए हमारे मुनियों ने कहा है, ऋषियों संतों ने कहा कि पूर्णमासी व अमावस्या के दिन हमें क्रोध आ जाये हमारे द्वारा कष्ट पहुंचे। उसके पहले चतुदर्शी को उपवास कर लो। क्योंकि

भोजन नहीं करने से इन्द्रियों में उत्तेजना नहीं आयेगी। और उत्तेजना नहीं आयेगी तो क्रोध नहीं आयेगा।

निर्वपामीति एवं स्वाहा का उद्देश्य

निर्वपामीति– सम्पूर्ण रूप से समर्पित करना अर्थात् मन, वचन, काय से अष्टद्रव्य चढ़ाना/समर्पित करना।

निर्वपामीति= निः +वप् + आमि + इति

निः = निःशेष, सम्पूर्ण रूप से, कि शेष न रहे (समाप्त हो जाने तक)

वप् = बोना, विस्तीर्ण करना, समर्पित करना।

आमि = मैं (वर्तमान काल, उत्तम पुरुष के एक वचन का ज्ञान करने वाला प्रत्यय = पहिचान चिह्न)

इति = क्रिया की पूर्णता।

स्वाहा – पापनाशक, मंगलकारक, आत्मा की आन्तरिक शान्ति उद्घाटित करने वाला है। बीजाक्षर रूप में स्वाहा– शान्तिकं मोहकं वा, स्वधा– पौष्टिकं माना गया है।

इस प्रकार पूजा में स्वाहा का अर्थ समर्पण से नहीं बल्कि आत्मा की शक्ति उद्घाटित करने से है।

(मंगल मंत्र णमोकार एक अनुचिंतन से)

अरिष्ट ज्ञान

यदि मनुष्य अपनी मृत्यु के पूर्व अरिष्टों (अशुभ चिन्हों) द्वारा अपने मरण को प्राप्त कर लें, तो वह सल्लेखना (समाधि) द्वारा आत्म कल्याण में विशेष रूप से प्रवृत्त हो सकता है।

अरिष्ट किसे कहते हैं ?

प्राकृतिक, शारीरिक चिह्न जिनसे मृत्यु के समय की सूचना मिलती हो अरिष्ट कहलाते हैं।

विशेष : अरिष्ट अर्थात् मृत्यु की पूर्व सूचना है, इसे जानकर साधक सल्लेखना के लिए उद्यत हो जाए जिससे वह अपनी आत्मा का कल्याण कर सके।

शीघ्र मरण

श्री जिन गुणगान

1. अघन आकाश को घन आकाश, घनीभूत पृथ्वी को अघन पृथ्वी, तेज अग्नि को निस्तेज, स्थिर वस्तु को चंचल, निरभ्र आकाश को मेघाच्छित देखें। (चरक संहिता,1364)
2. यदि किसी व्यक्ति का मुख और जीभ काली पड़ जाए, गर्दन बिना किसी कारण से झुक जाए तथा बार–बार श्वास रुकने लगे तो उसका शीघ्र मरण समझना चाहिए। (रिष्ट समुच्चय,28)
3. जो चमकते हुए सूर्य का अनुभव नहीं करता बल्कि उल्टा उसे ठण्डा बतलाता है, वह इन्द्र के द्वारा रक्षा किए जाने पर भी उसी क्षण मृत्यु को प्राप्त हो जाता है (रिष्ट समुच्चय,59)
4. यदि कोई व्यक्ति अपनी छाया को बैल, हाथी, कौवा, गधा, भैसा और घोड़ा इत्यादि अनेक रूपों में देखता है तो उसका तत्काल मरण जानना चाहिए। (रिष्ट समुच्चय, 78)
5. जिसके मुख, नाक तथा गुप्त इन्द्रिय से शीतल वायु निकले वह शीघ्र ही मरता है। (रिष्ट समुच्चय,32)
6. यदि कोई व्यक्ति अपनी छाया को धुएँ से आच्छादित अग्नि से प्रज्वलित और बिना सिर के केवल छाया का धड़ ही देखता है उसका जल्दी ही मरण समझना चाहिए। (रिष्ट समुच्चय,80)
7. हाथ–पैर आदि के पीड़ित करने पर भी जिसे पीड़ा का अनुभव न हो उसकी मृत्यु शीघ्र होती है। (भद्रबाहु संहिता पृ., 464)
8. जो दीपक के प्रकाश की लौ को अनेक रूप में देखता है। (रिष्ट समुच्चय,48)

निकट

1. यदि मुख से खून निकलता हो, मुख से ही तेजी से श्वास निकलती हो और खूब छटपटाहट होती हो तो मृत्यु निकट समझनी चाहिए। (रिष्ट समुच्चय,20)
2. जिसे दिन का रात और रात का दिन दिखलाई पड़े। (रिष्ट समुच्चय,58)

1. दिन

1. यदि कोई अपनी जिह्वा न देख सके। (रिष्ट समुच्चय,37)
2. यदि कन्धों से रहित छाया दिखे। (रिष्ट समुच्चय,104)

2. दिन

1. जो व्यक्ति अपनी छाया को दो रूपों में देखता है वह दो दिन जीवित रहता है और जो आधी छाया का दर्शन करता है वह भी दो दिन जीवित रहता है। (रिष्ट समुच्चय,76)
2. यदि नेत्रों के संचालन के साथ पुतलियाँ नहीं घूमती हों तो निस्सन्देह दो दिन के भीतर मरण होता है। (रिष्ट समुच्चय,35)

3 दिन

1. अपनी नाक न देख सकने पर तीन दिन जीवित रहता है। (रिष्ट समुच्चय,37)
2. जिसके हाथ और पैरों पर जल रखने से सूख जाए। (रिष्ट समुच्चय,31)

4 दिन

1. सूर्य, चन्द्रमा और तारा बिम्ब नीले दिखलाई पड़े तो।
2. यदि छाया पुरुष बिना हाथों के दिखलाई पड़े। (रिष्ट समुच्चय,104)

5 दिन

1. आँखों के तारा आँखों के भीतर रहने वाले मसूर के समान प्रकाश को, जो नाक के पास के कोनों को दबाने से प्रकट होता है, न देख सकने पर पाँच दिन की आयु अवशेष रहती है। (रिष्ट समुच्चय,38)

6 दिन

1. सूर्य और चन्द्र बिम्ब में से धुँआ निकलता हुए देखें। (रिष्ट समुच्चय,55)

7 दिन

1. कानों के भीतर होने वाली ध्वनि को न सुनने पर। (रिष्ट समुच्चय,38)
2. यदि अकारण ही नेत्रों से अनवरत पानी निकलता रहे और दाँत काले पड़ जाए। (रिष्ट समुच्चय,34)
3. जो अपने शरीर के शब्द को नहीं सुनता और दीपक की गन्ध का अनुभव नहीं करता। (रिष्ट समुच्चय,139)

4. जिसकी आँखें स्थिर हो जाए, पुतलियाँ इधर-उधर न चले। (रिष्ट समुच्चय,20)
5. जो स्वस्थ होते हुए भी सुगन्ध का अनुभव न कर सके। (रिष्ट समुच्चय,133)

8 दिन

1. अपनी बाहु-भुजा न दिखलाई पड़े।

9 दिन

1. अपनी भौंह के मध्य भाग को न देख सके। (रिष्ट समुच्चय,30)

10 दिन

1. अपने नख और दाँतों का विवृत हो जाना।

15 दिन

1. शरीर कान्तिहीन हो और बाहर निकलने में श्वास तेज हो जाए। (रिष्ट समुच्चय,33)

1 माह

1. जिसकी जिह्वा की नोक (अग्रभाग) बिलकुल काली हो जाए और ललाट पर की बढ़ी रेखाएँ मिट जाए। (रिष्ट समुच्चय,30)
2. अकारण नख, ओठ और दाँत काले पड़ जाए। (रिष्ट समुच्चय,27)
3. जो स्वप्न में सूर्य और चन्द्र ग्रहण को देखता है अथवा पृथ्वी पर स्वप्न में सूर्य और चन्द्र के पतन को देखता है, वह एक माह से कुछ अधिक जीवित रहता है। (रिष्ट समुच्चय,124)
4. जो स्वप्न में रुधिर, चर्बी, पीप, चमड़ा, घी और तेल के गड्ढ़े में डूबता है। (रिष्ट समुच्चय,129)
5. जो स्वप्न में भैंसे, गधे और ऊँट की सवारी द्वारा अपने को दक्षिण दिशा की ओर जाता हुआ देखता है अथवा घी या तेज से भींगा हुआ अपने को देखता है । (रिष्ट समुच्चय,123)
6. जिसे कड़ुवे, तीखे, कषायले, खट्टे, मीठे और खारे रसों का स्वाद न आये। (रिष्ट समुच्चय,24)

2 माह

1. जो व्यक्ति स्वप्न में अपने को विलीन होते हुए देखता है, काक या गिद्ध

के द्वारा अपने शरीर का भक्षण करते देखता है या स्वयं को वमन करते हुए देखता है। (रिष्ट समुच्चय,122)

3 माह

1. यदि सात दिनों तक रवि, शशि एवं ताराओं के बिम्बों को नाचता हुआ देखें। (रिष्ट समुच्चय,50)

4 माह

1. धैर्य नष्ट हो जाए, स्मृति नष्ट हो जाए, चलने में असमर्थ हो जाए, अत्यन्त निद्रा या निद्रा ना आवे। (रिष्ट समुच्चय,36)
2. स्वप्न में जिनेन्द्र प्रतिमा हस्त रहित देखें। (रिष्ट समुच्चय,118)

8 माह

1. स्वप्न में जिन प्रतिमा का उदर नष्ट होते हुए देखता है। (रिष्ट समुच्चय,119)

1 वर्ष

1. स्वप्न में जिन प्रतिमा घुटना रहित दिखे। (रिष्ट समुच्चय,118)
2. यदि छाया घुटनों के बिना दिखे। (रिष्ट समुच्चय,103)

2 वर्ष

1. स्वप्न में जिन प्रतिमा की जंघा नष्ट होते हुए देखें। (रिष्ट समुच्चय,119)

3 वर्ष

1. स्वप्न में जिन प्रतिमा पैरों के बिना देखता। (रिष्ट समुच्चय,118)

विशेष : 1. अपनी छाया का आकाश में पूर्ण प्रतिबिम्बित छाया पुरुष के रूप में जितना स्पष्ट देखता है उतना की वह अधिक संसार में जीवित रहेगा। (रिष्ट समुच्चय,99)

2. स्वप्न में जिनेन्द्र प्रतिमा के छत्र का भंग दिखलाई पड़े तो उस देख के राजा का मरण निश्चित समझना चाहिए। (रिष्ट समुच्चय,120)

अतिचार

देव वंदना के अतिचार-

1. कोई भगवान् के दर्शन कर रहे हैं तो उनके सामने से निकलना।

2. पूजन, भजन, मन्त्र इतनी जोर से पढ़ना कि दूसरा जो पूजन, भजन, मन्त्र कर रहा उसे व्यवधान हो।

जीवों पर दया करने के अतिचार-

जीवों पर ऐसी दया करना जिससे वे और कष्ट में आ जाए। जैसे- 1. चींटी को बचाने के लिए आपने उसको कपड़े से ऐसा दूर किया कि वह पानी में पहुँच गई।

2. सर्प को लाठी से ऐसा उछाला कि वह काँटों के वृक्ष पर पहुँच गया आदि।

जल छानने के अतिचार-

1. एक मुहूर्त के बाद जल नहीं छानना।
2. मलिन वस्त्र से जल छानना।
3. जिवानी पृथ्वी आदि के ऊपर डाल देना।
4. जिस जलाशय का जल है जिवानी उसी जलाशय में नहीं डालना। (ध.श्रा., 2/157)

प्र. मदिरा त्याग किसे कहते है एवं इसके अतिचार बताइए?

शराब एक मादक पदार्थ है, उसके पीने का त्याग करना मदिरा त्याग है। शराब अंगूर, सेवफल, महुआ, गुड़, जौ आदि को सड़ा सड़ाकर बनाई जाती है। सड़ने से लाखों जीवों की उत्पत्ति होती है और वे मर भी जाते हैं। इसके पीने से व्यक्ति का विवेक समाप्त हो जाता है। वह अपनी गृहमन्त्री (पत्नी) को पीटता, बच्चों को भी मारता और घर के सामान की भी तोड़फोड़ करता है। शराबी को कुछ भी होश नहीं रहता वह पीने के बाद नाली में जाकर भी सो जाता है। अतः इसका त्याग करना चाहिए।

विशेष- 1. वीयर आदि भी शराब है।

2. मदिरा त्याग के अतिचार सप्त व्यसन में दिए है।

माँस त्याग किसे कहते हैं एवं इसके अतिचार कौन-कौन से हैं?

प्राणियों के घात के बिना माँस की प्राप्ति नहीं होती है। माँस जीवित प्राणियों का हो या मरे प्राणियों का हो तथा कच्चा हो या पक्का हो उसमें

प्रतिसमय अनन्त निगोदिया तथा असंख्यात त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है, अतः माँस सेवन करने वाला असंख्यात त्रस जीवों का घात करता है तथा वह अनेक बीमारियों से ग्रस्त हो जाता है अतः माँस सेवन नहीं करना चाहिए।

केक, नूडल, बर्गर, चीज, बाजार के पैक आइस्क्रीम, भूरे रंग वाली खाद्य वस्तुएँ नहीं खानी चाहिए। तथा हरे निशान वाली वस्तुएँ पूर्णतः शाकाहारी हैं, ऐसी जानकारी होने पर ही सेवन करना चाहिए।

विशेष– माँस त्याग के अतिचारों का वर्णन सप्त व्यसन अध्याय में दिए हैं।

रात्रि भोजन त्याग किसे कहते हैं एवं इसके कितने अतिचार हैं?

सूर्य अस्त होते ही अनेक जीव उत्पन्न होने लगते हैं यदि रात्रि में भोजन करते हैं तो उन जीवों का घात हो जाता है, जिससे हमारा अहिंसा धर्म समाप्त हो जाता है एवं अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं तथा पाचन तन्त्र भी खराब हो जाता है।

रात्रि भोजन त्याग के अतिचार–

1. दिन के प्रथम और अन्तिम घड़ी में भोजन करना।
2. रात्रि में चारों प्रकार के आहारों का त्याग नहीं करना।
3. दिन के समय अन्धकार में बना भोजन करना।
4. रात्रि का बना भोजन दिन में करना।
5. रात्रि भोजन का त्याग करके समय पर भोजन न मिलने से मन में सोचना कि मैंने क्यों रात्रि भोजन का त्याग कर दिया।
6. रात्रि में पीसा, कूटा, छना हुआ पदार्थ खाना।

विशेष– सागार धर्मामृत में दिन के प्रथम मुहूर्त एवं अन्तिम मुहूर्त में भोजन करना अतिचार कहा है। यह व्रती श्रावक के लिए एक घड़ी (24) मिनिट होना चाहिए।

मनुष्य जन्म से गुणहीन होता है, किन्तु संस्कार से वह गुणवान बन जाता है

रात्रिभोजन से नुकसान

अहिंसा व्रत की रक्षा और मूलव्रत की शुद्धि के लिए धीर पुरुष मन–वचन–काय से रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग करे ॥1 ॥

जो स्वभाव से रात्रिभोजन का त्याग करता है, वह अपने कुल के आभूषण तथा तीन जगत् के स्वामियों की सम्पदा को प्राप्त होता है ॥2 ॥

रत्नत्रय से परिपूर्ण तथा अणुव्रतों को धारण करने में तत्पर भव्य जीव सूर्योदय होने पर दोषरहित भोजन करते हैं ॥3 ॥

जो दयालु पुरुष रात्रि में भोजन नहीं करते, वे विमानों के स्वामी अर्थात् वैमानिक देव होते हैं और वहाँ उत्कृष्ट भोगों को प्राप्त करते हैं ॥4 ॥

स्वर्ग से च्युत होकर अनिन्दनीय मनुष्य पर्याय प्राप्त कर चक्रवर्ती आदि के विभव से प्राप्त सुख का उपभोग करते हैं ॥5 ॥

जगत् में जो धनवान, गुणों से उदार, सुन्दर, दीर्घायु, जिनज्ञान से सहित और प्रधान पद पर स्थित हैं वे सब दिन में भोजन करने से हुए हैं ॥6 ॥

जो अनस्तमित व्रत का पालन करने में उद्यत हैं वे सूर्य के समान प्रभा वाले, चन्द्रमा के सौम्यदर्शन तथा स्थायी भोगों से युक्त होते हैं ॥7 ॥

दिन में भोजन करने से मनुष्य संसार में असह्य प्रताप से युक्त, नगरों के स्वामी, नाना प्रकार के वाहनों से सहित, सामन्तों से पूजित, भवनवासी देव, स्वर्गवासी देव, चक्रवर्ती के वैभव से सहित और महान्– उत्कृष्ट लक्षणों से सम्पन्न होते हैं ॥8–9 ॥

दिन में भोजन करने से मनुष्य उन नगरियों में ऐसे विद्याधर राजा होते हैं जो कलाओं में निपुण हैं, जिनके शरीर, नेत्र और हृदय में स्नेह उत्पन्न करने वाले हैं, जो अमृतस्रावी वाणी से समस्त जगत् को आह्लादित करते हैं तथा उत्साह से युक्त होते हैं। दिन में भोजन करने से मनुष्य नारायण, बलदेव, चक्रवर्ती, बिजली और लाल कमल के समान कान्ति वाले, देदीप्य सुन्दर कुण्डलों से युक्त एवं राजाओं से सम्बन्ध करने वाले होते हैं ॥10–12 ॥

दया में तत्पर रहने वाली स्त्रियाँ रात्रि में भोजन नहीं करती हैं, उन्हें सेवकों के द्वारा तैयार किया हुआ इच्छानुकूल भोजन प्राप्त होता है ॥13 ॥

जो स्त्रियाँ रात्रिभोजन से विरत रहती हैं, वे उपशान्तहृदय, शील सहित तथा साधुसमूह के लिए हितकारी होती हैं ॥14॥

दिन में भोजन करने से स्त्रियाँ श्रीकान्ता, सुप्रभा तथा सुभद्रा के समान लक्ष्मी तुल्य कान्ति वाली होती हैं ॥15॥

जो स्त्रियाँ यान तथा हाथी आदि वाहनों पर लीलापूर्वक गमन करती हैं और सुन्दर भवनों में निवास करती हैं वे रात्रिभोजन का त्याग होने से ही करती हैं। वे स्त्रियाँ स्वर्ग में इच्छानुकूल भोग को प्राप्त होती हैं तथा मस्तक पर हाथ रख आज्ञा की प्रतीक्षा करने वाले परिवार से घिरी रहती हैं ॥16-17॥

जिन पुरुषों ने पहले रात्रिभोजन का त्याग किया है, वे सुरीली आवाज वाले, निर्मल शरीर से युक्त तथा सुन्दर वस्त्राभूषणों से सहित मनुष्य होते हैं। इस लोक में जो सुन्दर राजा दिखाई देते हैं वह सब रात्रिभोजन-त्याग का ही फल है, इसमें संशय नहीं है ॥18-19॥

जो मनुष्य सूर्यास्त हो जाने पर भोजन करते हैं वे विद्वानों के द्वारा मनुष्यता से युक्त पशु कहे गये हैं ॥20॥

जो रात्रि में भोजन करता है, वह अल्प आयु तथा अल्प धन से युक्त, रोग से पीड़ित शरीर वाला और परभव में सुख से हीन होता है ॥21॥

जो दुर्बुद्धि रात्रि में भोजन करता है, वह हजारों उत्सर्पिणी काल तक खोटी योनियों में दुःख को प्राप्त होता है ॥22॥

रात्रि में भोजन करने से स्त्रियाँ अनाथ, सौभाग्यहीन, माता-पिता तथा भाई से रहित, शोक एवं दरिद्रता से युक्त होती हैं। जिनके हाथ-पैर आदि अङ्ग रूक्ष तथा फटे हुए हैं, जिनकी नाक चपटी है, जिनका देखना ग्लानि को उत्पन्न करता है, जिनके नेत्र कीचड़ से भरे हैं, जिनके लक्षण दुष्ट हैं, जिनके शरीर से दुर्गन्ध आती है, जिनके होठ कटे तथा मोटे होते हैं, जिनके कान विरूप हैं, जिनके केश पीले तथा रूक्ष हैं, जिनके दाँत तमूड़ी के बीज के समान हैं, शरीर सूखा हैं, जो कानी, लंगड़ी और कान्तिरहित हैं, विरूप हैं, कठोर चमड़ी वाली हैं, अनेक रोगों से सहित हैं, मलिन हैं, फटे वस्त्र वाली हैं, खराब भोजन से जीवित हैं, दूसरों के कार्य पर आश्रित हैं, दुःखों के भार से दबी हुई हैं,

बालावस्था में ही वैधव्य के दुःख से दुःखी हैं, पानी भरती हैं, लकड़ियाँ ढोती हैं, बड़े दुःख से पेट भर पाती हैं, सब लोगों से तिरस्कृत हैं, कुवचन रूप वसूला से जिनका चित्त नष्ट हो गया है तथा शरीर सैकड़ों घावों का आधार हैं, ऐसी स्त्रियाँ रात्रिभोजन करने से होती हैं ॥23-29॥

रात्रिभोजन में तत्पर स्त्रियाँ छिन्नकर्ण, भग्ननासिक, धन तथा बन्धुओं से रहित पति को प्राप्त होती है। जो रूक्ष शरीर वाली दासी आदि हैं, जो पुत्र और पति से रहित हैं और जो दौर्भाग्यरूपी ग्रह से ग्रस्त हैं, वे रात्रिभोजन से ही वैसी हैं ॥30-31॥

रात्रिभोजन के पाप से जीव दुर्गति को प्राप्त होते हैं। लोक में जो रोगी, दरिद्र और क्रूर पुरुष दिखाई देते हैं वे भी रात्रिभोजन के पाप से दिखाई देते हैं। जिनके हाथ-पैर फटे हैं, जो दीन हैं, लकड़ी और घास ढोते हैं, मलिन वस्त्र वाले हैं तथा नीच कुल में उत्पन्न हैं, वे सब रात्रिभोजन करने से ही वैसे हैं। रात्रिभोजन के फल से मनुष्य रोग से पीड़ित, दूसरों के घरेलू नौकर तथा अपने बन्धुजनों से रहित होते हैं। रात्रि में भोजन करने वाला मिथ्यादृष्टि मनुष्य सूकर, भेड़िया, बिलाव, उल्लू तथा कौआ आदि की योनियों में उत्पन्न होता है ॥32-35॥

भोजन की तीव्र लालसा रखने वाला जो पापी जीव सूर्य के दृष्टि अगोचर हो जाने पर भोजन करता है वह दुर्गति को नहीं जानता, यह नहीं समझता कि इस रात्रिभोजन के पाप से मुझे नरकादि दुर्गति में जाना पड़ेगा ॥36॥

अन्धकार के समूह से जिसके नेत्र आच्छादित हो रहे हैं तथा पाप में जिसकी बुद्धि लग रही है, ऐसा पापी जीव मक्खी, कीड़े तथा केश-बाल आदि को खा जाता है ॥37॥

जो रात्रिभोजन करता है, वह डाकिनी-शाकिनी तथा भूत-प्रेतादि निन्द्य प्राणियों के साथ खाता है ॥38॥

जो रात्रि में खाता है उसने कुत्ता, चूहा, बिल्ली आदि मांसाहारी जीवों के साथ खाया। अथवा व्यर्थ के विस्तार से क्या? इतना ही कहा जाता है कि रात्रि में खाने वाले ने सब अपवित्र पदार्थ खाये। रात्रि में दीपकों के ऊपर जो

पिपीलिका आदि जीव पड़ते हैं, रात्रि में खाने वाले पुरुष ग्रासों के साथ उन्हें भी निगल जाते हैं ॥39-41 ॥

जिन लोगों ने रात्रिभोजन रूप अधर्म को धर्म मान रखा है, उन पापकर्म से क्रूर मनुष्यों को समझाना कठिन है ॥42 ॥

सूर्य की किरणों से अस्पृष्ट-अछूता भोजन प्रेतों के समूह से उच्छिष्ट-जूठा हो जाता है तथा सूक्ष्म जीवों से युक्त होता है। अतः रात्रि में खाना उचित नहीं है ॥43 ॥

जो रात-दिन खाता है, जिनधर्म से विमुख है, व्रतरहित है तथा नियम से दूर है ऐसा मनुष्य परभव में सुखी कैसे हो सकता है? ॥44 ॥

रात्रिभोजन के लोभी मनुष्य परभव में तिर्यञ्च तथा नरकादि गतियों में अन्धे, बौने, अत्यन्त विकलाङ्ग, अल्पायु, शोक, क्लेश, विषाद तथा दुःख से परिपूर्ण, कोढ़ आदि रोगों से सहित, दरिद्रता से पीड़ित अत्यन्त चञ्चल और अल्प आदर वाले निश्चितरूप से होते हैं ॥45 ॥

रात्रि में अन्न के बर्तन तथा अग्नि आदि में अनेक जीव पड़ते हैं जिससे मांस खाने का दोष तथा हिंसा होती है, अतः रात्रिभोजन छोड़ने के योग्य है ॥46 ॥

बिना छने जल से नुकसान

बिना छने जल की जीवसंख्या नहीं है अतः बिना छना पानी पीने वाला पुरुष पाप में तत्पर रहता है ॥47 ॥

जिसने एक अञ्जलि प्रमाण बिना छना पानी पीया है उसे सात गाँवों को जलाने से उत्पन्न पाप होता है ॥48 ॥

जिनेन्द्र भगवन् ने एक बूंद मात्र जल में जो जीव बतलाये हैं, वे यदि कबूतर के बराबर हो कर उड़ें तो जम्बूद्वीप में न समावें ॥49 ॥

अन्धा है व्याकरण बिना, बहरा कोश विहीन।
लूला बिन साहित्य के, मूर्ख तर्क से हीन॥

पञ्च उदुम्बर फलों का त्याग किसे कहते हैं एवं इसके कितने अतिचार हैं?

बड़, पीपल, ऊमर(गूलर), कठूमर (अंजीर), पाकर इन पाँच उदुम्बर फलों का त्याग भी कर देना चाहिए। क्योंकि यह भी अनेक सूक्ष्म जन्तुओं से भरे रहते हैं। इसलिए इनके सेवन करने से नरकादिक के अनेक दुःख प्राप्त होते हैं।

पञ्च उदुम्बर फलों के त्याग के अतिचार-

जिन फलों के बारे में आपको जानकारी नहीं ऐसे अंजान फलों को तथा दोनों फलक किए बिना सेम की फली आदि को न खावे। (सागर धर्मामृत 3/14)

विशेष- जिनसे आप परिचित नहीं हैं ऐसे अंजान व्यक्तियों के हाथ का भोजन, बिस्कुट आदि भी नहीं खाना चाहिए।

मधुत्याग किसे कहते हैं एवं इसके कितने अतिचार हैं?

मधुमक्खियाँ पुष्पादिकों का रस चूसकर अपने छत्ते में मधु (शहद) इकट्ठा करती हैं। वह उनका वमन (उल्टी) है इससे अपवित्र है। मधु में छोटी-छोटी बहुत-सी मक्खियों का भी वध हो जाता है। इस अपेक्षा से मधु के भक्षण से सात गाँव जलाने से भी अधिक पाप लगता है। अतः शहद नहीं खाना चाहिए। (सागर धर्मामृत 2/11)

विशेष- कोई कहता है कि शुद्ध शहद का सेवन कर सकते हैं, तब ध्यान रखना कि शहद शुद्ध होता ही नहीं हैं।

मधुत्याग के अतिचार- पुष्पों का रस पीना, पुष्पों का सेवन करना एवं गुलकन्द का सेवन करना। (लाटी संहिता,1/77)

विशेष- आठ मूलगुण श्रावकों के लिए गणधर देव ने कहें है, इनमें से एक के भी अभाव में श्रावक नहीं कहा जा सकता। (सा.ध.टिप्पण.पृ82)

अन्य आचार्यों एवं विद्वानों ने अष्ट मूलगुण कौन-कौन से माने हैं?

आचार्य सोमदेव सूरि- तीन मकार और पाँच उदुम्बरों के सेवन के त्याग को अष्टमूल गुण कहा है। (यशस्तिलक चम्पूगत उपासकाध्ययन आ. सोमदेव, 7/255)

आचार्य समन्तभद्र– मद्य, माँस और मधु के त्याग के साथ पाँच अणुव्रतों के धारण करने को अष्ट मूलगुण कहा है। (रत्नकरण्डक श्रावकाचार 66)

पण्डित आशाधर– मद्य, माँस, मधु और पाँच क्षीरी फलों का त्याग करना अष्ट मूलगुण हैं। (सागर धर्मामृत 2/12)

अकाल में सिद्धान्त ग्रन्थों का स्वाध्याय करने का फल

अष्टमी में अध्ययन गुरु और शिष्य दोनों का वियोग करने वाला होता है। पूर्णमासी के दिन किया गया अध्ययन कलह और चतुर्दशी के दिन किया गया अध्ययन विघ्न को करता है। यदि साधुजन कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्या के दिन करते हैं तो विद्या और उपवास विधि सब विनाशवृत्ति को प्राप्त होते हैं। मध्याह्न काल में किया गया अध्ययन जिनरूप को नष्ट करता है, दोनों सन्ध्याकाल में किया गया अध्ययन व्याधि को करता है, तथा मध्यम रात्रि में किये गया अध्ययन से अनुरक्त जन भी द्वेष को प्राप्त होते हैं। (ध.पु., 9/257-258 में उद्धृत)

सप्त व्यसन

मानव का पतन बुरी आदतों से होता है एवं उत्थान अच्छी आदतों से होता है। इस अध्याय में मानव पतन की सात बुराईयाँ जिन्हें सप्त व्यसन के नाम से जाना जाता है। उसका इस अध्याय में वर्णन है।

व्यसन किसे कहते हैं एवं कितने होते हैं?

बुरी आदतों को अथवा दुःख, पतन, विनाश आदि की उत्पत्ति में कारणभूत कार्यों को व्यसन कहते हैं। व्यसन सेवन करने वाले व्यसनी कहलाते हैं। कोई भी व्यक्ति जन्म से ही व्यसनी नहीं होता किन्तु बुरी आदत, बुरी सङ्गति, गरीबी, धन की चाह, शौक तथा जिज्ञासा की आखिर यह क्या है देखें आदि कारणों से व्यसनों की अङ्गीकार कर लेता है। प्रारम्भ में वे समाज परिवार और मित्रों से छुपकर व्यसन करते हैं, बाद में लज्जा छोड़कर बदनामी को सहन करता हुआ भी व्यसन करता रहता है तथा उसकी आदत पड़ जाने पर वह चाहकर भी उसे छोड़ने में असमर्थ हो जाता है।

व्यसनों के कारण पूरा परिवार माता-पिता, भाई-बहिन, मित्र तथा अन्य सम्बन्धी सभी दुःखी एवं लज्जित रहते हैं क्योंकि वह कुल की मर्यादा को भङ्गकर कुल को कलंकित करता है।

व्यसन सात प्रकार के होते हैं-

1. जुआ खेलना, 2. माँस खाना, 3. मदिरा पान करना, 4. वेश्या गमन करना, 5. शिकार ेलना, 6. चोरी करना, 7. परस्त्री सेवन करना।

जुआ व्यसन यह है

बिना परिश्रम किए थोड़ा धन लगाकर अधिक धन कमाने की इच्छा रखते हुए तासपत्ती, लाटरी, वायदा व्यापार (शेयर का सट्टा) करने में, क्रिकेट के खेल में शर्त लगाना आदि में पैसा लगाना जुआ व्यसन है।

जुआ व्यसन समस्त अनर्थों का कारण है, सन्तोष का नाश करने वाला, मायाचार का, चोरी का तथा झूठ का स्थान है। जुआ खेलने वाले जुआरी कहलाते हैं। जुआरी लोगों का प्रत्येक जगह अपमान होता है। सभी लोग उनकी निन्दा करते हैं और राज्य उन्हें दण्ड देता है। जुआ खेलने वाले को अन्य समस्त व्यसनों में जबरदस्ती फँसना पड़ता है।

जीवन में मात्र एक बार जुआ खेलने से धर्मराज (युधिष्ठिर) को अपने भाइयों के साथ बारह वर्ष के लिए वनवास के दुर्दिन देखने पड़े व द्रौपदी का चीर हरण होते-होते बचा।

अतः जुआ कभी नहीं खेलना चाहिए न किसी को खेलने के लिए प्रेरित करना चाहिए और न खेलने वालों का समर्थन करना चाहिए।

विशेष- 1. जुआरी का कोई गुरु नहीं होता है।

2. पबजी खेलना भी जुआ है।

3. जुआ किसी का न हुआ।

जुआ व्यसन त्याग के अतिचार

मनोविनोद के लिए शर्त लगाकर दौड़ना, जुआ खेलते लोगों को देखना आदि हैं।

जुआ व्यसन त्यागी को और क्या-क्या त्याग कर देना चाहिए?

विशेष- जुआ व्यसन की बहिन रसादिसिद्धपरता को भी छोड़ देवे।

क्योंकि इन कामों में भी मन की वृत्ति व्यसन के समान श्रेयोमार्ग से विमुख करती है। ऐसा करने से सुवर्ण बनाया जा सकता है और बड़ा धनीपना प्राप्त हो सकता है। ऐसा अञ्जन भी बनाया जा सकता है जिससे जमीन में गड़ा हुआ धन नेत्रों से दिखने लगे तो बड़ा काम हो जाए। मन्त्रादिक से ऐसी खड़ाऊँ सिद्ध करना कि जिनके योग से चाहे जहाँ अदृश्य होकर जाना हो सकता है। ऐसे कार्यों में दिन-रात लगा रहना तथा सब धर्म कार्य छोड़ देना उपव्यसन में गिना जाता है।

माँस खाना व्यसन

माँस की उत्पत्ति सप्त धातु से निर्मित अपवित्र शरीर के घात से होती है जिन्दा या मृत जीवों के शरीर या शरीर के किसी भी अङ्ग का भक्षण करना माँस खाना व्यसन कहलाता है माँस कच्चा हो या पका उसमें अनन्त निगोदिया तथा असंख्यात जीवों की निरन्तर उत्पत्ति होती रहती है। जैसे-मछली खाना, अण्डा खाना, उससे बनी वस्तुओं का सेवन करना, पेस्ट्री खाना, वर्तमान में जिन खाद्य वस्तुओं एवं दवाओं में जो लाल रङ्ग का चिह्न आता है वह सब माँस के अन्तर्गत आता है जिन खाद्य वस्तुओं में हरा चिह्न रहता है वह शुद्ध शाकाहारी ही है ऐसा नियम नहीं है उनमें बहुत सी सामग्री का सम्बन्ध माँसाहार से भी है। इसकी जानकारी के लिए इण्टरनेट साइट पर कौन-कौन से अन्तर्घटक तत्त्व माँसाहारी है कि सूची दी गई है।

कुछ महान् व्यक्तियों के नाम बताइए जिन्होंने अपने जीवन में माँस का सेवन नहीं किया?

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जी चौदह वर्ष वनवास में रहे पाण्डव भी बारह वर्ष वनवास में रहे फिर भी उन्होनें कभी माँस का सेवन नहीं किया। महात्मा गाँधी के सहयोग से अपना भारत देश स्वतन्त्र हुआ उन्होंने भी माँस का सेवन नहीं किया। महाराणा प्रताप ने जङ्गल में भी घास की रोटियाँ खायीं हैं। पूर्व राष्ट्रपति श्री अब्दुल कलाम जो कि मुस्लिम जाति के होने के बाद भी माँस का सेवन नहीं करते थे। अतः मानवीय आहार शाकाहार है, उसे ही करना चाहिए।

प्र. ऐसा क्या विचार करें जिससे किसी के माँस सेवन के भाव ही न हो?

आपका बेटा स्कूल पढ़ने के लिए गया हो और स्कूल छूटने का समय सायंकाल 5 बजे का हो तथा आपका बेटा सायंकाल 5:15 तक घर आ जाता है यदि आपका बेटा सायंकाल 6:00 बजे तक घर न आया हो तो बताइए आपके मन में कैसे कैसे विचार उत्पन्न होते हैं कहीं किसी ने मेरे बेटे को मारा तो नहीं या किसी ने मेरे बेटे का अपहरण तो नहीं कर लिया आदि प्रकार के मन में विचार उत्पन्न होते रहते हैं जब आपको अपने बेटे के प्रति ऐसे भाव आते हैं। तब विचार कीजिए वे पशु-पक्षी भी किसी के बेटे हैं यदि आप उनको मारकर खा जाते हो तो उनके माता-पिता को कैसा लगता होगा।

आपके पैर में काँटा लग गया तब आपको कितनी वेदना होती है। फिर आप किसी पशु-पक्षी को काँटे से नहीं चाकू आदि से मारकर खाते हैं तो उन्हें कितनी वेदना होती होगी विचार कीजिए।

मदिरापान व्यसन -

वे सभी पदार्थ जिनके सेवन से व्यक्ति होश, विवेक, बुद्धि खो बैठता है, जिससे नशा उत्पन्न हो, इन्द्रियाँ सुप्त हो जावें मदिरापान व्यसन के अन्तर्गत आते हैं।

विश्व में बढ़ रही दुर्घटनाएँ, हत्याएँ या अन्य क्रूरतम घटनाओं के कारण मादक पदार्थों का सेवन करना है। शराबी शराब पीने के बाद कहीं भी गिर पड़ता है। उसे होश नहीं रहता। कुत्ता उसके मुख को चाटते-चाटते पेशाब भी कर देता तो वह कहता क्या मीठा-मीठा शरबत है और आने दो। मदिरा पान करने वाला अपनी स्त्री से कहता है तू मेरी माँ है मुझे अपने स्तनों का दूध पिलाकर पालो क्योंकि उसे होश नहीं रहता वह माता को पत्नी भी कहने लगता है।

मदिरापान के त्याग के अतिचार -

1. मर्यादा के बाहर का अचार, मुरब्बा का सेवन करना। (महाभारत ग्रंथ)

2. मर्यादा के बाहर का दही व छाछ तथा जिस पर फूल से आ गए हो ऐसी काँजी (मट्ठा, दही या फटे हुए दूध का पानी)(सागर धर्मामृत 3/17)

3. मदिरा आदि अपवित्र पदार्थों के स्पर्श वाले बर्तनों में रखा हुआ भोजन करना।

4. शराब की दुकान में बैठकर काली बोतल में दूध पीना।

5. रात्रि में पान लगाकर रख दिया उसे सुबह खाना।

मदिरापान से होने वाली हानियाँ -

1. यहाँ मदिरापान सेवन करने वालों को नरकों में अन्य नारकी जीव सण्डासी से मुख फाड़कर बलपूर्वक उसमें उबलता हुआ ताम्ररस डाल देते हैं।

2. एक बार शराब पीने से 25 मिनट आयु घट जाती है।

3. अनेक प्रकार की बीमारियाँ होती हैं।

4. आपके धन का दुरुपयोग होता है।

5. आपको, आपकी पत्नी को एवं बच्चों को समाज के व्यक्ति हीनदृष्टि से देखते हैं।

6. शराबी की बेटी को ससुराल में खरी-खोटी बातें सुनना पड़ती है।

विशेष : वीयर आदि भी शराब हैं।

शिकार खेलना व्यसन -

मनोरंजन के लिए तीरकमान, तलवार, छुरी, भाले, अस्त्र-शस्त्र से प्राणियों को मारना, छेदन-भेदन करना शिकार खेलना व्यसन कहलाता हैं।

शिकार खेलना व्यसन त्याग के अतिचार बताइए?

वीडियो गेम में चिड़िया मारना। वस्त्र, सिक्का, काष्ठ, पाषाण, चटाई, कागज आदि में बने चित्रों का छेदन-भेदन करना। (फ्री फायर पब जी आदि गेम)

शिकार व्यसन से होने वाली हानियाँ बताइए?

जो पशु-पक्षियों का शिकार करके उन्हें अपने परिवार से पृथक् कर देते हैं तो कर्म ऐसा फल देता है कि जिससे कोई विधवा होती, विधुर होता,

कोई सन्तान से हीन होता है। शिकार खेलने वालों को संसारी जन बुरी दृष्टि से देखते हैं एवं उनको जेल आदि दुःखों को भी सहन करना पड़ता है।

चोरी करना व्यसन किसे कहते हैं ?

किसी की रखी हुई, गिरी हुई, भूली हुई अथवा नहीं दी हुई वस्तु को लेना या लेकर के दूसरों को देना चोरी व्यसन है। कुछ गरीबी के कारण, कुछ धनवान बनने के लिए कुछ कोई धनवान न रहे गरीब हो जाए और कुछ आदत पड़ जाने के कारण चोरी करते हैं। जैसे- अञ्जन चोर करता था।

चोरी व्यसन के अतिचार बताइए ?

अपने कुटुम्ब में भाई, चाचा आदि जो लोग हैं उनसे राज्यादि के बल से धन को न छीने और न धन को छिपावे। (सागर धर्मामृत, 3/21)

चोरी व्यसन से होने वाली हानियाँ बताइए ?

चोर जब पकड़ा जाता है तो अनेक प्रकार के दण्ड भोगने पड़ते है और कभी किसी को फाँसी भी हो जाती है एवं परलोक में नरक आदि के दुःखों को सहना करना पड़ता है।

प्र. परस्त्री सेवन व्यसन किसे कहते हैं ?

स्वयं की स्त्री अर्थात. जिसके साथ धर्मानुकूल विवाह किया है, उसको छोड़कर अन्य स्त्री के साथ विषय सेवना करना परस्त्री सेवन व्यसन है।

प्र. परस्त्री सेवन व्यसन त्याग के अतिचार बताइए ?

बालिकाओं के लिए दूषण लगाना एवं गन्धर्व विवाह (प्रेम विवाह) करना। (सागर धर्मामृत, 3/23)

परस्त्री से एकान्त में बोलना, हँसी मजाक करना, तिरछी नजर से देखना, शील भेदक सम्भाषण करना, परिचय प्राप्त करना आदि। इन कारणों को करने से वृद्ध पुरुष भी दोष को प्राप्त होता है, तब फिर जवान पुरुष क्यों नहीं दोष को प्राप्त होगा? अवश्य होगा। (आमितगति श्रावकाचार,12/89-90)

विशेष : कुछ लोग कहते है परस्त्री सेवन का त्याग हैं। क्या पर बालिका का सेवन कर सकते नहीं। यहाँ पर स्त्री से आशय बालिका हो या महिला पर स्त्री ही कहलाती है।

वेश्यागमन व्यसन किसे कहते हैं?

जो स्त्री धन आदि के लिए सभी की पत्नी बन जाती है उसे वेश्या या नगरनारी कहते हैं। इनके साथ विषय सेवन करना वेश्यागमन व्यसन कहलाता है।

वेश्यागमन व्यसन से होने वाली हानियाँ बताइए?

किसी ने कहा है-

1. दर्शनात् हरते चित्तं, स्पर्शात् हरते बलम्।
भोगात् हरते वीर्यं वेश्या साक्षात् राक्षसी॥
2. वेश्यागमन करने वाले समाज में, परिवार में हीन दृष्टि से देखें जाते हैं।
3. धन, शक्ति से रहित हो जाता है।
4. नरक जाने की तैयारी कर लेता है।
5. अनेक प्रकार की बीमारियों को निमन्त्रण देता है।

सातों व्यसनों में प्रसिद्ध होने वालों के नाम बताइए?

जुआ के खेलने से युधिष्ठिर महाराज को अपने राज्य में भ्रष्ट होना पड़ा। माँस के खाने से बक नामक राजा को नरक का वास भोगना पड़ा। मदिरा के पीने से यादव लोग नष्ट हुए। शिकार के खेलने से ब्रह्मदत्त समुद्र में डूबकर अनेक प्रकार के दु:खों को भोगने वाला बना। चोरी के करने से शिवभूति ब्राह्मण सर्प होकर अग्नि में गिरा। परस्त्री के दोष से तीन खण्ड का स्वामी रावण मर करके तीसरी पृथ्वी (नरक) में गया। वेश्या सेवन करने से 32 करोड़ दीनार के स्वामी चारुदत्त ने अनेक दु:खों को भोगा।

स्वप्न और उनके फल -

दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भाविक और दोषज।

दृष्ट- जो जागृत अवस्था में देखा हो उसी को स्वप्नावस्था में देखा जाए।

श्रुत- सोने से पहले कभी किसी से सुना हो उसी को स्वप्नावस्था में

देखें।

अनुभूत- जो जागृत अवस्था में किसी भाँति अनुभव किया हो उसी को स्वप्न में देखें।

प्रार्थित- जिसकी जागृत अवस्था में प्रार्थना/इच्छा की हो उसी को स्वप्न में देखें।

कल्पित- जिसकी जागृतावस्था में कभी भी कल्पना की गई हो उसी को स्वप्न में देखें।

भाविक- जो कभी न तो देखा गया हो और न सुना गया हो, पर जो भविष्य में घटित होने वाला हो उसे स्वप्न में देखा जाए।

दोषज- वात, पित्त और कफ से विकृत हो जाने से जो स्वप्न देखा जाए। इन सात प्रकार के स्वप्नों में से पहले पाँच प्रकार के स्वप्न प्राय: निष्फल होते हैं, वस्तुत: भाविक स्वप्न का फल ही सत्य होता है। (भद्रबाहु संहिता पृष्ठ, 444)

रात्रि में किस समय देखे गए स्वप्न कब फल देते हैं?

रात्रि के प्रथम प्रहर में देखे गए स्वप्न एक वर्ष में, दूसरे प्रहर में देखें गए आठ माह में, तीसरे प्रहर में देखे गए स्वप्न तीन माह में, चौथे प्रहर में देखें गए स्वप्न एक माह में, ब्रह्ममुहूर्त (सूर्योदय से 3 घड़ी पहले तक) में देखे गए स्वप्न दिन में और प्रात: काल सूर्योदय से कुछ पूर्व देखे गए स्वप्न अतिशीघ्र फल देते हैं। (भद्रबाहु संहिता, 444-445)

किस तिथि में देखे गए स्वप्न का फल कब मिलता है?

शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा- बिलम्ब से फल मिलता है।

शुक्ल पक्ष की द्वितीया- विपरीत फल होता है। अपने लिए देखने से दूसरों को और दूसरों के लिए देखने से अपने को फल मिलता है।

शुक्ल पक्ष की तृतीया- विपरीत फल मिलता है, पर फल की प्राप्ति बिलम्ब से होती है।

शुक्ल पक्ष की चतुर्थी पञ्चमी- दो माह से लेकर दो वर्ष, के भीतर फल मिलता है।

शुक्ल पक्ष की षष्ठी से दसवीं तक- शीघ्र फल की प्राप्ति होती है

तथा स्वप्न सत्य निकलता है।
शुक्ल पक्ष की एकादशी-द्वादशी- बिलम्ब से फल मिलता है।
शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी- चतुर्दशी- फल नहीं मिलता तथा स्वप्न मिथ्या होते हैं।
शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा- इसका फल अवश्य मिलता है।
कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा- इसका फल नहीं होता है।
कृष्ण पक्ष की द्वितीया- बिलम्ब से फल मिलता है।
कृष्ण पक्ष की तृतीया-चतुर्थी- फल मिथ्या होता है।
कृष्ण पक्ष की पञ्चमी-षष्ठी- दो माह से तीन वर्ष के अन्दर फल देने वाले हैं।
कृष्ण पक्ष की सप्तमी- शीघ्र फल मिलता है।
कृष्ण पक्ष की अष्टमी-नवमीं- विपरीत फल।
कृष्ण पक्ष की दसवीं से त्रयोदशी तक- फल मिथ्या होता है।
कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी- सत्य तथा शीघ्र फल मिलता है।
कृष्ण पक्ष की अमावस्या- फल मिथ्या होता है। (भद्रबाहु संहिता)

सङ्गति

मानव प्रायः अकेला नहीं रह सकता है। अतः वह सङ्गति करता है। किसे किसकी सङ्गति करना चाहिए। उसी का वर्णन यहाँ हैं।

किसकी सङ्गति करना चाहिए?

गुणवानों की सङ्गति करना चाहिए।

उदाहरण- 1. जिनेन्द्र देव की प्रतिमा के संसर्ग से जल से बना गन्धोदक पूज्य कहलाता है। वही जल नाली में डालने से गन्दा जल अस्पृश्य हो जाता है।

2. संयमी लोग भी महात्माओं के संसर्ग से पूज्यता को प्राप्त होते हैं और नीचों के संसर्ग से इस लोक और परलोक में पद-पद पर निन्दनीय हो जाते हैं इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं।

3. देखो कमल आदि के संयोग से जल सुगन्धित और शीतल हो जाता है

तथा बर्तन और अग्नि के संसर्ग से वहीं जल अत्यन्त गर्म हो जाता है।

4. जिस प्रकार कोई साहूकार भी चोर के संसर्ग से चोर कहलाता है। उसी प्रकार साधु पुरुष भी असाधुओं के संसर्ग से असाधु ही कहलाता है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं हैं। (मूलाचार प्रदीप, 3/977)

5. इस संसार में जिस प्रकार असाधु पुरुष भी साधु की सेवा करने से साधु कहलाते हैं। उसी प्रकार निर्गुणी पुरुष भी गुणी पुरुषों की सेवा करने से इस लोक में गुणी ही कहलाते हैं। (मूलाचार प्रदीप 3/978)

6. दस चोरों के बीच में एक साहूकार बैठा है। तब भी लोग यही कहेंगे यहाँ चोर बैठे हैं।

7. दस धर्मात्माओं के बीच एक पापी बैठा है तब भी लोग यहीं कहेंगे यहाँ धर्मात्मा बैठे हैं।

साधु को तरुण जनों की सङ्गति क्यों नहीं करना चाहिए?

जैसे- 1. तालाब में गिरकर पत्थर उसकी तल से बैठी हुई कीचड़ को उभारकर निर्मल जल को मलिन कर देता है। वैसे ही तरुणों का संसर्ग प्रशान्त पुरुष के भी मोह उद्रिक्ता (मोहित) कर देता है। (भ.आ.,1066)

जैसे- 2. मिट्टी में छिपी हुई गन्ध जल का आश्रय पाकर प्रकट हो जाती है। वैसे ही तरुणों के संसर्ग से मनुष्य में छिपा हुआ मोह उदय में आ जाता है।

जैसे- 3. मिट्टी में विद्यमान होते हुए भी गन्ध जल के बिना मिट्टी में ही लीन रहती है। वैसे ही तरुणों के संसर्ग के बिना मनुष्य का मोह उसी में लीन रहता है, बाहर में प्रकट नहीं होता। (भगवती आराधना, 1069)

4. तरुण पुरुषों की सङ्गति से वृद्ध पुरुष भी शीघ्र ही विश्वास के कारण निर्भय होने से और स्वभाव से ही मोहयुक्त होने से तरुणशील तरुणों के स्वभाव वाला हो जाता है। (भगवती आराधना, 1071)

5. जो तरुणों की सङ्गति में रहता है उसकी इन्द्रियाँ चञ्चल होती हैं, मन चञ्चल होता है और पूरा विश्वासी होता है। फलतः शीघ्र ही स्वच्छन्द होकर स्त्री विषयक दोषों का भागी होता है। (भगवती आराधना, 1073)

विशेष- पुरुष में तीन कारणों से अप्रशस्तभाव अर्थात् काम सेवन की

अभिलाषा युक्त भाव होता है। एकान्त में अन्धकार में तथा स्त्री- पुरुष के काम सेवन को प्रत्यक्ष देखने पर। (भगवती आराधना, 1074)

साधु जनों में आर्यिकाओं की सङ्गति क्यों नहीं करना चाहिए?

हे साधुजनों! आपको प्रमाद रहित होकर आग और विष के तुल्य आर्यिकाओं के संसर्ग को छोड़ना चाहिए। आर्या के साथ रहने वाला साधु शीघ्र ही अपयश का भागी होता है। अतः साधुओं को आर्यिकाओं की सङ्गति नहीं करना चाहिए। (भगवती आराधना,332)

विशेष- केवल आर्याओं का संसर्ग ही त्याज्य नहीं है, बल्कि जो बाला, कन्या, तरुणी, वृद्धा, सुरूप, कुरूप सभी प्रकार के स्त्री वर्ग में प्रमाद रहित होता है और कभी भी उनका विश्वास नहीं करता वही साधु ब्रह्मचर्य को जीवन पर्यन्त पार लगाता है। जो उससे विपरीत होता है अर्थात् स्त्रियों के सम्बन्ध में प्रमादी और विश्वासी होता है। वह ब्रह्मचर्य को पार नहीं कर पाता। (भगवती आराधना,336)

प्र. वृद्धों की सङ्गति से क्या होता है?

1. वृद्ध पुरुषों के संसर्ग से तरुण भी शीघ्र ही लज्जा से, शङ्का से, मान से, अपमान के भय से और धर्मबुद्धि से वृद्धशील हो जाता है। (भगवती आराधना,1070)

2. ज्ञान, वय और तप से वृद्ध पुरुषों की सङ्गति तरुण पुरुषों में भी वैराग्य उत्पन्न करती है जैसे बछड़े के स्पर्श से गाय के स्तनों में दूध उत्पन्न होता है। (भगवती आराधना,1077)

प्र. किस पर सङ्गति का क्या-क्या प्रभाव पड़ा बताइए?

1. दक्षिण भारत का एक युवा पायप्पा सभी व्यसनों से सम्पन्न था उसे आचार्य श्री शान्तिसागर जी (दक्षिण) की सङ्गति मिली तब उसने श्रवक की सात प्रतिमा के व्रत ले लिए और बाद में मुनि तथा कालान्तर में आचार्य पायसागर जी हो चुके।

2. ब्रह्मचारी विद्याधर को महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागर जी की सङ्गति मिली इस बीसवीं-इक्कीसवीं शताब्दी के एक श्रेष्ठ आचार्य के रूप में अपने सामने हैं।

3. वर्तमान में अनेक श्रावक, श्राविका गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी की सङ्गति से मुनि, आर्यिका, एलक, क्षुल्लक, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, प्रतिभा स्थली की ब्रह्मचारिणियाँ आदि होकर आत्म साधना एवं जिनशासन की महती प्रभावना कर रहे हैं।

4. रसायन विद्या सिद्ध करके लोहे को स्वर्ण बनाने वाले भृतिहरि को जब दिगम्बर मुनि शुभचन्द्र की सङ्गति मिली तब वे भी दिगम्बर मुनि हो गए।

5. अञ्जन चोर को सोमदत्त वटुक की सङ्गति से आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हुई तथा बाद में जिनदत्त सेठ की सङ्गति से चारण ऋद्धिधारी मुनिराज की सङ्गति प्राप्त हुई और उनकी सङ्गति से मुनि बनकर मोक्ष प्राप्त किया।

गुरुदेव आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने सत्सङ्गति के बारे में मूकमाटी में लिखा है

सन्त समागम की यही तो सार्थकता है
संसार का अन्त दिखने लगता है,
समागम करने वाला भले ही
तुरन्त सन्त संयत
बने या न बने
इसमें कोई नियम नहीं है,
किन्तु वह
सन्तोषी अवश्य बनता है।

क्या जिनबिम्ब के नहीं मिलने पर जिनेन्द्र देव का छायाचित्र (फोटो) के सामने भगवान् की पूजा आरती आदि कर सकते हैं?

दिगम्बर जैन धर्म अनुसार भगवान् का छायाचित्र (फोटो) पूज्य नहीं होती है जैसे कि तीर्थंकर की प्रतिमा पञ्चकल्याणक में प्राण प्रतिष्ठा से पूज्य होती है। वैसे फोटो की प्रतिष्ठा नहीं होती है। जैसे आप जहाँ तीर्थङ्कर की प्रतिमा होती अर्थात् मन्दिर में भोजन नहीं करते शयन नहीं करते आदि किन्तु जो फोटो आपके घर में लगी है, आप उसके सामने भोजन भी करते, शयन भी करते है, इससे सिद्ध है जैसी विनय

जिनप्रतिबिम्ब की करते है वैसी विनय जिनफोटो की नहीं करते हैं। अतः दिगम्बर जैन धर्म के अनुसार फोटो पूज्य नहीं है।

जिन वंदना से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं

रावण की पवित्र अक्षर मयी भक्ति से प्रेरित होकर नागराज धरणेन्द्र वहाँ आया। सबसे पहले उसने अपने अवधिज्ञान से सब जान-समझकर प्रसन्न चित्त हो जिनेन्द्र भगवान को नमस्कार किया। ध्यान मात्र से क्षणमात्र में उपलब्ध दिव्य-द्रव्य की संपदा द्वारा विधिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान की (धरणेन्द्र ने) महापूजन की।

पश्चात रावण से कहा- ''हे सत्पुरुष! तुमने जिनेन्द्र देव की स्तुति संबंधी अच्छा गीत गाया। उसी के प्रभाव से मेरे शरीर में सघन-कठोर रोमांच निकल आए हैं। मुझे पाताल से, तेरी जिनेन्द्र भक्ति भावना यहाँ खींचकर ले आई है। जिनेन्द्र देव के प्रति तेरी भक्ति धन्य है। तू वर माँग, मैं तुझे इच्छित वस्तु देता हूँ।''

तब रावण ने कहा- ''जिन वंदना के समान, जिनवंदना से श्रेष्ठ और कौनसी वस्तु शुभ है जिसे आपसे मैं माँगू।''

धरणेन्द्र ने कहा- ''जिनेन्द्र वंदना के समान कल्याण करने वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है। सम्यक् प्रकार जिन भक्ति करने पर यह कालान्तर में निर्वाण सुख देती है। उसके तुल्य या उससे श्रेष्ठ दूसरी वस्तु न हुई है, न है, न होगी।''

तब रावण ने कहा- ''वह जिनभक्ति मुझे प्राप्त है। इससे अधिक किस वस्तु की याचना करूँ?''

नागराज ने कहा- ''यही सत्य है। जिन भक्ति से बढ़कर संसार का कोई भी सुख, कोई भी पद, कोई भी पदार्थ या कुछ भी असाध्य (जो प्राप्त न हो) नहीं है। नारायण, प्रतिनारायण, इन्द्र आदि पद जो भी सुख के आधार हैं, वे सब जिन भक्ति से ही मिलते हैं। संसार सुख तो अल्प है, बाधा सहित हैं, इसे रहने दो, जिन भक्ति से मोक्ष का उत्तम सुख प्राप्त करने की शक्ति जागृत होती है। फिर भी हे त्यागी, विनीत, वीर्यवान, उत्तम ऐश्वर्यशाली, गुणवान रावण....!

मैं आया हूँ तो कुछ तो ग्रहण कर।''

''हे लंकेश! शत्रु पर अचूक वार करने वाली अमोघ विजया शक्ति मैं तुम्हें देता हूँ, सो स्वीकार करो। मेरा स्नेह खंडित मत करो।''

सभी की दशा-समय सदा एक-सा नहीं रहता, संपत्ति के बाद विपत्ति, विपत्ति के बाद संपत्ति सभी को मिलती है। यह शक्ति तेरी विपत्ति में तेरी रक्षक सिद्ध होगी।

तब रावण ने नागराज के स्नेह को अभंग रख बड़ी कठिनाई से शक्ति को ग्रहण करने की लघुता प्राप्त की। रावण एक माह कैलाश पर्वत पर रहा। मुनिराज बालि ने मन में क्षोभ होने से उसे अपने आपको पाप कर्म केबंध का बंधन समझ गुरु के पास जाकर प्रायश्चित ग्रहण किया। हृदय से शल्य निकल जाने से अपार सुख का अनुभव किया।

जो इन्द्रियों को जीतने में समर्थ हैं, ऐसे दिगम्बर जिन मुनिराज से मैं हारा हूँ, यह जानकर रावण साधुओं के समक्ष भक्ति भाव पूर्वक विनम्र रहने लगा। सम्यग्दर्शन सम्पन्न रावण, जिनेन्द्र देव में दृढ़ भक्ति रखता था।

❖❖❖❖❖❖❖❖❖

सम्मेद शिखर जी एवं कैलाश पर्वत पर विराजमान चरणों का ध्यान/ सामायिक ऐसे करें

सर्वप्रथम कुन्थुनाथ भगवान की स्तुति अथवा अर्घ (बिना द्रव्य के) पढ़ते हुये क्रमशः 24 भगवानों की स्तुति पढ़ते हुये चरणों का अवलोकन करते हुये सिद्ध भगवान अथवा अरिहन्त भगवान के दर्शन करते हुए सामायिक या ध्यान कर सकते हैं। यदि हो सके तो जिस टोंक से जितने मुनि मोक्ष पधारे उनकी संख्या भी मन में स्मरण कर सकते हैं। यदि और समय हो तो प्रत्येक टोंक पर मन ही मन में कायोत्सर्ग भी कर सकते हैं।

चौबीस तीर्थंकर का ध्यान

सर्वप्रथम आदिनाथ भगवान की स्तुति अथवा अर्घ (बिना द्रव्य के) पढ़ते हुये क्रमशः महावीर भगवान तक ही मन में पढ़े और एक-एक कायोत्सर्ग करें अथवा महावीर भगवान से आदिनाथ तक भी पढ़ सकते है। या बीच-बीच

के क्रम से भी पढ़ सकते है। और भगवान के रंग के हिसाब से भी पढ़ सकते है।

दो गोरे दो साँवले दो हरियल दो लाल।
सोलह कंचन वर्ण हैं तिन्हें नमहूँ त्रैकाल॥

सफेद : चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, **नीलवर्ण** : नेमिनाथ, मुनिसुव्रत, **हरा** : सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, **लालवर्ण** : पद्मप्रभ, वासुपूज्य, **स्वर्णवर्ण** : ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, शीतल, श्रेयांस, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुंथु, अर, मल्लि, नमि, महावीर।

ह्रीं का ध्यान

ह्रीं में 24 तीर्थंकर समाहित हो जाते है और हम उनका स्मरण सामायिक/ध्यान में अलग-अलग रंग के हिसाब से कर सकते है। जैसे- **सफेद** : चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, **नीलवर्ण** : नेमिनाथ, मुनिसुव्रत, **हरा** : सुपार्श्वनाथ, पार्श्वनाथ, **लालवर्ण** : पद्मप्रभ, वासुपूज्य, **स्वर्णवर्ण** : ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, शीतल, श्रेयांस, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुंथु, अर, मल्लि, नमि, महावीर, प्रत्येक भगवान की स्तुति अथवा अर्घ (बिना द्रव्य के) सामायिक में पढ़ सकते हैं और मोक्ष स्थान की टोंक का और उनके जीवन आदि का भी स्मरण कर सकते है। और कायोत्सर्ग भी मन में कर सकते हैं। इस ध्यान से आत्मा और शरीर दोनों को बहुत एनर्जी मिलती है जिससे दोनों स्वस्थ हो जाते हैं।

श्री णमोकार मंत्र का ध्यान

अरिहंत परमेष्ठी का सफेद रंग होता है, सिद्ध परमेष्ठी का रंग लाल होता है, आचार्य परमेष्ठी का पीला रंग होता है। उपाध्याय परमेष्ठी का रंग नीला होता है और साधु परमेष्ठी का काला रंग होता है। इस प्रकार रंग के हिसाब से ध्यान करें और एक-एक परमेष्ठी के मूल गुण का भी चिंतन कर सकते हैं।

स्वस्तिक का ध्यान

स्वस्तिक मंगल वाची प्रतीक है, यह प्रत्येक मंगल कार्य में प्रयुक्त होता है यह हमें भेद ज्ञान की शिक्षा देता है। संसार से मोक्ष तक की यात्रा का संदेश हमें इसके माध्यम से मिलता है। सर्व प्रथम अनामिका अंगुली से एक सीधी

रेखा नीचे से ऊपर की ओर खींचते है यह जीव के ऊर्ध्वगमन स्वभाव का बोध कराती है क्र.1, मध्य में आड़ी रेखा कर्म वर्गणाओं का प्रतीक है क्र.2, खोटे कार्य करके जीव नरक गति में जाता है क्र.3, अब मुझे नरक न जाना पड़े क्र.4, तिर्यंच गति में न जाने का संकल्प क्र.5, शुभभाव करके देवगति में जाता है क्र.6, असंयमी देव पर्याय में भी नहीं जाना चाहता हूँ क्र.7, शुभ संकल्प के द्वारा जीव मनुष्य पर्याय प्राप्त करता है क्र.8, इस मनुष्य पर्याय से भी छूटने की भावना करता हूँ क्र.9, इस प्रकार चतुर्गति परिभ्रमण अज्ञान के कारण हो रहा है। मैं अपने अज्ञान को समाप्त करने के लिए प्रथमानुयोग क्र.10, करणानुयोग क्र.11, चरणानुयोग क्र.12, एवं द्रव्यानुयोग क्र.13, रूप जिनवाणी की शरण ग्रहण करता हुआ सम्यकदर्शन क्र.14, सम्यकज्ञान क्र.15, एवं सम्यकचारित्र क्र.16, को प्राप्त कर रत्नत्रय को पूर्ण करता हुआ सिद्ध शिला क्र.17, के ऊपर और मानव पयार्य की चरम उपलब्धि सिद्धावस्था क्र.18, को प्राप्त करना चाहता हूँ।

स्वस्तिक विवेचन : स्वस्तिक का भारतीय संस्कृति में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान हैं। यह चिन्ह शाश्वत और शुभकर है। शुभ कार्य के सम्पादन से पूर्व क्षेत्र शुद्धि के लिए स्वस्तिक का अंकन किया जाता है। स्वस्तिक जैन संस्कृति का पताका चिन्ह है, इसकी एक-एक रेखा जैन दर्शन की व्याख्या करती है।

ओम का ध्यान

ओंकार यह पवित्र बीजाक्षर है। इसका चिन्तन मनन करने से पापों का कर्मों का क्षय होता है। ऊँकार में निम्न बातों का चिन्तन करें।

1. **पंच परमेष्ठी का वाची-** अरिहंत का (अ) सिद्ध अशरीरी हैं इसलिये (अ) आचार्य का (आ) उपाध्याय का (उ) एवं मुनि का (म्) इन पांच पदों के प्रथम अक्षर को ग्रहण कर संधि करने पर अ+अ+आ+उ+म्=ओम् ऊँ बनता है।
2. **तीन लोक का वाची-** अधोलोक का (अ्) ऊर्ध्वलोक का (ऊ) एवं मध्यलोक का (म) इन पदों की संधि करने पर अ+उ+म्=ओम् बनता है।
3. **रत्नत्रय का वाची-** सम्यग्दर्शन का अर्थ आत्मावलोकन का (आ)

सम्यग्ज्ञान का अर्थ उपदेश का (उ) सम्यग्चारित्र का अर्थ संसार के कार्यों में मौन रखना माध्यस्थ भाव धारण करने का (म्) अ+उ+म्=ओम् बनता है।

4. **देवशास्त्रगुरु का वाची**- देव को आप्त भी कहते है का (आ) शास्त्र को उक्ति भी कहते हैं का (उ) गुरु को मुनि कहते हैं का (म्) आ+उ+म्=ओम् बनता है।
5. **छह द्रव्य का वाची**- पुद्‌गल अचेतन है का (अ) जीव ऊर्ध्व गमन स्वभाव वाला है का (उ) धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल चार द्रव्य माध्यस्थ रहते है का (म्) =अ+उ+म्=ओम् बनता है।
6. **पंचास्तिकाय का वाची**- क्र. 5 के ही तरह प्रयोग करें। मात्र माध्यस्थ में काल द्रव्य को छोड़ दें।
7. **सात तत्व का वाची**- अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा सभी अचेतन होने से (अ) जीव सभी तत्व में उत्कृष्ट होने से (उ) और मोक्ष का (म) अ+उ+म्=ओम् बनता है।
8. **नव पदार्थ का वाची**- क्र.7 की तरह ही है। पुण्य, पाप दोनों कर्म ही है अतः अचेतन होने से पाच अचेतन तत्वों में ही इनका ग्रहण करें।
9. **चार आराधना का वाची**- (1) दर्शनाराधना- आत्म श्रद्धान का (आ) (2) ज्ञानाराधना- उद्योतित करता आत्मा को (उ) (3) तपाराधना+चारित्राराधना- इनसे मध्यस्थता आती है (म्) आ+उ+म्=ओम् बनता है।
10. **तीन प्रकार की आत्मा का वाची**- बहिरात्मा की दृष्टि बर्हिर्मूत होती है (अ) अंतरात्मा की दृष्टि अंतस में होती है। (उ) परमात्मा मौन/स्थिर हो गये हैं। (म्) अर्थात् जब हम ओम् का उच्चारण करते है तो अ की ध्वनि बाहर निकलती है उ की ध्वनि अंदर जाती एवं म का उच्चारण करते समय ओठ चिपक जाते हैं। अर्थात् मध्यस्थता आ जाती है।
11. **द्वादशांग वाणी का वाची**- भगवान की वाणी ॐ कार के रूप में खिरती है और उस वाणी में समस्त द्वादशांग समाहित रहता है।

(साभार : जिनागम प्रवेश)

श्री सम्मेदशिखर की वंदना

(दोहा)

सम्मेद शिखर वन्दूँ सदा, भाव सहित नत भाल।
कहूँ वन्दना क्षेत्र की, पाने शिव की चाल॥

(चौपाई)

प्रथम कूट है गौतम स्वामी, वन्दौं गणधर पद जगनामी।
चौबीसों के परम गणीशा, चौदह सौ बावन श्री ईशा॥1॥
कूट ज्ञानधर कुन्थु जिनंदा, वन्दूँ मन वच मेटो फँदा।
बहुत निकट हैं पूर्ण दयालू, हो जाऊँ मैं परम कृपालू॥2॥
नमि जिनवर जी जग के चंदा, कूट मित्रधर सुख आनंदा।
तीन लोक के सभी जीव जी, बने मित्र मम मिटे पीव जी॥3॥
नाटक तजकर अर जिनस्वामी, नाटक वन्दूँ शिवपथ गामी।
चक्रवर्ति का चक्कर छोड़ा, हमने तुमसे नाता जोड़ा॥4॥
मल्लिप्रभु का कूट सुसंबल, बसो हृदय में मेरे पल-पल।
बाल ब्रह्म-मय विरत विरागी, बना रहूँ मैं तुम पद रागी॥5॥
सुरनर किन्नर संकुल पूजें, वन्दत श्रेयनाथ अघ धूजे।
समवशरण में ऐसे सोहे, नखतों में ज्यों चंदा मोहे॥6॥
सुप्रभ से श्री सुविधिनाथजी, वन्दूँ देना नित्य साथ जी।
धवल वर्ण के चरण तुम्हारे, धवल भाव हो नाथ हमारे॥7॥
पद्मप्रभ का मोहन कूटा, माना जग में शिव का खूँटा।
मोह नाश कर शिव महि पाई, वंदूँ तुमको नित शिर नाई॥8॥
मुनिसुव्रत का कुट सुनिर्झर, वन्दत होते अघ भी झर-झर।
मुनियों में तुम श्रेष्ठ मुनी हो, चरणा नमते श्रेष्ठ गुणी औ॥9॥
चन्द्रप्रभ का ललित सुहाना, वन्दूँ देना शिव का दाना।
इसी कूट से असंख्यात भी, साधु गये शिव कर्म घात ही॥10॥
कैलाशं से आदि जिनेश्वर, वन्दूँ निशदिन हे परमेश्वर।
सहस मुनीश्वर बाहुबली भी, मोक्ष गये इह आत्म बली जी॥11॥

शीतल जिनवर विद्युतवर से, पूजक को ये इच्छित वर दे।
पाप-ताप को शीतल करके, भक्ती से हम उर में धर लें ॥12 ॥
स्वयंप्रभा के नाथ अनंता, वन्दूँ मेटो दुख के कंता।
नमः सिद्ध कह दीक्षा लीनी, भव्यों को शिव शिक्षा दीनी ॥13 ॥
संभव शम सुख पाने हेतू, वन्दूँ धवल कूट वृष केतू।
तीनों रत्नों को पा तीजे, पहुँचे शिव में सब अघ छीजे ॥14 ॥
चंपापुर से वासुपूज्य हैं, मन-वच-तन से करूँ पूज मै।
पंचकल्याणक गिरि मंदारा, पाये पाँच युगल इह सारा ॥15 ॥
अभिनंदन जी आनंद दाता, आनंद कूटा बहु विख्याता।
सर्व गुणों का नंदन करने, आये हम सब वंदन करने ॥16 ॥
सुदत्तकूट है नाथ धर्म का, कारण है यह मोक्ष शर्म का।
धर्म पुण्य को करलो भाई, वंदत ही सब अघ नश जाई ॥17 ॥
सुमतिनाथ जी अविचल कूटा, गये मोक्ष ये जग से छूटा।
श्रेष्ठमती दो हमको जेष्ठा, सुर-नर वंदित वन्दूॅं श्रेष्ठा ॥18 ॥
शांतिप्रभ है शांति जिनेशा, वन्दूँ तुमको हे तीर्थेशा।
कुन्दप्रभ है दूजा नामा, नमते बनते सार्थक कामा ॥19 ॥
पावापुर से श्री महावीरा, वर्द्धमान हो सन्मति धीरा।
पद्म सरोवर शिव का थाना, वन्दूँ सुख का द्वारा माना ॥20 ॥
सुपार्श्वनाथ का कूट प्रभासा, चमके सूरज सम है खासा।
रोग मिटाती इसकी धूली, वन्दूँ, पाने शिव की चूली ॥21 ॥
सुवीर कूट श्री विमल प्रधाना, वन्दूँ मन में धरि-धरि ध्याना।
चरण-शरण के बिन ही नाथा, भटका कर दो आज सनाथा ॥22 ॥
चढ़ते-चढ़ते घाटी उच्च, हाँफ गया हूँ प्रभुवर सच्च।
सिद्धिवरा है कूट अजीतं, वन्दूँ गाऊँ तुमरे गीतं ॥23 ॥
ऊर्जयन्त है श्री गिरनारी, पाई तप बल से शिवनारी।
कारण हुण्डासर्पण काल, वन्दूँ नेमि जिनेश्वर चाल ॥24 ॥
स्वर्ण भद्र है कूट प्रसिद्धा, पार्श्वनाथ का मानों सिद्धा।
वंदन होती पूर्ण यहाँ है, चरण गुफा में श्रेष्ठ तहाँ है ॥25 ॥

एक बार भी करलो वंदन, मिट जावे फिर भव के बंधन।
तीन काल में तीन योग से, वंदूँ चरणा नित्य धोक दे ॥26 ॥
विवेक सूरि की शिष्या पंचम, भव को तज गति पाने पंचम।
बार-बार ये विनती करके, फिर-फिर वन्दें उर में धरके ॥27 ॥

श्री सम्मेदशिखर जी भाव वंदना

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्रादि 96 कोड़ाकोड़ी 96 करोड़ 32 लाख 96 हजार 842 मुनि सम्मेदशिखर के ज्ञानधर कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री गौतमस्वामी आदि गणधरदेव ग्राम के उद्यान आदि भिन्न भिन्न स्थानों से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथ जिनेन्द्राय 96 कोड़ाकोड़ी 96 करोड़ 32 लाख 96 हजार 842 मुनि सम्मेदशिखर के ज्ञानधर कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथ जिनेन्द्रादि 9सौ कोड़ाकोड़ी 1 अरब 45 लाख 7 हजार 942 मुनि सम्मेदशिखर के मित्रधर कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री अरहनाथ जिनेन्द्रादि 99 करोड़ 99 लाख 99 हजार 999 (यानि 1 कम 1 अरब) मुनि सम्मेदशिखर के नाटक कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथ जिनेन्द्रादि 96 करोड़ मुनि सम्मेदशिखर के संवल कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ जिनेन्द्रादि 96 कोड़ाकोड़ी 96 करोड़ 96 लाख 9 हजार 542 मुनि सम्मेदशिखर के संकुल कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद

को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंत जिनेन्द्रादि 1 कोड़ाकोड़ी 99 लाख 7 हजार 480 मुनि सम्मेदशिखर के सुप्रभ कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभ जिनेन्द्रादि 99 करोड़ 78 लाख 43 हजार 890 मुनि सम्मेदशिखर के मोहन कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्रादि 99 कोड़ाकोड़ी 98 करोड़ 9 लाख 999 मुनि सम्मेदशिखर के निर्जर कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री चंद्रप्रभ जिनेन्द्रादि 974 अरब 82 करोड़ 70 लाख 74 हजार 595 मुनि सम्मेदशिखर के ललित कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्रादि 1 हजार मुनि सम्मेदशिखर के आदिनाथ कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथ जिनेन्द्रादि 18 कोड़ाकोड़ी 42 करोड़ 32 लाख 42 हजार 905 मुनि सम्मेदशिखर के विद्युतवर कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री अनंतनाथ जिनेन्द्रादि 96 कोड़ाकोड़ी 70 करोड़ 70 लाख 70 हजार 905 मुनि सम्मेदशिखर के स्वयंप्रभ कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथ जिनेन्द्रादि 9 कोड़ाकोड़ी 72 लाख 42 हजार 500 मुनि सम्मेदशिखर के धवल कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्रादि चंपापुर मंदारगिरि से एक हजार मुनि सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री अभिनंदननाथ जिनेन्द्रादि 72 कोड़ाकोड़ी 70 करोड़ 36 लाख 42 हजार 700 मुनि सम्मेदशिखर के आनंद कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथ जिनेन्द्रादि 29 कोड़ाकोड़ी 19 करोड़ 9 लाख 9 हजार 795 मुनि सम्मेदशिखर के सुदत्तवर कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्रादि 1 कोड़ाकोड़ी 84 करोड़ 72 लाख 81 हजार 781 मुनि सम्मेदशिखर के अविचल कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्रादि 9 कोड़ाकोड़ी 9 लाख 9 हजार 999 मुनि सम्मेदशिखर के कुंदप्रभ कूट से सिद्ध हुये, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री महावीर स्वामी पावापुर के पद्म सरोवर से 36 मुनि सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि 49 कोड़ाकोड़ी 84 करोड़ 72 लाख 7 हजार 742 मुनि सम्मेदशिखर के प्रभास कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथ जिनेन्द्रादि 70 कोड़ाकोड़ी 60 लाख 6 हजार 742 मुनि सम्मेदशिखर के सुवीर कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्रादि 1 अरब 80 करोड़ 54 लाख मुनि सम्मेदशिखर के सिद्धवर कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन,

वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथ जिनेन्द्रादि शम्बू, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि 72 करोड़ 700 मुनि गिरनार पर्वत से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि 82 करोड़ 84 लाख 45 हजार 742 मुनि सम्मेदशिखर के स्वर्णभद्र कूट से सिद्ध हुए, उनके चरणारविंद को मेरा मन, वचन, काय से अनंत बार नमोऽस्तु! नमोऽस्तु!! नमोऽस्तु!!!

श्री सम्मेद शिखर जी की टोंकों के 27 अर्घ

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

चौबीस तीर्थेश के, गणधर देव मुनीश।
सिद्धि प्राप्त उनको नमूँ, तथा नमूँ भूमीश॥

ओं ह्रीं सर्वसिद्ध भूमिसहितमुक्तिप्राप्तसर्वगणधरसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

कुन्थुनाथ जिनराज का, कूट ज्ञानधर ध्येय।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, त्यागूँ भव सुख हेय॥

ओं ह्रीं ज्ञानधरकूटमुक्तिप्राप्तकुन्थुनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

कूट मित्रधर से गये, नमिजिन शिवपुर धाम।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, पूजूँ आठों याम॥

ओं ह्रीं मित्रधरकूटमुक्तिप्राप्तनमिजिनादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

तीर्थंकर अरनाथ का, नाटक कूट महान।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, पाऊँ आतम ध्यान॥

ओं ह्रीं नाटककूटमुक्तिप्राप्तअरनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

मल्लिनाथ भगवान का, संबल कूट सुनाम।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, प्रणमूँ प्रातःशाम॥

ओं ह्रीं संबलकूटमुक्तिप्राप्तमल्लिनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

श्रेयोजिन का मोक्ष थल, संकुल कूट विशाल।
गिरि सम्मेद शिखर नमूँ, रहूँ सदा खुशहाल॥

ओं ह्रीं संकुलकूटमुक्तिप्राप्तश्रेयोजिनादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

पुष्पदन्त भगवान का, सुप्रभ कूट निहार।
गिरि सम्मेद शिखर नमूँ, धरूँ मूल आचार॥

ओं ह्रीं सुप्रभकूटमुक्तिप्राप्तपुष्पदंतादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

पद्मप्रभु का मोक्ष थल, मोहन कूट प्रसिद्ध।
गिरि सम्मेद शिखर नमूँ, बनने शुद्ध विशुद्ध॥

ओं ह्रीं मोहनकूटमुक्तिप्राप्तपद्मप्रभादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

मुनिसुव्रत तीर्थेश का, निर्जर कूट सुजान।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, करूँ आत्म कल्याण॥

ओं ह्रीं निर्जरकूटमुक्तिप्राप्तमुनिसुव्रतादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

चन्द्रप्रभ जिनराज का, ललित कूट शिव द्वार।
गिरि सम्मेद शिखर नमूँ, करूँ भवार्णव पार॥

ओं ह्रीं ललितकूटमुक्तिप्राप्तचन्द्रप्रभादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

अष्टापद कैलास भज, सिद्धि प्राप्त वृषभेश।
बड़े बाब पुरुदेव को, नमूँ भजूँ शिखरेश॥

ओं ह्रीं अष्टापदकूटमुक्तिप्राप्तपुरुदेवादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

शीतलजिन भगवान का, विद्युत्वर शिवधाम।
गिरि सम्मेद शिखर नमूँ, मिले मोक्ष विश्राम॥

ओं ह्रीं विद्युत्वरकूटमुक्तिप्राप्तशीतलनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

कूट स्वयम्भू से गए, अनन्त जिन शिव थान।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, तजने तन संस्थान॥

ओं ह्रीं स्वयम्भूकूटमुक्तिप्राप्तअनन्तनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

धवल कूट से शिव गये, शंभव तीर्थकरेश।
गिरि सम्मेद शिखर नमूँ, शिव में करूँ प्रवेश॥

ओं ह्रीं धवलकूटमुक्तिप्राप्तशंभवनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

वासुपूज्य जिनराज का, चम्पापुर शिवधाम।
भजूँ तीर्थ मन्दारगिरि, भजूँ शिखरजी धाम॥

ओं ह्रीं चंपापुरात् मुक्तिप्राप्तवासुपूज्यादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

अभिनन्दन जिन शिव गये, प्रसिद्ध आनन्द कूट।
गिरि सम्मेद शिखर नमूँ, जाऊँ कर्म से छूट॥

ओं ह्रीं आनन्दकूटमुक्तिप्राप्त अभिनन्दनादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

धर्मनाथ का कूट जो, वह सुदत्तवर जान।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, जहाँ हुआ निर्वाण॥

ओं ह्रीं सुदत्तवरकूटमुक्तिप्राप्तधर्मनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

सुमति जहाँ से शिव गये, वह है अविचल कूट।
गिरि सम्मेद शिखर चलो, विशुद्धि पाओ लूट॥

ओं ह्रीं अविचलकूटमुक्तिप्राप्तसुमति आदिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

कूट कुन्दप्रभ शान्ति का, जहाँ मिला निर्वाण।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, मिले मुझे शिवथान॥

ओं ह्रीं कुन्दप्रभकूटमुक्तिप्राप्तशान्तिनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

पावा पद्म तडाग से, गए मोक्ष को वीर।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, मृदुता से धर धीर॥

ओं ह्रीं पावापुरमुक्तिप्राप्तमहावीरादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

श्री सुपार्श्व तीर्थेश का, कूट प्रभास महान।
गिरि सम्मेद शिखर नमूँ, करूँ पाप की हान॥

ओं ह्रीं प्रभासकूटमुक्तिप्राप्तसुपार्श्वनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

विमलनाथ भगवान का, कूट सुवीर महान।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, त्यागूँ दुखद जहान॥

ओं ह्रीं सुवीरकूटमुक्तिप्राप्तविमलनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

कूट सिद्धवर अजित का, गिरि सम्मेद अजेय।
गिरि सम्मेद शिखर नमूँ, बने सिद्ध प्रभु ध्येय॥

ओं ह्रीं सिद्धवरकूटमुक्तिप्राप्तअजितनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

ऊर्जयन्त गिरनार भज, चरण चिन्ह नेमीश।
गिरि सम्मेद सहित भजूँ, पूजें सर्व मुनीश॥

ओं ह्रीं ऊर्जयन्तमुक्तिप्राप्तनेमिनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

पार्श्वनाथ भगवान का, स्वर्णभद्र है कूट।
गिरि सम्मेद शिखर भजूँ, श्रद्धा धरूँ अटूट॥

ओं ह्रीं स्वर्णभद्रकूटमुक्तिप्राप्तपार्श्वनाथादिसंख्यातमुनिसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

जहाँ जहाँ शिव भूमि हैं, उनको वन्दूँ आज।
सभी सिद्ध प्रभु को नमूँ, जो जग के सरताज॥

ओं ह्रीं सार्द्धद्वीपद्वितयवर्तिसिद्धभूमियुक्तसर्वसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

भूतकाल के सिद्धगण, भविष्य के भी सिद्ध।
वर्तमान के सिद्ध सब, नमूँ अनंत विशुद्ध॥

ओं ह्रीं त्रिकालवर्तिसर्वसिद्धेभ्यो अर्घं नि. स्वाहा।

तीर्थराज सम्मेदशिखरजी में गणेशप्रसादजी वर्णी के साथ यह अतिशय हुआ?

मई के महीने में वर्णी जी और एक आदमी तीर्थराज की यात्रा को निकले। दोनों ने पहली वन्दना अच्छी तरह की। और विचार किया एक परिक्रमा भी करनी है। ये दो आदमी एवं एक और साथ में हो गया। ज्येष्ठ का महीना मध्याह्न का समय, मार्ग का परिश्रम, नीरस भोजन का प्रभाव आदि कारणों से प्यास बढ़ने लगी। वर्णी जी कहते प्रभो! यदि इस समय मेरी अपमृत्यु हो गई तो कलंक किसे लगेगा? आखिर लोग समुदाय यही तो कहेगा कि शिखरजी की परिक्रमा में तीन आदमी पानी के बिना प्राण विहीन हो गए।

हम तीनों लगभग 300 मीटर चले होंगे कि सामने पानी से लबालब भरा हुआ एक कुण्ड दिखाई पड़ा (वहाँ कुण्ड था नहीं, देवों ने किया) देखकर हर्ष पारावार न रहा, मानों अन्धे को नेत्र मिल गए हो। अच्छे से पानी पिया और शाम के भोजन के बाद ही मधुवन पहुँचे। (मेरी जीवन गाथा, पृ. 54-56)

भेद प्रभेद

कर्मों की अवस्थायें - 10

1. बंध
2. उदय
3. सत्त्व
4. उपशम
5. उदीरणा
6. संक्रमण
7. अपकर्षण
8. उत्कर्षण
9. निधत्ति
10. निकाचित

संक्रमण के भेद - 5

1. उद्वेवन संक्रमण
2. विध्यात संक्रमण
3. अधः प्रवृत्त संक्रमण
4. गुण संक्रमण
5. सर्व संक्रमण

पंच परमेष्ठी मूलगुण - 143

1. अरहंत परमेष्ठी	46
2. सिद्ध परमेष्ठी	8
3. आचार्य परमेष्ठी	36
4. उपाध्याय परमेष्ठी	25
5. साधु परमेष्ठी	28
	143

अर्हन्त के गुण - 46

1. जन्म अतिशय	10
2. केवलज्ञानातिशय	10
3. देवकृतातिशय	14
4. प्रातिहार्यातिशय	8
5. अनंत चतुष्टय	4
समस्त मूलगुण -	**46**

1. जन्म अतिशय 10

1. स्वेद रहितता
2. मूलमूत्र रहितता
3. धवल रुधिर
4. समचतुरस्र संस्थान
5. वज्रवृषभनाराच संहनन
6. अनुपमरूपता
7. सुगन्धित तन
8. 1008 शुभलक्षण
9. अतुलबल
10. हितमित प्रिय वाणी

2. केवलज्ञानातिशय-10

1. सौ योजन तक सुभिक्षता
2. आकाशगमन
3. प्राणिघात रहितत्व
4. निराहारत्व
5. उपसर्ग अभावत्व
6. चतुर्दिश मुखत्व
7. छाया रहितत्व
8. निर्निमेष दृष्टित्व
9. विद्या-ईशत्व
10. नख-शिख-वृद्धिरहितत्व

3. देवकृतातिशय - 14

1. सर्वार्धमागधी भाषा
2. सर्वजीव मैत्री

3. सर्वऋतु फलयुक्त वृक्ष
4. दर्पण सम निर्मल भूमि
5. सुगन्धित पवन
6. सर्वजीवानंद
7. निषकण्टक योजन भूमि
8. गन्धोदक वृष्टि
9. पदतल कमल रचना
10. धान्य संपन्न भूमि
11. निर्मल आकाश
12. देवागमन
13. धर्मचक्र
14. अष्टमंगल द्रव्य

4 प्रातिहार्यातिशय- 8

1. अशोकवृक्ष
2. सुर पुष्पवृष्टि
3. दिव्यध्वनि
4. चौसठ चामर
5. सिंहासन
6. भामण्डल
7. देव दुंदुभी
8. छत्रत्रय

5 अनंतचटुष्टय-4

1. अनन्त दर्शन
2. अनन्त ज्ञान
3. अनन्त सुख
4. अनन्त वीर्य (बल)

सिद्ध के मूलगुण-8

1. क्षायिक सम्यकत्व
2. क्षायिक सम्यग्ज्ञान
3. अनन्त दर्शन
4. अनन्त वीर्य (बल)
5. सूक्ष्मतत्व
6. अवगाहनत्व
7. अगुरुलघुत्व
8. अव्याबाधत्व

3. आचार्य के 36 गुण

1. तप	12
2. धर्म	10
3. आवश्यक	6
4. पंचाचार	5
5. गुप्ति	3
समस्त मूलगुण	**36**

1. तप - 12

बाह्यतप 6 + अंतरंग तप 6 = 12

बाह्यतप-6

1. अनशन
2. ऊनोदर
3. वृत्ति-परिसंख्यान
4. रस-परित्याग
5. विविक्त शय्यासन
6. कायाक्लेश

अंतरंगतप-6

1. प्रायश्चित
2. विनय
3. वैय्यावृत्य
4. स्वाध्याय
5. व्युत्सर्ग
6. ध्यान

2 धर्म- 10

1. क्षमा
2. मार्दव
3. आर्जव
4. शौच
5. सत्य
6. संयम
7. तप
8. त्याग
9. आकिंचन्य
10. ब्रह्मचर्य

3. आवश्यक-6

1. सामायिक
2. स्तुति
3. वन्दना
4. प्रतिक्रमण
5. प्रत्याख्यान
6. कायोत्सर्ग

4. पंचाचार-5

1. दर्शनाचार
2. ज्ञानाचार
3. चारित्राचार
4. वीर्याचार
5. तपाचार

5 गुप्ति-3

1. मनोगुप्ति
2. वचनगुप्ति
3. कायगुप्ति

4. उपाध्याय के गुण-25

(11 अंग+पूर्व 14 = 25)
(अंगप्रविष्ट श्रुतगुण 25 + अंगबाह्य श्रुतगुण 14)

अंग-11

1. आचारांग
2. सूत्रकृतांग
3. स्थानांग
4. समवायांग
5. व्याख्या प्रज्ञप्ति अंग
6. ज्ञातृ धर्मकथांग
7. उपासकाध्ययनांग
8. अन्तकृतदशांग
9. अनुत्तरोपपादिक-दशांग
10. प्रश्न व्याकरणणांग
11. विपाक सूत्रांग

पूर्व -14

1. उत्पाद पूर्व
2. आग्रायणी पूर्व
3. वीर्यानुप्रवाद पूर्व
4. अस्ति-नास्ति प्रवाद पूर्व
5. ज्ञान प्रवाद पूर्व
6. सत्य प्रवाद पूर्व
7. आत्म-प्रवाद पूर्व
8. कर्म-प्रवाद पूर्व
9. प्रत्याख्यान पूर्व
10. विद्यानुवाद पूर्व
11. कल्याणवाय पूर्व
12. प्राणानुवाद पूर्व
13. क्रिया विशाल पूर्व

14. लोक बिन्दुसार पूर्व

अंगबाह्य श्रुत गुण-14

1. सामायिक प्रकीर्णक
2. स्तवन प्रकीर्णक
3. वंदन प्रकीर्णक
4. प्रतिक्रमण प्रकीर्णक
5. विनय प्रकीर्णक
6. कृतिकर्म प्रकीर्णक
7. दशवैकालिक प्रकीर्णक
8. उत्तराध्ययन प्रकीर्णक
9. कल्पव्यवहार प्रकीर्णक
10. कल्पाकल्प प्रकीर्णक
11. महाकल्प प्रकीर्णक
12. पुण्डरिक प्रकीर्णक
13. महापुण्डरिक प्रकीर्णक
14. निषिद्धिका प्रकीर्णक

(विशेषः- उपाध्याय परमेष्ठी अंग-प्रविष्ट व अंग-बाह्य श्रुत के ज्ञाता होते हैं, किन्तु अन्य देवादि के अंग-बाह्य के ज्ञाता होने का नियम नहीं)

साधु के मूलगुण-28

1. महाव्रत	5
2. समिति	5
3. पंचेन्द्रिय निरोध	5
4. आवश्यक क्रिया	6
5. शेष गुण	7
समस्त गुण	**28**

1. महाव्रत-5

1. अहिंसा महाव्रत
2. सत्य महाव्रत
3. अचौर्य महाव्रत
4. ब्रह्मचर्य महाव्रत
5. अपरिग्रह महाव्रत

2. समिति- 5

1. ईर्या समिति
2. भाषा समिति
3. एषणा समिति
4. आदान निक्षेपण समिति
5. व्युत्सर्ग समिति

3. पंचेन्द्रिय निरोध-4

1. स्पर्शेन्द्रिय निरोध
2. रसनेन्द्रिय निरोध
3. घ्राणेन्द्रिय निरोध
4. चक्षु-इन्द्रिय निरोध
5. कर्णेन्द्रिय निरोध

4. आवश्यक क्रिया-6

1. सामायिक
2. स्तुति
3. वन्दना
4. प्रतिक्रमण
5. प्रत्याख्यान
6. कायोत्सर्ग

5. शेष गुण- 7

1. केशलोच
2. नग्रता
3. अस्नान (स्नान नहीं करना)
4. भूशयन (जमीन, पाटा आदि पर शयन)
5. अदन्तधावन (दांत न घिसना)

6. स्थितिभोजन (खड़े होकर हाथ में आहार ग्रहण)
7. एकभुक्ति (एक ही वक्त भोजन)
पंच परमेष्ठीयों के 143 मूलगुण

पाक्षिक श्रावक के मूलगुण-8

5 अणुव्रत+ 3 मकार त्याग

1. अहिंसाणुव्रत
2. सत्याणुव्रत
3. अचौर्याणुव्रत
4. ब्रह्मचर्याणुव्रत
5. परिग्रह-परिमाणाणुव्रत
6. मद्यत्याग
7. मांसत्याग
8. मधुत्याग

श्रावक प्रतिमा-11

1. दर्शन प्रतिमा
2. व्रत प्रतिमा
3. सामयिक प्रतिमा
4. प्रोषधोपवास प्रतिमा
5. सचित्तत्याग प्रतिमा
6. रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा
7. ब्रह्मचर्य प्रतिमा
8. आरम्भत्याग प्रतिमा
9. परिग्रहत्याग प्रतिमा
10. अनुमतित्याग प्रतिमा
11. उद्दिष्टत्याग प्रतिमा

व्रत प्रतिमा के 12 व्रत

अणुव्रत -5

1. अहिंसाणुव्रत
2. सत्याणुव्रत
3. अचौर्याणुव्रत
4. ब्रह्मचर्याणुव्रत
5. परिग्रह-परिमाणाणुव्रत

गुणव्रत-3

6. दिग्व्रत
7. देशव्रत
8. अनर्थदण्डत्याग व्रत

शिक्षाव्रत-4

9. सामयिक व्रत
10. प्रोषधोपवास व्रत
11. भोगोपभोग परिमाण व्रत
12. अतिथिसंविभाग व्रत

पात्रभेद

1. सुपात्र (गुणस्थान-4 से 7)
2. कुपात्र (गुणस्थान 1 से 3)
3. अपात्र (गुणस्थान 1 से 3)

सुपात्र के 3 भेद

1. उत्तम सुपात्र (गुणस्थान 6-7)
2. मध्यम (गुणस्थान-5)
3. जघन्य सुपात्र (गुणस्थान-4)

मरणभेद

1. बालबाल मरण
(गुणस्थान-1 और 2 में चारो गति के बहिरात्मा जीवों का मरण)

2. बालमरण (गुणस्थान-4 में मरण करने वाले चारों गति के अंतरात्मा जीवों का मरण)

3. बालपण्डितमरण (गुणस्थान-5

में सम्यक्त्व सहित और देशव्रत युक्त मनुष्य और तिर्यंच जीवों का मरण)

4. पण्डितमरण (गुणस्थान-6 से 11 में रत्नत्रयधारी संयमी मुनियों का होने वाला मरण, इस मरण को समाधिमरण वा सल्लेखनामरण भी कहते है।)

5. पण्डित-पण्डित मरण
(गुणस्थान 14 में अयोगकेवली अरिहन्त-परमेष्ठी का मरण)

बारह अनुप्रेक्षा

1. अनित्य अनुप्रेक्षा
2. अशरण अनुप्रेक्षा
3. संसार अनुप्रेक्षा
4. एकत्व अनुप्रेक्षा
5. अन्यत्व अनुप्रेक्षा
6. अशुचि अनुप्रेक्षा
7. आस्रव अनुप्रेक्षा
8. संवर अनुप्रेक्षा
9. निर्जरा अनुप्रेक्षा
10. लोक अनुप्रेक्षा
11. बोधिदुर्लभ अनुप्रेक्षा
12. धर्म अनुप्रेक्षा

सोलहकारण भावना

1. दर्शन विशुद्धि
2. विनय संपन्नता
3. शीलव्रत अनतिचार
4 अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग
5. संवेग
6. यथाशक्ति त्याग
7. यथाशक्ति तप
8. साधु-समाधि
9. वैयावृत्य-करण
10. अरिहन्त भक्ति
11. आचार्य - भक्ति
12. बहुश्रुत भक्ति
13. प्रवचन भक्ति
14. आवश्यक - अपरिहाणि
15. मार्ग- प्रभावना
16. प्रवचन वत्सलत्व

22 परीषह

1. क्षुधा
2. तृषा
3. शीत
4. उष्ण
5. दंशमशक
6. नग्नता
7. अरति
8. स्त्री
9. चर्या
10. निषद्या
11. शय्या
12. आक्रोश
13. वध
14. याचना
15. अलाभ
16. रोग
17. तृणस्पर्श

18. मल
19. सत्कार-पुरस्कार
20. प्रज्ञा
21. अज्ञान
22. अदर्शन

कालचक्र

(उत्सर्पिणी 10 कोटाकोटी सागर+ अवसर्पिणी 10 कोटाकोटी सागर=1 कल्पकाल/1 कालचक्र)

उत्सर्पिणी	अवसर्पिणी
1. दुःषमा-दुःषमा (21000 वर्ष)	1.सुषमा-सुषमा (4को.को. सागर)
2. दुःषमा (21000 वर्ष)	2. सुषमा 3 को को.सागर)
3. दुःषमा-सुषमा (42000 वर्ष कम 1 को.को. सागर)	3. सुषमा-दुःषमा 2को.को.सागर)
4. सुषमा-दुःषमा (2को.को. सागर)	4. दुःषमा-सुषमा (42000वर्ष कम 1को को.सागर)
5. सुषमा (3को.को. सागर)	5. दुषमा (21000 वर्ष)
6. सुषमा-सुषमा (4 को.को.सागर)	6.दुःषमा-दुःषमा (21000 वर्ष)

नवधा भक्ति

1) पडगाहन
2) उच्चासन
3) पादप्रक्षालन(गंधोदक हेतु)
4) पूजन
5) नमस्कार(नमोस्तु)
6) मनशुद्धि
7) वचनशुद्धि
8) कायशुद्धि
9) आहारशुद्धि

दाता के सात गुण

1) श्रद्धा
2) भक्ति
3) तुष्टि
4) विज्ञान
5) अलुब्धता
6) क्षमा
7) शक्ति

दान-4

1) आहारदान
2) औषधदान
3) उपकरणदान
4) आवासदान

रत्नत्रय-3

1) सम्यग्दर्शन
2) सम्यग्ज्ञान
3) सम्यक्चारित्र अथवा
 1. व्यवहार- रत्नत्रय
 2. निश्चय-रत्नत्रय

सम्यगदर्शन के अंग-8

1) निःशंकित अंग
2) निःकांक्षित अंग
3) निर्विचिकित्सा अंग
4) अमूढदृष्टि अंग

5) उपगूहन अंग
6) स्थितिकरण अंग
7) वात्सल्य अंग
8) प्रभावना अंग

सम्यग्दर्शन के दोष-25

1) शंका
2) कांक्षा
3) विचिकित्सा
4) मूढदृष्टि
5) अनुपगूहन
6) अस्थितिकरण
7) अवात्सल्य
8) अप्रभावना

मददोष-8

1) ज्ञान मद
2) पूजा मद
3) कुल मद
4) जाति मद
5) बल मद
6) ऋद्धि मद
7) तप मद
8) रूप मद

अनायतन -6

1) कुदेव
2) कुगुरु
3) कुधर्म
4)कुदेव सेवक
5) कुगुरु सेवक
6)कुधर्म सेवक

मूढ़ता-3

1) लोक मूढता
2) देव मूढता
3) गुरुमूढता

चारित्र-12

महाव्रत-5

1) अहिंसा महाव्रत
2) सत्य महाव्रत
3) अचौर्य महाव्रत
4) ब्रह्मचर्य महाव्रत
5) अपरिग्रह महाव्रत

समिति- 5

1) ईया समिति
2) भाषा समिति
3) एषणा समिति
4) आदान निक्षेपण समिति
5) प्रतिष्ठापन समिति

गुप्ति-3

1) मनोगुप्ति
2) वचनगुप्ति
3) कायगुप्ति

दिव्य पुरुष - 169

शलाका पुरुष -63

तीर्थंकर	24
चक्रवर्ती	12
नारायण	9
प्रतिनारायण	9
बलभद्र	9
समस्त	**63**

शेष महापुरुष-106

तीर्थंकर के माता-पिता 24+24	48
कामदेव	24
रुद्र	11
नारद	9
कुलकर	14
समस्त	**106**

शलाका पुरुष 63+दिव्यपुरुष 106=169

पदार्थ -9

1) जीव पदार्थ
2) अजीव पदार्थ
3) आस्रव पदार्थ
4) बंध पदार्थ
5) संवर पदार्थ
6) निर्जरा पदार्थ
7) मोक्ष पदार्थ
8) पुण्य पदार्थ
9) पाप पदार्थ

हिंसा- 4

1) आरंभी हिंसा
2) उद्योगी हिंसा
3) विरोधी हिंसा
4) संकल्पी हिंसा

कर्मभूमि - 15 अथवा 170

1) पाँच भरत 5
2) पाँच ऐरावत 5
3) पाँच विदेह (पंचमेरु संबंधी) 5
समस्त 15

अथवा प्रत्यंक की अपेक्षा ढाई द्वीप में भरत 5 + ऐरावत 5 = 10
विदेह 32+64+64 = 160
समस्त कर्मभूमि 170

ढाई द्वीप में स्थिर भोगभूमि-30

1) जम्बूद्वीप में

सुमेरु पर्वत संबंधी-
उत्कृष्ट भोगभूमि 2
मध्यम भोगभूमि 2
जघन्य भोगभूमि 2

2. धातकी खण्ड में

❇ दो मेरु संबंधी
उत्कृष्ट भोगभूमि (2+2)=4
❇ दो मेरु संबंधी
मध्यम भोगभूमि (2+2)=4
❇ दो मेरु संबंधी
जघन्य भोगभूमि (2+2)=4

3.पुष्करार्द्ध द्वीप में

❇ दो मेरु संबंधी
उत्कृष्ट भोगभूमि (2+2)=4
❇ दो मेरु संबंधी
मध्यम भोगभूमि (2+2)=4
❇ दो मेरु संबंधी
जघन्य भोगभूमि (2+2)=4
समस्त भोगभूमि
(6+12+12)=30

स्थिर जघन्य भोगभूमि-

असंख्यात ढाई द्वीप के बाहर असंख्यात द्वीपों में असंख्यात जघन्य भोगभूमियाँ है, उनमें केवल संज्ञीपंचेन्द्रिय-तिर्यंच ही रहते हैं। किन्तु ढाई द्वीप के भोगभूमियों में मनुष्य व तिर्यंच दोनों रहते हैं।

कुभोगभूमि-96

1) लवण समुद्र के दोनों तटों में गोलाकार से (24+24) =48

2) कालोदधि समुद्र के दोनों तटों में गोलाकार से (24+24) =48
समस्त कुभोगभूमि 48+48=96

ढाई द्वीप में अस्थिर भोगभूमि 10

काल परिवर्तन के अनुसार ढाई द्वीप में एक काल में उत्कृष्ट, मध्यम अथवा जघन्य रूप में 5 भरत और 5 ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा अस्थिर भोगभूमि समस्त (5+5) = 10 होती हैं।

म्लेच्छ खण्ड -850

कर्मभूमि 170 हैं। प्रत्येक में पाँच पाँच म्लेच्छ खण्ड होते हैं- उसके अनुसार 170*5= 850 म्लेच्छ खण्ड होते हैं।

विजयार्द्ध पर्वत-170

170 कर्मभूमि में प्रत्येक में एक-एक के अनुसार समस्त विजयार्द्ध पर्वत समस्त ढाई द्वीप में 170 है।

कल्पवृक्ष - 10

1) मद्यांग	मधुर रस/मादक रस
2) तूर्यांग	नानाविध वाद्य
3) भूषणांग	नानाविध अलंकार
4) मालांग	नानाविध पुष्पमाला
5) ज्योतिरांग	सूर्यसम प्रकाश
6) दीपांग	चन्द्रसम प्रकाश
7) गृहांग	नानाविध गृह
8) भोजनांग	अमृत सम अन्न
9) भाजनांग	नानाविध बर्तन
10) वस्त्रांग	नानाविध वस्त्र

षट्कर्म-6

1) असिकर्म	(शस्त्रनिर्माण कार्य)
2) मसिकर्म	(लेखन कार्य)
3) कृषिकर्म	(खेती कार्य)
4) विद्याकर्म	(अध्यापन वक्तृत्व आदि)
5) वाणिज्य	(व्यापार आदि)
6) शिल्प	(घर निर्माण आदि)

अभक्ष्य - 22

1) बड़	2) पीपल
3) उमर	4) कटुमर
5) पाकर	6) मद्य
7) मांस	8) मधु
9) रात्रि भोजन	10) द्विदल
11) तुच्छ फल	12) चलितरस
13) मिट्टी	14) विष
15) तुषार	16) बैंगन
17) अजानफल	18) कंदमूल
19) मक्खन	20) अचार
21) बहूबीज	22) ओला

अभक्ष्य पदार्थ के प्रकार-5

1) त्रसजीवघात
2) स्थावरजीवघात
3) प्रमादकारक पदार्थ
5) अनिष्ट पदार्थ
6) अनुपसेव्य पदार्थ

प्रमाद- 15

4 विकथा (स्त्रीकथा, चोरकथा, भोजनकथा, राजकथा)
4 कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ)

5 इन्द्रियविषय (स्पर्शनेन्द्रिय विषय, रसइन्द्रिय विषय, घ्राणेन्द्रिय विषय, चक्षुइन्द्रिय विषय, कर्णेन्द्रिय विषय)
1 निद्रा, 1 स्नेह

समवसरण सभा-12

1) मुनि
2) कल्पवासी देवी
3) आर्यिका व श्राविका
4) ज्योतिष्क देवी
5) व्यंतर देवी
6) भवनवासी देवी
7) भवनवासी देव
8) व्यंतर देव
9) ज्योतिष्क देव
10) कल्पवासी देव
11) मनुष्य
12) तिर्यंच

आठ कर्मों के अभाव में आठ गुण

1) मोहनीय कर्म	अनन्त सुख
2) ज्ञानावरण कर्म	अनन्त ज्ञान
3) दर्शनावरण कर्म	अनन्त दर्शन
4) अन्तराय कर्म	अनन्त बल
5) वेदनीय कर्म	अव्यायाबाधत्व
6) आयुकर्म	अवगाहनत्व
7) नामकर्म	सूक्ष्मत्व
8) गोत्रकर्म	अगुरुलघुत्व

हिंसा के कारण - 108

संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ	3
मन, वचन, काय	3
कृत, कारित, अनुमोदन	3
क्रोध,मान,माया,लोभ	4

इनको परस्पर गुणा करने पर 3x3x3x4=108 हिंसा के कारण होते हैं।

अरिहन्त में ये 18 दोष नहीं होते

1) क्षुधा	2) तृषा
3) भय	4) द्वेष
5) राग	6) मोह
7) चिंता	8) जरा
9) मृत्यु	10) खेद
11) स्वेद	12) मद
13) रति	14) विस्मय
15) जन्म	16) निद्रा
17) रोग	18) शोक

मंगल द्रव्य 8

1) झारी	2) कलश
3) दर्पण	4) पंखा
4) ध्वज	6) चामर
7) छत्र	8) घण्टा

भय - 7

1) इहलोक	2) परलोक
3) वेदना	4) अरक्षा
5) अगुप्ति	6) मृत्यु
7) आकस्मिक	

रस - 7

1) दूध 2) घी 3) दही 4) मीठा
5) तेल 6) नमक 7) हरी

सर्वश्रेष्ठ साधक परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की जाप स्तुति 108 गुरु मंत्र

1. ॐ ह्रूँ प्रसन्नवदनाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
2. ॐ ह्रूँ प्रशममूर्ति आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
3. ॐ ह्रूँ करुणा-वात्सल्यमूर्ति आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
4. ॐ ह्रूँ निर्ग्रन्थ-दिगम्बरमूर्ति-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
5. ॐ ह्रूँ निष्काम-निर्विकारमूर्ति-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
6. ॐ ह्रूँ निश्चल-निरीहमूर्ति-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
7. ॐ ह्रूँ जिनशासन-सत्प्रदीपभासुरमूर्ति-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
8. ॐ ह्रूँ प्रशान्तमूर्ति-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
9. ॐ ह्रूँ सुभगसौम्यमूर्ति-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
10. ॐ ह्रूँ त्रिशताधिकदीक्षाप्रदातृ-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
11. ॐ ह्रूँ शुद्धोपयोगी-महामुनि-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
12. ॐ ह्रूँ मूकमाटी- महाकाव्यकृर्तृ-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
13. ॐ ह्रूँ स्व-पर-हित-पथानुगामी-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
14. ॐ ह्रूँ अविरल मोक्षपथानुयायी-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
15. ॐ ह्रूँ सुचरिततपोनिधि-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
16. ॐ ह्रूँ सामायिक चारित्रविहारी-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
17. ॐ ह्रूँ श्रुतपारगामी-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
18. ॐ ह्रूँ गुणमणिविरचितवपु-आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
19. ॐ ह्रूँ जिनसंस्कृति-संरक्षकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
20. ॐ ह्रूँ जिनधर्मध्वजा-संवर्द्धकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
21. ॐ ह्रूँ भारतीयसंस्कृति-संरक्षकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
22. ॐ ह्रूँ अर्हत्- संस्कृति-संवाहकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
23. ॐ ह्रूँ जिनसंस्कृति-उद्धारकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
24. ॐ ह्रूँ अभीक्ष्णज्ञानोपयोगरताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
25. ॐ ह्रूँ द्वादशतपोनिरताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
26. ॐ ह्रूँ अष्टोत्तरशतगुणमण्डिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
27. ॐ ह्रूँ उत्तमक्षमादिदशधर्म-शोभिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
28. ॐ ह्रूँ षडावश्यक-निर्दोषपरिपालकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।

29. ॐ ह्रूँ स्व-पर-पञ्चाचार-परिपालकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
30. ॐ ह्रूँ जिनागमाज्ञा-परिपालकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
31. ॐ ह्रूँ उत्तमब्रह्मचर्य- परिपालकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
32. ॐ ह्रूँ द्वाविंशति परीशह-विजयाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
33. ॐ ह्रूँ शिष्यानुग्रहकुशलाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
34. ॐ ह्रूँ आत्मतत्त्वान्वेषकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
35. ॐ ह्रूँ सारस्वताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
36. ॐ ह्रूँ परानिन्दक-गुणभूषणाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
37. ॐ ह्रूँ आचार्यकुन्दकुन्द- परम्परापोषकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
38. ॐ ह्रूँ प्रज्ञाप्रदीप-प्रकाशकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
39. ॐ ह्रूँ हितमितप्रियभाषा-शोभिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
40. ॐ ह्रूँ आगमानुसार-चर्या-चर्चामण्डिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
41. ॐ ह्रूँ परममनोहारी-गुणयुक्ताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
42. ॐ ह्रूँ मोक्षमार्गोपदेशकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
43. ॐ ह्रूँ जिनधर्माद्वितीय-प्रभावकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
44. ॐ ह्रूँ जिनश्रुत-चिन्तकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
45. ॐ ह्रूँ श्रमणपरम्परा-पथप्रदर्शकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
46. ॐ ह्रूँ अष्टाङ्ग-सम्यग्दर्शनाभूषणाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
47. ॐ ह्रूँ अष्टाङ्ग-सम्यग्दर्शनशोभिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
48. ॐ ह्रूँ त्रयोदश-सम्यक्चारित्रपालकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
49. ॐ ह्रूँ विशिष्ट श्रुतज्ञानावरण-क्षयोपशमयुक्ताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
50. ॐ ह्रूँ जिनसूत्र- रहस्योद्घाटकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
51. ॐ ह्रूँ श्रुतजलधिपारगगुणयुक्ताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
52. ॐ ह्रूँ श्रमणसंस्कृति-उन्नायकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
53. ॐ ह्रूँ लोकोत्तरसाधकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
54. ॐ ह्रूँ सर्वजीवहितोपदेशकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
55. ॐ ह्रूँ साक्षात्-मोक्षमार्गप्रकाशकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
56. ॐ ह्रूँ चारित्रार्णवगम्भीराचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
57. ॐ ह्रूँ बहुजनहितकरचर्याधारकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
58. ॐ ह्रूँ सिद्धगुणस्तुति-निरताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
59. ॐ ह्रूँ मुनिमाहात्म्य-विशेषाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।

60. ॐ ह्रूँ त्रिगुप्ति- गुप्ताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
61. ॐ ह्रूँ विश्वकल्याणहितचिन्तकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
62. ॐ ह्रूँ विनिर्जितेन्द्रियकरणाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
63. ॐ ह्रूँ निर्मलधर्मध्यानतल्लीनाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
64. ॐ ह्रूँ गारवचर्यारहिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
65. ॐ ह्रूँ मोक्षद्वारकपाटपाटन-भटाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
66. ॐ ह्रूँ स्व-पर-समय-विचारकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
67. ॐ ह्रूँ अखण्डितस्वाध्यायरताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
68. ॐ ह्रूँ समग्रप्रशस्तभावयुक्ताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
69. ॐ ह्रूँ निर्लोभगुणधारकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
70. ॐ ह्रूँ समभावगुणसम्पन्नाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
71. ॐ ह्रूँ ज्ञानध्यानतपोरताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
72. ॐ ह्रूँ अनवरतात्मतत्त्व-चिन्तकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
73. ॐ ह्रूँ मुनिगणसंतुष्टिकराचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
74. ॐ ह्रूँ अर्हत्-पथानुयायि आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
75. ॐ ह्रूँ प्रस्पष्टाक्षराचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
76. ॐ ह्रूँ गगनवत्-निर्लेपाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
77. ॐ ह्रूँ रत्नदीपवत्- प्रकाशिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
78. ॐ ह्रूँ नौकावत्-तरणतारणाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
79. ॐ ह्रूँ सागरवत्-अक्षोभिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
80. ॐ ह्रूँ मेरुवत्-निष्कम्पाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
81. ॐ ह्रूँ पृथ्वीवत्-क्षमाशीलाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
82. ॐ ह्रूँ चन्द्रवत्-शीतलाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
83. ॐ ह्रूँ वृषभवत्-भद्राचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
84. ॐ ह्रूँ गजवत्-स्वाभिमानाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
85. ॐ ह्रूँ सूर्यवत्-तेजस्वी आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
86. ॐ ह्रूँ सिंहसम-पराक्रमाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
87. ॐ ह्रूँ सूत्रार्थभावनाभाविताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
88. ॐ ह्रूँ प्रतिपलात्मशुद्धिरताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
89. ॐ ह्रूँ साक्षात्-सम्यग्ज्ञानार्णवाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
90. ॐ ह्रूँ एकत्वविभक्तात्मतत्त्वरताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।

91. ॐ ह्रूँ निजानन्दलवलीनाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
92. ॐ ह्रूँ निजात्मगुणानुरागाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
93. ॐ ह्रूँ यशस्वीगुणयुक्ताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
94. ॐ ह्रूँ ओजस्वीवाक्- चातुर्याचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
95. ॐ ह्रूँ अयाचकवृत्तिधारकाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
96. ॐ ह्रूँ आकिंचन्यमहिमामण्डिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
97. ॐ ह्रूँ विद्याशीलाचार-सम्पन्नाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
98. ॐ ह्रूँ अलौकिकबुद्धि-सम्पन्नाचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
99. ॐ ह्रूँ व्रतसमितिगुप्ति-सहिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
100. ॐ ह्रूँ नीर-क्षीरविवेकगुण-सहिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
101. ॐ ह्रूँ विशुद्धमनवचनकाययोग-सहिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
102. ॐ ह्रूँ दर्शनज्ञानचारित्रतपाराधना-सहिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
103. ॐ ह्रूँ अनाकांक्षागुण-सहिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
104. ॐ ह्रूँ प्रागेवदृष्टिोत्तरगुण-सहिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
105. ॐ ह्रूँ षट्त्रिंशत्-मूलगुण-सहिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
106. ॐ ह्रूँ अभीक्ष्णसंवेगगुण- सहिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
107. ॐ ह्रूँ दूरदर्शित्वगुण-सहिताचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।
108. ॐ ह्रूँ संतशिरोमणि आचार्य-गुरुवर-श्रीविद्यासागर-महामुनीन्द्राय नमो नमः।

(संकलन : प. पू. मुनि श्री चंद्रसागर जी महाराज)

पांचव्रतों की 25 भावना जाप

अहिंसाव्रत संरक्षक पांचभावना जाप

1- ओं ह्रीं वाग्गुप्तिभावनायै नमः। 2- ओं ह्रीं मनोगुप्तिभावनायै नमः।
3- ओं ह्रीं ईर्यासमितिभावनायै नमः। 4- ओं ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितिभावनायै नमः। 5- ओं ह्रीं आलोकितपानभोजनभावनायै नमः।

सत्यव्रतसाधक पांचभावना जाप-

1- ओं ह्रीं क्रोधत्यागभावनायै नमः। 2- ओं ह्रीं लोभत्यागभावनायै नमः।
3- ओं ह्रीं भीरुता त्यागभावनायै नमः। 4- ओं ह्रीं हास्यत्यागभावनायै नमः।
5- ओं ह्रीं अनुवीचिभाषणभावनायै नमः।

अस्तेव्रतरक्षक पांचभावना जाप-

1- ओं ह्रीं शून्यागारभावनायै नमः। 2- ओं ह्रीं विमोचितावासभावनायै नमः।
3- ओं ह्रीं परोपरोधाकरणभावनायै नमः। 4- ओं ह्रीं भैक्ष्यशुद्धिभावनायै नमः।
5- ओं ह्रीं सधर्माविसंवादभावनायै नमः।

ब्रह्मचर्यव्रतरक्षकपांचभावना जाप-

1- ओं ह्रीं स्त्रीरागकथाश्रवणत्यागभावनायै नमः। 2- ओं ह्रीं स्त्री मनोहर रांग निरीक्षण त्याग भावनायै नमः। 3- ओं ह्रीं पूर्वभोगरतानुस्मरणत्यागभावनायै नमः। 4- ओं ह्रीं वृष्टेष्टरसत्यागभावनायै नमः। 5- ओं ह्रीं स्वशरीरसंस्कार त्यागभावनायै नमः।

अपरिग्रहव्रत पोषक पांचभावना जाप-

1- ओं ह्रीं स्पर्शनेन्द्रियविषयरागद्वेषत्यागभावनायै नमः।
2- ओं ह्रीं रसनेन्द्रियविषयरागद्वेषत्यागभावनायै नमः।
3- ओं ह्रीं घ्राणेन्द्रियविषयरागद्वेषत्यागभावनायै नमः।
4- ओं ह्रीं नेत्रेन्द्रियविषयरागद्वेषत्यागभावनायै नमः।
5- ओं ह्रीं श्रवणेन्द्रियविषयरागद्वेषत्यागभावनायै नमः।

❖ जिस शिक्षा से मनुष्य का हित करने, एकता तथा सामञ्जस्य बनाने, दीन दरिद्र, असहाय, अनाथ की सहायता करने के विचार उत्पन्न होते हैं और आध्यात्मिक गुणों का विकास एवं वृद्धि होती है उस शिक्षा को संस्कार कहते हैं।

❖ लोहमय जीवन को स्वर्णमय बनाना या स्वर्ण रूप में परिवर्तित करना ही संस्कार है, इसलिए संस्कार की भूमिका पारसमणि जैसी है।

❖ 40/45 बाद जन्म के बाद बालक/बालिका को गाजे-बाजे के साथ प्रथम देव दर्शन (बहिर्यान संस्कार) करवाना चाहिए ।

श्रुतस्कंध भक्ति चालीसा

रचयित्री : आर्यिका श्री 105 मृदुमति माता जी

तर्ज : देख वीर के समवसरण में ....

पूज्यपाद कृत श्रुत सुभक्ति का संस्तव है हितकार,
नमन हो श्रुत को बारम्बार ॥
मति श्रुत अवधि ज्ञान मन पर्यय, केवल शिव सुखकार,
करूँ मैं श्रुतस्कंध अवतार ॥ध्रुव ॥
जग लखने द्वय नेत्र समाना, परोक्ष प्रत्यक्षों को माना,
परोक्ष पर आश्रय से जाने, बिन आश्रय प्रत्यक्ष प्रमाने।
दोनों संज्ञानों की स्तुति को, गाऊँ बहुत प्रकार,
जिनागम करता भव से पार ॥1 ॥
योग्य क्षेत्र थित नियत विषय को, स्पर्श्य रस्य गंधादि विषयको,
बहु आदिक द्वादश पदार्थ को, जाने मति शुभ अशुभ अर्थ को।
अवग्रहेहा-वाय-धारणा, इन्द्रिय मन के द्वार,
प्रकट हो मतिज्ञान विस्तार, जिनागम करता भव से पार ॥2 ॥
बहु आदिक हैं पदार्थ बारा, इनको जाने चार प्रकारा,
बारह गुणित चार अड़ताली, द्विशत अठासि मनाक्ष गुणाली।
बार अर्थ मन चक्षु बिना गुणि, चउ इन्द्रिय के द्वार,
मिला लो अड़तालिस मतिसार, तीन सौ छत्तीसी मतिसार ॥3 ॥
श्रुत की कारण बुद्धि ऋद्धियाँ, कोष्ठ बीज पद श्रोतृसिद्धियाँ,
पूर्व पदी उत्तर पद धारी, उभय पदी त्रय पदानुसारी,
मतिज्ञान की विशद ऋद्धियाँ, करतीं श्रुत अवतार,
गहें इनसे गणपति श्रुतसार, जिनागम करता भव से पार ॥4 ॥
जिनवर कथित सूत्र श्रुत माना, गणधर रचा द्विनेक बखाना,
अंग अंग-बाहर श्रुत जानो, अनंत विषयी परोक्ष मानो।
द्रव्य भावमय श्रुतज्ञान को, वंदन त्रिविध प्रकार,
जिनागम करता भव से पार ॥5 ॥
पर्यय अक्षर पद संघातं, प्रतिपत्तिक अनुयोग विधातं,

प्राभृत-प्राभृत फिर प्राभृतकं, वस्तु पूर्व जिन कथितं दशकं।
इन देश में प्रति समास जोड़ें, बीस बनें श्रुत द्वार,
नमूँ मैं द्वादशांग का सार, जिनागम करता भव से पार ॥6 ॥
सर्व जघन्य ज्ञान पर्यय है, सूक्ष्म निगोदी जन्म समय है,
प्रथम समय में नित्य उदित है, निरावरण जीवत्व मुदित है।
फिर समास सह दशों ज्ञान श्रुत, वृद्धिंगत क्रम बार,
पूर्ण श्रुत बने बीसवाँ सार, जिनागम करता भव से पार ॥7 ॥
सर्व जघन एकाक्षर वाला, पर्यय ज्ञान न मिटने वाला,
इसका मिटना जीवन मिटना, जीव ज्ञान बिन दुनियाँ सपना।
अमिट अनावृत जघन ज्ञान से, बढ़ती जब श्रुत धार,
पहुँचती पूर्व समासी पार, बूँद श्रुत बनता पारावार ॥8 ॥
आचारांगं सूत्रकृतांगं, स्थान अंग समवाय सु अंगं,
व्याख्याप्रज्ञप्ती श्रुत नयनं, ज्ञातृकथोपासक अध्ययनं।
सातों अंग नमूँ मैं पहले, आगे नमूँ उतार,
जिनागम करता भव से पार ॥9 ॥
अष्टमांग श्रुत अन्तकृतक दश, पंचानुत्तर उपपादिक दश,
प्रश्नव्याकरण सूत्र विपाकं, दृष्टिवाद माना द्वादशकं।
ऐसे द्वादशांग श्रुत को मैं, नमूँ अनंतों बार,
जिनागम करता भव से पार ॥10 ॥
परीकर्म सूत्रं प्रथमानू-योग, पूर्वगत चूली जानूँ,
दृष्टिवाद के ये पन भेदं, द्वादश अंग कहे जिन वेदं।
परीकर्म पन पंच चूलिका, आगे कहूँ उदार,
अभी मैं नमूँ हजारों बार, जिनागम करता भव से पार ॥11 ॥
रवि शशि जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ती, द्वीपोदधि व्याख्या प्रज्ञप्ती,
परीकर्म प्रज्ञप्तीमय पन, जल थल माया रूप गगन पन।
गता शब्द युत पंच चूलिका, नमूँ अनेकों बार,
अंग का कथन किया विस्तार, जिनगम करता भव से पार ॥12 ॥
उत्पादक अग्रायणीय को, वीर्यवाद को अस्ति नास्ति को,

ज्ञानवाद को सत्यवाद को, आत्मवाद को कर्मवाद को।
प्रत्याख्यान नवम पूरब को, नमकर शेष उतार,
जिनागम करता भव से पार ॥13 ॥
श्रुत विद्यानुवाद पूरब को, श्रुतकल्याण नाम पूरब को,
प्राणावाय क्रियाविशाल को, लोकबिन्दु वन्दूँ त्रिकाल को।
चौदह पूर्वगतों को वन्दूँ, पाने ज्ञान अपार,
जिनागम करता भव से पार ॥14 ॥
दश चौदह अठ अठरा बारा, बारा सोला बिस तिस पंद्रा,
दश दश दश दश रहीं वस्तुयें, पूर्वगतों की क्रमिकहस्तिये।
फिर प्रति वस्तु में हो प्राभृत, बीस बीस क्रमबार,
नमूँ मैं अन्तर के अधिकार, जिनागम करता भव से पार ॥15 ॥
पूर्व अन्त अपरान्त ध्रुवाध्रुव, च्यवन लब्धि पंचम श्रुत अध्रुव,
प्रणिधि अर्थ भू गत सर्वारथ, कल्पनीय ज्ञानं गत नागत।
सिद्धि उपाध्य चतुर्दश वस्तु, पूर्व द्वितीय विचार,
नमूँ मैं पूर्व वस्तु शत बार, जिनागम करता भव से पार ॥16 ॥
पंचम वस्तु च्यवन लब्धि के, चौथे कर्म प्रकृति प्राभृत के,
चतुर्विंश अनुयोग द्वार हैं, अल्प बहुत युत नमस्कार है।
उनके करूँ नाम उच्चारण, ग्रंथों में विस्तार,
जिनागम करता भव से पार ॥17 ॥
पहले कृति अनुयोग द्वार को, नमूँ वेदना और स्पर्श को,
कर्म प्रकृति बंधन निबंध को, प्रक्रम अनुपक्रम प्रवन्द्य जो।
नमूँ अभ्युदय और मोक्ष फिर, संक्रम लेश्या द्वार,
जिनागम करता भव से पार ॥18 ॥
लेश्या कर्म लेश्य भावों को, सातासात दीर्घ ह्रस्वों को,
भव धरणीय महा पुद्‌गल को, श्रुत निधत्त अनिधत्त द्वार को।
सनिकाचित अनिकाचित श्रुत को, नमन अनंतो बार,
जिनागम करता भव से पार ॥19 ॥
कर्म स्थिति श्रुत को अभिनन्दूँ, पश्चिम महास्कन्ध को वन्दूँ,

चौबीसी अनुयोग द्वार की, अल्प बहुत अनुयोग द्वार भी।
दृष्टिवाद से निकले श्रुत को, नमन करोड़ों बार,
जिनागम करता भव से पार ॥20 ॥
अट्‌ठावन हजार पाँच है, द्वादशांग पद पूर्ण साँच हैं,
प्रतिपद के नेकाक्षर होते, कहूँ भक्ति अनुसार,
अभी मैं नमूँ कथित पद सार, जिनागम करता भव से पार ॥21 ॥
सौलह सो चउतिस कोटि है, शत हजार लख तेरासी है,
अठ सौ अठासी प्रतिपद अक्षर, नमूँ बनूँ मैं भी शिव अक्षर।
अर्थ प्रमाण मध्य कथनों में, मध्यम पद अनुसार,
नमूँ मैं पद अक्षर शत बार, जिनागम करता भव से पार ॥22 ॥
अंग बाह्य चौदह विध जाना, समता में सामायिक माना,
चतुर्विंशति स्तव जिन कीर्तन, इक जिनवर की संथुदि वंदन।
प्रतिक्रम कृत दोषों का शोधन, विनय मोक्ष का द्वार,
मोक्ष की विनय पंच परकार, जिनागम करता भव से पार ॥23 ॥
कृती कर्म कर्मों को नशता, दश वैकालिक मुनिगुण लसता,
उत्तराध्ययन ज्ञान कराता, कष्ट सहन विधि फल दर्शाता।
साधु योग्य आचरण दण्ड को, कहे कल्प व्यवहार,
इसी से खुले मुक्ति का द्वार, जिनागम करता भव से पार ॥24 ॥
गृहि मुनि योग्यायोग्य बताता, कल्पाकल्प वही कहलाता,
दीक्षा शिक्षादिक कालों का, कथन करे मुनिव्रत वालों का।
महाकल्प यह बतलाता है, हर पल हो हुशयार,
साधना करो काल अनुसार, जिनागम करता भव से पार ॥25 ॥
पुण्डरीक कारण दर्शाता, भवनत्रिक में कैसे जाता,
महापुण्डरीकी यूँ कहता, विमानवासी कैसे बनता।
अशक्त मुनि के दोष शुद्धि का, करें अशीति विचार,
निषिद्धिका भी कहते श्रुतकार, जिनागम करता भव से पार ॥26 ॥
जो पुद्‌गल को विषय बनाता, प्रकाश इन्द्रिय बिन भी ज्ञाता,
अवधि नाम सीमा को कहता, अवधि ज्ञान सार्थक गुण गहता।

देश परम सर्वावधि इसके, होते तीन प्रकार,
नमूँ मैं मुनि अवधीश प्रकार, जिनागम करता भव से पार ॥27॥
पर के मन में स्थित को जाने, रूपी द्रव्य को बस पहचाने,
ऋजुमति विपुलमति द्वय भेदं, विशुद्धि अप्रतिपात सहेथं।
दोनों मुनिवर को नित वंदूँ, मम मन जाननहार,
कहूँ अब केवल ज्ञान उदार ॥28॥
अनंत क्षायिक एक सहज है, मोक्ष सौख्य दातार महज है,
युगपत सर्व अर्थ को जाने, त्रिकाल सब जग रूप पिछाने।
यथानादि को यथानंत को, जाने तथा प्रकार,
ज्ञान कैवल्य नमूँ मृदु सार, जिनागम करता भव से पार ॥29॥

दोहा

जिन श्रुत विद्याजलधि से, ज्ञान बिन्दु उर धार।
मृदुमति श्रुत की भक्ति से, लिखती जिन श्रुतसार॥

गौ उद्धारक

प्राणियों की मात अहिंसा, जन स्वर की लय हो।
गौ उद्धारक विद्यासागर, गुरुवर की जय हो ॥ध्रुव॥
या श्रीः सा गौः इस सूक्ति में, गौ को धन माना।
हे मानव! तुम दिल दिमाग में, इसको अपनाना ॥
पशुधन धन का पूर्ण खजाना-2, इसका संचय हो।
गौ उद्धारक विद्यासागर, गुरुवर की जय हो ॥1॥
गौ माता इक जीव यंत्र जो, तृण का घृत करती।
चारा खाकर कुछ घंटों में, दूध घड़े भरती ॥
गाय आय का प्रथम स्रोत है-2, इसका नहिं क्षय हो।
गौ उद्धारक विद्यासागर, गुरुवर की जय हो ॥2॥
न्यायालय में 'दया उदय' का, अद्भुत सूर्य उगा।
गौरक्षा में गुरु कृपा से, अतिशय नियम लगा ॥
गौशालायें संवर्धन में-2, भारत मन 'मृदु' हो।
गौ उद्धारक विद्यासागर, गुरुवर की जय हो ॥3॥

शास्त्र स्वाध्याय प्रारम्भ करने का मङ्गलाचरण

1. नमोऽस्तु पौर्वाह्णिक/आपराह्णिक/पूर्व रात्रिक/अपर रात्रिक स्वाध्याय प्रारम्भ बेला क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव- समेतं श्री-श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

कोटि-शतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्य-शीतिस्-त्र्यधिकानि चैव ।
पंचाश-दष्टौ च सहस्र-संख्या-मेतच्-छ्रुतं पंच-पदं नमामि ॥1॥
अरहंत-भासियत्थं, गणहर-देवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्ति-जुत्तो, सुद-णाण-महोवहिं सिरसा ॥2॥

इच्छामि भंते! सुद-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अंगोवंग-पइण्णय-पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढ़माणुओग-पुव्वगय-चूलिया चेव, सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइयं, णिच्च-कालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहि-लाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण- गुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

2. नमोऽस्तु पौर्वाह्णिक/आपराह्णिक/पूर्व रात्रिक/अपर रात्रिक स्वाध्याय प्रारम्भ बेला क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव- समेतं श्री-आचार्यभक्ति- कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः स्व-पर-मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः ॥1॥
छत्तीस-गुण-समग्गे, पंच-विहाचार-करण-संदरिसे ।
सिस्सा-णुग्गह-कुसले, धम्मा-इरिये सदा वंदे ॥2॥
गुरु-भत्ति-संजमेण य, तरंति संसार-सायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठ-कम्मं, जम्मण-मरणं ण पावेंति ॥3॥
ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः
षट्-कर्माभिरतास् तपोधन-धनाः, साधु-क्रियाः साधवः ॥4॥
शील-प्रावरणा गुणंप्रहरणाश्-चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः,
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणन्तु मां साधवः ॥5॥

गुरवः पान्तु नो नित्यं, ज्ञान-दर्शन-नायकाः ।
चारित्रार्णव-गम्भीरा, मोक्ष-मोक्षमार्गोपदेशकः ॥6॥

इच्छामि भंते! आइरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, पंच-विहाचाराणं आइरियाणं, आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पालण-रयाणं सव्व-साहूणं, णिच्च-कालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहि-लाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण - सम्पत्ति होउ मज्झं ।

3. नमोऽस्तु पौर्वाह्निक/आपराह्निक/पूर्व रात्रिक/अपर रात्रिक स्वाध्याय निष्ठापन बेला क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव- समेतं श्री-श्रुतभक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

विशेष - 1. यहाँ पुनः श्रुतभक्ति का पाठ कीजिए।
2. स्वाध्याय का प्रारम्भ श्रुतभक्ति एवं आचार्य भक्ति से करते हैं तथा समापन मात्र श्रुतभक्ति से करते हैं।

रत्नकरण्डक श्रावकाचार

आचार्य श्री समंतभद्र स्वामी विरचित

नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥1॥
देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिबर्हणम् ।
संसारदुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥2॥
सद्दृष्टि ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥3॥
श्रद्धानं परमार्थाना माप्तागमतपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥4॥

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥5॥
क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥6॥
परमेष्ठी परंज्योतिः विरागो विमलः कृती ।
सर्वज्ञोऽनादिमध्यान्तः सार्वः शास्तो पलाल्यते ॥7॥
अनात्मार्थं विना रागैः शास्ता शास्ति सतो हितम् ।
ध्वनन् शिल्पिकरस्पर्शान्मुरजः किमपेक्षते ॥8॥
आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्ट विरोधकम् ।
तत्त्वोपदेश कृतसार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ 9॥
विषयाशावशातीतो निरारभ्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस् तपस्वी स प्रशस्यते ॥10॥
इदमेवेदृशमेव तत्त्वं नान्यन्न चान्यथा ।
इत्यकम्पाऽयसाम्भोवत्सन्मार्गेसंशया रुचिः ॥11॥
कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये ।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकांक्षणा स्मृता ॥12॥
स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रयपवित्रिते ।
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सिता ॥13॥
कापथे पथि दुःखानां कापथस्थेऽप्यसम्मतिः ।
असंपृक्तिरनुत्कीर्तिरमूढ़ा दृष्टिरुच्यते ॥14॥
स्वयं शुद्धस्य मार्गस्य बालाशक्तजनाश्रयाम् ।
वाच्यतां यत्प्रमार्जन्ति तद्वदन्त्युपगूहनम् ॥15॥
दर्शनाच्चरणाद्वापि चलतां धर्मवत्सलैः ।
प्रत्यवस्थापनं प्राज्ञैः स्थितिकरणमुच्यते ॥16॥
स्वयूथ्यान्प्रति सद्भाव सनाथापेतकैतवा ।
प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं वात्सल्यमभिलप्यते ॥17॥
अज्ञानतिमिरव्याप्तिमपाकृत्य यथायथम् ।
जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यातप्रभावना् ॥18॥

तावदञ्जन चौरोऽङ्गे ततोऽनन्तमतीः स्मृता ।
उद्दायनस्तृतीयेऽपि तुरीये रेवती मता ॥19॥
ततो जिनेन्द्र भक्तोऽन्यो वारिषेणस्ततः परः ।
विष्णुश्च वज्रनामा च शेषयोर्लक्ष्यतां गतौ ॥20॥
नाङ्गहीन मलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम् ।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनाम् ॥21॥
आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम् ।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥22॥
वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेष मलीमसाः ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥23॥
सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम् ।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥24॥
ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः ।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥25॥
स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान गर्विताशयेः ।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकै र्विना ॥26॥
यदि पापनिरोधोऽन्यसंपदा किं प्रयोजनम् ।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्यसंपदा किं प्रयोजनम् ॥27॥
सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाड्.गारान्तरौजसम् ॥28॥
श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात् ।
कापि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम ॥29॥
भयाशास्नेह लोभाच्च कुदेवागमलिङ्गनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युःशुद्धदृष्टयः ॥30॥
दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते ।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते ॥31॥
विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थितिवृद्धि फलोदयाः ।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥32॥

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान् ।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥33॥
न सम्यक्त्वसमं किञ्चित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥34॥
सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यड्.नपुंसकस्त्रीत्वानि ।
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥35॥
ओजस्तेजोविद्यावीर्ययशोवृद्धिविजय विभव सनाथाः।
माहाकुला महार्था मानवतिलका भवन्ति दर्शनपूताः॥॥36
अष्टगुणपुष्टितुष्टा दृष्टिविशिष्टाः प्रकृष्टशोभाजुष्टाः
अमराप्सरसां परिषदि चिरं रमन्ते जिनेन्द्रभक्ताः स्वर्गे ॥37॥
नवनिधिसप्तद्वयरत्नाधीशाः सर्वभूमिपतयश्चक्रम् ।
वर्त्तयितुं प्रभवन्ति स्पष्टदृशः क्षत्रमौलिशेखरचरणाः ॥38॥
अमरासुरनरपतिभिर्यमधरपतिभिश्च नूतपादाम्भोजाः ।
दृष्टया सुनिश्चितार्था वृषचक्रधरा भवन्ति लोकशरण्याः॥39॥
शिवमजरमरुजमक्षयमव्याबाधं विशोकभयशङ्कम् ।
काष्ठागतसुखविद्याविभवं विमलं भजन्ति दर्शनशरणाः॥40॥
देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम् ।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम्
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः॥41॥
अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात् ।
निःसंदेहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥42॥
प्रथमानुयोगमर्थाख्यानं चरितं पुराणमपि पुण्यम् ।
बोधिसमाधिनिधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥
लोकालोक विभक्तेर्युगपरिवृत्तेश्चतुर्गतीनां च ।
आदर्शमिव तथामतिरवैति करणानुयोगं च ॥44॥
गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धिरक्षाङ्गम् ।
चरणानुयोगसमयं सम्यग्ज्ञानं विजानाति ॥45॥

जीवाजीवसुतत्त्वे पुण्यापुण्ये च बन्धमोक्षौ च ।
द्रव्यानुयोगदीपः श्रुतविद्यालोकमातनुते ॥46॥
मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्त संज्ञानः ।
रागद्वेष निवृत्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥47॥
रागद्वेषनिवृतेर्हिंसादि निवर्त्तना कृता भवति ।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥48॥
हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च ।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥49॥
सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम् ।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससङ्गानाम् ॥50॥
गृहिणां त्रेधा तिष्ठत्यणु-गुण शिक्षाव्रतात्मकं चरणम् ।
पच्च-त्रि-चतुर्भेदं त्रयं यथासङ्ख्य माख्यातम्॥51॥
प्राणातिपातवितथव्यवहारस्तेय काममूर्च्छाभ्यः ।
स्थूलेभ्यः पापेभ्यो व्युपरमणमणुव्रतं भवति ॥52॥
सङ्कल्पात्कृत कारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्।
न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणा ॥53॥
छेदनबंधनपीडन मतिभारारोपणं व्यतीचाराः ।
आहारवारणापि च स्थूलवधाद्व्युपरतेः पञ्च 54॥॥
स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदे।
यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावाद् वैरमणम् ॥55॥
परिवादरहोभ्याख्यापैशून्यं कूटलेखकरणं च ।
न्यासापहारितापि च व्यतिक्रमाः पञ्च सत्यस्य ॥56॥
निहितं वा पतितं वा सुविस्मृतं वा परस्वमविसृष्टं ।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृशचौर्यादुपारमणम् ॥57॥
चौरप्रयोगचौरार्थादान विलोपसदृशसन्मिश्राः ।
हीनाधिकविनिमानं पञ्चास्तेये व्यतीपाताः ॥58॥
न तु परदारान् गच्छति न परान् गमयति च पापभीतेर्यत्।
सा परदारनिवृत्तिः स्वदारसन्तोषनामापि ॥59॥

अन्यविवाहाकरणानङ्गक्रीडाविटत्वविपुलतृषः ।
इत्वरिकागमनं चास्मरस्य पञ्च व्यतीचाराः॥60॥
धनधान्यादिग्रन्थं परिमाय ततोऽधिकेषु निःस्पृहता ।
परिमितपरिगृहः स्यादिच्छापरिमाणनामापि ॥61॥
अतिवाहनातिसंग्रहविस्मयलोभातिभार वहनानि ।
परिमितपरिग्रहस्य च विक्षेपाः पञ्च लक्ष्यन्ते ॥62॥
पञ्चाणुव्रतनिधयो निरतिक्रमणाः फलन्ति सुरलोकं ।
यत्रावधिरष्टगुणा दिव्यशरीरं च लभ्यन्ते ॥63॥
मातङ्गो धनदेवश्च वारिषेणस्ततः परः ।
नीली जयश्च संप्राप्ताः पूजातिशयमुत्तमम् ॥64॥
धनश्रीसत्यघोषौ च तापसारक्षकावपि ।
उपाख्येयास्तथा श्मश्रुनवनीतो यथाक्रमम् ॥65॥
मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपञ्चकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥66॥
दिग्व्रतमनर्थदण्डव्रतं च भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अनुबृंहणाद्गुणानामाख्यान्ति गुणव्रतान्यार्याः ॥67॥
दिग्वलयं परिगणितं कृत्वातोऽहं बहिर्न यास्यामि ।
इति सङ्कल्पो दिग्व्रतमामृत्यणुपापविनिवृत्यै ॥68॥
मकराकरसरिदटवीगिरिजनपदयोजनानि मर्यादाः ।
प्राहुर्दिशां दशानां प्रतिसंहारे प्रसिद्धानि ॥69॥
अवधेर्बहिरणुपापप्रतिविरतेर्दिग्व्रतानि धारयताम् ।
पञ्चमहाव्रतपरिणतिमणुव्रतानि प्रपद्यन्ते ॥70॥
प्रत्याख्यानतनुत्वान्मन्दतराश्चरणमोहपरिणामाः ।
सत्त्वेन दुरवधारा महाव्रताय प्रकल्प्यन्ते ॥71॥
पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनोवचःकायैः ।
कृतकारितानुमोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम् ॥72॥
ऊर्ध्वाधस्तात्तिर्यव्यतिपाताः क्षेत्रवृद्धिरवधीनाम् ।
विस्मरणं दिग्विरतेरत्याशाः पञ्च मन्यन्ते ॥73॥

अभ्यन्तरं दिगवधेरपार्थकेभ्यः[1] सपापयोगेभ्यः ।
विरमणमनर्थदण्डव्रतं विदुर्व्रतधराग्रण्यः ॥74॥
पापोदेशहिंसादानापध्यानदुःश्रुतीः पञ्च ।
प्राहुः प्रमादचर्यामनर्थदण्डानदण्डधराः ॥75॥
तिर्यक्क्लेशवणिज्याहिंसारम्भप्रलम्भना दीनाम्।
कथाप्रसङ्गः प्रसवः स्मर्त्तव्यः पाप उपदेशः ॥76॥
परशुकृपाणखनित्रज्वलनायुधश्रृङ्गिश्रृंखलादीनाम् ।
वधहेतूनां दानं हिंसादानं ब्रुवन्ति बुधाः ॥77॥
वधबन्धच्छेदादेर्द्वेषाद्रागाच्च परकलत्रादेः ।
आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥78॥
आरम्भसङ्गसाहसमिथ्यात्वद्वेषरागमदमदनैः ।
चेतःकलुषयतां श्रुतिरवधीनां दुःश्रुतिर्भवति ॥79॥
क्षितिसलिलदहनपवनारम्भं विफलं वनस्पतिच्छेदं ।
सरणं सारणमपि च प्रमदचर्यां प्रभाषन्ते ॥80॥
कन्दर्पं कौत्कुच्यं मौखर्यमतिप्रसाधनं पञ्च ।
असमीक्ष्य चाधिकरणं व्यतीतयोऽनर्थदण्डकृद्विरतेः ॥81॥
अक्षार्थानां परिसंख्यानं भोगोपभोगपरिमाणम् ।
अर्थवतामप्यवधौ रागरतीनां तनूकृतये ॥82॥
भुक्त्वा परिहातव्यो भोगो भुक्त्वा पुनश्च भोक्तव्यः ।
उपभोगोऽशनवसनप्रभृतिः पाञ्चेन्द्रियो विषयः ॥83॥
त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये ।
मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः ॥84॥
अल्पफलबहुविघातान्मूलकमार्द्राणि श्रृङ्गवेराणि ।
नवनीतनिम्बकुसुमं कैतकमित्येवमवहेयम् ॥85॥
यदनिष्टं तद्व्रतयेद्यच्चानु पसेव्यमेतदपि जह्यात् ।
अभिसन्धिकृता विरतिर्विषयाद्योग्याद्व्रतं भवति ॥86॥
नियमो यमश्च विहितौ द्वेधा भोगोपभोगसंहारात् ।
नियमः परिमितकालो यावज्जीवं यमो ध्रियते ॥87॥

पाठान्तर : 1. दिगवधे-रपार्थिकेभ्यः[1]

भोजन वाहन शयन स्नान पवित्राङ्गरागकुसुमेषु ।
ताम्बूलवसन भूषणमन्मथ संगीत गीतेषु ॥88॥
अद्य दिवा रजनी वा पक्षो मासस्तथर्तुरयनं वा ।
इति कालपरिच्छित्त्या प्रत्याख्यानं भवेन्नियमः ॥89॥
विषयविषतोऽनुपेक्षानुस्मृतिरतिलौल्य मतितृषाऽनुभवो।
भोगोपभोगपरिमाव्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥90॥
देशावकाशिकं वा सामयिकं प्रोषधोपवासो वा ।
वैयावृत्यं शिक्षाव्रतानि चत्वारि शिष्टानि ॥91॥
देशावकाशिकं स्यात्कालपरिच्छेदनेन देशस्य ।
प्रत्यहमणुव्रतानां प्रतिसंहारो विशालस्य ॥92॥
गृहहारिग्रामाणां क्षेत्रनदीदावयोजनानां च ।
देशावकाशिकस्य स्मरन्ति सीम्नां तपोवृद्धाः ॥93॥
संवत्सरमृतुमयनं मासचतुर्मासपक्षमृक्षं च ।
देशावकाशिकस्य प्राहुः कालावधिं प्राज्ञाः ॥94॥
सीमान्तानां परतः स्थूलेतरपञ्चपापसंत्यागात् ।
देशावकाशिकेन च महाव्रतानि प्रसाध्यन्ते ॥95॥
प्रेषणशब्दानयनं रूपाभिव्यक्तिपुद्गलक्षेपौ ।
देशावकाशिकस्य व्यपदिश्यन्तेऽत्ययाः पञ्च ॥96॥
आसमयमुक्ति मुक्तं पञ्चाघानामशेषभावेन ।
सर्वत्र च सामयिकाः सामयिकं नाम शंसन्ति ॥97॥
मूर्धरुहमुष्टिवासोबन्धं पर्य्यङ्कं बन्धनं चापि ।
स्थानमुपवेशनं वा समयं जानन्ति समयज्ञाः ॥98॥
एकान्ते सामयिकं निर्व्याक्षेपे वनेषु वास्तुषु च ।
चैत्यालयेषु वापि च परिचेतव्यं प्रसन्नधिया ॥99॥
व्यापारवैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्मविनिवृत्त्या ।
सामयिकं बध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा ॥100॥
सामयिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यं ।
व्रतपञ्चकपरिपूरण कारणमवधानयुक्तेन ॥101॥

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि ।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं ॥102॥
शीतोष्णदंशमशकपरीषहमुपसर्गमपि च मौनधराः।
सामयिकं प्रतिपन्ना अधिकुर्वीरन्नचलयोगाः ॥103॥
अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवम् ।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामयिके ॥104॥
वाक्कायमानसानां दुःप्रणिधानान्यनादरास्मरणे ।
सामयिकस्यातिगमा व्यञ्जयन्ते पञ्च भावेन ॥105॥
पर्वण्यष्टम्यां च ज्ञातव्यः प्रोषधोपवासस्तु ।
चतुरभ्यवहार्य्याणां प्रत्याख्यानं सदेच्छाभिः ॥106॥
पञ्चानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम् ।
स्नानाञ्जननस्यानामुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात् ॥107॥
धर्मामृतं सतृष्णः श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान्।
ज्ञानध्यानपरो वा भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥108॥
चतुराहारविसर्जनमुपवासः प्रोषधः सकृद्भुक्तिः ।
स प्रोषधोपवासो यदुपोष्यारम्भमाचरति ॥109॥
ग्रहणविसर्गास्तरणान्यदृष्टमृष्टान्यनादरास्मरणे ।
यत्प्रोषधोपवासव्यतिलङ्घनपञ्चकं तदिदम् ॥110॥
दानं वैयावृत्यं धर्माय तपोधनाय गुणनिधये ।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन ॥111॥
व्यापत्तिव्यपनोदः पदयोः संवाहनं च गुणरागात् ।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥112॥
नवपुण्यैः प्रतिपत्तिः सप्तगुणसमाहितेन शुद्धेन ।
अपसूनारम्भाणामार्याणामिष्यते दानम् ॥113॥
गृहकर्मणापि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि ॥114॥
उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा ।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥115॥

क्षितिगतमिव वटबीजं पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलति च्छायाविभवं बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥116॥
आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन ।
वैयावृत्यं ब्रुवते चतुरात्मत्वेन चतुरस्त्राः ॥117॥
श्रीषेणवृषभसेने कौण्डेशः सूकरश्च दृष्टान्ताः ।
वैयावृत्यस्यैते चतुर्विकल्पस्य मन्तव्याः ॥118॥
देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणम् ।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम् ॥119॥
अर्हच्चरणसपर्यामहानुभावं महात्मनामवदत् ।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥120॥
हरितपिधाननिधाने ह्यनादरास्मरणमत्सरत्वानि ।
वैयावृत्यस्यैते व्यतिक्रमाः पञ्च कथ्यन्ते ॥121॥
उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे ।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥122॥
अन्तःक्रियाधिकरणं तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥123॥
स्नेहं वैरं सङ्गं परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः ।
स्वजनं परिजनमपि च क्षान्त्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः ॥124॥
आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निःशेषम् ॥125॥
शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः ॥126॥
आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानम् ।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानं पूरयेत्क्रमशः ॥127॥
खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कारमनास्तनुं त्यजेत्सर्वयत्नेन ॥128॥
जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः ।
सल्लेखनातिचारः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः॥129॥

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधिम् ।
निःपिबति पीतधर्मा सर्वैर्दुःखैरनालीढः ॥130॥
जन्मजरामयमरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम् ।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम् ॥131॥
विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः ।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयस मावसन्ति सुखम् ॥132॥
काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोक संभ्रान्ति करणपटुः ॥133॥
निःश्रेयसमधि पन्नास्त्रैलोक्य शिखामणि श्रियं दधते।
निष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः ॥134॥
पूजार्थाज्ञैश्वर्यैःबलपरिजनकाम भोगभूयिष्ठैः ।
अतिशयितभुवनमद्भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः ॥135॥
श्रावकपदानि देवै रेकादश देशितानि येषु खलु ।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह संतिष्ठन्ते क्रमविवृद्धाः ॥136॥
सम्यग्दर्शनशुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः ।
पञ्चगुरूचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथगृह्यः ॥137॥
निरतिक्रमणमणुव्रतपञ्चकमपि शीलसप्तकं चापि ।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥138॥
चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुः प्रणामः स्थितो यथाजातः ।
सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ॥139॥
पर्वदिनेषु चतुर्ष्वपि मासे मासे स्वशक्तिमनिगुह्य ।
प्रोषधनियमविधायी प्रणिधिपरः प्रोषधानशनः ॥140॥
मूलफलशाक शाखाकरीरकन्दप्रसूनबीजानि ।
नामानि योऽत्ति सोऽयं सचित्तविरतो दयामूर्तिः ॥141॥
अन्नं पानं खाद्यं लेह्यं नाश्नाति यो विभावर्याम् ।
स च रात्रिभुक्तिविरतः सत्वेष्वनुकम्पमानमनाः ॥142॥
मलबीजं मलयोनिं गलन्मलं पूतिगन्धि बीभत्सं ।
पश्यन्नङ्गमनङ्गाद्विरमति यो ब्रह्मचारी सः ॥143॥

सेवाकृषिवाणिज्यप्रमुखादारम्भतो व्युपारमति ।
प्राणातिपातहेतोर्योऽसावारम्भविनिवृत्तः ॥144॥
बाह्येषु दशसु वस्तुषु ममत्वमुत्सृज्य निर्ममत्वरतः।
स्वस्थः सन्तोषपरः परिचित्तपरिग्रहाद्विरतः ॥145॥
अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे ऐहिकेषु कर्मसु वा ।
नास्ति खलु यस्य समधी रनुमति विरतः स मन्तव्यः ॥146॥
गृहतो मुनि वनमित्वा गुरुपकण्ठे व्रतानि परिगृह्य ।
भैक्ष्याशनस्तपस्यन्नुत्कृष्टश्चेलखण्डधरः ॥147॥
पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन् ।
समयं यदि जानीते श्रेयोज्ञाता ध्रुवं भवति ॥148॥
येन स्वयं वीत कलङ्क विद्यादृष्टिक्रियारत्नकरण्डभावं।
नीतस्तमायाति पतिच्छयेव सर्वार्थसिद्धिस्त्रिषु विष्टपेषु ॥149॥
सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव,
सुतमिव जननी मां शुद्धशीला भुनक्तु।
कुलमिव गुणभूषा कन्यका संपुनीता-
ज्जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥150॥

इष्टोपदेश

आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी विरचित

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोऽस्तु परमात्मने।। 1।।
योग्योपादानयोगेन, दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता।। 2।।
वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत नारकम्।
छायातपस्थयोर्भेदः, प्रतिपालयतोर्महान् ।। 3 ।।
यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद् दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्धे किं स सीदति? ।। 4 ।।

हृषीकज मनातङ्कं , दीर्घकालोपलालितम्।
नाके नाकौकसां सौख्यं, नाके नाकौकसामिव।। 5 ।।
वासनामात्रमेवैतत् सुखं दुःखं च देहिनाम्।
तथाह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि ।।6 ।।
मोहेन संवृतं ज्ञानं,स्वभावं लभते नहि ।
मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः ।। 7 ।।
वपुर्गृहं धनं दाराः, पुत्रा मित्राणि शत्रवः ।
सर्वथान्यस्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते ।। 8।।
दिग्देशेभ्यः खगा एत्य, संवसन्ति नगे नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे ।। 9।।
विराधकः कथं हन्त्रे, जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुल पातयन् पद्भ्यां स्वयं दंडेन पात्यते ।। 10।।
रागद्वेषद्वयीदीर्घ - नेत्राकर्षणकर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ।। 11।।
विपद्भवपदावर्ते, पदिकेवातिवाह्यते ।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः, प्रचुरा विपदः पुरः ।। 12।।
दुरर्ज्येना सुरक्ष्येण, नश्वरेण धनादिना ।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि, ज्वरवानिव सर्पिषा ।। 13।।
विपत्तिमात्मनो मूढ़ः, परेषामिव नेक्षते।
दह्यमानमृगाकीर्णवनान्तरतरुस्थवत् ।। 14।।
आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्षहेतुं कालस्य निर्गमम् ।
वाञ्छतां धनिनामिष्टं, जीवतात् सुतरां धनम् ।। 15।।
त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः संचिनोति[1] यः ।
स्वशरीरं स पङ्केन, स्नास्यामीति विलिम्पति ।। 16।।
आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान् ।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः।।17।।
भवन्ति प्राप्य यत्सङ्गमशुचीनि शुचीन्यपि ।
स कायः संततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ।। 18।।

पाठान्तर : 1. सञ्चिनोति

यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम् ।
यद्देहस्योपकाराय, तज्जीवस्याप कारकम् ।। 19।।
इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम् ।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः ।। 20।।
स्वसंवेदन - सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः ।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकनः ।। 21।।
संयम्य करणग्राम मेकाग्रत्वेन चेतसः ।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम् ।।22।।
अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः ।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः ।। 23।।
परीषहाद्यविज्ञानादास्रवस्य निरोधिनी ।
जायतेऽध्यात्मयोगेन, कर्मणामाशु निर्जरा ।। 24।।
कटस्य कर्त्ताहमिति, संबंधः स्याद् द्वयोर्द्वयोः ।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव, संबंधः कीदृशस्तदा ।। 25।।
बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत् ।। 26।।
एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः ।
बाह्याः संयोगजा भावा, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा ।। 27।।
दुःखसंदोहभागित्वं, संयोगादिह देहिनाम् ।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं, मनो वाक्कायकर्मभिः ।। 28।।
न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा ।
नाऽहं बालो न वृद्धोऽहं, न युवैतानि पुद्गले ।। 29।।
भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः ।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा ।। 30।।
कर्म कर्महिताबन्धि, जीवो जीवहितस्पृहः ।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वाञ्छति ।।31।।
परोपकृतिमुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव ।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो, दृश्यमानस्य लोकवत् ।। 32।।

गुरुपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तरम् ।
जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ।।33।।
स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः ।
स्वयं हित प्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ।। 34।।
नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति ।
निमित्तमात्रमन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत् ।। 35।।
अभवच्चित्तविक्षेपः, एकान्ते तत्त्वसंस्थितिः ।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः ।। 36।।
यथा यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि ।। 37।।
यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि ।
तथा तथा समायति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।। 38।।
निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत् ।
स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते ।। 39।।
इच्छत्येकान्तसंवासं, निर्जनं जनितादरः ।
निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम् ।।40।।
ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति ।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति ।। 41।।
किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्क्वेत्यविशेषयन् ।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः ।। 42।।
यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम् ।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति ।। 43।।
अगच्छंस्तद्विशेषेणा मनभिज्ञश्च जायते ।
अज्ञाततद्विशेषस्तु, बध्यते न विमुच्यते ।। 44।।
परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम् ।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः ।। 45।।
अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं, योऽभिनन्दति तस्य तत् ।
न जातु जन्तोः सामीप्यं, चतुर्गतिषु मुञ्चति ।। 46।।

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थितेः ।
जायते परमानन्दः, कश्चिद्योगेन योगिनः ।। 47।।
आनन्दो निर्दहत्युद्धं, कर्मेन्धनमनारतम् ।
न चासौ खिद्यते योगी, बहिर्दुःखेष्वचेतनः ।। 48।।
अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत् ।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः ।। 49।।
जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः ।
यदन्यदुच्यते किञ्चित्, सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ।।50।।

इष्टोपदेशमिति सम्यग्धीत्य धीमान्
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा,
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः।।51।।

वृहद् द्रव्य संग्रहः

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्ति देव विरचित

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं ।
देविंदविंदवंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा॥1॥
जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो ।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥2॥
तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउआणपाणो य ।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स ॥3॥
उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चदुधा ।
चक्खु अचक्खु ओही दंसणमह केवलं णेयं ॥4॥
णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदओही अणाणणाणाणि ।
मणपज्जयकेवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च ॥5॥
अट्ठ चदु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं ।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥6॥

वण्ण रस पंच गंधा दो फ ासा अट्ठ णिच्छया जीवे ।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥ 7 ॥
पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो ।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥8 ॥
ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि ।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ॥ 9 ॥
अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा ।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा ॥10 ॥
पुढविजलतेउवाऊ वणप्फदी विविहथावरेइंदी ।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी ॥11 ॥
समणा अमणा णेया पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे ।
बादरसुहमेइंदिय सव्वे पज्जत इदरा य ॥12 ॥
मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥13 ॥
णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा ।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं संजुत्ता ॥14 ॥
अज्जीवो पुण णेओ पुग्गलधम्मो अधम्म आयासं ।
कालो पुग्गल मुत्तो रुवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु (हु) ॥15
सद्दो बंधो सुहुमो थूलो संठाणभेदतमछाया ।
उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥16 ॥
गइपरिणयाण धम्मो पुग्गलजीवाण गमणसहयारी ।
तोयं जह मच्छाणं अच्छंता-णेव सो णेई ॥17 ॥
ठाणजुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाणसहयारी ।
छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥18 ॥
अवगासदाणजोग्गं जीवादीणं वियाण आयासं ।
जेण्हं लोगागासं अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥19 ॥
धम्माऽधम्मा कालो पुग्गलजीवा य संति जावदिये ।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥20 ॥

दव्वपरिवट्टरूवो जो सो कालो हवेइ ववहारो ।
परिणामादीलक्खो वट्टणलक्खो य परमट्ठो ॥21 ॥
लोयायासपदेसे इक्केक्के[1] जे ठिया हु इक्केक्का[2] ।
रयणाणं रासी मिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥22 ॥
एवं छब्भेयमिदं जीवाजीवप्पभेददो दव्वं ।
उत्तं कालविजुत्तं णादव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥23 ॥
संति जदो तेणेदे अत्थित्ति भणंति जिणवरा जह्मा ।
काया इव बहुदेसा तह्मा काया य अत्थिकाया य ॥24 ॥
होंति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे ।
मुत्ते तिविह पदेसा कालस्सेगो ण तेण सो काओ ॥25 ॥
एयपदेसो वि अणु णाणाखन्धप्पदेसदो होदि ।
बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सव्वण्हु ॥26 ॥
जावदियं आयासं अविभागीपुग्गलाणुवट्टद्धं ।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥27 ॥
आसव बंधण संवर णिज्जर मोक्खो सपुण्णपावा जे ।
जीवाजीवविसेसा तेवि समासेण पभणामो ॥28 ॥
आसवदि जेण कम्मं परिणामेणप्पणो स विण्णेओ ।
भावासवो जिणुत्तो कम्मासवणं परो होदि ॥29 ॥
मिच्छत्ताविरदिपमादजोगकोहादयोथ[3] विण्णेया ।
पण पण पणदह तिय चदु कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥30 ॥
णाणावरणादीणं जोग्गं जं पुग्गलं समासवदि ।
दव्वासवो स णेओ अणेयभेओ जिणक्खादो ॥31 ॥
बज्झदि कम्मं जेण दु चेदणभावेण भावबंधो सो ।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्णपवेसणं इदरो ॥32 ॥
पयडिट्ठिदिअणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बन्धो ।
जोगा पयडिपदेसा ठिदिअणुभागा कसायदो होंति ॥33 ॥
चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणिरोहणे हेदू ।
सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो ॥34 ॥

पाठान्तर : 1. इक्किक्के, 2. इक्किक्का 3. कोधादओथ

वदसमिदीगुत्तीओ, धम्माणुपेहा परीसहजओ य ।
चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥35॥
जह कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण ।
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥36॥
सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेदू अप्पणो हु परिणामो ।
णेओ स भावमोक्खो दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो ॥37॥
सुहअसुहभावजुत्ता, पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा ।
सादं सुहाउ णामं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥38॥
सम्मद्दंसणणाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे ।
ववहारा णिच्छयदो, तत्तियमइओ णिओ अप्पा ॥39॥
रयणत्तयं ण वट्टइ, अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियह्मि ।
तह्मा तत्तियमइओ, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥40॥
जीवादीसद्दहणं, सम्मत्तं रुवमप्पणो तं तु ।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि ॥41॥
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं अप्पपरसरुवस्स ।
गहणं सम्मंणाणं सायारमणेयभेयं तु[1] ॥42॥
जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णये समए ॥43॥
दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं[2] ण दोण्णि[3] उवओग्गा ।
जुगवं जह्मा केवलिणाहे जुगवं तु ते दो वि ॥44॥
असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणयादु जिणभणियम् ॥45॥
बहिरब्भंतरकिरियारोहो भवकारणप्पणासट्ठं ।
णाणिस्स जं जिणुत्तं तं परमं सम्मचारित्तं ॥46॥
दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ।
तम्हा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह ॥47॥
मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअट्ठेसु[4] ।
थिरमिच्छह[5] जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥48॥

पाठान्तर : 1. च, 2. छदुमत्थाणं 3. दुण्णि 4. इट्टणिट्ठ अत्थेसु 5. थिरमिच्छहि

पणतीससोलछप्पण, चदुदुगमेगं च जवह झाएह ।
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ॥49॥
णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ ।
सुहदेहत्थो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥50॥
णट्ठट्ठकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा ।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो ॥51॥
दंसणणाणपहाणे वीरियचारित्तवरतवायारे ।
अप्पं परं च जुंजइ, सो आइरिओ मुणी झेओ ॥52॥
जो रयणत्तयजुत्तो णिच्चं धम्मोवदेसणे[1] णिरदो ।
सो उवझाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स ॥53॥
दंसणणाणसमग्गं, मग्गं मोक्खस्स जो हु चारित्तं ।
साधयदि णिच्चसुद्धं, साहू सो मुणी णमो तस्स ॥54॥
जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू ।
लद्धूण य एयत्तं, तदाहु तं तस्स णिच्छयं झाणं ॥55॥
मा चिट्ठह मा जंपह, मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं ॥56॥
तवसुदवदवं चेदा, झाणरहधुंरधरो हवे जम्हा ।
तम्हा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होइ ॥57॥
दव्वसगंहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा ।
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण णेमिचन्दमुणिणा भणियं जं ॥58॥

समाधितंत्रम्

(श्रीमद्देवनन्द्यपरनामपूज्यपादस्वामिविरचित)

येनात्माऽबुद्ध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम्।
अक्षयानन्त बोधाय तस्मै सिद्धात्मने नमः ॥1॥
जयन्ति यस्यावदतोऽपि भारती विभूतयस्तीर्थकृतोप्यनीहितुः।
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे जिनाय तस्मै सकलात्मने नमः ॥2॥

पाठान्तर : 1. धम्मोवएसणे

श्रुतेन लिङ्गेन यथात्मशक्ति समाहितान्तः करणेन सम्यक्।
समीक्ष्य कैवल्यसुखस्पृहाणां विविक्तमात्मानमथाभिधास्ये ॥3॥
बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत् ॥4॥
बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।
चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्माऽतिनिर्मलः ॥5॥
निर्मलः केवलः शुद्धो विविक्तः प्रभुरव्ययः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः ॥6॥
बहिरात्मेन्द्रियद्वारैरात्मज्ञानपराङ्मुखः।
स्फुरितः स्वात्मनो देहमात्मत्वेनाध्यवस्यति ॥7॥
नरदेहस्थमात्मानम विद्वान् मन्यते नरम्।
तिर्यञ्चं तिर्यगङ्गस्थं सुराङ्गस्थं सुरं तथा ॥8॥
नारकं नारकाङ्गस्थं न स्वयं तत्त्वतस्तथा।
अनंतानंतधीशक्तिः स्वसंवेद्योऽचलस्थितिः ॥9॥
स्वदेहसदृशं दृष्ट्वा परदेहमचेतनम्।
परात्माधिष्ठितं मूढः परत्वेनाध्यवस्यति ॥10॥
स्वपराध्यवसायेन देहष्वविदितात्मनाम्।
वर्तते विभ्रमः पुंसां पुत्रभार्यादिगोचरः ॥11॥
अविद्यासंज्ञितस्तस्मात्संस्कारो जायते दृढः।
येन लोकोऽङ्गमेव स्वं पुनरप्यभिमन्यते ॥12॥
देहे स्वबुद्धिरात्मानं युनक्त्येतेन निश्चयात्।
स्वात्मन्येवात्मधीस्तस्माद्वियोजयति देहिनं ॥13॥
देहेष्वात्मधिया जाताः पुत्रभार्यादिकल्पनाः।
सम्पत्तिमात्मनस्ताभिर्मन्यते हा हतं! जगत् ॥4॥
मूलं संसारदुःखस्य, देह एवात्मधीस्ततः।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्त, र्बहिरव्यापृतेन्द्रियः ॥15॥
मत्तश्च्युत्वेन्द्रियद्वारैः पतितो (यतितो) विषयेष्वहम्।
तान प्रपद्याऽहमिति मां पुरा वेद न तत्वतः ॥16॥

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः ॥7॥
यन्मया दृश्यते रूपं तन्न जानाति सर्वथा।
जानन्न दृश्यते रूपं ततः केनब्रवीम्यहम् ॥18॥
यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ॥19॥
यदग्राह्यं न गृह्णाति गृहीतं नैव मुंचति।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥20॥
उत्पन्नपुरुषभ्रान्तेः, स्थाणौ यद्वद्विचेष्टितम् ।
तद्वन्मे चेष्टितं पूर्वं देहादिष्वात्म विभ्रमात् ॥21॥
यथासौ चेष्टते स्थाणौ निवृत्ते पुरुषाग्रहे।
तथाचेष्टोऽस्मि देहादौ विनिवृत्तात्मविभ्रमः ॥22॥
येनात्मनानुभूयेऽहमात्मनैवत्मनाऽत्मनि।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहुः ॥23॥
यदभावे सुषुप्तोऽहं यद्भावे व्युत्थितः पुनः।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥24॥
क्षीयन्तेऽत्रैव रागाद्यास्तत्वतो मां प्रपश्यतः।
बोधात्मानं ततः कश्चिन्न में शत्रुर्न च प्रियः ॥25॥
मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः ॥26॥
त्यक्त्वैवं बहिरात्मान मन्तरात्मव्यवस्थितः।
भावयेत्परमात्मानं सर्व संकल्पवर्जितम् ॥27॥
सोऽहमित्यात्तसंस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढ़संस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम् ॥28॥
मूढात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद्भयास्पदम्।
यतो भीतस्ततो नान्यदभयस्थानमात्मनः ॥29॥
सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमिते नान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्वं परमात्मनः ॥30॥

यः परात्मा स एवाऽहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः ॥1 ॥
प्रच्याव्य विषयेभ्योऽहं मां मयैव मयि स्थितम्।
बोधात्मानं प्रपन्नोऽस्मि परमानन्द निर्वृतम् ॥32 ॥
यो न वेत्ति परं देहा देवमात्मानमव्ययम्।
लभते स न निर्वाणं तप्त्वाऽपि परमं तपः ॥33 ॥
आत्म देहान्तरज्ञान जनिताह्लाद निर्वृतः।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुञ्जनोऽपि न खिद्यते ॥34 ॥
रागद्वेषादि कल्लोलैरलोलं यन्मनो जलम्।
स पश्यात्यात्मनस्तत्त्वं नेतरो जनः ॥35 ॥
अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रेयत्ततः ॥36 ॥
अविद्याभ्याससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदेव ज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते ॥37 ॥
अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः।
नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतसः ॥38 ॥
यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।
तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात् ॥39 ॥
यत्र काये मुनेः प्रेम ततः प्रच्याव्य देहिनं।
बुद्धया तदुत्तमे काये योजयेत्प्रेम नश्यति ॥40 ॥
आत्मविभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।
नाऽयतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वाऽपि परमं तपः ॥41 ॥
शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवाञ्छति।
उत्पन्नात्ममतिर्देहे तत्वज्ञानी ततश्च्युतिम् ॥42 ॥
परत्राहम्मतिः स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम्।
स्वस्मिन्नहम्मतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुधः ॥43 ॥
दृश्यमानमिदं मूढस्त्रिलिङ्गमवबुध्यते।
इदमित्यवबुद्धस्तु निष्पन्नं शब्दवर्जितम् ॥44 ॥

जानन्नप्यात्मनस्तत्त्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रांतिं भूयोऽपि गच्छति ॥45 ॥
अचेतनमिदं दृश्य मदृश्यं चेतनं ततः।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थोऽहं भवाम्यतः ॥46 ॥
त्यागादाने बहिर्मूढः करोत्यध्यात्ममात्मवित्।
नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मनः ॥47 ॥
युञ्जीत मनसाऽऽत्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत्।
मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम् ॥48 ॥
जगद्देहात्मदृष्टीनां विश्वास्यं रम्यमेव च।
स्वात्मन्येवात्मदृष्टीनां क्व विश्वासः क्व वा रतिः ॥49 ॥
आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात्किञ्चिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः ॥50 ॥
यत्पश्यामीन्द्रियैस्तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः।
अंतः पश्यामि सानन्दं तदस्तु ज्योतिरुत्तमम् ॥51 ॥
सुखमारब्धयोगस्य बहिर्दुःखमथाऽऽत्मनि।
बहिरेवाऽसुखं सौख्यमध्यात्मं भावितात्मनः ॥52 ॥
तद् ब्रूयात्तत्परान्प्रच्छेत्तदिच्छेत्तत्परो भवेत।
येनाऽविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत् ॥53 ॥
शरीरे वाचि चात्मानं सन्धत्ते वाक् शरीरयोः।
भ्रान्तोऽभ्रान्तः पुनस्तत्त्वं पृथगेषां निबुध्यते ॥54 ॥
न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मनः।
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञानभावनात् ॥55 ॥
चिरं सुषुप्तास्तमसि मूढात्मानः कुयोनिषु।
अनात्मीयात्मभूतेषु ममाहमिति जाग्रति ॥56 ॥
पश्येन्निरंतरं देहमात्मनोऽनात्मचेतसा।
अपरात्मधियाऽन्येषामात्मतत्त्वे व्यवस्थितः ॥57 ॥
अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।
मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः ॥58 ॥

यद् बोधयितुमिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः।
ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्किमन्यस्य बोधये ॥ 59 ॥
बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे।
तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुकः ॥60 ॥
न जानन्ति शरीराणि सुखदुःखान्यबुद्धयः।
निग्रहानुग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वते ॥61 ॥
स्वबुद्ध्या यावद् गृह्णीयात् कायवाक् चेतसां त्रयम्।
ससारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः ॥62 ॥
घने वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न घनं मन्यते तथा।
घने स्वदेहेप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः ॥63 ॥
जीर्णे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहेऽप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः ॥64 ॥
नष्टे वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न नष्टं मन्यते तथा।
नष्टे स्वदेहेऽप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः ॥65 ॥
रक्ते वस्त्रे यथाऽऽत्मानं न रक्तं मन्यते तथा।
रक्ते स्वदेहेऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः ॥66 ॥
यस्य सस्पन्द माभाति निःस्पन्देन समं जगत्।
अप्रज्ञ मक्रियाभोगं स सम याति नेतरः ॥67 ॥
शरीरकञ्चुकेनात्मा संवृत ज्ञानविग्रहः।
नात्मानं बुध्यते तस्माद् भ्रमत्यतिचिरं भवे ॥68 ॥
प्रविशद्गलतां व्यूहे देहेऽणूनां समाकृतौ।
स्थितिभ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धयः ॥69 ॥
गौरः स्थूलः कृशो वाऽहमित्यङ्गेनाविशेषयन्।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्तिविग्रहम् ॥70 ॥
मुक्तिरेकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृतिः।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृति ॥71 ॥
जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥72 ॥

ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा निवासोऽनात्मदर्शिनाम्।
दृष्टात्मनां निवासस्तु विविक्तात्मैव निश्चलः ॥73 ॥
देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना ॥74 ॥
नयत्यात्मानमात्मैव जन्म निर्वाणमेव च।
गुरुरात्मात्मनस्तस्मान्नान्योऽस्ति परमार्थतः ॥75 ॥
दृढात्मबुद्धिदेहादावुत्पश्यन्नाशमात्मनः।
मित्रादिभिर्वियोगं च बिभेति मरणाद्भृशम् ॥76
आत्मान्येवात्मधीरन्यां शरीरगतिमात्मनः।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रांतरग्रहम् ॥77 ॥
व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्ताश्चात्मगोचरे ॥78 ॥
आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः।
तयो रन्तरविज्ञानादभ्यासा दच्युतो भवेत् ॥79 ॥
पूर्वं दृष्टात्मतत्त्वस्य विभात्युन्मत्तवज्जगत्।
स्वभ्यस्तात्मधियः पश्चात् काष्ठपाषाणरूपवत् ॥80 ॥
श्रृण्वन्नप्यन्यतः कामं वदन्नपि कलेवरात्।
नात्मानं भावयेद्भिन्नं यावत्तावन्न मोक्षभाक् ॥81 ॥
तथैव भावयेद्देहाद्व्यावृत्यात्मानमात्मनि।
यथा न पुनरात्मानं देहे स्वप्नेऽपि योजयेत् ॥82 ॥
अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥83 ॥
अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।
त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः ॥84 ॥
यदन्तर्जल्पसंपृक्तमुत्प्रेक्षाजालमात्मनः।
मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्टमिष्टं परं पदम् ॥85 ॥
अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः।
परात्मज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत् ॥86 ॥

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिङ्गंकृताऽऽग्रहाः ॥87 ॥
जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एवात्मनो भवः।
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये जातिकृताग्रहाः ॥88 ॥
जातिलिंगविकल्पेन येषां च समयाग्रहः।
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मनः ॥89 ॥
यत्त्यागाय निवर्तन्ते भोगेभ्यो यदवाप्तये।
प्रीतिं तत्रैव कुर्वन्ति द्वेषमन्यत्र मोहिनः ॥90 ॥
अनन्तरज्ञः संधत्ते दृष्टिं पङ्गोथाऽन्धके।
संयोगात् दृष्टिमङ्गेऽपि संधत्ते तद्वदात्मनः ॥91 ॥
दृष्टभेदो यथा दृष्टिं पङ्गोरन्धे न योजयेत्।
तथा न योजयेद्देहे दृष्टात्मा दृष्टिमात्मनः ॥92 ॥
सुप्तोन्मत्ताद्यवस्थैव विभ्रमोऽनात्मदर्शिनाम्।
विभ्रमोऽक्षीणदोषस्य सर्वावस्थाऽऽत्मदर्शिनः ॥93 ॥
विदिताशेषशास्त्रोऽपि न जाग्रदपि न मुच्यते।
देहात्मदृष्टिर्ज्ञातात्मा सुप्तोन्मत्तोऽपि मुच्यते ॥94 ॥
यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते ॥ 95 ॥
यत्रानाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।
यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चित्तस्य तल्लयः ॥96 ॥
भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।
वर्तिर्दीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी ॥97 ॥
उपास्यात्मान मेवात्मा जायते परमोऽथवा।
मथित्वाऽऽत्मान मात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरु ॥98 ॥
इतीदं भावयेन्नित्यमवाचांगोचरं पदम्।
स्वत एव तदाप्नोति यतो नावर्तते पुनः ॥99 ॥
अयत्नसाध्यं निर्वाणं चित्तत्वं भूतजं यदि।
अन्यथा योगतस्तस्मान्न दुःखं योगिनां क्वचित ॥100 ॥

स्वप्ने दृष्टे विनष्टेऽपि न नाशोऽस्ति यथात्मनः।
तथा जागरदृष्टेऽपि विपर्यासाविशेषतः ॥101 ॥
अदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनि ॥102 ॥
प्रयत्नादात्मनो वायुरिच्छाद्वेषप्रवर्तितात्।
वायोः शरीरयंत्राणि वर्तन्ते स्वेषु कर्मसु ॥103 ॥
तान्यात्मनि समारोप्य साक्षाण्यास्तेऽसुखं जडः।
त्यक्त्वाऽरोपं पुनर्विद्वान् प्राप्नोति परमं पदम् ॥104 ॥
मुक्त्वा परत्र परबुद्धिमहंधियञ्च, संसार-दुःखजननीं जननाद्विमुक्तः।
ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्मनिष्ठ- स्तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितंत्रम् ॥105 ॥

कविवर पण्डित श्री दौलतराम जी कृत

छहढाला

(पूर्वार्द्ध)

प्रथम ढाल (पहली ढाल)

– मंगलाचरण –

तीन-भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं ॥
जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त ।
तातैं दुःखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणाधार ॥1 ॥
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान ।
मोह-महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि ॥2 ॥
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा ।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्री तन धार ॥3 ॥
एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्‌यो भर्‌यो दुखभार ।
निकसि भूमि-जल-पावक भयो, पवन-प्रत्येक वनस्पति थयो ॥4 ॥
दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय लही त्रसतणी ।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धरि धरि मर्‌यो सही बहुपीर ॥5 ॥

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो ।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर ॥6॥
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन ।
छेदन भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम आतप त्रास ॥7॥
वध बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभतैं जात न भने ।
अतिसंक्लेश भावतैं मर्‌यो, घोर श्वभ्रसागर में पर्‌यो ॥8॥
तहाँ भूमि परसत दुख इसो, बिच्छू सहस डसे नहिं तिसो ।
तहाँ राध-श्रोणित वाहिनी, कृमि-कुल-कलित देह दाहिनी ॥9॥
सेमरतरु दलजुत असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र ।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय ॥10॥
तिल तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड ।
सिन्धु नीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय ॥11॥
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय ।
ये दुख बहुसागर लौं सहै, करम जोग तैं नरगति लहै ॥12॥
जननी उदर वस्यो नवमास, अंग सकुचतैं पाई त्रास ।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर ॥13॥
बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणीरत रह्यो ।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो कैसे रूप लखै आपनो ॥14॥
कभी अकामनिर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै ।
विषय चाह दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥15॥
जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय ।
तहँतै चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥16॥

द्वितीय ढाल (दूसरी ढाल)

ऐसे मिथ्या-दृग ज्ञान चरण, वश भ्रमत भरत दुख जन्म मरण ।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान ॥1॥
जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधैं तिनमांहि विपर्ययत्व ।
चेतन को है उपयोग रुप, विनमूरति[1] चिन्मूरति[2] अनूप ॥2॥

पाठान्तर : 1. विनमूरत 2. चिन्मूरत

पुद्‌गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव-चाल ।
ताको न जान विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछान ॥3॥
मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव ।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन ॥4॥
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान ।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन ॥5॥
शुभ-अशुभ-बंध के फल मँझार, रति अरति करै निजपद विसार ।
आतमहित हेतु विराग-ज्ञान, ते लखें आपको कष्टदान ॥6॥
रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीति जुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान ॥7॥
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानहु मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सुतेह ॥8॥
जे[1] कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव ।
अंतर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अंबर तैं सनेह ॥9॥
धारे कुलिंग लहि महत-भाव, ते कुगुरु जन्म-जल-उपल नाव।
जे रागद्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादि जुत चिह्न चीन ॥10॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव भ्रमण छेव ।
रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस-थावर मरण-खेत ॥11॥
जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान ॥12॥
एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक-पोषक अप्रशस्त ।
कपिलादि रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहुदेन त्रास ॥13॥
जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविध-विध देहदाह।
आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन-छीन ॥14॥
ते सब मिथ्या चारित्र त्याग, अब आतम के हित पंथ लाग ।
जग जाल भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग ॥15॥

पाठान्तर : 1. जो

तृतीय ढाल (तीसरी ढाल)

(नरेन्द्र/जोगीरासा छन्द)

आतम को हित है सुख, सो सुख, आकुलता बिन कहिये ।
आकुलता शिवमाँहिं न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव, मग सो दुविध विचारो ।
जो सत्यारथ रूप सो निश्चय, कारन सो व्यवहारो ॥1॥
परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त्व भला है ।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है ॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित्र सोई ।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥2॥
जीव-अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंधरु संवर जानो ।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यों का त्यों सरधानो ॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो ।
तिनको सुन सामान्य विशेषैं, दृढ़ प्रतीति उर आनो ॥3॥
बहिरातम अन्तर आतम परमातम जीव त्रिधा है ।
देह जीव को एक गिनै, बहिरातम-तत्त्व मुधा है ॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अंतर-आतम-ज्ञानी ।
द्विविध संग बिन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी ॥4॥
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी ।
जघन कहे अविरत-समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी ॥
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी ।
श्री अरिहंत[1] सकल परमातम, लोकालोक-निहारी ॥5॥
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल, वर्जित सिद्ध महंता ।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनंता ॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै ।
परमातम को ध्याय निरंतर, जो निज आनंद पूजै ॥6॥
चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं ।
पुद्गल पंच वरन रस गंध दो, फरस वसू[2] जाके हैं ॥

पाठान्तर : 1. अरहंत 2. वसु

जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी ।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिनबिनमूर्ति निरूपी ॥7॥
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो ।
नियत वर्तना[1] निशिदिन सो, व्यवहार काल परिमानो ॥
यों अजीव, अब आस्रव सुनिये, मन वच काय त्रियोगा ।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥8॥
ये ही आतम को दुख कारण, तातैं इनको तजिये ।
जीव प्रदेश बँधे विधि सो सों, बंधन कबहु न सजिये ॥
शम-दमतैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये ।
तप बलतैं विधि झरन निर्जरा[2], ताहि सदा आचरिये ॥9॥
सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी ।
इहिविधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी ॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो ।
येहू मान समकित को कारन, अष्ट अंग-जुत धारो ॥10॥
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो ।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो ॥
अष्टअंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपहु कहिये ।
बिन जाने तैं दोष गुनन को, कैसे तजिये गहिये ॥11॥
जिन वच में शंका न धारि वृष, भव सुख वाँछा भानै ।
मुनि तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै ॥
निजगुणअरु पर औगुन ढाँकै, वा निज धर्म बढ़ावै ।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज पर को सु दृढ़ावै ॥12॥
धर्मीसों गौ-वच्छ-प्रीति-सम, कर जिनधर्म दिपावै ।
इन गुनतैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै ॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै ।
मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै ॥13॥
तपको मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै ।
मद धारै तो येही दोष वसु, समकित को मल ठानै ॥

पाठान्तर : 1. वरतना 2. निरजरा

कुगुरु -कुदेव-कुवृष-सेवक की, नहीं प्रशंस उचरै है ।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन, कुगुरादिक, तिन्हें न नमन करै है ॥14॥
दोष रहित गुन सहित सुधी जे, सम्यक् दरश सजे हैं।
चरित मोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं ॥
गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है ।
नगरनारिको प्यार यथा, कादे में हेम अमल है ॥15॥
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षँड नारी ।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत समकितधारी ॥
तीन लोक तिहुँ काल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी ।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी ॥16॥
मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चारित्रा ।
सम्यक्ता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा ॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे ।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवे ॥17॥

(उत्तरार्द्ध) चतुर्थ ढाल

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान ।
स्व-पर अर्थ बहु धर्म जुत, जो प्रगटावन भान ॥
सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ॥
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई ।
युगपत् होते हूँ, प्रकाश दीपक तैं होई ॥1॥
तास भेद दो हैं परोक्ष परतछि[1] तिन माँही ।
मति श्रुत दोय परोक्ष अक्ष मनतैं उपजाहीं ॥
अवधिज्ञान मनपर्जय दो हैं देश-प्रतच्छा ।
द्रव्यक्षेत्र परिमाण लिये जानैं जिय स्वच्छा ॥2॥
सकल द्रव्य के गुन अनंत, परजाय अनंता ।
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता ॥
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन ।

पाठान्तर : 1. परतछ

इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु-रोग-निवारन ॥3॥
कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे ।
ज्ञानी के छिनमाँहिं, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते ॥
मुनिव्रत धार अनंत बार ग्रीवक उपजायो ।
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो ॥4॥
तातैं जिनवर कथित तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपो लखि लीजै ॥
यह मानुष परजाय, सुकुल, सुनिवो जिनवानी ।
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी ॥5॥
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै ।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै ॥
तास ज्ञान को कारन, स्वपर विवेक बखानो ।
कोटि उपाय बनाय भव्य, ताको उर आनो ॥6॥
जे पूरब शिव गये, जाहिं अरु आगे जै हैं ।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं ॥
विषय-चाह दव-दाह, जगत जन अरनि दझावै ।
तास उपाय न आन, ज्ञान घन घान बुझावै ॥7॥
पुण्य पाप-फलमाहिं, हरख बिलखौ मत भाई ।
यह पुद्‌गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई ॥
लाख बात की बात यहै, निश्चय उर लाओ ।
तोरि सकल जग-दंद-फंद, निज आतम ध्याओ ॥8॥
सम्यग्ज्ञानी होय, बहुरि दृढ़ चारित लीजे ।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै ॥
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न सँहारै ।
पर वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै ॥9॥
जल मृतिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता ।
निजवनिता बिन सकल, नारिसों रहै विरत्ता ॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै ।
दश दिश गमन प्रमाण ठान, तसु सीम न नाखै ॥10॥

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा ।
गमनागमन प्रमाण ठान, अन सकल निवारा ॥
काहू की धन हानि, किसी जय हार न चिंतै ।
देय न सो उपदेश, होय अघ वनिज कृषीतैं ॥11॥
कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै ।
असि धनु हल हिंसोपकरन नहिं दे जस लाधै॥
राग-द्वेष-करतार, कथा कबहूँ न सुनीजै ।
औरहु अनरथ दण्ड हेतु, अघ तिन्हैं न कीजै ॥12॥
धर उर समता भाव, सदा सामायिक करिये ।
परव चतुष्टयमांहि, पाप तजि प्रोषध धरिये॥
भोग और उपभोग, नियमकरि ममत निवारै ।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै ॥13॥
बारह व्रत के अतीचार, पन पन न लगावै ।
मरण समय संन्यास धारि, तसु दोष नशावै ॥
यों श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै ।
तँहतैं[1] चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावै ॥14॥

पंचम ढाल (पाँचवीं ढाल)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगनतैं वैरागी ।
वैराग्य उपावन माई, चिंतैं अनुप्रेक्षा भाई ॥1॥
इन चिन्तत सम सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै ।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै ॥2॥
जोवन गृह गो धन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी ।
इन्द्रिय-भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई ॥3॥
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते ।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥4॥
चहुँगति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करै हैं ।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा ॥5॥
शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगैं जिय एकहिं तेते ।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी ॥6॥

पाठान्तर : 1. तहते

जल पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला ।
तो प्रगट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ॥7॥
पल-रुधिर-राध-मल-थैली, कीकस वसादितैं मैली ।
नव द्वार बहैं घिनकारी, अस देह करै किम यारी ॥8॥
जो जोगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई ।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवंत तिन्हें निरवेरे ॥9॥
जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना ।
तिनही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके ॥10॥
निज काल पाय विधि झरना, तासौं[1] निज काज न सरना ।
तप करि जो कर्म खिपावे, सोई शिव सुख दरसावै ॥11॥
किन हूँ न कर्‌यो न धरै को, षट् द्रव्यमयी न हरै को ।
सो लोकमांहि बिन समता, दुःख सहे जीव नित भ्रमता ॥12॥
अंतिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनंत बिरियाँ पद ।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निजमें मुनि साधौ ॥13॥
जो भाव मोहतैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे ।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै ॥14॥
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये ।
ताको सुनिये भवि प्राणी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥15॥

षष्ठम् ढाल (छटवीं ढाल)

हरिगीतिका

षट्काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरब हिंसा टरी ।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भावित अवतरी ॥
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयो गहै ।
अठदशसहस विधि शील धर, चिद् ब्रह्म में नित रमि रहैं। ॥1॥
अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दसधा तैं टलैं।
परमाद तजि चउ कर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं॥
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुतिसुखद सब संशय हरैं ।
भ्रमरोग-हर जिनके वचन, मुखचन्द्र तैं अमृत झरैं ॥2॥

पाठान्तर : 1. तासो

छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को ।
लैं तप बढ़ावन हेतु नहिं, तन पोषते तजि रसन को ॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखिकैं गहैं लखिकैं धरैं ।
निर्जन्तु थान-विलोक तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं ॥3॥
सम्यक् प्रकार निरोध मन वच, काय आतम ध्यावते ।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते ॥
रस रूप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने ।
तिन में न राग विरोध पंचेन्द्रिय जयन पद पावने ॥4॥
समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को ।
नित करैं श्रुतरति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को ॥
जिनके न न्हौन न दंत धोवन, लेश अंबर आवरन ।
भूमाहिं पिछली रयनि में कछु, शयन एकासन करन ॥5॥
इक बार दिन में लैं अहार, खड़े अलप निज पान में ।
कचलौंच[1] करत न डरत परिषह[2], सों लगे निज ध्यान में ॥
अरि मित्र महल मसान कंचन, कांच निंदन-थुति करन ।
अर्घावतारन असि-प्रहारन, में सदा समता धरन ॥6॥
तप तपै द्वादश धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा ।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा ॥
यों है सकल संयमचरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब ।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटे पर की प्रवृत्ति सब ॥7॥
जिन परम पैनी सुबुधि-छैनी, डारि अंतर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादितैं, निज भाव को न्यारा किया ॥
निजमाहिं निज के हेतु निजकर, आपको आपै गह्यो ।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मँझार कछु भेद न रह्यो ॥8॥
जहँ ध्यान ध्याता ध्येय को, न विकल्प वच भेद न जहाँ ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दसा ।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये, तीनधा-एकै लसा ॥9॥
परमाण नय निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखैं ।

पाठान्तर : 1. कचलोंच 2. परीषह

दृग ज्ञान सुख-बल-मय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखैं ॥
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं ।
चित्पिंड चंड अखंड सुगुण-करंड च्युत पुनि कलनितैं ॥10॥
यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो ॥
तब ही शुक्ल ध्यानाग्नि करि, चउ घाति विधि कानन दह्यो ।
सब लख्यो केवल ज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो ॥11॥
पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिनमाहिं अष्टम भू वसें ।
वसु कर्म विनसे सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसें ॥
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥12॥
निजमाहिं लोक अलोक गुण, परजाय प्रतिबिम्बित थये ।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये ॥
धनि धन्य हैं जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया ।
तिनही अनादि भ्रमण पंच, प्रकार तजि वर सुख लिया ॥13॥
मुख्योपचार दुभेद यों बड़भागि रत्नत्रय धरैं ।
अरु धरैंगे ते शिव लहैं तिन, सुयश-जल जगमल हरैं ॥
इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो ।
जबलौं न रोग जरा गहै, तब लौं झटिति निज हित करो ॥14॥
यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये ।
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये ॥
कहा रच्यो पर पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै ।
अब 'दौल'! होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूको यहै ॥15॥

दोहा

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल बैसाख ।
कर्‌यो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजन की भाख ॥1॥
लघु-धी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल ।
सुधी-सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव-कूल ॥2॥

– इस प्रकार पं. श्री दौलतराम जी रचित छहढाला ग्रंथ पूर्ण हुआ –

भक्तामर स्तोत्र

आचार्य श्री मानतुंग विरचित

भक्तामर - प्रणत - मौलि - मणि -प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित - पाप - तमो - वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन - पाद - युगं युगादा-
वालम्बनं भव - जले पततां जनानाम् ॥ 1 ॥

य: संस्तुत: सकल - वाङ्मय - तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि - पटुभि: सुर - लोक- नाथै:।
स्तोत्रैर्जगत्- त्रितय - चित्त - हरैरुदारै:,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥ 2 ॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित - पाद - पीठ!
स्तोतुं समुद्यत - मतिर्विगत - त्रपोऽहम्
बालं विहाय जल -संस्थित-मिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥ 3 ॥

वक्तुं गुणान्गुण -समुद्र ! शशाङ्क-कान्तान् ,
कस्ते क्षमः सुर - गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।
कल्पान्त -काल - पवनोद्धत- नक्र- चक्रं,
को वा तरीतु मलमम्बु निधिं भुजाभ्याम्॥ 4 ॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति - वशान्मुनीश ।
कर्तुं स्तवं विगत - शक्ति - रपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्म - वीर्य - मविचार्य मृगी मृगेन्द्रम्
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपाल नार्थम्॥ 5 ॥

अल्प-श्रुतं-श्रुतवतां परिहास धाम,
त्वद्-भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र -चारु-कलिका-निकरैक -हेतुः॥ 6 ॥

त्वत्संस्तवेन भव - सन्तति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।

आक्रान्त-लोक-मलि-नील-मशेष-माशु,
सूर्यांशु- भिन्न-मिव शार्वर-मन्धकारम्॥ 7 ॥

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद -
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु ,
मुक्ता-फल -द्युति-मुपैति ननूद-बिन्दुः ॥ 8 ॥

आस्तां तव स्तवन-मस्त-समस्त-दोषं,
त्वत्सङ्कथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥ 9 ॥

नात्यद्-भुतं भुवन - भूषण ! भूत-नाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त - मभिष्टुवन्तः,
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥ 10 ॥

दृष्ट्वा भवन्त मनिमेष-विलोकनीयं,
नान्यत्र-तोष-मुपयाति जनस्य चक्षुः
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत् ?॥ 11 ॥

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्-त्वम्,
निर्मापितस्-त्रि-भुवनैक-ललाम-भूत !
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समान- मपरं न हि रूप-मस्ति॥ 12 ॥

वक्त्रं क्व ते सुर - नरोरग-नेत्र-हारि,
निःशेष- निर्जित - जगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलंक-मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाश-कल्पम् ॥ 13 ॥

सम्पूर्ण- मण्डल-शशाङ्क -कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्-त्रि-भुवनं तव लङ्घयन्ति।

ये संश्रितास् - त्रि-जगदीश्वर नाथ-मेकं,
कस्तान् निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम्॥ 14।।
चित्रं-किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्ग-नाभिर्-
नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम् ।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्॥ 15॥
निर्धूम - वर्ति - रपवर्जित - तैल-पूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रय - मिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः॥ 16॥
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्-जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर - निरुद्ध - महा- प्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र ! लोके॥ 17॥
नित्योदयं दलित - मोह - महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्पकान्ति,
विद्योतयज्-जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम्॥ 18॥
किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमः -सु नाथ!
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनी जीव-लोके,
कार्यं कियज्जल-धरै-र्जल-भार-नम्रैः॥ 19॥
ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि- हरादिषु नायकेषु ।
तेजो महामणिषु याति यथा महत्त्वं ,
नैवं तु काच -शकले किरणाकुलेऽपि ॥ 20॥
मन्ये वरं हरि - हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।

किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि॥ 21॥
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशु-जालम् ॥22॥
त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्ण-ममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्य-गुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यःशिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र! पन्थाः॥ 23॥
त्वा-मव्ययं विभु-मचिन्त्य-मसंख्य-माद्यं,
ब्रह्माण मीश्वर - मनन्त - मनङ्ग - केतुम्।
योगीश्वरं विदित-योग-मनेक-मेकं,
ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥ 24॥
बुद्धस्त्व मेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय- शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर! शिव-मार्ग विधेर्विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि॥ 25॥
तुभ्यं नमस् - त्रिभुवनार्ति - हराय नाथ!
तुभ्यंनमः क्षिति-तलामल -भूषणाय।
तुभ्यं नमस्-त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय॥ 26॥
को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणै-रशेषैस्-
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषै - रुपात्त - विविधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि॥ 27॥
उच्चै - रशोक- तरु - संश्रितमुन्मयूख -
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।

स्पष्टोल्लसत्-किरण-मस्त-तमो-वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥ 28॥
सिंहासने मणि - मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्-विलस-दंशुलता-वितानं
तुङ्गोदयाद्रि-शिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥ 29॥
कुन्दावदात - चल - चामर - चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत - कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क - शुचिनिर्झर - वारि - धार-
मुच्चैस्तटं सुर गिरेरिव शातकौम्भम् ॥ 30॥
छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क- कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्।
मुक्ता - फल - प्रकर - जाल-विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत् - त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्॥ 31॥
गम्भीर - तार - रव-पूरित-दिग्विभागस्-
त्रैलोक्य - लोक - शुभ - सङ्गम -भूति-दक्षः।
सद्धर्म - राज - जय - घोषण - घोषकः सन्,
खे दुंदुभि - र्ध्वनति ते यशसः प्रवादी॥ 32॥
मन्दार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात-
सन्तानकादि - कुसुमोत्कर - वृष्टि-रुद्धा।
गन्धोद - बिन्दु- शुभ - मन्द - मरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा॥ 33॥
शुम्भत्- प्रभा- वलय-भूरि-विभा-विभोस्ते,
लोक - त्रये - द्युतिमतां द्युति-माक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्- दिवाकर-निरन्तर - भूरि -संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि-सोम-सौम्याम्॥ 34॥
स्वर्गापवर्ग - गम - मार्ग - विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म- तत्त्व - कथनैक - पटुस्-त्रिलोक्याः।

दिव्य-ध्वनि-र्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः॥ 35॥
उन्निद्र - हेम - नव - पङ्कज - पुञ्ज-कान्ति,
पर्युल्-लसन्-नख-मयूख-शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति॥ 36॥
इत्थं यथा तव विभूति - रभूज् - जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन - विधौ न तथा परस्य।
यादृक् - प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक्-कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि॥ 37॥
श्च्यो-तन्-मदाविल-विलोल-कपोल-मूल,
मत्त- भ्रमद्- भ्रमर - नाद - विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभ - मुद्धत - मापतन्तम्
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्॥ 38॥
भिन्नेभ - कुम्भ- गल - दुज्जवल-शोणिताक्त,
मुक्ता - फल- प्रकरभूषित - भूमि - भागः।
बद्ध - क्रमः क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम - युगाचल-संश्रितं ते॥ 39॥
कल्पान्त - काल - पवनोद्धत - वह्नि -कल्पं,
दावानलं ज्वलित - मुज्ज्वल - मुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख - मापतन्तं,
त्वन्नाम - कीर्तन -जलं शमयत्यशेषम्।।40।।
रक्तेक्षणं समद - कोकिल - कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिन - मुत्फण - मापतन्तम्।
आक्रामति क्रम - युगेण निरस्त - शङ्कस्-
त्वन्नाम - नाग दमनी हृदि यस्य पुंसः॥ 41॥
वल्गत् - तुरङ्ग - गज - गर्जित - भीमनाद,
माजौ बलं बलवता - मपि - भूपतीनाम्।

उद्यद् - दिवाकर - मयूख - शिखापविद्धं
त्वत्कीर्त नात्तम - इवाशु भिदामुपैति ॥ 42 ॥
कुन्ताग्र - भिन्न - गज - शोणित - वारिवाह,
वेगावतार - तरणातुर - योध - भीमे।
युद्धे जयं विजित - दुर्जय - जेय - पक्षास्-
त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥ 43 ॥
अम्भोनिधौ क्षुभित - भीषण - नक्र - चक्र-
पाठीन - पीठ-भय-दोल्वण - वाडवाग्नौ।
रङ्गत्तरङ्ग - शिखर - स्थित - यान - पात्रास्-
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्-व्रजन्ति ॥ 44 ॥
उद्भूत - भीषण - जलोदर - भार - भुग्नाः,
शोच्यां दशा - मुप गताश्-च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद- पङ्कज - रजो - मृत - दिग्ध - देहाः,
मर्त्या भवन्ति मकर-ध्वज-तुल्यरूपाः ॥ 45 ॥
आपाद - कण्ठमुरु - शृंङ्खल - वेष्टिताङ्गा,
गाढं-बृहन्-निगड-कोटि निघृष्ट - जङ्घाः।
त्वन् - नाम - मन्त्र - मनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥ 46 ॥
मत्त-द्विपेन्द्र - मृग - राज - दवानलाहि-
संग्राम -वारिधि - महो - दर - बन्ध -नोत्थम्।
तस्याशु नाश - मुपयाति भयं-भियेव,
यस्तावकं स्तव-मिमं मतिमानधीते ॥ 47 ॥
स्तोत्र - स्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धाम्,
भक्त्या मया विविध[1] -वर्ण - विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ - गता- मजस्रं,
तं मानतुङ्ग-मवशा-समुपैति लक्ष्मीः ॥ 48 ॥

पाठान्तर : 1. रुचिर

कल्याण मंदिर स्तोत्र

आचार्य श्री कुमुदचंद्र विरचित

कल्याण - मन्दिरमुदारमवद्यभेदि
भीता - भयप्रदमनिन्दित मङ्घ्रिपद्मम्।
संसार - सागर - निमज्जदशेषजंतु -
पोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य ॥ 1 ॥
यस्य स्वयं सुर गुरुर्गरिमाम्बुराशेः,
स्तोत्रं सुविस्तृतमतिर्न विभुर्विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय धूमकेतोस्
तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ॥2 ॥
सामान्यतोऽपि तव वर्णयितुं स्वरूप-
मस्मादृशाः कथमधीश भवन्त्यधीशाः।
धृष्टोऽपि कौशिक शिशुर्यदि वा दिवान्धो
रूपं प्ररूपयति किं किल घर्मरश्मेः ॥ 3 ॥
मोहक्षयादनु - भवन्नपि नाथ मर्त्यो
नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत।
कल्पान्त वान्तपयसः प्रकटोऽपि यस्मान्
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥ 4 ॥
अभ्युद्यतोऽस्मि तव नाथ जडाशयोऽपि
कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य।
बालोऽपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य
विस्तीर्णतां कथयति स्वधियाम्बुराशेः ॥ 5 ॥
ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश
वक्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः?।
जाता तदेवमसमीक्षितकारितेयं
जल्पन्ति वा निजगिरा ननु पक्षिणोऽपि ॥ 6 ॥

आस्ता मचिन्त्य महिमा जिन संस्तवस्ते
नामापि पाति भवतो भवतो जगन्ति।
तीव्रातपो पहतपान्थ जनान्निदाघे
प्रीणाति पद्मसरसः सरसोऽनिलोऽपि ॥ 7 ॥

हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिलीभवन्ति
जन्तोः क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धाः।
सद्यो भुजङ्ग ममया इव मध्यभाग–
मभ्यागते वन शिखण्डिनि चन्दनस्य ॥ 8 ॥

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसा जिनेन्द्र!
रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि वीक्षितेऽपि ।
गोस्वामिनि स्फुरित तेजसि दृष्टमात्रेः
चौरैरिवाशु पशवः प्रपलायमानैः ॥ 9 ॥

त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः।
यद्वा दृतिस्तरति यज्जलमेष नून–
मन्तर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥ 10 ॥

यस्मिन् हर – प्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः
सोऽपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन।
विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन
पीतं न किं तदपि दुर्धर वाडवेन ॥ 11 ॥

स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्नास्ः–
त्वां जन्तवः कथमहो हृदये दधानाः।
जन्मोदधिं लघु तरन्त्यतिलाघवेन
चिन्त्यो न हन्त महतां यदि वा प्रभावः ॥ 12 ॥

क्रोधस्त्वया यदि विभो! प्रथमं निरस्तो–
ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः।
प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके
नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥ 13 ॥

त्वां योगिनो जिन! सदा परमात्मरूप
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुज कोशदेशे।
पूतस्य निर्मल–रुचे–र्यदि वा किमन्य
दक्षस्य सम्भवपदं ननु कर्णिकायाः ॥ 14 ॥

ध्यानाज्जिनेश! भवतो भविनः क्षणेन
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके
चामी करत्व मचिरादिव धातुभेदाः ॥ 15 ॥

अन्तः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्।
एतत्स्वरूप मथ मध्य विवर्तिनो हि
यद्विग्रहं प्रशमयन्ति महानुभावाः ॥ 16 ॥

आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या
ध्यातो जिनेन्द्र! भवतीह भवत्प्रभावः।
पानीयमप्यमृत – मित्यनुचिन्त्यमानं
किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥ 17 ॥

त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि
नूनं विभो हरि हरादि धिया प्रपन्नाः।
किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शङ्खो
नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥ 18 ॥

धर्मोपदेशसमये सविधानुभावा–
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि
किं वा विबोध मुपयाति न जीवलोकः ॥ 19 ॥

चित्रं विभो! कथमवाङ्मुखवृन्तमेव
विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः।
त्वद्–गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश!
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥ 20 ॥

स्थाने गभीरहृदयोदधिसम्भवायाः
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।
पीत्वा यतः परमसम्मदसङ्गभाजो
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम्॥21॥

स्वामिन्! सुदूरमवनम्य समुत्पतन्तो
मन्ये वदन्ति शुचयः सुरचामरौघाः।
येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय
ते नून मूर्ध्व गतयः खलु शुद्धभावाः॥22॥

श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्न –
सिंहासनस्थमिह भव्य शिखण्डिनस्त्वाम्।
आलोकयन्ति रभसेन नदन्तमुच्चैश्
चामी कराद्रि शिरसीव नवाम्बुवाहम्॥23॥

उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन
लुप्तच्छदच्छवि रशोकतरुर्बभूव।
सान्निध्यतोऽपि यदि वा तव वीतराग!
नीरागतां व्रजति को न सचेतनोऽपि॥24॥

भोः! भोः! प्रमाद मवधूय भजध्वमेन–
मागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते॥25॥

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ता कलापकलितोल्लसितातपत्र
व्याजात्त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः॥ 26॥

स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिण्डितेन
कान्तिप्रताप यशसामिव सञ्चयेन।
माणिक्यहेमरजत – प्रविनिर्मितेन
साल त्रयेण भगवन्नभितो विभासि॥27॥

दिव्यस्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपाना–
मुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबन्धान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र
त्वत्सङ्गमे सुमनसो न रमन्त एव॥28॥

त्वं नाथ! जन्म जलधेर्विपराङ् मुखोऽपि
यत्तार यस्य सुमतो निजपृष्ठलग्नान्।
युक्तं हि पार्थिवनृपस्य सतस्तवैव
चित्रं विभो! यदसि कर्मविपाकशून्यः॥29॥

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक! दुर्गतस्त्वं
किं वाक्षर प्रकृति रप्य लिपिस्त्वमीश!
अज्ञानवत्यपि सदैव कथञ्चिदेव
ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्व विकास हेतुः॥30॥

प्राग्भार सम्भृत – नभांसि रजांसि रोषा–
दुत्था पितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो
ग्रस्तस्त्वमी–भिरय मेव परं दुरात्मा॥31॥

यद्गर्जदूर्जित घनौघ मदभ्र भीम
भ्रश्यत्तडिन् – मुसल – मांसल – घोरधारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे
तेनैव तस्य जिन! दुस्तर वारिकृत्यम्॥32॥

ध्वस्तोर्ध्वकेश – विकृताकृतिमर्त्य मुण्ड–
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्र विनिर्यदग्निः।
प्रेतव्रजः प्रति भवन्त मपीरितो यः
सोऽस्याभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः॥33॥

धन्यास्त एव भुवनाधिप! ये त्रिसन्ध्य–
माराधयन्ति विधिवद् विधुतान्य कृत्याः।
भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः ।
पादद्वयं तव विभो! भुवि जन्मभाजः॥34॥

अस्मिन्नपार भव वारिनिधौ मुनीश!
मन्ये न मे श्रवण गोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तव गोत्र पवित्रमन्त्रे
किं वा विपद्धिषधरी सविधं समेति ॥ 35 ॥

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव!
मन्ये मया महित मीहितदानदक्षम्।
तेनेह जन्मनि मुनीश ! पराभवानां
जातो निकेतनमहं मथिताशयानाम् ॥ 36 ॥

नूनं न मोह तिमिरावृतलोचनेन
पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि।
मर्माविधो विधुरयन्ति हि मामनर्थाः
प्रोद्यत्प्रबन्ध गतयः कथ मन्यथैते ॥ 37 ॥

आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षतोऽपि
नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।
जातोऽस्मि तेन जनबान्धव! दुःखपात्रं
यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः ॥ 38 ॥

त्वं नाथ! दुःखिजन वत्सल! हे शरण्य!
कारुण्यपुण्यवसते! वशिनां वरेण्य!।
भक्त्या नते मयि महेश! दयां विधाय
दुःखाङ्कुरोद्दलनतत्परतां विधेहि ॥ 39 ॥

निःसंख्यसारशरणं शरणं शरण्य-
मासाद्य सादित रिपु - प्रथितावदानम्।
त्वत्पाद पङ्कजमपि प्रणिधानवन्ध्यो
वन्ध्योऽस्मि चेद्भुवन पावन हा! हतोऽस्मि ॥ 40 ॥

देवेन्द्रवन्द्य ! विदिताखिल वस्तुसार
संसारतारक! विभो! भुवनाधिनाथ!
त्रायस्व देव! करुणाह्रद ! मां पुनीहि
सीदन्तमद्य भयदव्य सनाम्बुराशेः ॥ 41 ॥

यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रिसरोरुहाणां
भक्तेः फलं किमपि सन्तत सञ्चितायाः।
तन्मे त्वदेक शरणस्य शरण्य! भूयाः
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि ॥ 42 ॥

इत्थं समाहित धियो विधि वज्जिनेन्द्र!
सान्द्रोल्लसत्पुलक - कञ्चुकिताङ्गभागाः।
त्वद्बिम्बनिर्मल मुखाम्बुजबद्धलक्ष्याः
ये संस्तवं तव विभो! रचयन्ति भव्याः ॥ 43 ॥

जननयन 'कुमुदचन्द्र' प्रभास्वराः स्वर्गसम्पदो भुक्त्वा।
ते विगलित मलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥ 44 ॥

कल्याण मंदिर स्तोत्र

पद्यानुवाद : मुनि श्री 108 प्रणम्यसागर जी महाराज

अभय प्रदायी स्तुति

कल्याणों के मंदिर दाता अभय प्रदाता हैं निर्दोष
श्री जिनवर के चरण कमल ही जगत् पूज्य हर लेते दोष।
भव-सागर में डूबे जन को तव पद ही प्रभु एक जहाज
भक्ति भाव से अभिवन्दन है शुरु करूँ स्तुति का काज ॥1 ॥

सिद्धि दायक स्तुति

सुरगुरु सम विस्तृति मति वाले करने को जिनका गुणगान
सदा रहे असमर्थ सदा से उन प्रभु का मैं करता गान।
दुष्ट कमठ के मान कर्म की भस्म बनाने अनल स्वरूप
तीर्थेश्वर श्री पार्श्व प्रभु की गरिमा सम ना दूजा रूप ॥2 ॥

असमर्थ को समर्थ करने की शक्तिप्रदायी स्तुति

रवि प्रकाश के उदय समय में उल्लू हो जाता है अन्ध
अन्ध बना फिर कैसे रवि का रूप बताये वह मतिमन्द।

त्यों प्रभु धीठ हुए हम जैसे कैसे तेरे गुण गाने
लायक हो सकते वर्णन को जो थोड़ा भी ना जाने ॥3 ॥

अति गहन आत्मगुणों की प्राप्ति दायक स्तुति

नाश हुआ हो मोह कर्म का प्रकट हुआ हो आतम ज्ञान
फिर भी गुण रत्नाकर के गुण गिनने में है किसकी शान।
प्रलय पवन ने जिस समुद्र का जल फेंका हो दूर बहुत
उस समुद्र के रत्नों को भी क्या गिन सकता मानव मुग्ध ॥4 ॥

उत्कृष्ट पद प्रदायी स्तुति

आप असंख्य गुणों से शोभित मैं जड़ बुद्धि निरा अभिमान
फिर भी मैं तैयार हुआ हूँ संस्तुति करने को नादान।
शक्ति न रहने पर भी बालक बिना विचारे निज मति से
क्या समुद्र को नहीं नापता दोनों कर फैला रति से ॥5 ॥

असाध्य कार्य साधक गुण स्तुति

जो प्रत्यक्ष ध्यान से भगवान् करते निज आतम अनुभव
वे योगी भी हे परमेश्वर! कह न सके तव गुण वैभव।
उन्हीं गुणों के कहने का यह बिना विचार मेरा कार्य
ज्यों पक्षी अपनी कूँ- कूँ से व्यक्त करें अपना अभिप्राय ॥6 ॥

अपवाद-अपमान निवारक स्तुति

जो अचिन्त्य महिमा मण्डित है दूर रहे वह तव गुणगान
किन्तु आपका नाम मात्र ही भवदधि से दे देता त्राण।
ग्रीष्मकाल के तीव्र ताप से तप्त पथिक को भी सन्तोष
पद्म सरः की शिशिर पवन से क्या तन में ना आता जोश? ॥7 ॥

विच्छू, सर्पादि विष नाशक स्तुति

कर्म शत्रु के सघन बन्ध भी शिथिल हुए डर-डर जाते
जिस प्राणी के हृदय कमल में पार्श्व प्रभु क्षण भर आते।
चन्दन तरु का आलिंगन कर लिपटे रहते जो विष नाग
वन मयूर के आने पर ज्यों इधर-उधर जाते हैं भाग ॥8 ॥

भूत प्रेत बाधा निवारक स्तुति

हे जिनेन्द्र! तव दर्शन से ही रौद्र उपद्रव बाधाएँ
सहसा कहाँ चली जाती हैं कोई समझ नहीं पाएँ।
गोरक्षक मालिक को लख कर गाय चुराने वाले चोर
जैसे सहसा तितर-बितर हो भग जाते ना पाते छोर ॥9 ॥

महान आपत्तियों से छुटकारा दिलाने वाली स्तुति

हे जिन! आप भव्य जीवों के तारक कैसे हो सकते?
आप रूप को मन में रख के स्वयं भवोदधि वो तिरते।
जल- तल में जो मसक तैरती क्या जल उसे तिराता है?
भीतर भरी पवन ही कारण अजब अनोखा नाता है ॥10 ॥

मिथ्या अन्धकार को दूर करने की सामर्थ्य

किये पराजित कामदेव ने हरि-हर महादेव जैसे
वही आपसे हुआ पराजित क्षण में परम पुरुष कैसे?
जिस जल से अगनी की लपटें बुझ जाती हैं आपों आप
उस जल को क्या बड़वानल की लपटें आग न करतीं आप ॥11 ॥

महा आश्चर्यकारी स्तुति

अहो बड़ा विस्मयकारी यह आप महा गौरवधारी
फिर भी हृदय विराजित जिनके उनका मन लाघवकारी।
हलका होकर भक्त आपका शीघ्र तरे भवसागर को
कौन सोच सकता है सम्यक् आप प्रभाव विशारद को ॥12 ॥

क्रोध विनाशक स्तुति

हे स्वामिन्! यदि क्रोध आपने पहले ही कर दिया विनाश
कर्मचोर फिर बिना क्रोध के कैसे पाये सत्यानाश।
शीतल शिशिर काल का पाला हरे भरे तरुवर वन को
मुरझा देता और जलाता इसमें क्या संशय मन को ॥13 ॥

काम विकार नाशक स्तुति

हे जिनेन्द्र! योगीजन नित ही हृदय कमल में नित्य नितान्त,
आप रूप परमात्म रूप का ध्यान लगाकर बनते शान्त।

कमल कर्णिका में ही होता कमल बीज का ज्यों स्थान
हृदय कर्णिका छोड़ कहाँ हो त्यों शुद्धातम का स्थान ॥14॥

विशुद्धि वर्धक जिन स्तुति

जो भविजन तव ध्यान लगाते ज्ञान रूप परमातम का
वे क्षणभर में देह छोड़कर पद पाते परमातम का।
ज्यों पत्थर मय हुई धातुएँ पाकर तीव्र अनल का योग
शुद्ध स्वर्णमय बनीं दमकतीं यह निमित्त का क्रीड़ा योग ॥15॥

खोई हुई वस्तु प्रदायक स्तुति

जिस शरीर के भीतर हे जिन! भक्त आपको ध्याते हैं
उस शरीर से रहित हुए नित शुद्ध चिदातम पाते हैं।
जो मध्यस्थ सदा रहते हैं राग-द्वेष से दूर सदा
महापुरुष वे ही दुष्टों को जीतें समता ही सुखदा ॥16॥

विष विकार नाशक स्तुति

जैसा शुद्ध सदा निर्मल है पार्श्व प्रभु का शुद्धातम
तैसा ही प्रभु जो ध्याता है बन जाता तव सम आतम।
पानी भी जब अमृत बनता मन्त्र निरन्तर मन्थन से
प्राणी परमातम बन जाए क्या विस्मय यदि चिन्तन से ॥17॥

मिथ्या अभिप्राय नाशक स्तुति

हरि-हर-ब्रह्म-विष्णु-महेश्वर मान आपको सब पूजें
निर्मल ज्योति परम परमेश्वर जान अन्यमति सब बूझें।
क्या न देखते शुक्ल शंख को पीले आदिक रंगों में
जिन्हें पीलियादिक रोगों ने घेर लिया हो अंगों में ॥18॥

वैभव वर्द्धक स्तुति

धर्मामृत उपदेश समय पर प्रभु प्रभाव की सन्निधि हो
अरु अशोक तरु शोक रहित हो क्या विस्मय प्राणी भी हो।
दिनपति उदयागत होने पर तरुवर फूल खिलें जैसे
जिनपति के सम्मुख होने पर विकसित ना हो मन कैसे? ॥19॥

स्त्री संबंधी समस्त रोग नाशक स्तुति

देवों द्वारा कुसुम वृष्टि हो नित्य निरन्तर चारों ओर
पर डंठल नीचे मुख ऊपर करके क्यों पुष्पों का दौर।
मानों वे संकेत दे रहे आप निकटता से जगदीश
विधि बन्धन ऊपर मुख करके नष्ट हो रहे स्वयं मुनीश ॥20॥

मूक-वधिर अन्ध नाशक स्तुति

अति अगाध हृदयोदधि से जो निकल रही तव दिव्य ध्वनि
उसको सब जन अमृत कहते उचित बात यह बहुत बनी।
क्योंकि कर्णांजुलि से पीकर अमृतमय जिनवाणी को
परम भोग को भोग भविकजन पा जाते शिवरानी को ॥21॥

शत्रु को अनुकूल करने वाली स्तुति

स्वामिन्! समवसरण में सुरगण चँवर ढोरते दोनों ओर
नीचे झुककर ऊपर जाते मानो वह कहते कुछ और।
जो अरिहन्त परम जिनवर को बार-बार झुक नमन करें
शुद्ध भाव से सिद्ध गति को पाने ऊपर गमन करें ॥22॥

राजादि पद प्रदायी स्तुति

कनक रत्न मणिमय सिंहासन उस पर श्यामल ललित सुदेह
ऐसे शोभे ज्यों मेरु की चोटी पर नव काले मेह।
हो आनन्द विभोर भव्यजन लखें आपको ज्यों वन मोर
वर्षा ऋतु में मेघों को लख नाचें किलकारी कर शोर ॥23॥

कान्ति नीरोग शरीर प्रदायक स्तुति

नील वर्ण की प्रभु पुंज से दीप्त सभा का नीला रंग
तरु अशोक के पत्तों की भी रक्ताभा करता नीरंग।
वीतराग तव सन्निधि से यदि राग रहित तरु हो जाता
कौन सचेतन पुरुष बचेगा वीतराग ना हो जाता ॥24॥

नेतृत्व शक्ति प्रदायक स्तुति

देव दुन्दभि देवों द्वारा नभ मण्डल में बज कर घोर
मानो बुला रही हो सबको कर सचेत नित चारों ओर।

मुक्तिपुरी ले जाने वाले सौदागर यह पार्श्व प्रभु
तज प्रमाद आओ-आओ जी सेवा करो गूँजती भू ॥25 ॥

कालसर्प योग निवारक स्तुति

तीन लोक जब हुए प्रकाशित हे प्रभु! तव चेतन तन में
यही देखकर मानो हतप्रभ हुआ चन्द्र तब ही क्षण में।
डरकर तत्क्षण तीनछत्र के छल से मानो तीन शरीर
धारण कर आया तव शरणा शोभित करता आप शरीर ॥26 ॥

कान्ति प्रताप यश प्रदायी स्तुति

माणिक स्वर्ण रजत निर्मित है समवसरण के त्रय प्राकार
तीन लोक की सकल सम्पदा मानों मिल लेती आकार।
प्रभु की कान्ति प्रताप कीर्ति के मुझ को तीन समूह लगे
जिनके मध्य सुशोभित श्री जिन अद्‌भुत आभावान लगे ॥27 ॥

असमय निधन निवारक स्तुति

पारस परमेश्वर के पद में इन्द्रादिक जब प्रणत हुए
उनकी रत्न मुकुट मालाएँ मुकुट छोड़ पद शरण लिए।
इसमें क्या आश्चर्य प्रभु की संगति सब ज्ञानी चाहें
रमण करें तव युगल चरण में नहीं कहीं जाना चाहें ॥28 ॥

संकट मोचन स्तुति

जन्म मरण के भवोदधि से आप विमुख होकर के भी
भक्तजनों को पार लगाते कर्म शून्य होकर के भी।
अग्निपाक युत मृतिका घट को बांध पीठ जब जन तिरते
कर्म पाक से रहित आपको हृदय धार सब जन तिरते ॥29 ॥

सर्वकार्य निवारक स्तुति

विश्वेश्वर होकर जन पालक दुर्गत तुम दुष्प्राप हुए
अविनाशी अक्षर होकर भी लेख रहित निर्लेप हुए।
अज्ञ प्राणियों के संरक्षक! तव आतम में
तीन लोक दिखलाने वाला ज्ञान प्रकाशित निज जग में ॥30 ॥

दुष्टजन संयोग निवारक स्तुति

क्रोधित होकर क्रूर कमठ ने नभ मण्डल छूने वाली
धूलि उड़ायी तूफानों से तहस-नहस करने वाली।
दूर रहे प्रभु देह आपकी छाया को भी छू न सकी
महिन हुआ वह स्वयं कर्म से नभ में भूँके ज्यों सनकी ॥31 ॥

पीड़ा पहुँचाने वाले दुर्जनों से रक्षा करने वाली स्तुति

फिर उस दैत्य कमठ ने बादल गरज-गरज करके आवाज
काली रात अंधेरी करके कड़-कड़ करती डाली गाज।
मूसल सम मोटी जल बूँदें पटकी मानों हो तलवार
स्वयं कमठ ने अपने ऊपर मानों कीने दुस्तर वार ॥32 ॥

अग्नि भूकम्पादि भय निवारक स्तुति

नरमुण्डों की अति डरावनी लम्बी-लम्बी मालाएँ
बिखरे केश देखकर जिनके डर जाती हों अबलाएँ।
मुख से लाल अगनि की लपटें भूत प्रेत का डर दिखला
भव-दुख कारण हेतु कमठ ने जहर स्वयं पर ही उगला ॥33 ॥

असाध्य रोग विनाशक स्तुति

हे भुवनाधिप! तीन भुवन में धन्य हुए हैं वे ही लोग
तीनों सन्ध्याओं में तुमको हृदय धार कर करते योग।
कृत्य सभी जो संसृति कारण तजकर भक्ति भाव उर धार
रोमांचित हो तन से आराधक करते भवपार ॥34 ॥

सर्व विपत्ति निवारक स्तुति

इस अपार भव-वारिधि में प्रभु जन्म लिये अनगिनत यहाँ
किन्तु आपका नाम कभी भी सुना कान से कभी कहाँ?
यदि तव नाम मंत्र सुन लेता एक बार भी भावों से
विपदाओं की नागिन मुझको कैसे डसती दावों से? ॥35 ॥

विजेता बनाने वाली स्तुति

ऐसा लगता है पारस प्रभु! मुझ पापी ने आप चरण
मनवांछित फलदायक तेरे पूजे नहीं कभी इक क्षण।

इस कारण इस जन्म में मेरे मन की सारी आशाएँ
कभी पूर्ण हो सकी न भगवन् बढ़ती और निराशाएँ ॥36॥

अनर्थ निवारक स्तुति

मोह अन्ध से अन्धा होकर नेत्र सहित होकर भी ईश,
देख सका ना कभी आपको पहले कभी कहीं जगदीश।
इसीलिए तो हृदय विदारक अति दुर्वार हमारे पाप,
बहु अनर्थ करते हैं प्रभुवर! और सताते आपों आप ॥37॥

भगवान बनाने वाली स्तुति

हे जनबान्धव! मैंने तुमको हो सकता है खूब लखा
नाम सुना हो और लिया हो पूजा की हो दिखा-दिखा।
फिर भी भक्ति भाव से मैंने कभी नहीं चित्त में धारा
यही वजह है दुःखी रहा हूँ भाव शून्य सब बेकारा ॥38॥

दुःखीजनों के रक्षक श्री जिन

शरणागत प्रतिपालक दुःखीजनों प्रति करुणाधाम
नाथ आप ही हो योगीश्वर और महेश्वर दया निधान।
भक्त आपका सहज भक्ति से स्वयं रुचि से तव पद लीन
मेरे दुःख दलने में अब तो जल्दी दया करो लो चीन ॥39॥

सौभाग्य वर्धक स्तुति

हे त्रिभुवन पावन! प्रभु रक्षक आश्रय दाता आप अनूप
शरणागत प्रतिपालक सबके कर्म विनाशक कीर्ति स्वरूप।
पाकर आप चरण कमलों का कर न सका जो नित-प्रति ध्यान
ऐसा भाग्यहीन नर मैं ही बना अभागा निपट अजान ॥40॥

सर्वग्रह निवारक स्तुति

देवेन्द्रों से वन्दनीय हो सकल तत्त्व के जाननहार
जगतारक त्रिभुवनपति तुम हो प्रभो दया सागर आधार।
दुःख सागर में डूब रहा हूँ देव! बचाओ दया करो
आज शरण आए बालक पे दृष्टि डाल मन पूत करो ॥41॥

अचिन्त्य फल प्रदायक स्तुति

नाथ आप ही एक मात्र हो मुझ पापी के आज शरण
तव चरणों की भक्ति से यदि संचित हुआ पुण्य का कण।
तो उसका फल यही चाहता आप चरण ही रहें शरण
हे शरण्य! पर भव में भी तुम नाथ बने रहना हर क्षण ॥42॥

अमंगल-अनिष्ट निवारक स्तुति

ध्यान लगाकर इस प्रकार जो हे जिनेन्द्र! विधिवत् गुणगान
तव निर्मल मुख कमल लक्ष्य कर अपलक लखता भव्य महान्।
अरु रोमांचित तन मन होकर संस्तुति करने को तैयार
रहता है वह भव्य जीव ही पा जाता संसृति का पार ॥43॥

क्रमशः मोक्षफल प्रदायी स्तुति

और कहूँ क्या संस्तुति का फल हे पारस! प्रभु हे दातार!
तुमको लख विकसित होते हैं नयन कुमुद जिन चन्द्र अपार।
भक्त आपके निश्चित पाते स्वर्ग सुखों का वैभव योग
अष्ट-कर्म बल नष्ट करन से शीघ्र मुक्ति का मिलता योग ॥44॥

एकीभाव स्तोत्र

(आचार्य वादिराज स्वामी विरचित)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबन्धो
घोरं दुःखं भवभव - गतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे! भक्तिरुन्मुक्तये चेत्
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतुः॥ 1॥
ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वांतविध्वंसहेतुं
त्वामेवाहुर्जिनवर! चिरं तत्त्व-विद्याभियुक्ताः।
चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमानस्-
तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे॥ 2॥

आनन्दाश्रु-स्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्
यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्र-मंत्रैर्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह वल्मीक मध्यान्
निष्कास्यन्ते विविध-विषम-व्याधयः काद्रवेयाः॥ 3॥
प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्।
ध्यान-द्वारं मम रुचिकरं स्वान्त-गेहं प्रविष्टस्-
तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णी-करोषि॥ 4॥
लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन् ! निर्निमित्तेन बन्धुस्-
त्वय्येवासौ सकल-विषया शक्ति-रप्रत्यनीका।
भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्त-शय्यां
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेश-यूथं सहेथाः॥ 5॥
जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घं भ्रमित्वा
प्राप्तैवेयं तव नय - कथा स्फार-पीयूष-वापी।
तस्या मध्ये हिमकर - हिम - व्यूह - शीते नितान्तं
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख-दावोपतापाः॥ 6॥
पाद-न्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वाङ्गेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे
श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपैति ॥ 7॥
पश्यन्तं त्वद्वचन ममृतं भक्ति पात्र्या पिबन्तं
कर्मारण्यात् - पुरुष -मसमानन्द-धाम-प्रविष्टम्।
त्वां दुर्वार - स्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं
क्रूराकाराः कथमिव रुजा कण्टका निर्लुठन्ति॥ 8॥
पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्न-मूर्ति -
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः ।
दृष्टि-प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां
प्रत्या सत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति-हेतुः॥ 9॥

हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन् मूर्तिशैलोप वाही
सद्यः पुंसां निरवधि-रुजा-धूलि-बन्धं धुनोति।
ध्यानाहूतो हृदय - कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्[1]-
तस्याशक्यः क इह भुवने देव! लोकोपकारः॥ 10॥
जानासि त्वं मम भव-भवे यच्च यादृक्च दुःखं
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोऽस्मि भक्त्या
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणम्॥ 11॥
प्रापद्दैवं तव नुति - पदैर्जीवकेनोपदिष्टैः
पापाचारी मरणसमये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः संदेहो यदुपलभते वासव - श्रीप्रभुत्वं
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कार-चक्रम्॥ 12॥
शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा
भक्तिर्नो चेदनवधि-सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो-
मुक्तिद्वारं परिदृढ़-महामोह-मुद्रा-कवाटम्॥ 13॥
प्रच्छन्नः खल्वय-मघ-मयै-रन्धकारैः समन्तात्-
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्तैरगाधैः।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव! तत्त्वावभासी
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्-भारतीरत्न-दीपः॥ 14॥
आत्म-ज्योति -र्निधि -रनवधि - र्द्रष्टुरानन्द -हेतुः
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनति चिरतस्तं भवद् भक्तिभाजः
स्तोत्रैर्बद्ध-प्रकृति- परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः॥15॥
प्रत्युत्पन्ना नय - हिम गिरे रायता चामृताब्धेः
या देव त्वत्पद - कमलयोः संगता भक्ति-गङ्गा।
चेतस्तस्यां मम रुचि - वशादाप्लुतं क्षालितांहः
कल्माषं यद् भवति किमियं देव ! सन्देह-भूमिः॥ 16॥

पाठान्तर : 1. प्रविष्ट

प्रादुर्भूत - स्थिर - पद - सुखं त्वामनुध्यायतो मे
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्ति-मभ्रेषरूपाम्
दोषात्मानोऽप्यभिमत फलास्त्वत्प्रसादाद् भवन्ति॥ 17॥
मिथ्यावादं मल - मपनुदन् - सप्तभङ्गीतरङ्गै
वागम्भोधि र्भुवनमखिलं देव ! पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेत सैवाचलेन
व्यातन्वन्तः सुचिर-ममृता-सेवया तृप्नुवन्ति॥ 18॥
आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां
तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः॥ 19॥
इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते
तस्यैवेयं भव-लय - करी श्लाघ्यतामातनोति।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि कान्ता पतिस्त्वं
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम्॥20॥
वृत्तिर्वाचा - मपर - सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्-भक्ति-पीयूष-पुष्टास्-
ते भव्यानामभिमत-फलाः पारिजाता भवन्ति॥ 21॥
कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो
व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्ष यैवानपेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि - वैंर-हारी
क्वैवंभूतं भुवन-तिलक! प्राभवं त्वत्परेषु॥ 22॥
देव! स्तोतुं त्रिदिव गणिका-मण्डली-गीत-कीर्तिं
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्तिं जनो यः।
तस्य क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थास्-
तत्त्वग्रन्थ-स्मरण - विषये नैष मोमूर्ति मर्त्यः॥ 23॥

चित्ते कुर्वन् निरवधि सुख ज्ञान दृग्वीर्यरूपं
देव! त्वां यः समय - नियमा दादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृति तावता पूरयित्वा
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम्॥24॥
भक्ति-प्रह्वमहेन्द्र-पूजित-पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिः स्तवन - च्छलेन तु परस्त्वय्या दरस्तन्यते
स्वात्माधीन-सुखैषिणां स खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः॥25॥
वादिराज मनु शाब्दिक-लोको, वादिराजमनु तार्किकसिंहः।
वादिराजमनु काव्यकृतस्ते, वादिराजमनु भव्य-सहायः॥ 26॥

विषापहार स्तोत्र

(धनञ्जय कवि विरचित)

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्त- व्यापारवेदी विनिवृत्तसङ्गः ।
प्रवृद्ध-कालोऽप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥1॥
परैरचिन्त्यं युगभारमेकः, स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः ।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः, किमप्रवेशे विशति प्रदीपः ॥2॥
तत्याज शक्रः शकनाभिमानं, नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम् ।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं , वातायनेनेव निरूपयामि ॥3॥
त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो, विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः ।
वक्तुं कियान्कीदृश इत्यशक्यः, स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु ॥4॥
व्यापीडितं बालमिवात्म-दोषै, रुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वम् ।
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः, सर्वस्य जन्तोरसि बालवैद्यः ॥5॥
दाता न हर्ता दिवसं विवस्वा-,नद्यश्व इत्यच्युत दर्शिताशः ।
स व्याजमेवं गमयत्यशक्तः, क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय ॥6॥
उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि, त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखम् ।
सदाऽवदातद्युतिरेकरूप , स्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥7॥

अगाधताब्धेः स यतः पयोधि, र्मेरोश्च तुङ्गा प्रकृतिः स यत्र ।
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव, व्याप त्वदीया भुवनान्तराणि ॥8॥
तवानवस्था परमार्थ-तत्त्वं,त्वया न गीतः पुनरागमश्च ।
दृष्टं विहाय त्वमदृष्टमैषी,र्विरुद्ध-वृत्तोऽपि समञ्जसस्त्वम् ॥9॥
स्मरः सुदग्धो भवतैव तस्मिन्, उद्धूलितात्मा यदि नाम शम्भुः ।
अशेत वृन्दोपहतोऽपि विष्णुः, किं गृह्यते येन भवानजागः ॥10॥
स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा, तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वम् ।
स्वतोऽम्बुराशेर्महिमा न देव!, स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥11॥
कर्मस्थितिं जन्तुरनेकभूमिं, नयत्यमुं सा च परस्परस्य ।
त्वं नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ, जिनेन्द्र! नौनाविकयोरिवाख्यः ॥12॥
सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्, धर्माय पापानि समाचरन्ति ।
तैलाय बालाः सिकता समूहं, निपीडयन्ति स्फुटमत्वदीयाः ॥13॥
विषापहारं मणिमौषधानि, मन्त्रं समुद्दिश्य रसायनं च ।
भ्राम्यन्त्यहो न त्वमिति स्मरन्ति, पर्याय नामानि तवैव तानि ॥14॥
चित्ते न किञ्चित्कृतवानसि त्वं, देवः कृतश्चेतसि येन सर्वम् ।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं, सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥15॥
त्रिकाल-तत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकी, स्वामीति संख्यानियतेरमीषाम् ।
बोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यं-स्तेऽन्येऽपि चेद्व्याप्स्य दमूनपीदम् ॥16॥
नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं, नागम्यरूपस्य तवोपकारि ।
तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानो, रुद्बिभ्रतच्छत्रमिवादरेण ॥17॥
क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेश, स चेत्किमिच्छा-प्रतिकूलवादः ।
क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं, तन्नो यथातथ्यमवेविचं ते ॥18॥
तुङ्गात्फलं यत्तदकिंचनाच्च, प्राप्यं समृद्धान्न धनेश्वरादेः ।
निरम्भसोऽप्युच्चतमादिवाद्रे, नैकापि निर्याति धुनी पयोधेः ॥19॥
त्रैलोक्य सेवा नियमाय दण्डं, दध्रे यदिन्द्रो विनयेन तस्य ।
तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं, तत्कर्मयोगाद्यदि वा तवास्तु ॥20॥
श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः, श्रीमान्न कश्चित्कृपणं त्वदन्यः ।
यथा प्रकाश स्थितमन्धकार- स्थायीक्षतेऽसौ न तथा तमःस्थम् ॥21॥

स्ववृद्धिनिःश्वासनिमेषभाजि, प्रत्यक्षमात्मानुभवेऽपि मूढः ।
किं चाखिल ज्ञेय विवर्ति बोध, स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः ॥22॥
तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव!, त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य ।
तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं, पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजन्ति ॥23॥
दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोऽभिभूताः, सुरासुरास्तस्य महान् स लाभः ।
मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुं, मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥24॥
मार्गस्त्वयैको ददृशे विमुक्ते,श्चतुर्गतीनां गहनं परेण ।
सर्वम् मया दृष्टमिति स्मयेन,त्वं मा कदाचिद्भुजमालुलोकः ॥25॥
स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः, कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः ।
संसार-भोगस्य वियोग भावो,विपक्ष पूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥26॥
अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्, तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति ।
हरिन्मणिं काचधिया दधानस्ः, तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥27॥
प्रशस्त वाचश्चतुराः कषायै, दग्धस्य देव व्यवहारमाहुः ।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वं, दृष्टं कपालस्य च मङ्गलत्वम् ॥28॥
नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं, हितं वचस्ते निशम्य वक्तुः ।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति, ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥29॥
न क्वापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते, काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः ।
न पूरयाम्यम्बुधिमित्युदंशुः, स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥30॥
गुणा गभीरा परमाः प्रसन्ना, बहुप्रकारा बहवस्तवेति ।
दृष्टोऽयमन्तः स्तवने न तेषां, गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति ॥31॥
स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या, स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि ।
स्मरामि देवं प्रणमामि नित्यं, केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम् ॥32॥
ततस्त्रिलोकी नगराधिदेवं, नित्यं परं ज्योतिरनन्त शक्तिम् ।
अपुण्य पापं पर पुण्य हेतुं, नमाम्यहं वन्द्यमवन्दितारम् ॥33॥
अशब्दमस्पर्शमरू प गन्धं त्वां, नीरसं तद्विषयावबोधम् ।
सर्वस्य मातारममेयमन्यै, र्जिनेन्द्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥34॥
अगाधमन्यैर्मनसाप्यलंघ्यं, निष्किञ्चनं प्रार्थितमर्थवद्भिः ।
विश्वस्य पारं तमदृष्टपारं, पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥35॥

त्रैलोक्य दीक्षा गुरवे नमस्ते, यो वर्धमानोऽपि निजोन्नतोऽभूत् ।
प्राग्गण्डशैलः पुनरद्रि कल्पः, पश्चान्न मेरु कुलपर्वतोऽभूत् ॥36॥
स्वयंप्रकाशस्य दिवा निशा वा, न बाध्यता यस्य न बाधकत्वम् ।
न लाघवं गौरवमेकरूपं, वन्दे विभुंकालकलामतीतम् ॥37॥
इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्, वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि ।
छायातरुंसंश्रयतः स्वतः स्यात्, कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥38॥
अथास्ति दित्सा यदि वोपरोध, स्त्वय्येव सक्तां दिश भक्तिबुद्धिम् ।
करिष्यते देव तथा कृपां मे, को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः ॥39॥
वितरति विहिता यथाकथञ्चि, ज्जिनविनताय मनीषितानि भक्तिः ।
त्वयि नुतिविषया पुनर्विशेषा-द्दिशति सुखानि यशो धनंजयं च ॥40॥

श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्रम्

आचार्य श्री जिनसेन स्वामी विरचित

स्वयंभुवे नमस्तुभ्य, मुत्पाद्यात्मान-मात्मनि।
स्वात्म-नैव तथोद्भूत, वृत्तयेऽचिन्त्य-वृत्तये ॥1॥
नमस्ते जगतां पत्ये, लक्ष्मी भर्त्रे नमोऽस्तु ते।
विदांवर! नमस्तुभ्यं, नमस्ते वदतांवर! ॥2॥
कर्म-शत्रु-हणं देव, मामनन्ति मनीषिणः।
त्वामानमत्सुरेण्मौलि, भामालाऽभ्यर्चितक्रमम् ॥3॥
ध्यान-द्रुघण[1]-निर्भिन्न, घन-घाति-महातरुः ।
अनन्तभवसन्तान, जयादासी रनन्तजित् ॥4॥
त्रैलोक्य-निर्जया-वाप्त, दुर्दर्प-मति-दुर्जयम्।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन! मृत्युञ्जयोभवान् ॥5॥
विधूता-शेष-संसार, बन्धनो भव्य-बान्धवः।
त्रिपुरारिस्त्वमीशोऽसि, जन्ममृत्युजराऽन्तकृत् ॥6॥
त्रिकालविषयाऽशेष, तत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम्।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्, त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ॥7॥

पाठान्तर : 1. दुर्घण

त्वामन्ध-काऽन्तकं प्राहु, र्मोहान्धासुरमर्दनात्।
अर्द्धं ते नारयो यस्मा, दर्ध-नारीश्वरोऽस्यतः ॥8॥
शिवः शिव-पदाध्यासाद्, दुरिताऽरि-हरो हरः।
शङ्करः कृतशं लोके, शंभवस्त्वं भवन्सुखे ॥9॥
वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः, पुरुः पुरुगुणो-दयैः।
नाभेयो नाभिसम्भूते, रिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥10॥
त्वमेकः पुरुषस्कन्धस्, त्वं द्वे लोकस्य लोचने।
त्वं त्रिधा बुद्ध सन्मार्गस्, त्रिज्ञस्त्रिज्ञानधारकः ॥11॥
चतुः शरण-माङ्गल्य, मूर्तिस्त्वं चतुरस्रधीः।
पञ्चब्रह्ममयो देव!, पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥12॥
स्वर्गावतरणे तुभ्यं, सद्यो-जातात्मने नमः ।
जन्मा-भिषेक-वामाय, वामदेव! नमोऽस्तु ते ॥13॥
सन्निष्क्रान्तावघोराय, परं-प्रशम-मीयुषे।
केवलज्ञान-संसिद्धा, वीशानाय नमोऽस्तु ते ॥14॥
पुरस्तत्पुरु-षावस्यां[1], विमुक्ति-पद-भाजिने।
नमस्तत्पुरुषाऽवस्थां, भाविनीं तेऽद्य बिभ्रते ॥15॥
ज्ञाना-वरण-निर्ह्रासान्, नमस्तेऽनन्तचक्षुषे।
दर्शनावरणोच्छेदान्, नमस्ते विश्वदृश्वने ॥16॥
नमो दर्शन-मोहघ्ने, क्षायिकाऽमल-दृष्टये।
नमश्चारित्र-मोहघ्ने, विरागाय महौजसे ॥17॥
नमस्तेऽनन्त-वीर्याय, नमोऽनन्त-सुखात्मने।
नमस्तेऽनन्तलोकाय, लोकालोकावलोकिने ॥18॥
नमस्तेऽनन्त-दानाय, नमस्तेऽनन्त-लब्धये।
नमस्तेऽनन्तभोगाय, नमोऽनन्तोप-भोगिने ॥19॥
नमः परम-योगाय, नमस्तुभ्य-मयोनये।
नमः परमपूताय, नमस्ते परमर्षये ॥20॥

पाठान्तर : 1. पुरुषत्वेन

नमः परमविद्याय, नमः पर-मतच्छिदे ।
नमः परम-तत्त्वाय, नमस्ते परमात्मने ॥21॥
नमः परम-रूपाय, नमः परम-तेजसे।
नमः परम-मार्गाय, नमस्ते परमेष्ठिने ॥22॥
परमर्द्धि जुषे धाम्ने, परमज्योतिषे नमः ।
नमः पारेतमः प्राप्त, धाम्ने परतरात्मने ॥23॥
नमः क्षीण-कलङ्काय, क्षीणबन्ध! नमोऽस्तु ते।
नमस्ते क्षीण-मोहाय, क्षीण-दोषाय ते नमः॥24॥
नमः सुगतये तुभ्यं, शोभनां गतिमीयुषे।
नमस्तेऽतीन्द्रियज्ञान, सुखायाऽनिन्द्रियात्मने॥25॥
कायबन्धन-निर्मोक्षा, दकायाय नमोऽस्तु ते।
नमस्तुभ्य-मयोगाय, योगिना-मधियोगिने॥26॥
अवेदाय नमस्तुभ्य, मकषायाय ते नमः।
नमः परमयोगीन्द्र, वन्दिताङ्घ्रि-द्वयाय ते॥27॥
नमः परमविज्ञान!, नमः परमसंयम!।
नमः परमदृग्दृष्ट, परमार्थाय ते नमः[1]॥28॥
नमस्तुभ्य-मलेश्याय, शुक्ल-लेश्यांशक-स्पृशे।
नमो भव्येतराऽवस्था, व्यतीताय विमोक्षिणे॥29॥
सञ्ज्ञ्यसञ्ज्ञि-द्वयावस्था, व्यतिरिक्ताऽमलात्मने।
नमस्ते वीतसंज्ञाय, नमः क्षायिकदृष्टये॥30॥
अनाहाराय तृप्ताय, नमः परमभाजुषे।
व्यतीताऽशेषदोषाय, भवाब्धेः पारमीयुषे॥31॥
अजराय नमस्तुभ्यं, नमस्ते स्तादजन्मने।
अमृत्यवे नमस्तुभ्य, मचलायाऽक्षरात्मने॥32॥
अलमास्तां गुणस्तोत्र, मनन्तास्तावकागुणाः।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण, पर्युपासिसिषामहे॥33॥

पाठान्तर : 1. तापिने

एवं स्तुत्वा जिनं देवं, भक्त्या परमया सुधीः।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां, सहस्त्रं पापशान्तये॥34॥

॥ इति प्रस्तावना ॥

प्रसिद्धाऽष्टसहस्त्रेद्ध, लक्षणं त्वां गिरांपतिम्।
नाम्नामष्टसहस्रेण, तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ॥1॥
श्रीमान्-स्वयम्भूर्वृषभः, शम्भवः शम्भु-रात्मभूः।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता, विश्वभू-रपुनर्भवः॥2॥
विश्वात्मा विश्व-लोकेशो, विश्वतश्-चक्षु-रक्षरः।
विश्वविद् विश्वविद्येशो, विश्वयोनि-रनश्वरः॥3॥
विश्व-दृश्वा विभुर्धाता, विश्वेशो विश्वलोचनः।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः, शाश्वतो विश्वतोमुखः॥4॥
विश्व-कर्मा जगज्ज्येष्ठो, विश्वमूर्ति र्जिनेश्वरः।
विश्वदृग्विश्व भूतेशो, विश्वज्योति-रनीश्वरः॥5॥
जिनो जिष्णु-रमेयात्मा, विश्व-रीशो जगत्पतिः।
अनन्तजि दचिन्त्यात्मा, भव्य-बन्धु-रबन्धनः॥6॥
युगादि-पुरुषो ब्रह्मा, पञ्च-ब्रह्म-मयः शिवः।
परः परतरः सूक्ष्मः, परमेष्ठी सनातनः॥7॥
स्वयं ज्योति-रजोऽजन्मा, ब्रह्मयोनि-रयोनिजः।
मोहारिर्विजयी[1] जेता, धर्म-चक्री दया-ध्वजः॥8॥
प्रशान्तारि-रनन्तात्मा, योगी योगीश्वरार्चितः।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो, ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः॥9॥
शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा, सिद्धार्थः सिद्ध-शासनः।
सिद्धसिद्धान्तविद्ध्येयः, सिद्धसाध्यो जगद्धितः॥10॥
सहिष्णु-रच्युतोऽनन्तः, प्रभविष्णु-र्भवोद्भवः।
प्रभूष्णु-रजरोऽजर्यो, भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः॥11॥

पाठान्तर : 1. मोहारिविजयी

विभावसुरसम्भुष्णुः, स्वयम्भूष्णुः पुरातनः ।
परमात्मा परंज्योतिस्, त्रिजगत्परमेश्वरः ॥12॥

॥ इति श्रीमदादिशतम् ॥1॥

दिव्य-भाषा-पतिर्दिव्यः, पूत-वाक्पूत-शासनः ।
पूतात्मा परमज्योति, धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥1॥
श्रीपति र्भगवा-नर्हन्, नरजा विरजाः शुचिः ।
तीर्थकृत् केवलीशानः, पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥2॥
अनन्त-दीप्ति-र्ज्ञानात्मा, स्वयंबुद्धः प्रजापतिः ।
मुक्तः शक्तो निराबाधो, निष्कलो भुवनेश्वरः ॥3॥
निरञ्जनो जगज्ज्योति, र्निरुक्तोक्तिर्निरामयः ।
अचल-स्थिति-रक्षोभ्यः, कूटस्थः स्थाणु-रक्षयः ॥4॥
अग्रणी-र्ग्रामणीर्नेता, प्रणेता न्याय-शास्त्रकृत् ।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो, धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥5॥
वृषध्वजो वृषा-धीशो, वृष-केतु-र्वृषा-युधः ।
वृषो वृष-पति-र्भर्ता वृषभाङ्को वृषोद्भवः ॥6॥
हिरण्य-नाभि-र्भूतात्मा, भूतभृद् भूत-भावनः ।
प्रभवो विभवो भास्वान्, भवोभावो भवान्तकः ॥7॥
हिरण्य-गर्भः श्रीगर्भः, प्रभूत-विभवोऽभवः ।
स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा, भूतनाथो जगत्प्रभुः ॥8॥
सर्वादिः सर्व-दृक् सार्वः, सर्वज्ञः सर्व-दर्शनः ।
सर्वात्मा सर्व-लोकेशः, सर्ववित् सर्वलोकजित् ॥9॥
सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत्, सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः ।
विश्रुतो विश्वतः पादो, विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः ॥10॥
सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः, सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।
भूतभव्यभवद्भर्ता, विश्व-विद्यामहेश्वरः ॥11॥

॥ इति दिव्यादिशतम् ॥ 2 ॥

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः, प्रष्ठःप्रेष्ठो वरिष्ठधीः ।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः, श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः ॥1॥
विश्वभृद्विश्वसृड्[1] विश्वेड्, विश्वभुग् विश्व नायकः ।
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा[2], विश्वजिद्विजितान्तकः ॥2॥
विभवो विभयो वीरो, विशोको विजरो जरन् ।
विरागो विरतोऽसङ्गो, विविक्तो वीत-मत्सरः ॥3॥
विनेय-जनताबन्धु, र्विलीनाशेष-कल्मषः ।
वियोगो योगविद्विद्वान्, विधाता सुविधिः सुधीः ॥4॥
क्षान्तिभाक्पृथ्वीमूर्तिः, शान्तिभाक्सलिलात्मकः ।
वायु-मूर्ति-रसङ्गात्मा, वह्नि-मूर्ति-रधर्मधृक् ॥5॥
सुयज्वा यज-मानात्मा, सुत्वा सुत्राम-पूजितः ।
ऋत्विग्यज्ञ-पति-र्यज्ञो[3], यज्ञाङ्गममृतं हविः ॥6॥
व्योम-मूर्ति-रमूर्तात्मा, निर्लेपो निर्मलोऽचलः ।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा, सूर्य-मूर्ति-र्महाप्रभः ॥7॥
मन्त्र-विन्मन्त्र-कृन्मत्री, मन्त्र-मूर्ति-रनन्तगः ।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वन्तः, कृतान्तान्तः कृतान्तकृत् ॥8॥
कृती कृतार्थः सत्कृत्यः, कृतकृत्यः कृतक्रतुः ।
नित्यो मृत्युञ्जयोऽमृत्यु, रमृतात्माऽमृतोद्भवः ॥9॥
ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म, ब्रह्मात्मा ब्रह्म-सम्भवः ।
महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेड्, महाब्रह्मपदेश्वरः ॥10॥
सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा, ज्ञान-धर्म-दम-प्रभुः ।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा, पुराण-पुरुषोत्तमः ॥11॥

॥ इति स्थविष्ठादिशतम् ॥ 3 ॥

महाऽशोकध्वजोऽशोकः, कः सृष्टा[4] पद्म-विष्टरः ।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः, पद्मनाभि-रनुत्तरः ॥1॥
पद्म-योनिर्जगद्योनि, रित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः ।
स्तवनार्हो हृषीकेशो, जितजेयः कृतक्रियः ॥2॥

पाठान्तर : 1. विश्वभृत 2. विश्वासी 3. र्यज्यो 4. स्राष्टा

गणाधिपो गणज्येष्ठो, गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधि, र्गुणज्ञो गुणनायकः ॥3॥
गुणादरी गुणोच्छेदी, निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो, वरेण्यः पुण्यनायकः ॥4॥
अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः, पुण्यकृत्पुण्य-शासनः।
धर्मारामो गुणग्रामः, पुण्यापुण्य-निरोधकः ॥5॥
पापापेतो विपापात्मा, विपाप्मा वीतकल्मषः।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो, निर्मोहो निरुपद्रवः ॥6॥
निर्निमेषो निराहारो, निष्क्रियो निरुपप्लवः।
निष्कलङ्को निरस्तैना, निर्धूतागा निरास्रवः ॥7॥
विशालो विपुलज्योति, रतुलोऽचिन्त्य-वैभवः।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा, सुभुत् सुनयतत्त्ववित् ॥8॥
एकविद्यो महाविद्यो, मुनिः परिवृढः पतिः।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी, विजेता विहतान्तकः ॥9॥
पिता पितामहः पाता, पवित्रः पावनो गतिः।
त्राता भिषग्वरो वर्यो, वरदः परमः पुमान् ॥10॥
कविः पुराणपुरुषो, वर्षीयान्-वृषभः पुरुः।
प्रतिष्ठा-प्रसवो हेतु, र्भुवनैक-पितामहः ॥11॥

॥ इति महाशोकध्वजादिशतम् ॥ 4 ॥

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो, लक्षण्यः शुभलक्षणः।
निरक्षः पुण्डरी-काक्षः, पुष्कलः पुष्करेक्षणः ॥1॥
सिद्धिदः सिद्ध-संकल्पः, सिद्धात्मा सिद्ध-साधनः।
बुद्धबोध्यो महाबोधि, र्वर्धमानो महर्द्धिकः[1] ॥2॥
वेदाङ्गो वेदविद् वेद्यो, जातरूपो विदांवरः।
वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो, विवेदो वदतांवरः ॥3॥
अनादि-निधनोऽव्यक्तो, व्यक्त-वाग्व्यक्त-शासनः।
युगादिकृद्[2]-युगाधारो, युगादि र्जगदादिजः ॥4॥

पाठान्तर : 1. महर्धिकः 2. युगादिकृत

अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो, महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक्।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्रार्च्यो, महेन्द्र-महितोमहान् ॥5॥
उद्भवः कारणं कर्ता, पारगो भवतारकः।
अगाह्यो गहनं गुह्यं, परार्घ्यः परमेश्वरः ॥6॥
अनन्तर्द्धि-रमेयर्द्धि, रचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः, प्रत्यग्रोऽग्रयोऽग्रिमोऽग्रजः ॥7॥
महातपा महातेजा, महोदर्को महोदयः।
महायशा महाधामा, महासत्त्वो महाधृतिः ॥8॥
महाधैर्यो महावीर्यो, महा-सम्पन् महाबलः।
महा-शक्ति र्महाज्योति, र्महाभूतिर्महा-द्युति ॥9॥
महामति र्महानीति, र्महाक्षान्ति र्महोदयः।
महाप्राज्ञो महाभागो, महानन्दो महाकविः ॥10॥
महामहा महाकीर्ति, र्महाकान्ति र्महावपुः।
महादानो महाज्ञानो, महायोगो महागुणः ॥11॥
महा-मह-पतिः प्राप्त, महा-कल्याण-पञ्चकः।
महाप्रभु र्महाप्राति, हार्या-धीशो महेश्वरः ॥12॥

॥ इति श्री वृक्षलक्षणादिशतम् ॥ 5 ॥

महामुनि र्महामौनी, महाध्यानी[1] महादमः।
महाक्षमो महाशीलो, महायज्ञो महामखः ॥1॥
महा-व्रत-पति-र्मह्यो, महाकान्ति-धरोऽधिपः।
महामैत्री-मयोऽमेयो, महोपायो महोदयः ॥2॥
महा-कारुणिको मन्ता, महामन्त्रो महायतिः।
महानादो महाघोषो, महेज्यो महसांपतिः ॥3॥
महाध्वरधुरो धुर्य्यो, महौदार्यो महिष्ठवाक्।
महात्मा महसांधाम, महर्षि र्महितोदयः ॥4॥
महाक्लेशाङ्कुशः शूरो, महा-भूत-पति-र्गुरुः।

पाठान्तर : 1. महाध्यानो

महापरा-क्रमोऽनन्तो, महा-क्रोध-रिपुर्वशी ॥5 ॥
महा-भवाब्धि-संतारी, महा-मोहाद्रिसूदनः।
महागुणाकरः क्षान्तो, महायोगीश्वरः शमी ॥6 ॥
महाध्यानपतिर्ध्यात, महाधर्मा महाव्रतः।
महाकर्मारिहात्मज्ञो, महादेवो महेशिता ॥7 ॥
सर्वक्लेशापहः साधुः, सर्वदोषहरो हरः।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा, शमात्मा प्रशमा-करः ॥8 ॥
सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः, श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो, योगात्मा ज्ञान-सर्वगः ॥9 ॥
प्रधान-मात्मा प्रकृतिः, परमः परमोदयः।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः, क्षेमकृत्-क्षेमशासनः ॥10 ॥
प्रणवःप्रणयः[1] प्राणः, प्राणदः प्रणतेश्वरः।
प्रमाणं प्रणिधि-र्दक्षो, दक्षिणोऽध्व-र्युरध्वरः ॥11 ॥
आनन्दो नन्दनो नन्दो, वन्द्योऽनिन्द्योभिनन्दनः।
कामहा कामदः काम्यः, कामधेनु-ररिञ्जयः ॥12 ॥

॥ इति महामुन्यादिशतम् ॥ 6 ॥

असंस्कृतः सुसंस्कारः, प्राकृतो वैकृतान्तकृत्।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्, चिन्तामणि-रभीष्टदः ॥1 ॥
अजितो जित-कामारि, रमितोऽमित-शासनः।
जितक्रोधो जितामित्रो, जितक्लेशो जितान्तकः ॥2 ॥
जिनेन्द्रः परमानन्दो, मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः।
महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो, यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ॥3 ॥
नाभेयो नाभिजोऽजातः, सुव्रतो मनुरुत्तमः।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वा, नधिकोऽधिगुरुः सुगीः ॥4 ॥
सुमेधा विक्रमी स्वामी, दुराधर्षो निरुत्सुकः।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः, प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥5 ॥

पाठान्तर : 1. प्रणतः

क्षेमी क्षेमङ्करोऽक्षय्यः, क्षेम-धर्मपतिः क्षमी।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो, ध्यान-गम्यो निरुत्तरः ॥6 ॥
सुकृती धातु-रिज्यार्हः, सुनयश्चतुराननः।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्, चतु-रास्यश्चतुर्मुखः ॥7 ॥
सत्यात्मा सत्यविज्ञानः, सत्यवाक् सत्यशासनः।
सत्याशीः सत्यसन्धानः, सत्यः सत्यपरायणः ॥8 ॥
स्थेयान् स्थवीयान्, नेदीयान् दवीयान् दूरदर्शनः।
अणो-रणी-यान, नणु-र्गुरु-राद्योगरीय-साम् ॥10 ॥
सदायोगः सदाभोगः, सदातृप्तः सदाशिवः।
सदागतिः सदासौख्यः, सदाविद्यः सदोदयः ॥11 ॥
सुघोषः सुमुखः सौम्यः, सुखदः सुहितः सुहृत्।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता, लोकाध्यक्षो दमीश्वरः[1] ॥12 ॥

॥ इति असंस्कृतादिशतम् ॥ 7 ॥

बृहद्-बृहस्पति-र्वाग्मी, वाचस्पति-रुदारधीः।
मनीषी धिषणो धीमाञ्, छेमुषीशो गिरांपतिः ॥1 ॥
नैकरूपो नयोत्तुङ्गो, नैकात्मा नैक-धर्मकृत्।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा, कृतज्ञः कृत-लक्षणः ॥2 ॥
ज्ञानगर्भो दयागर्भो, रत्नगर्भः प्रभास्वरः।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो, हेमगर्भः सुदर्शनः ॥3 ॥
लक्ष्मीवांस् त्रिदशाध्यक्षो, दृढीया-निन ईशिता।
मनोहरो मनोज्ञाङ्गो, धीरो गम्भीर-शासनः ॥4 ॥
धर्मयूपो दयायागो, धर्मनेमि र्मुनीश्वरः।
धर्म-चक्रायुधो देवः, कर्महा धर्मघोषणः ॥5 ॥
अमोघ-वा-गमोघाज्ञो, निर्मलोऽमोघ-शासनः।
सुरूपः सुभगस् त्यागी, समयज्ञः समाहितः ॥6 ॥

पाठान्तर : 1. दमेश्वरः

सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्, स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः।
अलेपो निष्कलङ्कात्मा, वीतरागो गतस्पृहः ॥7॥
वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा, निःसपत्नो जितेन्द्रियः।
प्रशान्तोऽनन्त-धामर्षि, र्मङ्गलं मलहानघः ॥8॥
अनी-दृगुप-माभूतो, दिष्टि-र्दैव-मगो-चरः।
अमूर्तो मूर्ति-मानेको, नैको नानैक-तत्त्वदृक् ॥9॥
अध्यात्मगम्योऽगम्यात्मा, योगविद्योगि-वन्दितः।
सर्वत्रगः सदाभावी, त्रिकाल-विषयार्थ-दृक् ॥10॥
शङ्करः शंवदो दान्तो, दमी क्षान्ति-परायणः।
अधिपः परमानन्दः, परात्मज्ञः परात्परः ॥11॥
त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्[1], त्रिजगन्मंगलोदयः।
त्रिजगत्पतिपूज्याङ्घ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥12॥

॥ इति बृहदादिशतम् ॥ 8 ॥

त्रिकाल-दर्शी लोकेशो, लोकधाता दृढव्रतः।
सर्व-लोका-तिगः पूज्यः, सर्व-लोकैकसारथिः ॥1॥
पुराणः पुरुषः पूर्वः, कृत-पूर्वाङ्ग-विस्तरः।
आदिदेवः पुराणाद्यः, पुरु-देवोऽधि-देवता ॥2॥
युगमुख्यो युगज्येष्ठो, युगादिस्थिति-देशकः।
कल्याणवर्णः कल्याणः, कल्यः कल्याणलक्षणः ॥3॥
कल्याण-प्रकृति-र्दीप्त[2], कल्याणात्मा विकल्मषः।
विकलङ्कः कलातीतः, कलिलघ्नः कलाधरः ॥4॥
देवदेवो जगन्नाथो, जगद्-बन्धु-र्जगद्विभुः।
जगद्-धितैषी लोकज्ञः, सर्वगो जगदग्रजः ॥5॥
चरा-चर-गुरु-र्गोप्यो, गूढात्मा गूढ-गोचरः।
सद्योजातः प्रकाशात्मा, ज्वलज्ज्वलनसत्प्रभः ॥6॥
आदित्य-वर्णो भर्माभः, सुप्रभः कनकप्रभः।

पाठान्तर : 1. त्रिजगद्वल्लभोऽभ्य 2. दीप्तिः

सुवर्णवर्णो रुक्माभः, सूर्य-कोटि-समप्रभः ॥7॥
तपनीय-निभस्तुङ्गो, बालार्का-भोऽनलप्रभः।
सन्ध्याभ्र-बभ्रु-र्हेमा भस्, तप्तचामी-करच्छविः ॥8॥
निष्टप्त-कनकच्छायः, कनत्काञ्चन-सन्निभः।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः, शात-कुम्भ-निभप्रभः ॥9॥
द्युम्नाभो जात-रूपाभस्, तप्त-जाम्बू-नदद्युतिः।
सुधौत-कल-धौतश्रीः, प्रदीप्तोहाटक-द्युतिः ॥10॥
शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः, स्पष्टः स्पष्टा-क्षरः क्षमः।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः, प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥11॥
शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः, शिवतातिः शिवप्रदः।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्ति, कान्तिमान् कामितप्रदः ॥12॥
श्रेयोनिधिरधिष्ठान, मप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः।
सुस्थिरः स्थावरः स्थास्नुः, प्रथीयान् प्रथितः पृथुः ॥13॥

॥ इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥ 9 ॥

दिग्वासा वातरशनो, निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः।
निष्किञ्चनो निराशंसो, ज्ञानचक्षु-रमो-मुहः ॥1॥
तेजो-राशि-रनन्तौजा, ज्ञानाब्धिः शील-सागरः।
तेजो-मयोऽमितज्योति, र्ज्योति मूर्तिस्तमोपहः ॥2॥
जगच्चूडा-मणिर्दीप्तः, शंवान्-विघ्न-विनायकः।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो, लोकालोक-प्रकाशकः ॥3॥
अनिद्रालु-रतन्द्रालु, र्जागरुकः प्रमामयः।
लक्ष्मीपति र्जगज्जयोति, धर्मराजः प्रजाहितः ॥4॥
मुमुक्षु-र्बन्ध-मोक्षज्ञो, जिताक्षो जित-मन्मथः।
प्रशान्त-रस-शैलूषो, भव्य-पेटक-नायकः ॥5॥
मूलकर्ताऽखिलज्योति, र्मलघ्नो मूलकारणम्[1]।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्, छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥6॥

पाठान्तर : 1. मूलकारणः

प्रवक्तावचसामीशो, मारजिद्-विश्वभाववित्।
सुतनुस्तनु-निर्मुक्तः, सुगतो हत-दुर्नयः॥7॥
श्रीशः श्रीश्रित-पादाब्जो, वीतभी-रभयंकरः।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो, निश्चलो लोक-वत्सलः॥8॥
लोकोत्तरो लोकपति, र्लोकचक्षु-रपारधीः।
धीर-धीर्बुद्ध-सन्मार्गः, शुद्धः सूनृत-पूतवाक्॥9॥
प्रज्ञा-पार-मितः प्राज्ञो, यति-र्नियमितेन्द्रियः।
भदन्तो भद्र-कृद्भद्रः, कल्पवृक्षो वर-प्रदः॥10॥
समुन्-मूलितकर्मारिः, कर्म-काष्ठाशुशुक्षणिः।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशु, र्हेया-देय-विचक्षणः॥11॥
अनन्त-शक्ति-रच्छेद्यस्, त्रिपुरारिस्-त्रि-लोचनः।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्, त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः॥12॥
समन्तभद्रः शान्तारि, र्धर्माचार्यो दयानिधिः।
सूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः, कृपालु-र्धर्म-देशकः॥13॥
शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्य-राशि-रनामयः।
धर्मपालो जगत्पालो, धर्म-साम्राज्य-नायकः॥14॥

॥ इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम्॥ 10॥

धाम्नांपते तवामूनि, नामान्यागमकोविदैः।
समुच्चितान्यनुध्यायन्, पुमान् पूतस्मृति-र्भवेत्॥1॥
गोचरोऽपि गिरामासां, त्व मवाग्गोचरो मतः।
स्तोता तथाप्यसन्दिग्धं, त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत्॥2॥
त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्, त्व-मतोऽसि जगद्भिषक्।
त्वमतोऽसि जगद्धाता, त्वमतोऽसि जगद्धितः॥3॥
त्व-मेकं जगतां ज्योतिस्, त्वं द्विरूपोप-योगभाक्।
त्वं त्रिरूपैक-मुक्त्यङ्गः, स्वोत्थानन्त-चतुष्टयः॥4॥
त्वं पञ्च-ब्रह्मतत्त्वात्मा, पञ्च-कल्याण-नायकः।

षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्, त्वं सप्त-नय-सङ्ग्रहः॥5॥
दिव्याष्ट-गुण-मूर्तिस्त्वं, नव-केवल-लब्धिकः।
दशावतार-निर्धार्यो, मां पाहि परमेश्वर!॥6॥
युष्मन्नामा-वली दृब्ध, विलसत्स्तोत्र-मालया।
भवन्तं वरिवस्यामः, प्रसीदानु-गृहाण नः॥7॥
इदं स्तोत्र-मनुस्मृत्य, पूतो भवति भाक्तिकः।
यः संपाठं पठत्येनं, स स्यात्कल्याण-भाजनम्॥8॥
ततः सदेदं पुण्यार्थी, पुमान् पठति पुण्यधीः।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं, परमा-मभि-लाषुकः॥9॥
स्तुत्वेति मघवा देवं, चराचर-जगद्गुरुम्।
ततस्तीर्थविहारस्य, व्यधात्प्रस्तावना-मिमाम्॥10॥
स्तुतिः पुण्य-गुणोत्कीर्तिः, स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः, फलं नैःश्रेयसं सुखम्॥11॥

शार्दूलविक्रीडितम

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः, स्तोता स्वयं कस्यचित्।
ध्येयो योगिजनस्य यश्च नतरां, ध्याता स्वयं कस्यचित्।
यो नन्तॄन् नयते नमस्कृतिमलं, नन्तव्यपक्षेक्षणः,
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरु, र्देवः पुरुः पावनः॥1॥
तं देवं त्रिदशाधि-पार्चितपदं, घाति-क्षया-नन्तरं,
प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिन-मिनं, भव्याब्जिनीनामिनम्।
मानस्तम्भ-विलोकना-नतजगन्, मान्यं त्रिलोकीपतिं,
प्राप्ताचिन्त्यबहिर्विभूति-मनघं, भक्त्या प्रवन्दामहे॥2॥

॥ इति श्री भगवज्जिनाष्टोत्तरसहस्रनाम स्तोत्रं समाप्तं॥

❖ भूतिकर्म से बचोगे तब बनोगे शिवभूति
❖ काले नीले वस्त्र पहनकर कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं करना चाहिए।

तत्त्वार्थसूत्रम्

आचार्य श्री उमास्वामी विरचित

त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नवपदसहितं जीव षट्काय-लेश्याः
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन महितैः प्रोक्तमर्हद्-भिरीशैः
प्रत्येति श्रद्धधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्ध दृष्टिः॥
सिद्धे जयप्प-सिद्धे चउव्विहारा-हणाफलं पत्ते।
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो॥2॥
उज्जोवण मुज्जवणं णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं।
दंसण-णाण-चरित्तं तवाण-माराहणा भणिया॥3॥

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वन्दे तद् गुणलब्धये॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः॥1॥ तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्॥2॥ तन्निसर्गादधिगमाद्वा॥3॥ जीवाजीवास्रव-बन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्वम्॥4॥ नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्-तन्न्यासः॥5॥ प्रमाण नयै-रधिगमः॥6॥ निर्देश-स्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थिति-विधानतः॥7॥ सत्संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्प-बहुत्वैश्च॥8॥ मति-श्रुता-वधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्॥9॥ तत्प्रमाणे॥10॥ आद्ये परोक्षम्॥11॥ प्रत्यक्षमन्यत्॥12॥ मतिः स्मृतिः संज्ञा-चिन्ता-भिनि-बोध इत्य-नर्थान्तरम्॥13॥ तदिन्द्रिया-निन्द्रिय-निमित्तम्॥14॥ अवग्रहे-हावाय-धारणाः॥15॥ बहु-बहुविध-क्षिप्रानिःसृतानुक्त ध्रुवाणां सेतराणाम्॥16॥ अर्थस्य॥17॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः॥18॥ न चक्षु-रनिन्द्रियाभ्याम्॥19॥ श्रुतं मतिपूर्वं-द्वयनेक-द्वादश-भेदम्॥20॥ भव-प्रत्ययोऽवधिर्देव-नारकाणाम्॥21॥ क्षयोपशमनिमित्तः षड् विकल्पःशेषाणाम्॥22॥ ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः॥23॥ विशुद्धय

प्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः॥24॥ विशुद्धि क्षेत्र-स्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्यययोः[1]॥25॥ मतिश्रुतयो र्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व-पर्यायेषु॥26॥ रूपिष्ववधेः॥27॥ तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य॥28॥ सर्व-द्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य॥29॥ एकादीनिभाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः॥30॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च॥31॥ सदसतो रवि शेषाद्यदृच्छोप लब्धे-रुन्मत्तवत्॥32॥ नैगम-संग्रह-व्यवहा-रर्जु-सूत्र-शब्द-समभि-रुढैवंभूतानयाः॥33॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) प्रथमोऽध्यायः नमः ॥

अथ द्वितीयोऽध्याय

औप-शमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्व-मौदयिक-पारिणामिकौ च॥1॥ द्वि-नवाष्टा-दशैक-विंशति-त्रि-भेदा यथाक्रमम्॥2॥ सम्यक्त्व-चारित्रे॥3॥ ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोप-भोग-वीर्याणि च॥4॥ ज्ञाना-ज्ञान दर्शन लब्धयश्-चतुस्त्रि-त्रि पञ्चभेदाः सम्यक्त्व चारित्र-संयमासंयमाश्च॥5॥ गति-कषाय-लिङ्ग-मिथ्यादर्शना-ज्ञाना-संयतासिद्ध लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैक -षड्भेदाः॥6॥ जीव-भव्या-भव्यत्वानि च॥7॥ उपयोगो-लक्षणम्॥8॥ स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः॥9॥ संसारिणो मुक्ताश्च॥10॥ समनस्कामनस्काः॥11॥ संसारिणस्त्रस-स्थावराः॥12॥ पृथिव्यप्तेजोवायु-वनस्पतयः स्थावराः॥13॥ द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः॥14॥ पञ्चेन्द्रियाणि॥15॥ द्विविधानि॥16॥ निर्वृत्त्युप-करणे-द्रव्येन्द्रियम्॥17॥ लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्॥18॥ स्पर्शन रसन-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि॥19॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः॥20॥ श्रुतमनिन्द्रि-यस्य॥21॥ वनस्पत्यन्ताना-मेकम्॥22॥ कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्या-दीना-मेकैक-वृद्धानि॥23॥ संज्ञिनः समनस्काः॥24॥ विग्रह-गतौ कर्मयोगः॥25॥ अनुश्रेणि गतिः॥26॥ अविग्रहा जीवस्य॥27॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः॥28॥ एक-समय-विग्रहा॥29॥ एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः॥30॥ सम्मूर्च्छन गर्भोपपादा जन्म॥31॥ सचित्त-

पाठान्तर : 1. पर्यायोः

शीत-संवृताः[1] सेतरा मिश्राश् चैकशस् तद्योनयः ॥32 ॥ जरायुजाण्डज-पोतानां गर्भः ॥33 ॥ देव नारकाणा मुपपादः ॥34 ॥ शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ॥35 ॥ औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस कार्मणानिशरीराणि ॥36 ॥ परं परं सूक्ष्मम् ॥37 ॥ प्रदेशतोऽसंख्येय गुणं प्राक्तैजसात् ॥38 ॥ अनन्तगुणे परे ॥39 ॥ अप्रतीघाते ॥40 ॥ अनादिसम्बन्धे च ॥41 ॥ सर्वस्य ॥42 ॥ तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥43 ॥ निरुप-भोग-मन्त्यम् ॥44 ॥ गर्भ-सम्मूर्च्छनज-माद्यम् ॥45 ॥ औपपादिकं वैक्रियिकम् ॥46 ॥ लब्धिप्रत्ययं च ॥47 ॥ तैजस-मपि ॥48 ॥ शुभं विशुद्ध मव्याघाति चाहारकं प्रमत्त-संयतस्यैव ॥49 ॥ नारक सम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि ॥50 ॥ न देवाः ॥51 ॥ शेषास्त्रिवेदाः ॥52 ॥ औपपादिक-चरमोत्तम-देहा-संख्येय-वर्षा-युषोऽनप-वर्त्यायुषः ॥53 ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) द्वितीयोऽध्याय नमः ॥

अथतृतीयोऽध्याय

रत्न-शर्करा-वालुका-पङ्क-धूम-तमो-महातमः-प्रभा-भूमयो-घनाम्बु-वाता-काश-प्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ॥1 ॥ तासु त्रिंशत्पञ्चविंशति-पञ्चदश-दश-त्रि-पञ्चोनैक-नरक-शत-सहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम् ॥2 ॥ नारका नित्याशुभतर-लेश्या परिणाम-देह-वेदना-विक्रियाः ॥3 ॥ परस्परो-दीरित दुःखाः ॥4 ॥ संक्लिष्टासुरो-दीरित-दुःखाश्च-प्राक्चतुर्थ्याः ॥5 ॥ तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस् - त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः ॥6 ॥ जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभ-नामानो द्वीप-समुद्राः ॥7 ॥ द्वि-र्द्वि-र्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-परिक्षेपिणो-वलया-कृतयः ॥8 ॥ तन्मध्ये मेरु-नाभिर्वृत्तोयोजन-शत-सहस्र-विष्कम्भो जम्बूद्वीपः ॥9 ॥ भरत-हैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्य-वतैरा-वत-वर्षाः क्षेत्राणि ॥10 ॥ तद्-विभाजिनः पूर्वा-परायता हिमवन्-महाहिमवन्-निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधर पर्वताः ॥11 ॥ हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-हेममयाः ॥12 ॥ मणि-विचित्र-पार्श्वा उपरिमूले च तुल्य-

पाठान्तर : 1. संवृता

विस्ताराः ॥13 ॥ पद्म-महापद्म-तिगिच्छ-केसरि-महापुण्डरीक-पुण्डरीका ह्रदास्तेषा-मुपरि ॥14 ॥ प्रथमो योजन सहस्रायामस्तदर्ध विषकम्भो ह्रदः ॥15 ॥ दशयोजनावगाहः ॥16 ॥ तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ॥17 ॥ तद्-द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ॥18 ॥ तन्-निवासिन्यो देव्यः श्री ह्री धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः ॥19 ॥ गङ्गा-सिन्धु-रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरि-कान्ता-सीता-सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्ण-रूप्यकूला-रक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ॥ 20 ॥ द्वयोर्द्वयोःपूर्वाः पूर्वगाः ॥21 ॥ शेषास्त्व-परगाः ॥22 ॥ चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृत्ता गङ्गा-सिन्ध्वादयो नद्यः ॥23 ॥ भरतः षड् विंशति-पञ्चयोजन-शत-विस्तारः षट्चैकोन-विंशतिभागा योजनस्य ॥24 ॥ तद्द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः ॥25 ॥ उत्तरा दक्षिण-तुल्याः ॥26 ॥ भरतैरावतयो-वृद्धि-ह्रासौ षट्-समयाभ्या-मुत्सर्पिण्य-वसर्पिणी-भ्याम् ॥27 ॥ ताभ्यामपरा-भूमयोऽवस्थिताः ॥28 ॥ एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयो हैमवतक-हारि-वर्षक-दैव-कुरवकाः ॥29 ॥ तथोत्तराः ॥30 ॥ विदेहेषु संख्येय-कालाः ॥31 ॥ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शतभागः ॥32 ॥ द्विर्धातकी खण्डे ॥33 ॥ पुष्करार्द्धे च ॥34 ॥ प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः ॥35 ॥ आर्या म्लेच्छाश्च ॥36 ॥ भरतैरावत विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ॥37 ॥ नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ॥38 ॥ तिर्यग्योनिजानां च ॥39 ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) तृतीयोऽध्यायः नमो नमः ॥

अथ चतुथोऽध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः ॥1 ॥ आदि तस् त्रिषु पीतान्त लेश्याः ॥2 ॥ दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पाः कल्पोप पन्न पर्यन्ताः ॥3 ॥ इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्षलोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्य-किल्विषिकाश चैकशः ॥4 ॥ त्रायस्त्रिंशलोकपाल-वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः ॥5 ॥ पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ॥6 ॥ काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ॥7 ॥ शेषाः स्पर्श रूप शब्द-मनः प्रवीचाराः ॥8 ॥ परेऽप्रवीचाराः ॥9 ॥ भवन वासिनोऽसुरनाग-

विद्युत्सुपर्णाग्नि-वातस्तनितोदधि-द्वीप दिक्कुमाराः ॥10 ॥ व्यन्तराः किन्नर-किंपुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः ॥11 ॥ ज्योतिष्काः सूर्या-चन्द्र-मसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णकतारकाश्च ॥12 ॥ मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयोनृलोके ॥13 ॥ तत्कृतः कालविभागः ॥14 ॥ बहिरवस्थिताः ॥15 ॥ वैमानिकाः ॥16 ॥ काल्पोपन्नाः कल्पातीताश्च ॥17 ॥ उपर्युपरि ॥18 ॥ सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म ब्रह्मोत्तर-लान्तव कापिष्ठ-शुक्र महाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत-प्राणतयो रारणाच्युतयो र्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त-जयन्ता परा जितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥19 ॥ स्थिति प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या विशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ॥20 ॥ गति शरीर-परिग्रहाभिमानतो हीनाः ॥21 ॥ पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रिशेषेषु ॥22 ॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ 23 ॥ ब्रह्म लोकालया लौकान्तिकाः ॥24 ॥ सारस्वतादित्य वह्न्यरुण-गर्दतोयतुषिताव्या-बाधारिष्टाश्च ॥25 ॥ विजयादिषु द्विचरमाः ॥26 ॥ औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ॥27 ॥ स्थिति-रसुर नागसुपर्ण-द्वीपशेषाणां सागरोपम त्रिपल्योपमार्धहीन मिता ॥28 ॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके ॥29 ॥ सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त ॥30 ॥ त्रि-सप्त-नवैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि तु ॥31 ॥ आरणाच्युता दूर्ध्व मेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ॥32 ॥ अपरा-पल्योपम मधिकम् ॥33 ॥ परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा ॥34 ॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥35 ॥ दश वर्ष-सहस्राणि प्रथमायाम् ॥36 ॥ भवनेषु च ॥37 ॥ व्यन्तराणां च ॥38 ॥ परा पल्योपम-मधिकम् ॥39 ॥ ज्योतिष्काणां च ॥40 ॥ तदष्टभागोऽपरा ॥41 ॥ लौकान्तिकानामष्टौ सागरो-पमाणि सर्वेषाम् ॥42 ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) चतुर्थोऽध्याय नमः ॥

अथ पंचमोऽध्याय

अजीव-काया-धर्मा धर्मा काश पुद्गलाः ॥1 ॥ द्रव्याणि ॥2 ॥ जीवाश्च ॥3 ॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥4 ॥ रूपिणः पुद्गलाः ॥5 ॥ आ

आकाशा-देक-द्रव्याणि ॥6 ॥ निष्क्रियाणि च ॥7 ॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्मा धर्मैक-जीवानाम् ॥8 ॥ आका शस्यानन्ताः ॥9 ॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥10 ॥ नाणोः ॥11 ॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥12 ॥ धर्मा धर्मयोः कृत्स्ने ॥13 ॥ एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम् ॥14 ॥ असंख्येयभागादिषु जीवानाम् ॥15 ॥ प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥16 ॥ गति-स्थित्युपग्रहौ धर्मा-धर्मयो-रुपकारः ॥17 ॥ आकाशस्यावगाहः ॥18 ॥ शरीर-वाङ् मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम् ॥19 ॥ सुख-दुःख-जीवित-मरणोपग्रहाश्च ॥20 ॥ परस्परोपग्रहो जीवानाम् ॥21 ॥ वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वे च कालस्य ॥22 ॥ स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः ॥23 ॥ शब्दबन्धसौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थानभेद-तमश्छाया-तपोद्योत-वन्तश्च ॥24 ॥ अणवः स्कन्धाश्च ॥25 ॥ भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ॥26 ॥ भेदादणुः ॥27 ॥ भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः ॥28 ॥ सद् द्रव्यलक्षणम् ॥29 ॥ उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत् ॥30 ॥ तद्भावाव्ययं नित्यम् ॥31 ॥ अर्पितानर्पित-सिद्धेः ॥32 ॥ स्निग्ध-रुक्षत्वाद्बन्धः ॥33 ॥ न जघन्य गुणानाम् ॥34 ॥ गुण-साम्ये सदृशानाम् ॥35 ॥ द्वय धिकादि-गुणानां तु ॥36 ॥ बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ॥37 ॥ गुण-पर्ययवद्द्रव्यम् ॥38 ॥ कालश्च ॥39 ॥ सोऽनन्तसमयः ॥40 ॥ द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ॥41 ॥ तद्भावः परिणामः ॥42 ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) पञ्चमोऽध्याय नमः ॥

अथ षष्ठोऽध्याय

कायवाङ्मनः कर्मयोगः ॥1 ॥ स आस्रवः ॥2 ॥ शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥3 ॥ सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्या-पथयोः ॥4 ॥ इन्द्रिय-कषायाव्रतक्रियाः पञ्च चतुः पञ्च-पञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ॥5 ॥ तीव्र-मन्द-ज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण वीर्यविशेषे-भ्यस्तद्-विशेषः ॥6 ॥ अधिकरणं जीवाजीवाः ॥7 ॥ आद्यं संरम्भ-समारम्भा रम्भ-योग-कृत-कारितानु मत-कषाय-विशेषैस्-त्रिस्-त्रिस्-त्रिश्-चतुश्चैकशः ॥8 ॥

निर्वर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा-द्विचतुर्द्वि-त्रि-भेदाः परम् ॥9 ॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तराया-सादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ॥10 ॥ दुःखशोकतापाक्रन्दनवध-परिदेवनान्यात्म परोभय-स्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥11 ॥ भूत-व्रत्यनुकम्पा-दान-सराग संयमादि योगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥12 ॥ केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शन-मोहस्य ॥13 ॥ कषायो दयात्तीव्र-परिणामश्चारित्र-मोहस्य ॥14 ॥ बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥15 ॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥16 ॥ अल्पारम्भ-परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥17 ॥ स्वभाव-मार्दवं च ॥18 ॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम् ॥19 ॥ सरागसंयम-संयमासंयमाकाम-निर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥20 ॥ सम्यक्त्वं च ॥21 ॥ योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥22 ॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥23 ॥ दर्शन-विशुद्धि-र्विनय-संपन्नता शील-व्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी-साधु-समाधि-र्वैयावृत्य-करणमर्हदाचार्य बहुश्रुत प्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणि-र्मार्ग-प्रभावना-प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥24 ॥ परात्म निन्दा-प्रशंसे सदसद्-गुणोच्छादनोद्-भावने च नीचै र्गोत्रस्य ॥25 ॥ तद्विपर्ययो नीचै र्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥26 ॥ विघ्न-करणमन्तरायस्य ॥27 ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) षष्ठोऽध्याय नमः ॥

अथ सप्तोऽध्यायः

हिंसानृतस्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥1 ॥ देश-सर्वतोऽणु-महती ॥2 ॥ तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ॥3 ॥ वाङ्मनो-गुप्तीर्यादान-निक्षेपण-समित्यालोकितपान-भोजनानि पञ्च ॥4 ॥ क्रोध लोभभीरुत्व-हास्यप्रत्याख्या-नान्यनुवीचि भाषणं च पञ्च ॥5 ॥ शून्यागार विमोचिता-वास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्य-शुद्धि-सधर्माविसंवादाः पञ्च ॥6 ॥ स्त्रीराग कथाश्रवण-तन्मनोहराङ्ग-निरीक्षण-पूर्व-रतानुस्मरण-वृष्येष्टरस-स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥7 ॥ मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष-वर्जनानि पञ्च ॥8 ॥ हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ॥9 ॥ दुःखमेव

वा ॥10 ॥ मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमानाविनयेषु ॥11 ॥ जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम् ॥12 ॥ प्रमत्त-योगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा ॥13 ॥ अस-दभिधान-मनृतम् ॥14 ॥ अदत्तादानं स्तेयम् ॥15 ॥ मैथुन-मब्रह्म ॥16 ॥ मूर्च्छा परिग्रहः ॥17 ॥ निःशल्यो व्रती ॥18 ॥ अगार्यनगारश्च ॥19 ॥ अणुव्रतोऽगारी ॥20 ॥ दिग्देशानर्थ-दण्डविरति-सामायिक-प्रोषधोपवासोप-भोग-परिभोग-परिमाणातिथि-संविभागव्रतसम्पन्नश्च ॥21 ॥ मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता ॥22 ॥ शङ्काकांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टिप्रशंसा संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः[2] ॥23 ॥ व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥24 ॥ बन्ध वधच्छेदाति-भारारोपणान्न-पाननिरोधाः ॥25 ॥ मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेख-क्रियान्यासापहार-साकारमन्त्र-भेदाः ॥26 ॥ स्तेनप्रयोगतदाहृतादान विरुद्धराज्याति-क्रम-हीनाधिक-मानोन्मान-प्रतिरूपकव्यवहाराः ॥27 ॥ परविवाहकरणेत्व-रिकापरिगृहितापरिगृहीता-गमना-नङ्गक्रीडा-कामतीव्रा-भिनिवेशाः ॥28 ॥ क्षेत्र-वास्तु-हिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्य-भाण्ड[1] प्रमाणाति क्रमाः ॥29 ॥ ऊर्ध्वा-धस्तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि ॥30 ॥ आनयन-प्रेष्यप्रयोग-शब्द-रूपानुपात-पुद्गलक्षेपाः ॥31 ॥ कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोप-भोगपरिभोगाऽनर्थक्यानि ॥32 ॥ योगदुष्प्रणिधाना नादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥33 ॥ अप्रत्य-वेक्षिता-प्रमार्जितोत् सर्गादान-संस्तरोप क्रमणा-नादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ॥34 ॥ सचित्त सम्बन्ध-सम्मिश्राभिषव-दुःपक्वाहाराः ॥35 ॥ सचित्त-निक्षेपा-पिधान-परव्यपदेश-मात्सर्य्य-कालातिक्रमाः ॥36 ॥ जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानु बन्ध-निदानानि ॥37 ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गोदानम् ॥38 ॥ विधिद्रव्य-दातृपात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥39 ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) सप्तमोऽध्यायाय नमः ॥

पाठान्तर : 1. सिरि भू वलय आचार्य कुमेन्दु में भाण्ड है 2. रतिचारा

अथ अष्टमोऽध्याय

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्ध हेतवः ॥1 ॥ स कषायत्वाज् जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ॥2 ॥ प्रकृति-स्थित्यनुभव-प्रदेशास् तद्विधयः ॥3 ॥ आद्यो ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायु-र्नाम-गोत्रान्तरायाः ॥4 ॥ पञ्च-नव-द्वयष्टा-विंशति-चतुर्द्वि-चत्वारिंशद्-द्वि-पञ्चभेदा यथाक्रमम् ॥5 ॥ मति-श्रुता-वधिः-मनः पर्यय-केवलानाम् ॥6 ॥ चक्षु-रचक्षु-रवधि-केवलानां निद्रा-निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च ॥7 ॥ सदसद्-वेद्ये ॥8 ॥ दर्शन-चारित्र-मोहनीयाकषाय-कषाय-वेदनीयाख्यास्-त्रि-द्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषाय-कषायौ हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक-वेदा-अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ॥9 ॥ नारकतैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ॥10 ॥ गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग-निर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान-संहनन स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णानुपूर्व्या[1]गुरुलघुपघात-परघातातपो-द्योतोच्छ्वास-विहायो गतयः प्रत्येक-शरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय-यशः कीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ॥11 ॥ उच्चैर्नीचैश्च ॥12 ॥ दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणाम् ॥13 ॥ आदितस्-तिसृणा-मन्तरायस्य च त्रिंशत् सागरोपम-कोटी-कोट्यः परा स्थितिः ॥14 ॥ सप्तति-र्मोहनीयस्य ॥15 ॥ विंशति-र्नाम-गोत्रयोः ॥16 ॥ त्रयस्-त्रिंशत्सागरो-पमाण्यायुषः ॥17 ॥ अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य ॥18 ॥ नामगोत्रयोरष्टौ ॥19 ॥ शेषाणामन्तर्मुहूर्ता ॥20 ॥ विपाकोऽनुभवः ॥21 ॥ स यथानाम ॥22 ॥ ततश्च निर्जरा ॥23 ॥ नाम प्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात् सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्म-प्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः ॥24 ॥ सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥25 ॥ अतोऽन्यत्पापम् ॥26 ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) अष्टमोऽध्यायाय नमः ॥

पाठान्तर : 1. पूर्व्य

नवमोऽध्यायः

आस्रवनिरोधः संवरः ॥1 ॥ स गुप्ति समिति धर्मानुप्रेक्षा परीषहजय चारित्रैः ॥2 ॥ तपसा निर्जरा च ॥3 ॥ सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ॥4 ॥ ईर्या-भाषैषणादान-निक्षेपोत्सर्गाः समितयः ॥5 ॥ उत्तम-क्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्यागाकिञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः ॥6 ॥ अनित्याशरण-संसारैकत्वान्यत्वा-शुच्यास्रव संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभ-धर्मस्वाख्यातत्त्वानुचिन्तन-मनुप्रेक्षाः ॥7 ॥ मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥8 ॥ क्षुत्पिपासा-शीतोष्ण-दंशमशक-नाग्न्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्याक्रोश-वध-याचना-लाभ-रोग-तृणस्पर्श-मलसत्कारपुरस्कार-प्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥9 ॥ सूक्ष्म-साम्परायच्छद्मस्थ-वीतरागयोश्चतुर्दश ॥10 ॥ एकादश जिने ॥11 ॥ बादरसाम्पराये सर्वे ॥12 ॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥13 ॥ दर्शन-मोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ॥14 ॥ चारित्रमोहे नाग्न्यारति-स्त्रीनिषद्या-क्रोश-याचना-सत्कार-पुरस्काराः ॥15 ॥ वेदनीये शेषाः ॥16 ॥ एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥17 ॥ सामायिकच्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यातमिति चारित्रम् ॥18 ॥ अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रस परित्याग-विविक्त शय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ॥19 ॥ प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ॥20 ॥ नव चतुर्दश पञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥21 ॥ आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग-तपश्छेद-परिहारोपस्थापनाः ॥22 ॥ ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ॥23 ॥ आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गणकुलसंघ-साधु-मनोज्ञानाम् ॥24 ॥ वाचना-पृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः ॥25 ॥ बाह्या भ्यन्तरोपध्योः ॥26 ॥ उत्तम-संहननस्यैकाग्र-चिन्ता निरोधो ध्यानमान्त-र्मुहूर्तात् ॥27 ॥ आर्त्तरौद्रधर्म्य-शुक्लानि ॥28 ॥ परे मोक्ष-हेतू ॥29 ॥ आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति समन्वाहारः ॥30 ॥ विपरीतं मनोज्ञस्य ॥31 ॥ वेदनायाश्च ॥32 ॥ निदानं च ॥33 ॥ तदविरत-देशविरत-

प्रमत्तसंयतानाम् ॥34 ॥ हिंसानृत-स्तेय-विषय-संरक्षणेभ्यो रौद्र-मविरत-देशविरतयोः ॥35 ॥ आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम् ॥36 ॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥37 ॥ परे केवलिनः ॥38 ॥ पृथक्त्वैकत्व-वितर्क-सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपातिव्युपरत-क्रिया निवर्तीनि ॥39 ॥ त्र्येकयोग-काययोगायोगानाम् ॥40 ॥ एकाश्रये सवितर्क-वीचारे पूर्वे ॥41 ॥ अवीचारं द्वितीयम् ॥42 ॥ वितर्कः श्रुतम् ॥43 ॥ वीचारोऽर्थ-व्यञ्जनयोग-संक्रान्तिः ॥44 ॥ सम्यग् दृष्टि-श्रावक-विरतानन्त-वियोजक-दर्शनमोह-क्षप-कोप शमकोपशान्त-मोहक्षपक-क्षीणमोह-जिनाःक्रमशोऽसंख्येय-गुण-निर्जराः ॥45 ॥ पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥46 ॥ संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थलिङ्गलेश्योपपाद स्थान-विकल्पतः साध्याः ॥47 ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) नवमोऽध्यायाय नमः ॥

अथ दशमोऽअध्यायः

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् ॥1 ॥ बन्धहे-त्वभाव-निर्जराभ्यांकृत्स्नकर्म-विप्रमोक्षोमोक्षः ॥2 ॥ औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ॥3 ॥ अन्यत्र केवल-सम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ॥4 ॥ तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ॥5 ॥ पूर्व-प्रयोगादसङ्गत्वाद्-बन्धच्-छेदात्तथा-गतिपरिणामाच्च ॥6 ॥ आविद्ध कुलाल-चक्रवद्-व्यपगतले-पालाबुवदेरण्ड-बीजवदग्नि-शिखावच्च ॥7 ॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥8 ॥ क्षेत्र-काल-गति-लिङ्गतीर्थ-चारित्र-प्रत्येकबुद्ध-बोधित-ज्ञानावगाहनान्तर-संख्याल्प-बहुत्वतः साध्याः ॥9 ॥

॥ इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) दशमोऽध्यायाय नमः ॥

अक्षर-मात्रपदस्वरहीनं, व्यजन-संधिविवर्जितरेफम्।
साधुभिरत्रमम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ।1।
दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य, भाषितं मुनिपुङ्गवैः ।2।
तत्त्वार्थ- सूत्रकर्तारं, गृद्ध-पिच्छोप- लक्षितम्।

वन्दे गणीन्द्रसंजात, मुमास्वामी मुनीश्वरम् ।3।
पढम चउक्के पढमं, पञ्चमए जाण पुग्गलं तच्च।
छह सत्तमे हि आस्सव, अट्ठमे बंध णायव्वो ।4।
णवमे संवर णिज्जर, दहमे मोक्खं वियाणे हि।
इह सत्त तच्च भणियं, दहसुत्ते मुणिवरिं देहिं ।5।
जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अजरामरं ठाणं ।6।
तवयरणं वयधरणं, संजमसरणं च जीवदयाकरणम।
अन्ते समाहिमरणं, चउगइ दुक्खं णिवारेई ।7।
कोटिशतं द्वादशचैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्य, मेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि ।8।
अरहंत भासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवयं सिरसा ।9।
गुरवः पांतु नो नित्यं, ज्ञानदर्शननायकाः।
चारित्रार्णवगम्भीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः ।10।

॥ इति तत्त्वार्थ सूत्रम् ॥

रिश्तों का भी दांव लगाना पड़ता है,
गाँव से दूर जाके कमाना पड़ता है।
सच्चाई की जीत यकीनन होती है,
पहले तो नुकसान उठाना पड़ता है॥

''संसार के दुःखी रोगी व्यक्ति को देखकर संवेदना प्रकट करें एवं तीन बार भावना करें सभी को औषधि, भोजन की प्राप्ति हो''

न धन का ना धनिक का, होता है सम्मान।
किन्तु धनिक के दान का, होता है सम्मान॥

कविता

माता-पिता और गुरु चरणों में

माता-पिता और गुरु चरणों में प्रणमत बारंबार।
हम पर किया बड़ा उपकार, हम पर किया बड़ा उपकार॥
माता ने जो कष्ट उठाया, वह ऋण कभी न जाय चुकाया।
उंगली पकड़ कर चलना सिखाया, ममता की दी शीतल छाया॥
जिनकी गोद में पलकर हम कहलाते हैं होशियार.....॥
हम पर किया.....॥
पिता ने हमको योग्य बनाया, कमा-कमाकर अन्न खिलाया।
पढ़ा-लिखा गुणवान बनाया, जीवन पथ पर चलना सिखाया।
जोड़-जोड़ अपनी सम्पत्ति का, बना दिया हकदार....॥
हम पर किया.....॥
तत्त्व ज्ञान गुरु ने दर्शाया, अंधकार को दूर हटाया।
हृदय में भक्ति दीप जलाकर, प्रभु दर्शन का मार्ग बताया।
बिना स्वार्थ ही किया करें, ये तीनों बड़े उदार......॥
हम पर किया.....॥

ये कागज की नाव

ये कागज की नाव, तेरी कब तक चलेगी
कभी न कभी तो पानी में गलेगी-2....
किया पाप तूने औरों को कराया,
गरीबों को तूने, बहुत ही सताया,
ये निर्धन की दौलत तुझे कब तक फलेगी,
कभी न कभी..............
ये ऊँची हवेली और ऊँचे हवाले,
नहीं साथ देंगे, तेरे ही घर वाले,

जिस दिन ये तेरी, जवानी टलेगी,
कभी न कभी..............
औरो को तूने बहुत ही सताया,
नहीं धर्म के काम में, मन लगाया,
ये सुन्दर सी काया तेरी चित्ता में जलेगी,
कभी न कभी..............

तू एकाकी

लेखकः मुनि श्री भावसागर जी महाराज

तू ही दिया तू ही बाती
सारी यात्रा एकाकी
तू दादा तू ही नाती
सारी यात्रा एकाकी
मिलगी तुझको अंतिम पाती
सारी यात्रा एकाकी
फूल जायेगी तेरी छाती
होगी जब यात्रा एकाकी
सुख और खुशियाँ जब है आती
होती है जब यात्रा एकाकी
ज्ञाता दृष्टा बन जाता
होती यात्रा एकाकी
छूट जायेंगे साथी संगाती
होती यात्रा एकाकी
तू ही दूल्हा तू ही बराती
सारी यात्रा एकाकी
मन की इच्छायें जब है जाती
होती यात्रा एकाकी

मेरे गुरु का स्वरूप

रचयिताः बा.ब्र. देव भैया हीरापुर

आचार्य श्री के पद पंकज की, मैं धूली माथ लगाता हूँ।
विद्यासागर चरण युगल में, अपना शीश नवाता हूँ।
पिछी कमण्डलु छोड़ जगत की, अन्य न कोई माया है।
तन पर कोई वस्त्र न विस्तर, अम्बर की ही छाया है।
बरखा बरसे या सर्दी कांपे, उष्ण परिषह भाया है।
ऋतुओं का प्रभाव न कोई, नग्न दिगम्बर काया है।
समवशरण का भान कराते, महावीर बिम्ब दर्शाया है।
सामायिक में लीन ऋषि, मैं उनको शीश नवाता हूँ।
विद्यासागर पद पंकज........॥

रत्नाकर हैं, हैं वरदानी, और जगत क्या पूजा है।
निर्ग्रंथ मुनि सम विद्या दानी, कलयुग में क्या दूजा है।
स्नान करे न दंत मांजना, लोंचन केश किया करते।
प्रतिदिन गुरुजी विधि सहित, इकबार अहार किया करते।
एकासन में खड़े खड़े ही, अंजुली अहार लिया करते।
प्रतिक्रमण में प्रवृत्त यति, मैं उनको शीश नवाता हूँ।
विद्यासागर पद पंकज.................॥

ढलते दिन से उदय भान तक, मौन धारणा करते है।
गगन जहाज न नदि नाव न थल सवार ये करते है।
कांटे कंकड़ तपती भूमी, नंगे पग पैदल चलते है।
सूक्ष्मजीव की दया विचारें, गुरु शीश झुकाये चलते है।
स्थिर नहीं ठिकाना कोई, नदि धार सम बहते है।
करते निंदा निंदा आलोचन अपनी, मैं उनको शीश नवाता हूँ।
विद्यासागर पद पंकज.....॥

निराशा भाग जायेगी

साधना कर ले अंतर की
सफलता मिलती जायेगी
रोक ले मन की इच्छा को
कली मन की खिल जायेगी
जीत ले काम मद क्रोध ईर्ष्या
अपने भीतर की
विषय का दास मत बन रे
समझ ले शक्ति भीतर की
तजो मन मोह ममता को
निराशा भाग जायेगी
प्रभु का आसरा ले ले
करो सेवा तुम जन-जन की
प्रमादों को तजो मनुवा
जगा ले पौरूष निज चेतन
सिद्धियां सब तेरी होगी
चेतना जाग जायेगी
जिंदगी के लम्बे रस्ते
कही टेड़े कहीं मेढ़े
नियत के खा रहा मानव
बोकर शूल के पेड़े
किये का फल तू पायेगा।

हाइको

मुनि भावसागर

*****

गुरुकृपा को
बता नहीं सकते
है अनुभूत

*****

गोकुल में भी
गुरुकुल बना तो
रही गुरु कृपा

*****

गुरुकृपा से
साधु तो प्रभु कृपा
से बनू सिद्ध

*****

ऋद्धि नहीं है
आज क्योंकि बुद्धि है
चलायमान

*****

ऊँ नमः
सबसे क्षमा, सबको क्षमा
सुखी रहें सभी आत्मा
सभी बनें परमात्मा

'' जो हमसे गुणों में अधिक है उनको देखकर हमारे चेहरे खिल जाना चाहिए''

कविता

मुनि भावसागर

भाव को है घाव
हो रहा है रक्तस्राव
हो रहा है दर्द का अभाव
ये है कर्म का प्रभाव

केश लोंच करते समय
अपने बालों
को देखा
मुट्ठी भर थे

पहले भक्ति फिर भुक्ति
इससे मिले शक्ति
फिर करो युक्ति
जिससे मिले मुक्ति

मिथ्यात्व का वमन
कषायों का शमन
इन्द्रियों का दमन
सम्यक्त्व में रमण
भगवान् को नमन
हो जायेगा चमन
आत्मा में रमण
बढ़ेगी लगन
हो कष्टों का सहन
हो मोक्ष को गमन

मुक्तक

रूप तुम्हारा मधुरम सा निराला है।
जैसे भरा अमृत रस का प्याला है॥
तुम्हें देख हठै आंखों का जाला है।
तप तपाया भेष दिगम्बर आला है॥
कितना परिषह सहते तुम हो।
कलयुग के तीर्थंकर तुम हो॥
यूँ सहते उपसर्गों को तुम हो।
सच जैसे भगवन ही तुम हो...॥
बात करें प्राणी मात्र की तो अल्पसंख्यक मानव है।
सब जीवों का कर्ता बनता राज करे क्या दानव है॥

मोक्ष का द्वार

भावों को निर्मल किये बिना मोक्ष नहीं जा पाते है
सिद्धों की बातें करने से नहीं सिद्ध बन जाते हैं
मोक्षशास्त्र या छहढाला को रटने भर से
आदिनाथ को तज सीमंधर को भजने भर से
मुनियों को छोड़ सूरी बन सूर्यमंत्र देने भर से
शुद्धात्मा को तज लोकाचार के पूजन भर से
कपड़ों को पहिने पहिने मोक्ष नहीं जा पाते है
सिद्धों की बातें करने......................
पापी और अभागे है, साधु निंदा करने वाले
स्वादु ही स्वादु है पंथों के विभर्ग बताने वाले
अरिहंत संत ग्रंथ पद को बंटवाने वाले
सिद्धों का पंथ बतायें पंथों को बतलाने वाले
रत्नत्रय के पंथ बिना मोक्ष नहीं जा पाते है
सिद्धों की बातें करने....................
तीर्थंकर ज्ञान के धारी, ज्ञात उन्हे है मोक्ष मिलेगा
काल लब्धी उन्हे मगर बिना तपस्या कहाँ मिलेगा
चक्री सम वैभव तज जंगल को जाते क्यों
वस्त्राभूषण तज भेष दिगम्बर वो धरते क्यों
तप चर्या दिगम्बरत्व बिना मोक्ष नहीं जा पाते है
सिद्धों की बातें करने.....................

''चलो वक्त के साथ तो, होगें सारे काम ।
आगे पीछे वक्त के, चलते बिगड़े काम॥''

''समाज में यदि कोई गुणों से हीन हो तो भी जब हमारे ऊपर विपत्ति आती है तब वह काम आता है''

उस दिन को कर याद

उस दिन को कर याद की, तू माटी में मिल जायेगा।
तुझको दुनियां की हकीकत, का पता चल जायेगा॥
आदमी दुनियां में आकर, घर बनाता है मगर।
इक दिन छोड़कर जाना, उसको क्या खबर॥
तेरी जिंदगी का सूरज, जिस घड़ी ढल जायेगा।
तुझको दुनियां...॥
इस दुनिया में कोई न तेरा, जीवन इक सपना है।
मतलब के सब नाते रिस्ते, माता पिता भाई बहना है॥
जो है तुझको सबसे प्यारा, मृतक देख भग जायेगा।
तुझको दुनियां...॥
सजधज जिस दिन मौत, होगी तेरे सिर पर सवार मौत।
एक पल की भी तुझको, मोहलत न देगी मेरे यार।
हकदार सब बन जायेगें, जब तेरा दम निकल जायेगा॥
तुझको दुनियां...॥
तुझको कफन पहनायेंगे छीनकर धन दौलत तेरी।
तेरे घर वाले ये शिला देगे तुझे चाहत का तेरी॥
काया तेरी जमीं दफन या, तुझको जलाया जायेगा॥
तुझको दुनियां...॥

''धर्म व्यापार नहीं है''
कोई मेरी सहायता करें तो मैं उसकी सहायता करूँ इस प्रकार की भावना जब हमारे चित्त में उदित होती है तब वहाँ धर्म न रहकर व्यापार बन जाता है।

कविता

मुनि भावसागर

हवा बहती बहती
कहती है कि
तुम मेरे समान उपकारी बनो
ऐसे नहीं तनो
क्योंकि जो झुकता है वह
पेड़ तूफान के द्वारा भी नहीं गिरता
और जो अकड़ में खड़ा रहता है
वह गिर जाता है।
मैं भी लम्बी यात्रा करती हूँ
पश्चिमी दिशाओं बहती हुई
कई प्रदेशों, पहाड़ियों, नदियों
समुद्री, मनुष्यों, जीव-जन्तुओं
को स्पर्श करती हुई पहुँचती हूँ
फिर भी मेरी खबर से
सभी अखबार बेखबर रहते हैं।
हवा ने कहा मेरा अखबार है
मेरे ईश्वर का हृदय

मुक्तक

कठिन परिषह सह कर मुनि उपसर्गों से तर जाते है।
तप तपाया भेश दिगम्बर महावीर का भान कराते है॥
चलते फिरते मुनि तपस्वी, जो स्वयं तीर्थ बन जाते है।
करते करते गुरु वंदना, क्रंदन से हम कुंदन बन जाते है॥
हे प्रभु मुझे ज्ञान दो, गीत तुम्हारे गा सकूँ।
आया हूँ दर पर तुम्हारे, महिमा गुरु की गा सकूँ॥
मन की भावनाओं को, शब्द माला पहना सकूँ।
भावनाओं की नींव पर, शब्दों के महल बना सकूँ॥

णमोकार मंत्र का ध्यान करने से लाभ

णमोकार मंत्र का ध्यान करने से क्लेश, दुख, भय, दरिद्रता, रोग आदि उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार अग्नि की एक चिंगारी से बारूद के बड़े-बड़े ढेर नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं अपितु एकाग्रचित्त से किया गया इस मंत्र का ध्यान निर्वाण सुख की प्राप्ति का परम साधन है।

णमोकार मंत्र को कब पढ़ना चाहिए?

णमोकार मंत्र का चिंतन निरंतर करते रहना चाहिए, किन्तु प्रातः उठने पर, सोने के पहले, भोजन के प्रारम्भ -अंत में, जीवों के घात हो जाने पर, किसी भी नियम के टूट जाने पर, कोई भी संकट आने पर एवं कोई भी नवीन कार्य करने के पूर्व कम से कम नौ बार णमोकार मंत्र अवश्य पढ़ना चाहिए।

णमोकार मंत्र का 9 या 108 बार जाप इसलिए करते हैं

9 का अंक शाश्वत है, उसमें कितनी भी संख्या का गुणा करें, गुणनफल को आपस में जोड़ने से 9 ही रहता है, शाश्वत पद पाने की भावना से 9 बार णमोकार मंत्र पढ़ा जाता है। कर्मों का आस्रव 108 प्रकार से होता हैं, आस्रव से बचने के लिए 108 बार णमोकार मंत्र जपते हैं। णमोकार मंत्र जाप से कर्मों की निर्जरा होती है। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन णमोकार मंत्र की जाप अवश्य करनी चाहिए।

णमोकार मंत्र की महिमा के उदाहरण -

1. मरते हुए कुत्ते को जीवन्धरकुमार ने णमोकार मन्त्र सुनाया, जिसके प्रभाव से कुत्ता मरकर स्वर्ग में देव हुआ।
2. णमोकार मंत्र की अटूट श्रद्धा से अंजनचोर को आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हुई।
3. अनंतमती ने इस मंत्र के प्रभाव से अपने शील की रक्षा की।
4. पद्मरुचि सेठ ने रास्ते में पड़े मरणासन्न बैल को मन्त्र सुनाया। बैल मरकर राजपुत्र हुआ। कालान्तर में पद्मरुचि सेठ श्रीराम बने तथा बैल का जीव सुग्रीव बना।

माला में 108 दाने क्यों होते हैं?

पापास्रव के 108 द्वार होते हैं, समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ। कृत, कारित, अनुमोदना। मन, वचन, काय। क्रोध, मान, माया, लोभ 3×3×3×4=108। इन 108 प्रकार के किए गए पाप आस्रव से छुटकारा पाने के लिए माला में 108 दाने होते हैं।

माला में 108 मणियों का महत्व

भारतीय अंक गणित के अनुसार प्राकृत संख्या 0,1,2............ आदि से 9 तक ही होती हैं। उन्हीं से अन्य समस्त संख्या की रचना करके गिनती की जाती है। अतः 9 सर्वोत्कृष्ट और अक्षय संख्या, क्योंकि 9 में कितनी संख्या से गुणित किया जाए तो, भी गुणनफल की संख्या का संपूर्ण योग 9 ही आता है। जैसे- 9×2=18, 1+8=9 अथवा 9×12=108 इनका योग भी 1+08=9 ही आता है। इसी प्रकार माला में 108 संख्या का योग 9 होता है। अन्य संख्या का योग आगे भी ऐसे ही जानना चाहिए। इसी सिद्धांत को दृष्टि में रखकर एक माला में 108जाप की जाती है।

एक माला में 108 जाप होने के अन्य तर्क पूर्ण कारण और भी है। जैसे ब्रह्मा शब्द का वाचक अंक 108 है। क्योंकि ब्रह्म शब्द ब+र+ह्+म इन चार अक्षरों से बना है। अ स अः तक क्रमशः 16स्वर और क से ह तक 36व्यंजन अक्षर होते हैं। क व्यंजन से ब 22 वॉ., र 27 वॉ., ह 33 वॉ., म 25 वॉ अक्षर है। इन सब (23+27+33+35) का योग करने पर 108आता है। संसार शब्द स+अ+स+अ+2 अक्षरों से बना है+क व्यंजन से स अक्षर 32वॉ, 2 अक्षर 27 वॉ व्यंजन है। और अ स्वर से अं 15 वॉ आ 2 रा स्वर हैं। इन सब (32+15+32+2+27) का योग 108होता है।

ज्योतिष शास्त्रों के अनुसार 12 राशियाँ और 9 ग्रह होते हैं। जन्म होते ही संसारी जीव उन्हीं से प्रभावित होता है। उनके कुल भेद निकालने के लिए 12 से 9 का गुणा करने पर 108होते हैं। इसलिये भी माला में 108मणियाँ होती हैं।

स्वर विज्ञान के अनुसार एक स्वस्थ्य व्यक्ति की सुषुम्ना नाड़ी 24 घंटे में 108बार चलती है। उसी नाड़ी के समय योगी ध्यान योग साधना की विशेष

सिद्धि प्राप्त करता है।

जैन धर्मानुसार मनुष्य ही कर्म आश्रव को रोक सकता है। कर्म आश्रव क्रोध, मान, माया, लोभ इन 4 कषाय, मन, वचन, काय इन 3 योग, समरंभ, समारंभ, आरंभ में तीन कृत, कारित, अनुमोदनादि 3, इन सब का गुणा करने पर 108होता है। इन्हीं से 108प्रकार से कर्मों का आश्रव होता है। उन कर्मो के आश्रवों को रोकने के लिए एक माला में 108बार मंत्र जाप करते हैं।

माला में 108मणियों के अलावा तीन मणियाँ और होती हैं। उसके ऊपर एक फूल जैसा बना होता है, जिसे सुमेरू कहते हैं। उसे लांघा नहीं जाता और तीन मणियों के समय, सम्यग्दर्शनाय नमः, सम्यग्ज्ञानाय नमः, सम्यग्चारित्राय नमः बोलकर जाप प्रारंभ करते हैं।

अभिषेक से फायदा

प्रासुक जल की धारा जिनबिम्ब के ऊपर इस तरह प्रवाहित करना कि जिनबिम्ब अच्छी तरह अभिसिंचित हो सके, इस क्रिया कोअभिषेक कहते हैं। राग-द्वेष रूपी मलिनता से मुक्त होने की भावना से अभिषेक किया जाता है। अभिषेक के दौरान जिनबिम्ब के अत्यन्त निकट आने का भाव भगवान् को स्पर्श करने का अवसर प्राप्त होता है। पञ्चमेरु, नन्दीश्वर, अकृत्रिम जिनालयों में देवतागण जिनबिम्बों का अभिषेक करते हैं। अभिषेक करना आगमोक्त परम्परा है। अभिषेक के फल से मनुष्य सुमेरु पर्वत पर अभिषेक को प्राप्त होता है। अर्थात् तीर्थंकर बन सकता है।

हवन इसलिए किया जाता है?

किसी भी अनुष्ठान के दौरान अष्ट गंध अथवा दस गंध द्वारा हवन किया जाता है। हवन सामग्री में जिन प्राकृतिक तत्त्वों का मिश्रण होता है। उसके जलने से उसमें जो धुँआ उत्पन्न होता है। उससे नकारात्मक शक्तियों का नाश होता है। विशुद्ध वर्गणाओं का प्रसार होता है। एवं बड़ी मात्रा में ऑक्सीजन गैस का निर्माण होता है।

हवन का उद्देश्य

संकल्प किया धार्मिक कार्य के समापन के पश्चात् सात प्रकार के मन्त्रों (पीठिका मन्त्र, जाति मन्त्र, निस्तारक मन्त्र, ऋषि मन्त्र, सुरेन्द्र मन्त्र,

परमराज मन्त्र एवं परमेष्ठी मन्त्र) के द्वारा आहुतियाँ एवं दशांश आहुतियाँ दी जाती हैं। जिनका उद्देश्य है सप्त परम पदों की प्राप्ति की भावना-

सज्जातिः सद्गृहस्थं च पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता।
साम्राज्यं परमार्हन्त्यं परनिर्वाणमित्यपि॥

सद्जाति, सद्गृहस्थ, दीक्षा, सुरेन्द्रपद, चक्रवर्ती, अर्हंत एवं निर्वाण सप्त परम स्थान हैं। जिस तरह धूप अग्नि में स्थूल शरीर को नष्ट करके ऊर्ध्वगमन करती है, इसी प्रकार हम भी अपनी आत्मा को कर्म मुक्त करके ऊर्ध्वगमन करके सिद्धत्व को प्राप्त करें।

धूप से हवन करने का फल-

संकल्प किए धार्मिक कार्य के समापन के पश्चात् सात प्रकार के मंत्रों के द्वारा आहुतियां एवं दशांश आहुतियां दी जाती है। जिससे सप्त परम पदों की प्राप्ति होती है।

1. पीठिका मंत्रों से आहुति देने से परिणामों की विशुद्धि एवं स्थिरता की प्राप्ति होती है यह मंगल कार्य की आधार शिला है।
2. जाति मंत्रों से कल्याण करने वाले सद्विचार ही उत्पन्न होते है।
3. निस्तारक मंत्रों से हवन करने पर उपन्न असद् विचार कल्याणकारी आत्मा में अधिक समय तक स्थिर रहने वाले होते हैं।
4. ऋषि मंत्रों से हवन करने पर समाधि मरण पूर्वक मरण करते हुए सद्गति प्राप्त होती है।

धूप से हवन करने का महत्व

हवन में धूप का प्रयोग वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक रूप से भी सिद्ध होता है। हमारा मुख्य लक्ष्य सिद्ध शिला की प्राप्ति का है अर्थात् औदारिक शरीर से परमौदारिक एवं सूक्ष्म आत्मतत्त्व की प्राप्ति करना। आत्मा पर लिप्त रागद्वेष विषयविकार रूपी कर्मों का प्रक्षालन या कर्म दहन कर कर्ममल दूर करना है।

हवन कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करते ही यज्ञ स्थल की वायु हल्की होकर ऊपर उठती है, जिससे चारों ओर की वायु रिक्त स्थान की पूर्ति हेतु आती है। हवन पदार्थ की वाष्प उस वायु में उपस्थित जहरीली गैसों को नष्ट

करके वातावरण स्वच्छ करती है। इनमें मुख्यत: सल्फर डाई ऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड, क्लोरीन, कार्बन मोनो ऑक्साइड आदि के प्रभाव को कम करने की अद्‌भुत क्षमता यज्ञ के धुयें में होती है।

डॉक्टरों ने परीक्षण के द्वारा सिद्ध किया है कि यज्ञ से उत्पन्न गैसों में चेचक रक्तविकार, आंत्ररोग, निमोनिया, हैजा, तपैदिक आदि रोगों के कीटाणुओं को दूर करके पर्यावरण को कीटाणुरहित करने की विशेष क्षमता है।

तीर्थंकर का बल

बारह मनुष्य के बराबर	–	एक बैल में बल
बारह बैलों के बराबर	–	एक भैंसा
बारह भैंसा के बराबर	–	एक घोड़ा
सौ घोड़े के बराबर	–	एक हाथी
एक हजार हाथियों के बराबर	–	एक सिंह
दश हजार सिंहों के बराबर	–	एक शार्दूल
एक लाख शार्दूल के बराबर	–	एक अष्टापद
दो अष्टापदों के बराबर	–	एक नारायण
नौ नारायणों के बराबर	–	एक चक्रवर्ती
करोड़ चक्रवर्तियों के बराबर	–	एक देव
करोड़ देव के बराबर	–	एक इन्द्र
असंख्यात इन्द्रों के बराबर	–	एक तीर्थंकर में बल होता है

सामान्य केवली यहाँ से मोक्ष गए?

प्रत्येक तीर्थंकर के काल में अनेक सामान्य केवली मोक्ष को प्राप्त हुए हैं।

कुलभूषण–देशभूषण	–	कुंथलगिरि
वरदत्तादि मुनि	–	नैनागिरि (रेसिन्दीगिरि)
गुरुदत्तादि मुनि	–	द्रोणगिरि
राम, हनुमान, सुग्रीव	–	मांगीतुंगी
नंग, अनंगकुमार	–	सोनागिरि
इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण	–	बावनगजा(चूलगिरि)

युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन	–	शत्रुञ्जय
जम्बूस्वामी	–	मथुरा
श्रीधर केवली	–	कुण्डलपुर
स्वर्णभद्रादि मुनि	–	पावागिरि
रावण के सुत आदिकुमार	–	नेमावर (रेवातट)
2 चक्रवर्ती एवं 10 कामकुमार	–	सिद्धवरकूट
साढ़े तीन करोड़ मुनि	–	मुक्तागिरि
बलभद्र मुनि	–	गजपंथा

प्रथमानुयोग

जिन ग्रन्थों में महापुरुषों के चरित्र का वर्णन किया गया हो, बोधि, समाधि का कथन हो, उन्हें प्रथमानुयोग के ग्रन्थ कहते हैं। जैसे–

पद्मपुराण	7 वीं शताब्दी	आचार्य रविषेण स्वामी
आदिपुराण	9 वीं शताब्दी	आचार्य जिनसेन स्वामी
हरिवंशपुराण	9 वीं शताब्दी	आचार्य जिनसेन स्वामी
उत्तरपुराण	9 वीं शताब्दी	आचार्य गुणभद्र स्वामी
प्रद्युम्न चरित्र	14 वीं शताब्दी	आचार्य सोमकीर्ति

करणानुयोग

जिन ग्रन्थों में लोक और अलोक के विभाग का, काल परिवर्तन तथा चारों गतियों का वर्णन किया गया हो, उन्हें करणानुयोग कहते हैं। जैसे–

तिलोयपण्णत्ति	6 वीं शताब्दी	आचार्य यतिवृषभ जी
त्रिलोकसार	10 वीं शताब्दी	आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती

चरणानुयोग

जिन ग्रन्थों में श्रावक व मुनि के चरित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा का वर्णन हो, उन्हें चरणानुयोग के ग्रन्थ कहते हैं। जैसे–

भगवती आराधना	पहली शताब्दी	आचार्य शिवकोटि
मूलाचार	दूसरी शताब्दी	आचार्य वट्टकेर स्वामी
रत्नकरण्डकश्रावकाचार	तीसरी शताब्दी	आचार्य समन्तभद्र स्वामी

द्रव्यानुयोग

जिन ग्रन्थों में छह द्रव्य, सात तत्त्व, पुण्य-पाप आदि का वर्णन हो, उन्हें द्रव्यानुयोग के ग्रन्थ कहते हैं। जैसे-

श्री षट्खण्डागम	आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबली	ई.पूर्व दूसरी शताब्दी
श्री कषायपाहुड	आचार्य गुणधर	पहली शताब्दी
समयसार	आचार्य कुन्दकुन्द	दूसरी शताब्दी
प्रवचनसार	आचार्य कुन्दकुन्द	दूसरी शताब्दी
अष्टपाहुड	आचार्य कुन्दकुन्द	दूसरी शताब्दी
तत्त्वार्थसूत्र	आचार्य उमास्वामी	दूसरी शताब्दी
आत्मानुशासन	आचार्य गुणभद्र	नवमीं शताब्दी
कार्तिकेयानुप्रेक्षा	आचार्य कार्तिकेयस्वामी	दूसरी शताब्दी
इष्टोपदेश	आचार्य पूज्यपाद	पाँचवीं शताब्दी

यदि जैनदर्शन पढ़ना चाहते हैं तो क्रमशः ग्रन्थ पढ़ें -

जिनधर्म प्रवेशिका, छहढाला, श्रीपाल चरित्र, प्रद्युम्न चरित्र, पद्मपुराण, रत्नकरण्डकश्रावकाचार, द्रव्य संग्रह, इष्टोपदेश, गुणस्थान प्रवेशिका, तत्त्वार्थसूत्र, अष्टपाहुड, आलापपद्धति, जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, सर्वार्थसिद्धि, समयसार, ज्ञानार्णव आदि।

सम्यग्दर्शन की महिमा -

1. सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम नरक छोड़कर शेष नरकों में, भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देवों में, स्त्रीवेद, स्थावरकायिकों, विकलत्रय एवं पशु पर्याय में नपुंसक, हीनांग, दरिद्री, अल्पायु और खोटे कुल में जन्म नहीं लेता।

2. तीनों लोक और तीनों काल में जीवों को सम्यक्त्व के समान अन्य कोई भी कल्याणकारी वस्तु नहीं है।

3. सम्यग्दृष्टि जीव कान्ति, प्रताप, विद्या, वीर्य, विजय, वैभव, उच्चकुल आदि गुणों से युक्त होता है।

4. सम्यग्दर्शन के प्रभाव से अनंत संसार काल घटकर, मात्र अर्द्धपुद्गल परावर्तन काल रह जाता है।

ऋद्धिधारी मुनियों के दृष्टान्त-

1. मथुरा नगरी में जब महामारी रोग हुआ था, तब वहाँ सप्त ऋषि आये और महामारी दूर हुई।

2. काय बल ऋद्धिधारी बालि मुनिराज ने अपने अंगूठे से कैलाश पर्वत को दबाया था तब पर्वत के नीचे बैठा दशानन रो पड़ा।

3. ध्यान में मुनिराज मग्न थे, तब राजा सिंहचन्द्र की रानी को सर्प ने काटा तब राजा सिंहचन्द्र ने रानी को मुनि चरणों के पास रखा। ऋद्धिधारी मुनि के तन को स्पर्श करती हुई वायु रानी को लगी और उसका विष दूर हो गया।

4. महासती चंदना ने उड़द के छिलकों का आहार दिया तो वह महाश्रमण महावीर के प्रभाव से अमृत रूप हो गया।

5. कान्तारचर्या करने वाले मुनि रामचन्द्रजी को राजा-रानी ने आहारदान दिया, तब पंचाश्चर्य हुए और आहार अक्षीण हो गया।

6. अकृतपुण्य ने अमितगति मुनिराज को कटोरे में रखी हुई खीर का आहार दिया वह आहार अक्षीण हो गया।

स्वाध्याय से लाभ -

स्वाध्याय से ज्ञान का विकास, कषाय की मंदता, सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति, वैराग्य की वृद्धि, पुण्य की प्राप्ति, कर्मों की निर्जरा, धर्म की प्रभावना, श्रुत परम्परा का विकास, संदेह का निवारण, परिणामों की निर्मलता आदि लाभ होते हैं।

स्वाध्यायी होने के बाद इन बातों का ख्याल रखना चाहिए

1. ज्ञान का अहंकार नहीं करना। 2. अपने ज्ञान से समाज में विसंवाद नहीं कराना। 3. हठाग्रही नहीं होना। 4. विषय का प्रतिपादन अपनी मर्जी से नहीं करना। 5. लौकिक फल की इच्छा नहीं करना। 6. ज्ञान से अर्थोपार्जन की भावना नहीं करना। 7. साधर्मी के प्रतिकूल नहीं बोलना। 8. अपना ज्ञान किसी पर नहीं थोपना। 9. जिनवाणी की विनय करना। 10. पंथवाद के झगड़े में पड़कर और दूसरे की कषाय में वृद्धि नहीं करना। 11. कटाक्षपूर्ण स्वाध्याय नहीं करना।

मिथ्यादृष्टि भी समवसरण में जाते हैं-

देवाणं सम्मत्तुप्पत्तिकारणाणि काणि चे?

जिणबिंबद्धि महिमा दंसण- जाइस्मरण-महिद्धिंदादिदंसण जिणपाय मूलधम्म सवणादीणिं (ध.पु., 3/157)

अर्थ- देवों में सम्यग्दर्शन उत्पत्ति के करण कितने हैं? जिनबिम्ब सम्बन्धी अतिशय के माहात्म्य का दर्शन, जातिस्मरण का होना, महर्द्धिक इन्द्रादिक का दर्शन और जिनदेव के पादमूल में धर्म का श्रवण आदि। देवों में सम्यक्त्वोत्पत्ति के कारण हैं।

विशेष- जिनदेव के पादमूल में धर्मश्रवण से सम्यक्त्वोपपत्ति हो रही है। अतः इसी से सिद्ध है, कि वहाँ मिथ्यादृष्टि भी जाते हैं।

अभव्य भी समवसरण में जाते हैं।

तन्निशम्यास्तिका सर्वे तथेति प्रतिपेदिरे।
अभव्या दूर भव्याश्च मिथ्यात्वोदय दूषिता॥ (उ.पु., 171-178)

अर्थ- जो भव्य थे उन्होंने जैसा भगवान् ने कहा वैसा श्रद्धान कर लिया और जो अभव्य अथवा दूरभव्य थे वे मिथ्यात्व के उदय से दूषित होने के कारण संसार बढ़ाने वाली मिथ्यात्व वासना नहीं छोड़ सके। इसी प्रकार महाकवि पुष्पदन्त महापुराण में कहा है कि जिननाथ के द्वारा अभव्य जीव भी चाहे (सम्बोधित किए जाते) हैं। वे एक नहीं अनेक देखें जाते हैं। (1/11/30/264-265) (जिन सरस्वती खण्ड-2)

णमोकार मन्त्र का जप करना सबसे बड़ा स्वाध्याय है।

आचार्य श्री नागसेन जी ने तत्त्वानुशासन ग्रन्थ में कहा है कि-

स्वाध्यायः परमस्तावज्जपः पञ्चनमस्कृते।
पठनं वा जिनेन्द्रोक्त शास्त्रस्यैकाग्र चेतसः॥90॥

अर्थ- एकाग्रचित से पञ्च णमोकार मन्त्र का जप करना सबसे बड़ा स्वाध्याय है, अथवा जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा उपदिष्ट शास्त्रों का पढ़ा सो भी परम स्वाध्याय कहलाता है। (जिन सरस्वती खण्ड-2)

तीर्थङ्कर महावीर को मोक्ष गये इतने वर्ष हो गए?

तीर्थङ्कर महावीर को मोक्ष गए कितना समय हो गया इसके बारे में अनेक मत हैं। इनमें युक्ति द्वारा 2500 वर्ष वाला उचित लगता है। वह इस प्रकार है- पञ्चम काल के प्रारम्भ में मनुष्यों की आयु 120 वर्ष एवं अन्त में घटते- घटते 20 वर्ष रहती है। पञ्चम काल 21,000 वर्ष का है। आपने मान लिया कि पञ्चम काल 20,000 वर्ष का है। जब 20,000 वर्ष में 100 वर्ष घटती तब 2,500 वर्ष में 12 1/2 वर्ष घटेगी। अतः आज भी 107 1/2 वर्ष के व्यक्ति मिल जाते हैं। अतः इस युक्ति से तीर्थङ्कर महावीर को मोक्ष गये 2,500 वर्ष हुए हैं।

गुरु उपासना के अतिचार-

1. गुरु से हँसी मजाक करना।
2. गुरु के बराबर आसन से बैठना।
3. आपके घर में साधु के आहार न होने पर या समय पर न होने पर आप जो-जो कहते हैं।
4. उनके आने पर खड़ा न होगा।
5. अनादर करना।

स्वाध्याय के अतिचार-

1. ह्रस्व-दीर्घ का सही उच्चारण नहीं करना।
2. बहुत जल्दी एवं बहुत तेजी से स्वाध्याय करना।
3. स्वाध्याय करते समय बीच में किसी से बातचीत करना।
4. हाथों को पैरों में एवं काँख आदि में लगाना।
5. मङ्गलाचरण के बिना स्वाध्याय प्रारम्भ करना एवं अन्त में भी मङ्गलाचरण (जिनवाणी) नहीं करना।

विशेष- स्वाध्याय के प्रारम्भ में कायोत्सर्ग पूर्वक श्रुत एवं आचार्य भक्ति करते हैं एवं समापन में कायोत्सर्ग पूर्वक श्रुत भक्ति करते हैं।

नमस्कार के पाँच भेद

शिर के झुकाने को एक अङ्ग नमस्कार, दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार

करने को द्वि अङ्ग नमस्कार, एक शिर और दोनों हाथों को जोड़कर नमस्कार करने को त्रि अङ्ग नमस्कार, दोनों हाथों तथा दोनों जंघाओं को झुकाकर नमस्कार करने पर चतुरङ्ग नमस्कार, दोनों हाथों, दोनों जंघाओं एवं शिर इन पाँचों को झुकाकर नमस्कार करने को पञ्चाङ्ग नमस्कार कहते हैं। (अ.श्रा., 8/62-64)

स्नान पाँच प्रकार के-

1. पैर धोना, 2. घुटने तक धोना, 3. कमर तक धोना, 4. कण्ठ तक धोना, 5. शिर तक स्नान करना।

अन्तराय कर्म किसे कहते हैं एवं इसके कितने भेद हैं?

जो दान, लाभ, भोग, उपभोग एवं वीर्य में विघ्न डालता है, वह अन्तराय कर्म है। इसके पाँच भेद हैं।

दानान्तराय- जिसके उदय से दान देने की इच्छा होने पर भी दान न दे सके, वह दानान्तराय कर्म है।

लाभान्तराय- जिसके उदय से लाभ की इच्छा होने पर भी लाभ नहीं हो पाता वह लाभान्तराय कर्म है।

भोगान्तराय- जिसके उदय से भोगने की इच्छा होने पर भी भोग नहीं सकता है, वह भोगान्तराय कर्म है।

उपभोगान्तराय- जिसके उदय से उपभोग की इच्छा होने पर भी उपभोग नहीं कर सकता है, वह उपभोगान्तराय कर्म है।

वीर्यान्तराय- जिसके उदय से कार्य करने का उत्साह होने पर भी निरुत्साहित हो जाता है, वह वीर्यान्तराय कर्म है।

मिथ्यादृष्टि देव मरण चिह्न को देखकर क्या विचार करते हैं?

देवों की छः माह आयु शेष रहने पर उनके शरीर की कान्ति मन्द हो जाती है गले की माला मुरझा जाती है और मणिमय आभूषणों का तेज मन्द हो जाता है। इस प्रकार के मृत्यु चिह्न देखकर मिथ्यादृष्टि देव अपने मन में इष्ट वियोगज आर्त्तध्यान रूप इस प्रकार का शोक करते हैं कि हाय! संसार की सारभूत स्वर्ग की इस प्रकार की सम्पत्ति छोड़कर अब स्त्री के अशुभ निन्दनीय और कुत्सित गर्भ में होगा? अहो! विष्ठा और

कृमि आदि से व्यापत उस गर्भ में दीर्घ काल तक अधोमुख पडे रहने की वह दुस्सह वेदना हमारे द्वारा कैसे सहन की जाएगी। इस प्रकार के आर्त्तध्यान रूप पाप से भवनत्रिक और सौधर्म-ईशान कल्प में स्थित मिथ्यादृष्टि देव स्वर्ग से च्युत होकर बादर पर्याप्त पृथिवीकायिक, जलकायिक और प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों में जन्म लेते हैं। (सि.सा.दी, 15/328-391)

प्र सम्यग्दृष्टि देव मरण चिह्नों को देखकर क्या विचार करते हैं?

सम्यग्दृष्टि देव मरण चिह्नों को देखकर विचार करते हैं कि यहाँ स्वर्गों में इन्द्रों के भी न किञ्चित् यम, नियम हैं और न तप है और न दान आदि हैं और तप आदि के बिना मोक्षरूप शाश्वत सुख की प्राप्ति हो नहीं सकती किन्तु मनुष्य भव में मनुष्यों को मोक्ष के साधन भूत तप, रत्नत्रय, व्रत एवं शील आदि सभी प्राप्त हो जाते हैं अतः अब अद्‌भुत पुण्य परिपाक से हम लोगों को मनुष्य भव और उत्तम कुल की प्राप्ति हो रही है उसे प्राप्त कर हम लोग अनन्त सुख की खान स्वरूप मोक्ष का साधन करेंगे। (सि.सा.दी, 15/392-95)

प्र जब सूर्य प्रथम वीथी (गली) में रहता है तब दिन 18 मुहूर्त का एवं जब सूर्य अन्तिम वीथी में रहता तब दिन 12 मुहूर्त का होता है तो ह्रास किस प्रकार से होता है?

सूर्य की 184 वीथियाँ है, किन्तु अन्तराल 183 में ही पड़ता है। जबकि 183 गलियों में 6 मुहूर्त का अन्तर पड़ता है, तब एक गली 6/183 मुहूर्त अर्थात् 2/61 मुहूर्त (1 35/61) मिनट होता है।

जिस दिन सूर्य अभ्यन्तर गली में भ्रमण करता है उस दिन 18 मुहूर्त का दिन होता है, किन्तु जिस दिन दूसरी गली में भ्रमण करता है उस दिन 2/61 मुहूर्त घट जाता है अर्थात् 18/1-2/61=17-59/61 मुहूर्त का दिन होता है इसी प्रकार प्रत्येक गली में 2/61, 2/61 घटते-घटते 17-57/61, 17-55/61, मुहूर्त का दिन होते-होते जिस दिन अन्तिम गली में पहुँचता है उस दिन 12 मुहूर्त का दिन होता है। इसी प्रकार अभ्यन्तर गली की ओर बढते हुए प्रत्येक गली में 2/61 मुहूर्त बढ़ते हैं। तब दिन मान 12-2/61, 12-4/61 आदि क्रम से बढ़ते हुए अभ्यन्तर गली में 18 मुहूर्त का दिन हो जाता है। (त्रि.सा., 380)

जैन पूजाओं में प्रचलित अशुद्ध पाठ

क्र.	पूजा	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
1.	सिद्ध पूजा	परमात्मानं ममूर्त	परमात्मान ममूर्त
2.	सिद्ध पूजा	समाधान सर्वज्ञ	समाधान सर्वज्ञ
3.	णमोकार माहात्म्य	पढमं हवइ	पढ़मं होइ
4.	सिद्ध पूजा	ज्ञायक के आकार	ज्ञायक ज्ञेयाकार
5.	सिद्ध पूजा	प्रसिद्ध विशुद्ध	प्रसिद्ध विशुद्ध
6.	विनय पाठ	वीतराग मेट्यो अबै भैट्यो राग	वीतराग भैट्यो अबै मैट्यो राग
7.	पंचमेरु (पाठ) पूजा	परम सुख हो	परम सुख होय
8.	सोलहकारण पूजा	परम होय	परम गुरु होय
9.	नंदीश्वर पूजा	वाबन पुँज करो	वाबन पूज करो
10.	परमर्षि पाठ	जंघावलि श्रेणि	जंघानल श्रेणि
11.	परमर्षि पाठ	विषं विषा दृष्टि विषं	विषाविषा दृष्टि विषा
12.	चौबीसी पूजा	वर-कंज-कदंब-कुरंड	वर-कंज-कदंब-करंड
13.	चौबीसी पूजा	जय कुन्थु-2 वादिक रखेयु	जय कुन्थु-2 आदिक रखेयु
14.	चौबीसी पूजा	भक्ति मुक्ति दातार	भुक्ति मुक्ति दातार
15.	शान्तिपाठ	हो न दुष्काल भारी	हो न दुष्काल मारी
16.	शान्तिपाठ	दिव्य विकट पुष्पन	दिव्य विपट पुष्पन
17.	विसर्जन पाठ	और विसर्जन हूँ नहीं	और विसर्जन हू नहीं
18.	णमोकार माहात्म्य	ऐसो पञ्च णमोक्कारो	एसो पञ्च णमोयारो
19.	अर्घ	धवल मंगल ज्ञान	धवल मंगल गान
20.	अर्घ	उदक चंदन तंदुल	उदक चंदन तण्डुल
21.	समुच्चय विद्यमान	विरहमान	विहरमान
22.	बीस तीर्थंकर पूजा	चऊ कर्म की	कर्मन की त्रेसठ
23.	देवशास्त्र गुरु पूजा	त्रेसठ प्रकृति नाश	प्रकृति नाश

24.	भजन	आठ पहर की चौसठ घड़ियां	आठ पहर की साठिहु घड़ियां
26.	भजन	मंत्र जपो नवोकार	मंत्र जपो नमोकार
		समोसरण	समवसरण
		आव्हानन	आहवानं
		श्री मंदिर	सीमन्धर
		जुग मंदिर	जुगमन्धर
		चिन्तवन	चिंतन
		आधीन	अधीन
		धर्मध्यान	धर्म्यध्यान
		अरहनाथ	अरनाथ
		पद्मप्रभु	पद्मप्रभ
		चन्द्रप्रभु	चन्द्रप्रभ
37.	परमर्षि पाठ	घोर गुणाश्चरन्तः	घोरगुणं चरन्तः
38.	चतारि दण्डक	केवलि पण्णत्रो धम्मो सरणं पव्वज्जामि	केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि

अष्ट द्रव्य ऐसे चढ़ाये

1. जल के कलश से तीन धाराएँ, चढ़ाने वाले कलश में मन्त्र पढ़कर छोड़ें।
2. अपने दोनों हाथों की अनामिका अंगुली में चन्दन लेकर चढ़ाये या फिर चन्दन का घोल हो तो चन्दन के कलश में एक धारा चढ़ाने वाले खाली कलश में छोड़ें।
3. अपनी दोनों मुट्ठी में अक्षत सफेद चावल भर लें एवं अंगूठा अंदर करके धीरे धीरे मुट्ठी ढ़ीली करके अक्षत छोड़ते जाये।
4. अपने दोनों हाथों में पुष्प भरकर चढ़ाने वाली थाली में वर्षा के रूप में बरसावें।
5. एक छोटी प्लेट में नैवेद्य भरकर भगवान् को चढ़ावे, प्लेट भगवान् की तरफ करके ही चढ़ावे।

6. छोटी प्लेट में कपूर प्रज्जवलित कर जलता हुआ थाली में चढ़ावें एवं घृतदीप, रत्नदीप, कर्पूर, दीप के दीपक से आरती उतारें अथवा प्लेट में पीले चिटक चढ़ावें।
7. अपने दाये हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुली में धूप रखकर अंगूठे से विनय पूर्वक धूप अग्नि में छोड़ें।
8. छोटी प्लेट में उत्तम फल भरकर भगवान् की ओर प्लेट करके थाली में फल समर्पित करें।

पूजन में धोती दुपट्टा ही पहनना क्यों आवश्यक है?

वस्त्रों का जीवन में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। वस्त्रों के माध्यम से विचारों में काफी प्रभाव पड़ता है। जैसे वस्त्र होते है वैसे भाव और विचार सहज ही बनने लगते है। जिस प्रकार शादी के समय पहने गये पेंट, शर्ट आदि से भाव सांसारिक विषय वासनामयी होते है। श्वेत वस्त्र धारण करने वाली लड़की यदि बाजार से गुजरती है तो उसे देखकर लोगों में पूज्यता के भाव बनते है और यदि अश्लील पारदर्शी वस्त्र पहनती है तो विकारों को जन्म देने में कारण बनती है। बच्चा यदि मिलिट्री ड्रेस पहन लेता है तो अपने आप उसका सीना जवानों की तरह तन जाता है। उसी प्रकार पूजन में धोती, दुपट्टे पहनने से विचार धार्मिक शुद्ध सत्विक बनने लगते है। इसलिए धोती, दुपट्टा पहनना आवश्यक है।

गर्भगृह में शुद्धि जरुरी

वर्तमान में श्रावक जिन वस्त्रों में लघुशंकादि क्रियाएँ करता है उन्हीं वस्त्रों को पहिनकर जिनालय आता है। अधिकांश श्रावक-श्राविकाओं के वस्त्र साफ तो होते हैं पर शुद्ध नहीं, क्योंकि वस्त्र धोबी या नौकर से धुलाये जाते हैं तथा विस्तर, पर्दा आदि से स्पर्शित होते हैं। इसलिए गृहस्थ कार्यों में उपयोग में आने वाले वस्त्रों को पहिनकर गर्भगृह में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

मंदिर में वेदी की प्रदक्षिणा क्यों देते हैं?

चूंकि वेदी भगवान की गंधकुटी का प्रतीक होती है और समवशरण में भगवान के चार मुख दिखाई देते हैं क्योंकि समवशरण में भगवान के

पीछे बैठने वालों को भगवान के दर्शन नहीं हो सकते। इसी उद्देश्य को लेकर मंदिर में दर्शन करते समय भगवान के चारों मुखों का अवलोकन करने के लिए वेदी की प्रदक्षिणा दी जाती है एवं परिक्रमा दुनिया का सबसे बड़ा वशीकरण मंत्र है। परिक्रमा लगाने से सब वश में हो जाते है। शादी में जब एक लकड़ी की परिक्रमा लड़के लड़की लगाते है तो जीवन भर के लिए एक-दूसरे के हो जाते है यदि भक्त भगवान की परिक्रमा लगा ले तो भक्त और भगवान भी एक दूसरे के हो जायें तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। प्रभु की परिक्रमा लगाने से संसार की परिक्रमा रूक जाती है।

मंदिर में घण्टा क्यों बजाया जाता है?

मंदिर में घण्टा बजाने के कई कारण है।

1. घण्टा समवशरण में बजने वाली देव दुंदुभि का प्रतीक है।
2. घण्टा बजाने का एक वैज्ञानिक कारण और भी है। जैसे ही हम घण्टा बजाते हैं और घण्टे के नीचे खड़े हो जाते है तो उसकी ध्वनि तरंगों के माध्यम से हमारे सांसारिक विचारों का तारतम्य टूट जाता है। और विचारों पर एक झटका लगता है जिससे विचार धार्मिक होने लगते हैं। घण्टा अप्रमत्तता का प्रतीक है।
3. घण्टा बजाने की परम्परा आज अभिषके करते समय प्रचलित है जो संकेत करता है कि अभिषेक प्रारंभ होने जा रहा है। अर्थात् अभिषेक का समय सूचक यंत्र वर्तमान परिपेक्ष्य में घण्टा बन गया है।

विसर्जन क्या होता है ?

पूजा का समापन ही विसर्जन है। पूर्व में पूजन का सङ्कल्प पञ्चमहागुरु भक्ति से करके सिद्धभक्ति, चैत्यभक्ति पूर्वक पूजन करते हुये अन्त में शान्ति एवं समाधि भक्ति पूर्वक पूजन को पूर्ण करते है। पूजन अनुष्ठान क्रिया में होने वाली त्रुटियों, असावधानियों/अज्ञानता के लिए प्रभु चरणों में क्षमायाचना करके मन्त्र पूर्वक ठोने पर पुष्पक्षेपण करके पूजन का विसर्जन करना चाहिए।

मुनि श्री क्षमासागर जी महाराज

पूजा के पर्यायवाची

यागो यज्ञः कृतुः पूजा सपर्येज्याध्वरो मखः।
मह इत्यपि पर्यायवचनान्यर्चनाविधेः॥
पूजार्हणार्चा यजनं च यज्ञ इज्या सपर्या परिसवेनं च।
महः क्रतुः कल्प उपासनेति प्रभृत्युपाख्या जिनपूजनस्य॥601॥

याग, यज्ञ, कृतु, पूजा, सपर्या, इज्या, अध्वर, मख, मह, सेवा, कल्प, उपासना आदि। पाप क्रियाओं का त्याग करके, परिग्रह को निषिद्ध करके, विकल्प रहित निर्मल भावों से पूज्य की आराधना में, मन, वचन और कायपूर्वक समर्पित होना पूजा है। अर्थात् अनीचा (निष्काम) भक्ति यथार्थ पूजा है। (उत्तर पुराण 67/193 प्रतिष्ठा पाठ 14)

जाप का फल

गृहे जपफलं प्रोक्तं वने शतगुणं भवेत्।
पुण्यारामे तथारण्ये सहस्रगुणितं मतम्॥
पर्वते दशसहस्रं नद्यां लक्षमुदास्रतं।
कोटि देवालये प्राहुरनन्तं जिनसन्निधौ॥

घर में मन्त्राराधन करने से एक गुणा, उपवन में सौ गुना, नशिया एवं वन में हजार गुना, पर्वत पर दस हजार गुना, नदी पर लाख गुना, देवालय में करोड़ गुना, जिनेन्द्रदेव के समक्ष अनन्त गुना फलदायक होता है। अतः कार्य सिद्धि के लिये मन्त्राराधना देवालय या जिनेन्द्रदेव के समक्ष करना चाहिये। (गोम्मट प्रश्नोत्तर चिन्तामणि 855)

प्रथम देव दर्शन विधि (जन्में बालक की)

पुत्र-पुत्री के जन्म का सूतक परिवारजनों को 10 दिन का एवं माँ को 45 दिन का होता है। 45 दिन के पश्चात् शुभयोग, वार एवं तिथि में पुत्र/पुत्री को घर से गाजेबाजे के साथ जिनालय में देवदर्शन गृहस्थाचार्य द्वारा कराना चाहिए।

सर्वप्रथम शिशु की अमृतस्नान मन्त्र से मन्त्रित जल के द्वारा शुद्धि करें,

गन्धोदक लगाकर तिलक करके, रक्षामन्त्र एवं शान्तिमन्त्र से मन्त्रित पुष्पक्षेपण करें। यदि आचार्य, मुनि, आर्यिका या व्रती का सान्निध्य हो तो उनका आशीर्वाद लेकर उनसे शिशु के कान में 9 बार णमोकार मन्त्र मधुर ध्वनि में सुनवाएँ। माँ को सङ्कल्पित करें कि वह 8 वर्ष तक निरन्तर शिशु को जिनदर्शन के संस्कार एवं प्रेरणा देती रहे एवं मद्य, मांस, मधु तथा व्यसन से बचाये, क्योंकि 8 वर्ष तक उसके द्वारा किए गये पाप का दोष माता-पिता को लगता है।

जिनालय में श्रीफल, मङ्गलद्रव्य, वस्त्र, वेष्टन (आहार), शास्त्र, वर्तन, दानराशि आदि सामर्थ्य अनुसार शिशु की ओर से भेंट कर उसे जिनशासन की दान परम्परा से जोड़ें।

सोलह सुख

पहला सुख निरोगी काया, दूसरा सुख घर में हो माया।
तीजा सुख कुलवंती नारी, चौथा सुख सुत आज्ञाकारी॥
पंचम सुख सदन हो घर का, छठवाँ सुख न करज हो पर का।
सप्तम सुख चले व्यापारा, अष्टम सुख सबका हो प्यारा॥
नवम निराकुलता हो मन में, दशम न वैर विरोध स्वजन में।
ग्यारम सुख मन लगे धरम में, बारम सुख न फँसे कुकरम में॥
तेरम सुख हो साधु समागम, चौदम सुख मर्मज्ञ जिनागम।
पन्द्रम सुख शीलव्रतधारी, सोलह सुख हो अर्हंत पुजारी॥
ये सब पाए बने गृह त्यागी, धन्य धन्य वे नर अरु नारी।
इस भव साधु सन्त कहाये, पर भव स्वर्ग मुक्ति सुख पाये॥

व्रती एवं महाव्रती का अन्तिम संस्कार

लेखक -पं. सनत कुमार विनोद कुमार रजवांस

व्रत जीवन को पवित्र करके मृत्युञ्जयी बनाते हैं। व्रतों से व्रती की कषाएँ इतनी कृश हो जाती हैं कि मरण भी महोत्सव बन जाता है। व्रती जीवन इतना निष्पृह हो जाता है कि शरीर छूटने की तैयारी स्वयं होने लगती है। व्रतों की सार्थकता का यही बिन्दु है जहाँ साधक सल्लेखनाव्रत धारण करके समाधिमरण

की तैयारी करता है। वहीं जीवन के अन्तिम क्षणों में सम्पूर्ण परिग्रह एवं आरम्भ का त्याग करके समाधिमरण कर शरीर का विसर्जन करता है। व्रती/महाव्रती के प्राणान्त के पश्चात् देहान्त की क्रिया आगमानुसार ही सम्पादित करना चाहिए। शव का अन्तिम संस्कार यथाशीघ्र करना चाहिए क्योंकि शव में अन्तर्मुहूर्त में त्रस जीवों की गुणित रूप से उत्पत्ति होने लगती है।

मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, उत्तम श्रावक, मठमति (भट्टारक) के शव को गृहस्थों द्वारा बनाई गई शिविका या पालकी में स्थापित कर ग्राम के बाहर ले जाते हैं।

शव को क्षेपण करने का स्थान नगरादि से न अति दूर हो, न अति समीप हो, प्रकाशयुक्त हो, मर्दन किया हुआ हो अत्यन्त कठोर एवं अपवित्र न हो, बिलादि से रहित हो, बहुत ऊँचा, बहुत नीचा न हो, अति सचिक्क्ण न हो, रजरहित और बाधारहित हो।

क्षपक की वसतिका से शवक्षेपण करने का स्थान नैऋत्य, दक्षिण और पश्चिम दिशा में होना चाहिए। अन्य दिशा में क्षेपण करने से सङ्घ में कई दोष उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे आग्नेय दिशा में शव क्षेपण करने से ईर्ष्या, वायव्य दिशा में कलह, पूर्व में सङ्घ में फूट, उत्तर में व्याधि, ईशान में पक्षपात आदि दोष होते हैं। जिस दिशा में ग्राम हो उस दिशा में क्षपक की पीठ करके देह स्थापित करना चाहिए। मृतक के निकट मयूर पिच्छिकादि उपकरण भी स्थापित करें क्योंकि यदि कोई क्षपक अन्त में संक्लेश परिणामों द्वारा सम्यक्त्व की विराधना करके व्यन्तरादिक देवों में उत्पन्न हुआ हो तो पिच्छी सहित अपने शरीर को देखकर मैं पूर्व भव में मुनि था यह जान सकेगा और पुनः धर्म में दृढ श्रद्धा करके सम्यग्दृष्टि हो जायेगा।

सामान्य मुनि की समाधि होने पर शरीर के दाह संस्कार के समय सिद्ध, योगि, शान्ति और समाधि भक्ति करना चाहिए। आचार्य की समाधि होने पर शरीर के दाह संस्कार के समय सिद्ध, श्रुत, चारित्र, योगि, शान्ति और समाधि भक्ति करना चाहिए। अपने गण के मुनि के समाधिस्थ होने पर उस दिन सर्व सङ्घ का उपवास करके स्वाध्याय भी नहीं करना चाहिए। दूसरे गण के मुनि के समाधिस्थ होने पर स्वाध्याय नहीं करना चाहिए उपवास भजनीय है।

शिविका में क्षपक के शव को स्थापित कर दृढ़ बन्धनों से बाँधा जाता है ताकि वह उछल न सके। शव की पीठ ग्राम की ओर हो, शव को निश्चित मार्ग से शीघ्रता पूर्वक ले जाना चाहिए। मार्ग में न खड़ा होना चाहिए और न पीछे मुड़कर देखना चाहिये। शव के आगे एक गृहस्थ मुट्ठी में कुश/दर्भ लेकर चले, एक गृहस्थ कमण्डलु को जल से पूर्ण करके तथा उसकी नालिका आगे की ओर करके जल की पतली-पतली धार छोड़ते हुए आगे-आगे चले (अग्नि ले जाने का विधान भी कही-कहीं पर है) पीछे मुड़कर न देखे। पूर्व में देखे हुए स्थान पर डाभ की मुट्ठी खोलकर मुनि की देह को स्थापन करने की भूमि को सम करें। यदि डाभ/तृण न मिलें तो ईंट के चूर्ण अथवा शुष्क केशर से संस्तर (स्थान) को सम करें। संस्तर को सम बनाकर चारों ओर खूँटी गाड़ें और उनको मौली से तीन बार वेष्ठित करें। पद्मासन से शव को सिर से पैर तक माप लें। सर्वप्रथम भूमि पर चन्दन का चूरा डालें फिर रोली से त्रिकोण रूप तीन रेखाएँ माप के अनुसार डालें जो टूटी एवं विषम न हों। त्रिकोण के तीनों कोणों पर उल्टे तीन स्वस्तिक बनावें और तीनों रेखाओं के ऊपर तीनों ओर सब मिलकर नौ, सात या पाँच 'रं' लिखें त्रिकोण के मध्य में 'ऊँ ह्रीं अर्हं' लिखें फिर 'ऊँ ह्रीं ह्रः काष्ठ-सञ्चयं करोमि स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़कर त्रिकोणाकार ही लकड़ी जमावें पश्चात् 'ऊँ ह्रीं ह्रौं झौं अ सि आ उ सा काष्ठे शवं स्थापयामि स्वाहा' मन्त्र उच्चारण करते हुए शव को काष्ठ पर स्थापित करें और 'ऊँ ऊँ ऊँ ऊँ रं रं रं रं अग्निसन्धुक्षणं करोमि स्वाहा' यह मन्त्र बोलकर अग्नि लगावें। शव को दाह संस्कार करने के बाद तीसरे दिन वहाँ जाकर उनकी अस्थियों आदि की यथायोग्य क्रिया करनी चाहिए, क्योंकि अग्निकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु गोमट्टसार में तीन दिन बताई गयी है अर्थात् तीन दिन में अग्नि पूर्ण शान्त हो जाती है। क्षपक की समाधिमरण से अन्तिम संस्कार तक की समस्त क्रियाएँ अत्यन्त पुण्यवर्धक एवं प्रेरणास्पद होती हैं, इनका सौभाग्य श्रावक को कभी-कभी ही प्राप्त होता है। **विशेष विवरण हेतु सन्दर्भित ग्रन्थ देखें।**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची- हरिवंश पुराण 65/12, 13/799, आदिपुराण- 74/343-350/507, मरण-कण्डिका- 40/2044/593, भगवती-आराधना- 1962/1965, समाधि-दीपक- 58-62

संकल्पपूर्वकः सेव्ये नियमोऽशु-कर्मणः।
निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा-प्रवृत्तिः शुभकर्मणि॥ –सागार धर्मामृत-2/80

पंचेन्द्रिय जन्य विषयों को संकल्प पूर्वक त्याग करना और हिंसादिक अशुभ कर्मों से विरक्त होना अथवा पात्रदानादि शुभकार्यों में प्रवृत्ति करना व्रत कहलाता है।

व्रत एक पवित्र कर्म/अनुष्ठान है जो साधक की मनोदशा परिवर्तित करने में सक्षम होता है। यही कारण है कि जैनाचार्यों ने पापों से विरक्ति का नाम व्रत कहा है।

श्रावक को गृहस्थाश्रम में दैनिक आस्रव रोकने के लिए देवपूजा, स्वाध्याय, संयम, दान आदि का पालन अवश्य करना चाहिए। गृहस्थोचित कर्त्तव्यों का पालन करने से श्रावक अपने कर्मों की निर्जरा कर लेता है।

कषाय विषयाहारो त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेय शेषः लंघनं बिदुः॥

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृ. 7/271)

विषय-कषाय के साथ आहार (चारों प्रकार) का त्याग करना यथार्थ उपवास है, अन्यथा लंघन है। मात्र लंघन से आत्म कल्याण एवं कर्म निर्जरा सम्भव नहीं है। छः प्रकार का आहार निम्न प्रकार का है।

1. नोकर्माहार (तीर्थंकर) 2. कर्माहार (नारकी) 3. ओजाहार (पक्षी) 4. लेपाहार (एक इन्द्रिय वृक्षादि) 5. मानसिक आहार (देव) 6. कवलाहार (मनुष्य)। कवलाहार के चार भेद हैं-

1. खाद्य- पूड़ी, रोटी, दाल, चावल, आदि।
2. स्वाद्य- लवंग, इलायची आदि।
3. लेह्य- रबड़ी आदि चाटने वाले पदार्थ।
4. पेय- पानी, दूध, शरबत, रस आदि पीने वाले पदार्थ।

उपवास के दिन इन चारों प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है।

व्रत ऐसे करें - व्रत ग्रहण मंत्र

ऊँ अद्य भगवतो महापुरुषस्य ब्रह्मणो मतेस्मिन् .....वीर निर्वाण संवत्सरे मासानां मासोत्तमे मासे....मासे...पक्षे...तिथौ....वासरे जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे

आर्यखण्डे...प्रदेशस्य नगरे अष्टमहाप्रातिहार्यादिशोभित श्रीमदर्हत्परमेश्वर प्रतिमा/अष्टाविंशति मूलगुण-आराधक मुनिराज सन्निधौ अहं...व्रतस्य संकल्पं करिष्ये। अस्य व्रतस्य समाप्तिपर्यन्तं मे सावद्य त्यागः गृहस्थाश्रमजन्यारम्भ परिग्रहादीनापि त्यागः।

(नौ बार णमोकार मन्त्र की जाप कर व्रत ग्रहण करें।)

व्रत का संकल्प (हिन्दी)

श्री वीतराग सर्वज्ञदेव को नमस्कार कर वृषभादि चौबीस तीर्थंकरों के द्वारा प्रवर्तित जिनधर्मानुसार....श्री वीर निर्वाण संवत्सर...मास में...पक्ष में...तिथि में....वार में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र, आर्यखण्ड भारत देश के....प्रदेश स्थित...नगर में...अष्ट प्रातिहार्य से शोभित जिनेन्द्र प्रतिमा अथवा अट्ठाईस मूलगणों के पालकमुनिराज के सान्निध्य में मैं .... व्रत का संकल्प करती हूँ/करता हूँ।

इस व्रत के समाप्ति पर्यन्त यथाशक्ति पापों का त्याग कर एवं गृहस्थ संबंधी आरंभ परिग्रहादि का भी त्याग करता हूँ। इस व्रत की विधि अनुसार व्रत पूजा, व्रत कथा एवं व्रत मंत्र पूर्वक एकाशन/उपवास करूँगा/करूँगी। व्रत पूरा होने पर अपनी शक्ति अनुसार व्रत का उद्यापन करूँगा/करूँगी। हे भगवन्! मैं इस व्रत को यथा संभव शुद्धि पूर्वक करके अधिक से अधिक समय धर्म में लगाऊँगा/लगाऊँगी। फिर भी मुझसे मन से, वचन से, काय से, जाने-अनजाने में कोई गलती हो जाये तो मैं भगवान से क्षमा माँगता हूँ/माँगती हूँ।

हे भगवन्! इस व्रत को करने से मेरे सारे कष्ट दूर हो जायें, मेरे सारे दुखों का नाश हो, मुझे बोधि की प्राप्ति हो, मेरे आठों कर्मों का नाश हो और यथाशीघ्र मुझे मोक्ष की प्राप्ति हो।

हे भगवन्! इस व्रत को करने से मेरे सकल परिजनों को सुख, समृद्धि और शांति मिले। जगत् के सकल जीवों को सुख और शांति मिले।

व्रतों को करके अपनी शक्त्यनुसार उद्यापन करें तथा नैमित्तिक व्रत अनुष्ठान में मन उत्कृष्ट रूप से उत्साहित करें अर्थात् अत्यन्त प्रभावना पूर्वक अनुष्ठान कर उद्यापन करें, जिससे व्रत की महिमा बढ़े और लोगों को व्रत करने की प्रेरणा मिले।

जिनालय में महान आश्चर्य करने वाला महाभिषेक करें। फिर परिवार

एवं संघ के साथ समारोह पूर्वक महापूजा करें।

पूजा के पश्चात् अपने घर में आकर निर्दोष प्रासुक शुद्ध, मधुर और तृप्तिकारक आहार मुनिराजों को देवे, शेष बचे आहार को कुटुम्ब के साथ स्वयं ग्रहण करें। मुनिराज के न होने पर साधर्मीजनों को भोजन करावें।

जिस व्रत का उद्यापन करें उतने पूजा के बर्तन, सामग्री, छत्र, चंवर, चन्दोवा, शास्त्र, घण्टा आदि उतने ही मन्दिरों को प्रदान करें।

व्रत उद्यापन मन्त्र

ऊँ अद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरत क्षेत्रे शुभे...मासे...पक्षे...तिथौ....वासरे श्रीमदर्हत प्रतिमा सन्निधौ पूर्व....(व्रत का नाम) गृहीतं तस्य परिसमाप्तिं करिष्ये- अहं प्रमादाज्ञानवशात् व्रते जायमानदोषाः शान्तिमुपयान्ति। ऊँ ह्रीं क्ष्वीं स्वाहा। श्रीमज्जिनेन्द्रचरणेषु आनन्दभक्तिः सदास्तु, समाधिमरणं भवतु, पापविनाशनं भवतु।

ऊँ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा सर्व शान्तिर्भवतु ह्रीं नमः।

(इस मन्त्र को नौ बार जाप करें।)

व्रत उद्यापन मन्त्र (हिन्दी)

जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र के...नगर में...मास में....पक्ष में आज....तिथि...वार में श्री अर्हंत प्रतिमा/मुनिराज के सान्निध्य में....व्रत ग्रहण किया था। उसका विधि पूर्वक पालन एवं उद्यापन करके मैं आगे और व्रत करने की भावना के साथ व्रत का समापन कर रहा हूँ/कर रही हूँ।

यदि प्रमाद या अज्ञानवश व्रत के समय कोई अपराध हुए हों तो उसकी क्षमायाचना करता हूँ। ऊँ ह्रीं क्ष्वीं स्वाहा।

श्रीफल चढ़ाकर भगवान को नमस्कार कर नौ बार णमोकार मन्त्र की जाप करें।

विभिन्न व्रतों के अभ्यास के बाद आत्म कल्याण की भावना से प्रतिमा व्रत भी धारण करना चाहिए।

काक चेष्टा, वक्र ध्यानं स्वान निद्रा तथैव च।
अल्पहारी गृहत्यागी विद्यार्थी पंच लक्षणम्॥

विद्यार्थी जीवन का मूल मंत्र

विद्यार्थी जीवन	-	एक तपस्या
विद्यार्थी के साथी	-	पुस्तकें
विद्यार्थी का आचरण	-	विनम्रता
विद्यार्थी का काम	-	पढ़ाई
विद्यार्थी का विश्वास	-	कर्म करना
विद्यार्थी का भोजन	-	सात्विक और अल्पाहार
विद्यार्थी का वस्त्र	-	सादगी
विद्यार्थी का संतोष	-	ज्ञान प्राप्ति
विद्यार्थी का ध्यान	-	एकाग्रता
विद्यार्थी का उद्देश्य	-	लक्ष्य की प्राप्ति

भारतीय हिन्दी महिनों के नाम

1. चैत्र	7.	आश्विन (कुमार)
2. वैशाख	8.	कार्तिक
3. ज्येष्ठ	9.	मंगसिर (अगहन)
4. आषाढ़	10.	पौष
5. श्रावण	11.	माघ
6. भाद्रपद	12.	फाल्गुन

टिप्स- भारतीय वर्ष को सम्वत् कहा जाता है।
एक माह में दो पक्ष, कृष्ण पक्ष एवं शुक्ल पक्ष होते हैं।
महिना-मास-माह ये पर्यावाची शब्द हैं।
कृष्ण पक्ष- जिसमें चन्द्रमा की कलायें घटती हुई हो।
शुक्ल पक्ष- जिसमें चन्द्रमा की कलायें बढ़ती हुयी हो।
कृष्ण पक्ष का अंतिम 15 वां दिन अमावस्या कहलाता है एवं शुक्ल पक्ष का अंतिम 15 वां दिन पूर्णिमा कहलाता है।

''जो बिना धोये हुए चावल आदि चढ़ाकर पूजा करता है वह अत्यन्त दरिद्र के घर में दासी पुत्र के रूप में उत्पन्न होता है''

सोलह स्वप्नों का फलादेश

1.	ऐरावत हाथी	पुण्याधिकारी सर्वश्रेष्ठ पुत्र होगा।
2.	श्वेत बैल	धर्माधिकारी जगतपूज्य।
3.	सिंह	अनन्त शक्ति धारण करने वाला।
4.	लक्ष्मी अभिषेक	इन्द्रों द्वारा पाण्डुक शिला पर अभिषेक।
5.	दो पुष्पमाला	तीर्थं प्रवर्तन करने वाला।
6.	पूर्ण चन्द्रमा	तीन लोक में शांति करने वाला।
7.	उदित सूर्य	सर्व जगत में प्रतापवान।
8.	क्रीडारत मछली	अनुपम आनंद करने वाला।
9.	स्वर्ण कलश	अनेक अमूल्य निधियों का स्वामी।
10.	सरोवर	एक हजार आठ लक्षण सहित।
11.	समुद्र	सम्पूर्ण ज्ञानी (केवलज्ञानी)।
12.	रत्नजड़ित सिंहासन	तीन लोक अधिपति।
13.	देव विमान	सर्वार्थसिद्धि विमान से अवतरण।
14.	धरणेन्द्र भवन	जन्म से तीन ज्ञान का धारी।
15.	रत्न राशि	सम्पूर्ण गुणों को धारण करने वाला।
16.	निर्धूम अग्नि	आठ कर्मों का नाश करने वाला।

विवाह के सप्त वचन

1. मेरे गुरुजनों एवं कुटुम्बियों की यथायोग्य सेवा करनी होगी।
2. मेरी आज्ञा भंग नहीं करनी होगी।
3. कठोर और अप्रिय वचन नहीं कहना होंगे।
4. सत्पात्रों का आदर करना होगा।
5. मेरी आज्ञा बिना दूसरे के घर नहीं जाना होगा।
6. आचरण हीन विधर्मियों के घर नहीं जाना होगा।
7. मेरी गुप्त बात दूसरों से नहीं कहना होगी अपनी गुप्त बात मुझसे नहीं छुपाना होगी।

हे कुमार! मैं कन्या की ओर से सात वचन कहता हूँ।

1. परस्त्री सेवन नहीं करेंगे।
2. जुआ नहीं खेलेंगे।
3. धार्मिक कार्यों से वंचित नहीं करेंगे।
4. सम्पत्ति पर समान अधिकर देना होगा।
5. भोजन, वस्त्र, आभूषण की व्यवस्था करते हुए मेरी रक्षा करनी होगी।
6. अनुचित व कठोर दंड न देते हुए जीवन पर्यंत नहीं त्यागना होगा।
7. और सुनो आखिरी वचन बहुत कठोर है एक तो इनके विषय में कोई बात मालूम चलने की नहीं और गलती से चल भी जाय तो किसी से नहीं कहोगे अपने में घूट पी-पीकर रहोगें।

पालकी में बिठाने से पूर्व माता का आदिकुमार को समझाना

ना जाओ.....ना जाओ...... ना जाओ।
मेरे लाल नहीं जाओ, मेरे लाल नहीं जाओ॥
मेरे लाल नहीं जाओ, मेरे चांद नहीं जाओ।
सौगंध तुम्हें मेरी हम्हें इतना ना तड़पाओ॥
मेरे लाल नहीं जाओ, मेरे चांद नहीं जाओ।
नाजों से तुझे पाला पलकों की छांवों में॥
इतना है दुलार किया तुमको तेरी माता ने।
रो रो के मनाऊं तुम्हें मेरे लाल नहीं जाओ॥
इक बार गले मिलकर जीभर के तो रोलू मैं।
अपने इन आंसुओं से तेरे पैरों को धोलू मैं॥
माता मैं तुम्हारी हूँ मेरी गोद सजा जाओ।
मेरे लाल नहीं जाओ मेरे चांद नहीं जाओ॥

> ''जो मलिन खण्डित पुष्पों से पूजा करता है वह मरकर निर्धन नीच और म्लेच्छ के घर में उत्पन्न होता है''

आओ करें पूजन -

पूजन करते समय कब कौन सी लय में पढ़ें।

बच्चों को प्रत्येक रविवार को संगीतमय पूजन करवायें बड़ा आनन्द आयेगा। ये संस्कार उसे प्रतिदिन पूजा के लिये प्रेरणा देंगे। कुछ महत्वपूर्ण बातें जो पूजन के समय ध्यान रखें-

1. सभी बच्चे लाईन से बैठें, ड्रेस में हो। सभी के पास द्रव्य सामग्री हो अर्थात् एक थाली में 4-5 बच्चे ही पूजा करें। सभी के हाथ में पतली वाली पुस्तक हो। भले ही उसे पढ़ना आये या न आये। धीरे-धीरे उसे भी सिखायें।
2. पूजन लयात्मक हो भले ही एक ही पूजा हो, इस हेतु तर्ज कैसे एवं कौन सी ले, हमारा अध्याय (ष्द्धड्डश्चह्लद्गह्) देखें।
3. पूजन में से 5 प्रश्न पूछकर 5 इनाम देने का पहले शुरू में ही बोल दें। जिससे बच्चे ध्यान से पढ़ेंगे।
4. बीच-बीच में पूजन का अर्थ या उससे सम्बन्धित कोई भी जानकारी देते रहें।
5. पूजन के उपरान्त स्वल्पाहार की व्यवस्था अवश्य रखें।
6. अचरी (तर्ज) में फिल्मी भजन न लेकर पारम्परिक भजन ही लेने का प्रयास करें।
7. पूजा की पंक्तियों को ज्यादा दोहरायें जिससे बच्चों को याद हो जाये।
8. जिन बच्चों की आवाज सुरीली हो- लयात्मक हो उन्हें प्रोत्साहन दें।
9. पूजन करना श्रावक का आवश्यक कर्म है अतः प्रतिदिन न सही कम से कम सप्ताह में एक अथवा दो बार सामूहिक पूजन अवश्य करायें, जिससे बच्चों तथा बड़ों में संस्कार पड़ सके। कहा भी है-

देवपूजागुरुपास्ति स्वाध्यायः संयमः तपः।
दानं चेति गृहस्थानां, षट्कर्माणि दिनेदिने॥

कब-कौन सी तर्ज लें-

1. **विनय पाठ** दोहा
   - रोम-रोम से..........
   - कितना प्यारा तेरा.........
   - धीरे-धीरे चलो........

   - जीवन है पानी........
   - ओ पालनहारे...... आदि
2. **णमोकार मंत्र**
   - णमोकार मंत्र है प्यारा......
   - मंत्र णमोकार हमें प्राणों.......
   - मंत्र जपो णमोकार मनवा......
   - संदेशे आते हैं.........
   - मंत्र में प्यारा है....... आदि
3. **अपवित्र-पवित्रो वा..**
   - जीवन है पानी की बूँद....
   - मेरे सर पर रख दो गुरुवर....
4. **उदक चन्दन**
   - जीवन के किसी भी पल में.......
   - आशीष हमें देते रहना.........
5. **श्री मज्जिनेन्द्र**
   - भक्तामर स्तोत्र की तरह
6. **स्वास्ति मंगल पाठ**
   - है पारस नाम बड़ा प्यारा
   - जिस दिन से पापी मन.......
   - लक्खा तर गए तक्खा न तर जाणा
     जिनाने तेरा नाम जपिंया-2
     आदिनाथ जपियाँ, अजितनाथ जपियाँ
     संभवनाथ जपियाँ,
     अभिनंदन जपियाँ, लक्खा....
     सभी तीर्थंकर.........
   - ऊँचा है पहाड़ ऊँचा शिखरों का धाम,
     जैनियों की काशी है, ये मधुवन धाम
7. **परमर्षि मंगलपाठ**
   - तुम्हीं हो माता-पिता तुम्हीं हो....
   - अब ना करेंगे मनमानी........
   - चले है सुकुमाल देखो मुनि बनके...
   - सुगुरु की विद्या करो प्रमाणिक...
   - रंगमा-3 रे......
   - ढोल बजाके के बोल की बाबा मेरा है..
   - नाचे जो मन को मोर रे......

8. नवदेवता पूजा

(आ. पूर्णमती माताजी)

स्थापना (ज्ञानोदय छंद) – आओ जी आओ जी प्रभु जी

पूजा – भगवान मेरी नैय्या........

– माता तू दया करके.........

– जहाँ नेमी के चरण.....

– हीरे को परख लिया.........

– जिया कब तक उलझेगा........

– ओ ऽऽऽऽ गुरुवर-3
मिलेंगे तुम तो बतायेंगे
कितने कष्ट हमें......

जयमाला – झूमझूम के.......

(चौपाई) – सम्मेद शिखर जी में धर्म की वर्षा......

– मंगल भवन अमंगल हारी .... आदि

9. **अर्घ्यावली** – श्री आदिनाथ भगवान बड़े बाबा मेरे...

(ज्ञानोदय या अन्य)

10. **शान्तिपाठ** (चौपाई) – जयमाला की तरह

11. **विसर्जन पाठ** – चलते-चलते, गाते-गाते
प्रभु के गीत याद रखना,
तुम सत पथ पर चलना-2
हंसते-हंसते जीवन में प्रभु नाम को
जपना
तुम सत पथ पर चलना....

कुछ महत्वपूर्ण छंद- कौन से छंद में कौन सी अचरी

दोहा :-

- मेरी आरजू तो भगवन सुनिये, तीनों लोकों के तुम सरताज हो,
  तुम्हें दुनिया कहे है परमातमा, मुझ दुखिया की रखना लाज हो।
- जरा ध्यान में तो लाओ प्रभू को, पल छिन-छिन-छिन घट जात है,

श्री जिन गुणगान

गर अब भी न कुछ कर पाओगे तो सामने अंधेरी रात है।

- जरा सोच लो समझ लो भैय्या, ये संयम सुमेरु का भार है,
  है कठिन व्रतों का पालना, बच्चों का नहीं खिलवाड़ है।
- चांदनी फीकी पड़ जाये-2, छवि देखत श्री वीतराग की सूरज शरमाये
- तेरा द्वारा कितना प्यारा.....
- कबीर वाणी
- रोम-रोम से निकले प्रभुवर....
- मात-पिता प्रभु गुरु चरणों में प्रणाम बारम्बार,
  हम पर किया बड़ा उपकार......
- तू ज्ञान का सागर है-2, आनंद का सागर है,
  उसी आनंद के प्यासे हम....
- जीवन है पानी की बूंद......
- सोते-सोते में गुजर गई सारी जिन्दगी.....
- मैंने तेरे ही भरोसे पारसनाथ भंवर में नैय्या....
- शायद अपने पुण्योदय का अवसर आया है,
  इसीलिए तो सिद्धचक्र का पाठ रचाया है
- अपने में अपना परमातम, अपने से ही पाना रे,
  अपने को पाने हेतु बस ओर कहीं नहीं जाना रे,
- क्या मिलिए ऐसे लोगों से जो स्वयं के द्वारा ठगे गये,
  जनवाणी तो याद रही पर जिनवाणी को भूल गये...
- भला किसी का कर न सको तो....
- जाने वाले एक संदेशा गुरुवर से तुम कह देना
  तेरी याद में तड़फ रहे हैं, हमको दर्शन दे देना....
- बाबुल की दुआहें....
- गुरुदेव न जाओ छोड़ हमें तुम बिन कैसे रह पायेंगे
  इस विरह व्यथा को हे गुरुवर हम सब कैसे सह पायेंगे।
- आशीष हमें देते रहना हमें रत्नत्रय भण्डार मिले,
  हम मोक्ष मार्ग पर डटे रहें, ऐसा हमको वरदान मिले।

- नाम तुम्हारा तारण-हारा....
  भव से पार उतरने को तो बस तेरा शरणा होगा...
- ऊँचा है पहाड़....
- गुरुवर जी मुझे अंत समय मे समाधी मरण सुना देना
- गुरु नाम जपने से नवजीवन मिलता है,
  तन मन का मुरझाया उपवन खिलता है,
  अंतर के कोने में, एक दिपक जलता है,
  वो तो शिखर जी से आयो टेलिफोन
  भक्तां से बाबा बात करें-3
- म्हारो तो महावीरो सबसे न्यारो.......
- यह द्वार है मेरे वीरा का, कहना है सारे ऋषियों का,
  इस द्वार पे मेले लगते हैं, लाखों के नसीब यहाँ खुलते हैं
  जय हो-3...
  गुंजे जंगल सिंह दहाड़ो से, आती आवाज पहाड़ों से
  यहाँ नित नये मेले लगते हैं, नित ढोल और तासे बजते हैं,
  जय हो-3....
  तेरे दर का ठीकाना हो गया, बाबा जी बाबा जी,
  दिल तेरा दीवाना हो गया, बाबा जी बाबा जी
- विद्यासागर का वेष बनाया, महावीर नगर में आया,
  भक्त आने लगे, भीड़ बढ़ने लगी-2
  इनके चरणों में शीश झुकाया, वीरा ज्ञान बांटने आया,
  विद्यासागर....
- पंछी उड़ जायेगा होते ही भोर,
  पल में कट जायेगी, सांसों की ये डोर
  ल...ला...ल....
- प्रभु जी भक्ति फल देगी-2
  आज नहीं तो कल देगी-2
  जीने का संबल देगी, आज नहीं तो कल देगी

- होली खेले मुनिराज अकेले वन में होले खेले रे...
- हमें गुरुदेव तेरा सहारा न मिलता,
  भंवर में ही रहते किनारा न मिलता,
  दिखाई न देती अंधेरे में ज्योति, अगर गुरु न होते-2
- लागी लगन नहीं तोड़ना प्रभु जी मेरी...
  तेरे भरोसे मैंने बाग लगाया-मेरे भरोसे नहीं छोड़ना
- खेनी पडसी नैया म्हारो तू ही खेवनहार,
  माँझी बनकर गुरुवर अब तो कर दो बेडा पार।

सोरठा :-

- आया पर्व महान-जय जयकार-3
- लिया प्रभु अवतार- जय जयकार-3
- तेरी परम दिगम्बर मूरत को मैं हरदम निहारा करूँ
  रहूँ नहीं दूर.....
  मेरे मन मन्दिर में आ जाओ मैं हरदम पुकारा करूँ
  रहूँ नहीं दूर.......
  हे नाथ कृपा कर दो मुझ पर, गुण तेरे ही गाया करूँ,
  रहूँ नहीं दूर.....
- वीरा तेरे चरणों को नहीं छोड़ के जाना है,
  सारा जग झूँठा है, सच्चा तेरा ठिकाना है,
  वीरा तेरे चरणों में बस मेरा ठिकाना है
- माता-पिता-प्रभु-गुरु चरणों में प्रणाम बारम्बार,
  हम पर किया बड़ा उपकार....
  जिनकी गोदी में पलकर कहलाते, हम होशियार,
  हम पर किया बड़ा उपकार.....
- स्वागत करते आज तुम्हारा-2
  आओ-2 मेरे प्रिय महाराज-मंगल स्वागत है....
  तुम धन्य बनो महमान की मंगल स्वागत है....
- भज ले प्रभू का नाम मनवा जप ले प्रभु का नाम-2

बीत गयी अब आयु पूरी कुछ तो कर ले काम,
मनवा जपले प्रभु का नाम
- जीवन मेरा भोगों में बिते, ऐसा न मैंने सोचा था,
  पाप कमा गठड़ी बांधुंगा, ऐसा न मैंने सोचा था...
  तो सोचा-सोचा ही करता था, पर काम नहीं कुछ कर पाया,
  पाप कमा....
- रोम-रोम से निकले गुरुवर...
- गुरुवर का आया है तार ये घर खाली करो
  अब न करो इन्तजार ये घर खाली करो
- जीवन की पहेली सुलझाने आया हूँ....
  अपने बड़े बाबा को मनाने आया हूँ।
- म्हारा वीर प्रभु जी की सुन्दर मूरत म्हारे मन भाई जी
- शिक्षा में बीता बचपन, दिक्षा में नो जवानी,
  गुरुदेव आपकी है, बड़ी प्यारी जिन्दगानी।
- छोटी सी उमर में, दिक्षा लेकर-2
  ज्ञान का दीप जला रखा है-2
  ज्ञानसागर जी ने सोच समझकर-2
  विद्यासागर नाम रखा है-2
- मेरी रसना तू गा,
  गा प्रभु के गुण गा,
  गा रे गा इसमें तेरा फायदा....
- मैं देखूं जिस ओर सखीरी,
  सामने मेरे सांवरिया
- तेरी परम दिगम्बर मुद्रा (मुरत) को प्रतिपल निहारा करूँ,
  रहूँ नहीं दूर...
- ऊपर से आया है तार, ये घर खाली करो,
  अब ना करो इंतजार, ये घर खाली करो...

ज्ञानोदय :-
- आशा कब दूर है मन से, कब दूर भक्त भगवन से-2
  ये बंधन तो, भक्ति का बंधन है, जन्मों का सम्बन्ध है
  सूरज कब दूर किरण से, खुशबू कब दूर पवन से
  ये बंधन...
- इस जनम में ना मिले पर भव में मिलता है-2
  जल्दी-2 ना सही पर धीरे मिलता है-2
  अपने-अपने-2 कर्मों का फल सबको मिलता है
  एक पत्थर वो है जिस पर हम चलते हैं,
  एक पत्थर वो है, जिसकी पूजा करते हैं
  पर्वत और चट्टान से इक साथ निकलता है,
  अपनी-2
- जब-जब भी इन्हें पुकारा, गुरुवर ने दिया सहारा,
  वो दूर नहीं है हमसें, बस याद करो इस मन से,
  ये गुरुवर तो बड़े ही दानी है, भक्तों का सहारा है....
- वीर नाम अति प्यारा है कोई गा के देख ले-2
  आ जाते है वीर प्रभु, बुलाके देख ले....
- पूजा है तुमको पूजूंगा हरदम,
  तेरी ही चरणों में बीते सारा जीवन,
  तेरी पूजा रचाऊँगा,
  तेरे गुण गाऊँगा
- कैसे बने-2, तुम्हारे बिना बिगड़ी कैसे बनें...
- प्रभु जी आछी लागी रे थांसू प्रीत रे
  म्हारा हिवड़ा में जागी जगमग ज्योत प्रभु जी
  आछी लगी रे...
- तेरह की रात भर, माता त्रिशला के महल,
  बजते बेजनीयां देखो छन छन छन-2
- आओनी-2........ प्रभु जी ध्याऊँ मन से.......

- आनो पड़सी ओ बाबा आणो पड़सी,
  थारां टाबरिया बुलावै, बाबा आणो पड़सी.....
- नरतन रतन अमोल, इसे पानी में मत ड़ालो-1
  पूजन कर लो पुण्य कमालो, प्रभु जी के गुण गालो
  चलो रे सम्मेदशिखर चालो-1 श्री पार्श्वनाथ जी के दर्शन करने
  सम्मेद....
- दर्शन की अभिलाषा लेकर, आया रे सांवरिया.....
- करता रहूँ गुणगान, मुझे दो ऐसा वरदान
- अपने शिखर जी का बड़ा सुन्दर नजारा है
  तीर्थ शिरोमणी ये हमें प्राणों से प्यारा है
  ऋषियों मुनियों ने तप करके,
  मधुवन को निखारा है

चौपाई :-

- चाँदनपुर के श्री महावीर,
  भज प्यारे तु श्री महावीर...
- लूट रहा-3, बड़े बाबा का खजाना लूट रहा।
  मिल गया-3, बाबा का ठिकाना
  मिट रहा-3 मेरे मन का अंधेरा मिट रहा
  देख लिया-3 मधुवन का नजारा

गीता/बारामासा/ज्ञानोदय/नरेन्द्र :-

- पूजा-पाठ रचाऊँ मेरे....
- रोम-रोम से निकले गुरुवर...
- आओनी-आओनी जिनजी....
- मेरे सर पर रख दो गुरुवर...
- जिस देश में जिस वेश में...
- भला किसी का कर न सको तो...
- तुम जैसा मैं भी बन जाऊँ, ऐसा मैंने सोचा है,
  तुम जैसी समता पा जाऊँ, ऐसा मैंने सोचा है

......विषय-वासना की जड़ गहरी
काटो नाथ भरोसा है,
तुम जैसी समता.....

- जिनवाणी को नमन करों यह वाणी है भगवान कि,
  आदिनाथ से वीर प्रभु तक, चौबीसों भगवान कि,
  वन्दे जिनवरम्-3
- चेतो-चेतो जी सोयेड़ा सरदार, उमर थारी बीत गयी...
- नाम तुम्हारा तारणहारा....
- हे गुरुवर धन्य हो तुम....
- तेरे चरणों की धूल बाबा....
- सूरज कब दूर गगन से...
- एक बार आओजी महावीर म्हारा पावणा...
- मेरा जीवन कोरा कागज....
- ऐ मेरे वतन के लोगों...
- फल उगा लो मन के खेत में, महामंत्र के नाम की
  अपनी सीट सुरक्षित कर लो, सीधे शिवपुर धाम की, वन्दे जिनवरम्

चौपाई/बेसरी :-

- जिंदगी में कुछ तो सुधार कीजिये.... थोड़ा-2 गुरु से...
- जिस दिन ये पापी मन पावन, पापों- से बचता जीवन होगा
  भेष दिगम्बर साधु जैसा जीवन होगा......
- हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम......
- महावीर का आसरा चाहता हूँ
  तेरे दर पर आया मुक्ति चाहता हूँ।
- मेरे दुःख के दिनों में वो बड़े काम आते हैं।
- ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाला है....
- झूम-झूम के-2, सब मिल करें है आज पूजा, प्रभु जी की झूम-झूम के......

भुजंगप्रयात/इन्द्रव्रजा/लक्ष्मीधरा :-

- णमोकार मंत्र जो निशदिन जपेगा-2
  अरहंतों को आऽऽऽऽ-2 नमन तू करले बंदे सब ये तेरा
  दुखड़ा मिटेगा, णमोकार......
- जैनी होकें पानी न छाना,
  हाये वीर रातों को खायें जाना....
- टिले वाले बाबा तेरी महिमा अपार है-2
  सदियों से तेरी होती जय जयकार है
  बीते दिनों में यहाँ पर समोशरण आया था-2
  मैंने न जाने कब कहां जन्म पाया था...
- महावीर स्वामी तेरा ही सहारा है,
  तेरे बिन दुनिया में कोई न हमारा है....
- प्रभु महावीर चले-2, घर-घर दीप जले-2
  प्रभु महावीर चले-2...

धत्ता :-

- हमको बुलाना हर साल बाबा, रखना हमारा खयाल बाबा....
- बाबा तेरे दर पर आये, और तेरे ही गुण गायें,
  जीवन को सफल बनायें,
  ये बाबा तो हमारा बाबा है, भक्तों का सहारा है....
- तू ज्ञान का सागर है, आनंद का सागर है,
  इसी आनंद के प्यासे हम....
- दर पर आये हैं, करने भावों से गुणगान,
  हे प्रभु वरदान दो चरणों में ही करें वास हम....

चामर छंद/भगवान पार्श्वनाथ पूजा :-

- दयालु प्रभु से दया मांगते हैं, अपने दुःखों की दवा मांगते हैं....
- णमोकार मंत्र जो निशदिन जपेगा
  होगा मालामाल वो तो आऽऽऽ उसका खजाना रातों रात भरेगा
  णमोकार मंत्र...

अरहंतों को आऽऽऽ-2 नमन तू कर ले वंदे तेरा दुःख मिटेगा....

- करके महर, जरा देख ले इधर,
  गये जीवन की माला के मोती बिखर
  तुम हो प्रभु जी कहाँ-2
- तर्ज- आने से जिसके आये बहार.....
  होना तुझे भवसागर के पार, पारस की वाणी को मन में उतार
  दुनिया दिवानी रे सु ओ बावरे
  धर्म करो, पापों से डरो गर बिगड़ी बनाती है, सुन ओ बावरे
  ये दुनिया पानी रे, सुन ओ बावरे....
- आ भी जाओ दिल पुकारे पारस प्रभु जी-2
  आके दो सहारा पारस प्रभु जी, आ भी जाओ....
  तुम हो सबके प्यारे- पारस प्रभु जी....
- काहे बैर करे तू इंसान, तू है दो दिन का महमान,
  काहे झूठी दिखावे शान, तू है दो दिन का महमान
  कर ले अपनी पहचान, तू है दो दिन का महमान...
- नैना भर आये रे छवि को निहार के....
- तुम तो ठहरे वितरागी, हमें कब बनाओगे...
- लगे मन को प्यारी, मूरत तुम्हारी,
  मूरत तुम्हारी, प्रभु सूरत तुम्हारी
  लगे मन.......
- चरणन में चंदा सितारे-2
  तुम्हें जिनदेव सुबह शाम पुकारे...
- दर्शन दीज्यो जी सांवरीयाँ दर्शन दिज्यो जी,
  म्हारो मनवा नाचे गावे रे की दर्शन....
- प्रभु पार्श्व तेरी महिमा, दुनिया से निराली है,
  सुख देने वाला तू, तेरी शान निराली है-2
  तु सुख का सागर है तू है अर्न्तयामी,
  तेरी सांवली सी मुरत मुझको है बड़ी प्यारी-2

मेरी भवदधी से नैया तुम्हें पार लगानी है।

कल्याणक :-

- चली-चली रे ऊमर बीत चली रे
  न किया रे सत्संग, प्रभु मिलने काठंग, पांच पापों ने काया तेरी छली रे
  ओ चली-2 रे ऊमर बित चली रे.....
  जाये छोड़ घर बार, बेटा बेटी और नार जब मौत आ सिराने तेरे खड़ी है
  ओ चली-2 रे ऊमर....
- ऐ जैन धर्म के लोगों, जरा याद करो उस दिन को,
  जिओ और जीने दो का सिद्धान्त बताया उनको

सुन्दरी :-

- जीवन के किसी भी पल में....
- रंग मा रंग मा....
- ऊँचे-2 शिखरों वाला....
- उदक चन्दल तन्दुल...
- जीवन की पहेली...

अडिल्ल छंद :-

- गुरुवर का चेहरा सुहाना लगता है...
- संत शिरोमणि का सारा जग दिवाना....
- दिल के अरमां आंसुओं में बह गये...
- साजन मेरा उस पार है...

सखी छंद :-

- बुलाले अपने पास ऊमरिया रह गई थोड़ी....
- तुम्हें सूरज कहूं या चंदा....
- बधाई देवा चालो...
- दुनिया में सबसे प्यारा, यह आतमा हमारा....

त्रोटक :-

- बड़े बाबा बड़े बाबा है जिनका नाम।

छोटे बाबा छोटे हैं जग में महान॥
इनके चरणों में आना आके माथा झुकाना,
बड़े-बड़े भी संकट टलते बड़े-बड़े हो जाते काम॥

- दुनिया में संत हजारों है....

पंचमेरु/सोलहकरण

- आस है तेरे दर्शन की, प्रभु चरणन स्पर्शन की...
  आऽऽऽऽ ऽऽऽ, ऽऽ, ऽऽ...
- चरणों में समर्पित हूँ, मुझे ज्ञान का धन दे दो,
  बदले में प्रभु मेरा, तन मन धन सब ले लो....
- मेरी नाव के खिवैया अपनी शरण में ले ले रे,
  अपनी शरण में ले ले, हम रह गये 'अकेले'
- हे गुरुवर धन्य हो तुम कितना परिषह सहते हो....
  हे प्रभुवर धन्य हो तुम तुम अपने में रहते हो....
  मन मन्दिर में आ जाओ, इन नैनों में समा जाओ...
- णमोकार ध्याओ-2
  है इसके सिवा ना, शरण और कोई-2
  इसी के सहारे कटे पाप सारे...
- मनहर तेरी मुरतीया, मस्त हुआ मन मेरा
  तेरा दर्श पाया, पाया तेरा दर्श पाया...
- किसको विपद सुनाऊँ, हे नाथ तू बता दे
  तेरे सिवा ना कोई-2 जो कष्ट को मिटा दे,
  किसको....
- जब तेरी डोली निकाली जायेगी,
  बिन मुहुरत के उठाली जायेगी,
  ऐ मुसाफिर क्यों पसरता है यहाँ,
  ये मिला तूझको किराये का महान
  कोठरी खाली कराली जायेगी...

नरेन्द्र :-

- जाग जरा औ सोये मुसाफिर...
  प्रभु का ले लो सहारा-2
- भाई रे भाई पाप को तज यदि सच्चा सुख है पाना,
  छोड़ जगत का गौरखधंधा, प्रभु चरणों में आना

बाहुबली :-

- प्रभु विंध्यगिरी पर्वत पर मेरी कुटिया बन जावें
  जब खिड़की खोलूँ तो तेरा दर्शन हो जाये...
- गुरुवर जी बड़े प्यारे है, मुनिवर जी बड़े प्यारे हैं,
  छोटे-छोटे हम बच्चों, प्यारे-2 हम बच्चों के,
  वे ही एक सहारे हैं, गुरुवर...

द्रव्यआठों :-

- पतित पावन हो तुम भगवन्, मेरी फरियाद सुन लेना,
  तेरे चरणों में मस्तक है, इसे अपना बना लेना...

कुछ अन्य तर्ज :-

- तुम्हारे प्यार ने गुरुवर हमको तुमसे जोड़ा है,
  तुम्हारे प्यार के बल पर सभी भोगों को छोड़ा है...
- गुंजे तीन लोक में जय जयकार- जैन धर्म की जय बोलो,
  जिससे भारत की है पहचान- जैन धर्म की जय बोलो,
  हो सत्य अहिंसा अपनी शान- जैन धर्म की जय बोलो,
  दुनिया करती जिनका सम्मान- जैन धर्म की जय बोलो,

विशेष : इसके अतिरिक्त आपको जो भजन की पंक्तियाँ याद हो उन्हें भी ले सकते हैं।

गव्छन् पिपीलको याति, योजनानां शतान्यति।
अगच्छन् वैनतेयोपि, पदमेकं न गच्छति॥

अर्थात् नन्हीं चीटीं चलती हुई सैकड़ों मील की यात्रा कर लेती है और नहीं चलता हुआ तीव्रगामी गरूड़ भी एकदम नहीं चल पाता है। अतः थकना, सुस्ताना, हताश होना, ठहरना, मुड़कर देखना आदि शब्द कर्मवीर

पुरुषों के शब्द कोश में नहीं होते। उनके जीवन में कभी सूर्यास्त होता ही नहीं। अतः

हो के मायूस न यों शाम से ढलते रहिए।
जिन्दगी भोर है, सूरज से निकलते रहिए।
एक ही पाँव पै ठहरोगे तो थक जाओगे।
धीरे-धीरे ही सही राह पर चलते रहिए।

सूक्तियाँ

- ❖ सत्यं जयति नानृतम् – सत्य की जीत होती है असत्य की नहीं।
- ❖ महाजनो येन गतः स पन्था – महापुरुषों द्वारा चले मार्ग पर चलो।
- ❖ सहसा विदधीत न क्रियाम् – अचानक कोई काम न करें।
- ❖ सङ्कटै बान्धवः परीक्ष्यते – संकट में बंधुओं की परीक्षा होती है।
- ❖ नियतं कुरू कर्म त्वम् – तुम निरन्तर कर्म पथ पर डटे रहो।
- ❖ शरीमाध्यं खलु धर्मसाधनम् – शरीर के माध्यम से धर्म की रक्षा होती है।
- ❖ सुकर्मणा शोभा नैव शरीरेण – व्यक्ति की शोभा कर्म से होती है शरीर से नहीं।
- ❖ मातृपितृगुरुब्रह्मः – माता-पिता और गुरू ही मेरे ईश्वर है।
- ❖ ज्ञानं नाम परं पवित्रम् – ज्ञान सबसे पवित्र है।
- ❖ आत्म-प्रशंसा खलु नाम कष्टः– आत्मप्रशंसा घातक है।
- ❖ ज्ञानदानं विशिष्यते – ज्ञान का दान सबसे बड़ा दान है।
- ❖ मधुरेण वाचा सर्वे तुष्यन्ति – मीठे वचनों से सभी संतुष्ट होते हैं।
- ❖ नमन्ति गुणिनो जनाः – गुणवान् सदा विनम्र होता है।
- ❖ साधुजनमैत्री सुखदा – सज्जनों की संगति सुखदायक होती है।
- ❖ सुभाषितं परं रत्नम् – सुन्दरवचन सबसे बड़ा रत्न है।
- ❖ कर्मणा एवं संसिद्धिम् – कर्म से ही सफलता मिलती है।
- ❖ वसुधैव कुटुम्बकम् – संसार एक परिवार है।
- ❖ मनः पूतं समाचरेत् – मन से पवित्र कर कर्म करो।
- ❖ धनाद् विद्या गरीयसी – धन से विद्या श्रेष्ठ है।
- ❖ प्रेम्णा शत्रु वशं याति – प्रेम से शत्रु भी वश में होता है।

- ❇ राष्ट्रचिन्ता गरीयसी – राष्ट्र की चिन्ता करना सबसे बड़ी बात है।
- ❇ उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः – श्रम से ही सफलता मिलती है सोचने से नहीं।
- ❇ अव्यव- स्थित चित्तानां प्रसादोऽपि भयङ्करः – अस्थिरमति वाले की कृपा भी भयंकर होती है।
- ❇ अश्वन्वती प्रवाति वोऽपि धाराः – नदियाँ पत्थरों को काटकर बहती है तुम भी बहो।

छत्र अर्पण श्लोक

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क- कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्।
मुक्ता - फल - प्रकर - जाल-विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्॥31॥

ओं ह्रीं जगच्छान्तयर्थं अष्ट प्रातिहार्य मध्ये छत्र त्रयं स्थापयामि

चँवर अर्पण श्लोक

कुन्दावदात - चल - चामर - चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत - कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क - शुचिनिर्झर - वारि - धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्॥30॥

ओं ह्रीं आरोग्यार्थं अष्ट प्रातिहार्य मध्ये चतुषष्ठी चामर प्रातिहार्य स्थापयामि

अष्ट प्रातिहार्य अर्पण/स्थापना विधि

वनस्पतित्वेऽपिगत प्रशोको,
ऽशोकोबभूवाति मद प्रसूनः।
अनेक संदर्शक शोकहारी,
वृक्षो, जिनेन्द्राश्रयण प्रभावात्॥

ॐ ह्रीं अशोकवृक्ष प्रातिहार्य सम्पन्नाय जिनाय अर्घम्।

श्रेयस्तरु फलति नोऽमर सौख्य मुच्चैः।
हर्षोत्सुकत्व परिलंभन सन्मिषेण।
देवैः कृता सुमनसां परिवृष्टिरेषा,
मोदं ददातु भवदुःख जुषांजनानां॥

ॐ ह्रीं देवकृत पुष्पवृष्टि प्रातिहार्य सम्पन्नाय जिनाय अर्घम्।

त्रैलोक्य वस्तु ह्रदय स्मरणावबोधो,
येनं स्वयं श्रवण गोचरतां गतेन।
संजायते मुख रदौष्ठ विधात शून्यो,
भूयाद् वनि र्भवगद प्रसरार्ति हर्ता॥

ॐ ह्रीं दिव्यध्वनि प्रातिहार्य सम्पन्नाय जिनाय अर्घम्।

यक्षेश पाणिललितांकुर संगतानि,
तुर्याधिषष्ठि गणना न्यपि देव नद्याः।
वीचि प्रमाण भवतो द्विक पार्श्व योस्ते,
सच्चामाराण्यघचयं मम निर्दलन्तु॥

ॐ ह्रीं चतुषष्टि चामर प्रातिहार्य सम्पन्नाय जिनाय अर्घम्।

सिंहासने छवि रियं जिन देवतायाः,
केषा मनोवधृतपाप्महरी न वा स्यात्।
स्याद्वाद संस्कृत पदार्थ गुण प्रकाशो,
ऽस्यामेस्तु निर्हतम दाविल जात शक्तेः॥

ॐ ह्रीं सिंहासन प्रातिहार्य सम्पन्नाय जिनाय अर्घम्।

भामण्डलेऽवयव पुष्टि विभाग रश्मि,
क्लृप्ते जनस्य भव सप्तक दर्शनेन।
श्रृद्धान माप्त गुरु धर्म परंपराणां,
गाढं भवेत्तदित देवपतिर्नमस्यः॥

ॐ ह्रीं भामण्डल प्रातिहार्य सम्पन्नाय जिनाय अर्घम्।

देवस्य मोहविजयं परिशंसितुं द्राक्,
देवाः स्वहस्ततलतः परिवादयन्ति।
वाद्यानि मंगल निवास कराणि सद्यो,
मिथ्यात्व मोह जयिनः शुभगानि च स्युः॥

ॐ ह्रीं दुन्दुभि प्रातिहार्य सम्पन्नाय जिनाय अर्घम्।

छत्रत्रयं जिनपमूर्धनि भासमानं,
त्रैलोक्य राजपतितामभि दर्शयद् वा।
सोमार्क वह्नि प्रतिमं सित पीतरक्त,
रत्नादिरंजित मिदं मम मंगलाय॥

ॐ ह्रीं छत्रत्रय प्रातिहार्य सम्पन्नाय जिनाय अर्घम्।

अष्ट मंगल द्रव्य स्थापना

तालातपत्र चमर ध्वज सुप्रतीक,
भृंगार दर्पण घटाः प्रतिवीथि चारं।
सन्मंगलानि पुरतो विलसंति यस्य,
पादारविंदं युगलं शिरसा वहामि॥

जीवन एक

1.	जीवन एक अवसर है	–	उसे खोइए मत।
2.	जीवन एक चुनौती है	–	उसका सामना कीजिए।
3.	जीवन एक सफर है	–	उसको पूरा कीजिए।
4.	जीवन एक वरदान है	–	उसे स्वीकार कीजिए।
5.	जीवन एक पहेली है	–	उसे सुलझाइए।
6.	जीवन कथा है	–	उसे सुनिए।
7.	जीवन एक संघर्ष है	–	उससे द्वन्द्व कीजिए।
8.	जीवन एक अनुराग है	–	उसका अनुभव कीजिए।
9.	जीवन एक आत्मा है	–	उसका बोध कीजिए।
10.	जीवन एक कटु सत्य है	–	उससे संघर्ष कीजिए।
11.	जीवन एक दुःख है	–	उसे भोगिए।

तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों की तिथियाँ

चैत्र माह कृष्णपक्ष

चतुर्थी – श्री पार्श्वनाथ – ज्ञान
पंचमी – श्री चन्द्रप्रभ – गर्भ
अष्टमी – श्री शीतलनाथ – गर्भ
नवमी – श्री वृषभनाथ – जन्म,तप
अमावस्या – श्री अनंतनाथ – ज्ञान,मोक्ष
अमावस्या – श्री अरनाथ – मोक्ष

चैत्र माह शुक्लपक्ष

एकम – श्री मल्लिनाथ – गर्भ
तीज – श्री कुंथुनाथ – ज्ञान
तीज – श्री नमिनाथ – ज्ञान
पंचमी – श्री अजितनाथ – मोक्ष
षष्ठी – श्री संभवनाथ – मोक्ष
दसमी – श्री सुमतिनाथ – मोक्ष
एकादशी – श्री सुमतिनाथ – जन्म, ज्ञान
त्रयोदशी – श्री महावीरस्वामी – जन्म
पूर्णिमा – श्री पद्मप्रभ – ज्ञान

वैशाख माह कृष्णपक्ष

दूज – श्री पार्श्वनाथ – गर्भ
नवमी – श्री मुनिसुव्रतनाथ – ज्ञान
दशमी – श्री मुनिसुव्रतनाथ– जन्म,तप
एकादशी – श्री मल्लिनाथ– तप
त्रयोदशी – श्री धर्मनाथ – गर्भ
चतुर्दशी – श्री नमिनाथ – मोक्ष

वैशाख माह शुक्लपक्ष

एकम – श्री कुंथुनाथ– जन्म,तप, मोक्ष
छठ – श्री अभिनंदनदनाथ– गर्भ,मोक्ष
अष्टमी – श्री धर्मनाथ – गर्भ
नवमी – श्री सुमतिनाथ – तप
दशमी – श्री सुमतिनाथ – ज्ञान
दशमी – श्री महावीरस्वामी– ज्ञान
त्रयोदशी – श्री नेमिनाथ – ज्ञान
त्रयोदशी – श्री धर्मनाथ – गर्भ

ज्येष्ठ माह कृष्णपक्ष

छठ – श्री श्रेयांसनाथ – गर्भ
दशमी – श्री विमलनाथ – गर्भ
द्वादशी – श्री अनंतनाथ – जन्म, तप
चतुर्दशी – श्री शांतिनाथ – जन्म,तप, मोक्ष
अमावस्या – श्री अजितनाथ – गर्भ

ज्येष्ठ माह शुक्लपक्ष

चतुर्थी – श्री धर्मनाथ – गर्भ
द्वादशी – श्री सुपार्श्वनाथ – जन्म, तप

आषाढ़ माह कृष्णपक्ष

दूज – श्री आदिनाथ – गर्भ
छठ – श्री वासुपूज्य – गर्भ
अष्टमी – श्री विमलनाथ – मोक्ष
दशमी – श्री नमिनाथ – जन्म, तप

आषाढ़ माह शुक्लपक्ष

छठ – श्री महावीरस्वामी – गर्भ
अष्टमी/सप्तमी – श्री नेमिनाथ – ज्ञान,मोक्ष
दशमी – श्री नमिनाथ – जन्म

श्रावण माह कृष्णपक्ष

दूज – श्री मुनिसुव्रततनाथ – गर्भ
दशमी – श्री कुंथुनाथ – गर्भ

श्रावण माह शुक्लपक्ष

दूज – श्री सुमतिनाथ – गर्भ
छठ – श्री नेमिनाथ – जन्म, तप
सप्तमी – श्री पार्श्वनाथ – मोक्ष
एकादशी – श्री सुमतिनाथ – जन्म
पूर्णिमा – श्री श्रेयांसनाथ – मोक्ष

भाद्र माह कृष्णपक्ष

सप्तमी – श्री शांतिनाथ – गर्भ

भाद्र माह शुक्लपक्ष

दूज – श्री वासुपूज्य – ज्ञान
छठ – श्री सुपार्श्वनाथ – गर्भ
अष्टमी – श्री पुष्पदंत– मोक्ष
त्रयोदशी – श्री धर्मनाथ – तप
चतुर्दशी – श्री वासुपूज्य – मोक्ष

तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों की तिथियाँ

आश्विन (क्वांर) माह कृष्णपक्ष

दूज - नमिनाथ - गर्भ
त्रयोदशी - पद्मप्रभ - जन्म

आश्विन (क्वांर) माह शुक्लपक्ष

एकम - नेमिनाथ - ज्ञान
द्वादशी - मुनिसुव्रत - जन्म
पूर्णिमा - संभवनाथ - तप

कार्तिक माह कृष्णपक्ष

एकम - अनंतनाथ - गर्भ
चतुर्थी - संभवनाथ - ज्ञान
त्रयोदशी - पद्मप्रभ - जन्म, तप
अमावस्या - महावीरस्वामी- मोक्ष

कार्तिक माह शुक्लपक्ष

दूज - पुष्पदंत - ज्ञान
पंचमी - सुमतिनाथ - ज्ञान
पंचमी - शीतलनाथ - मोक्ष
छठ - नेमिनाथ - गर्भ
द्वादशी - अरनाथ - ज्ञान
त्रयोदशी - पद्मप्रभ - जन्म, तप
पूर्णिमा - संभवनाथ - जन्म

मगशिर माह कृष्णपक्ष

दशमी - महावीरस्वामी- तप

मगशिर माह शुक्लपक्ष

एकम - पुप्पदंत - जन्म, तप
दशमी - अरनाथ - तप
एकादशी - मल्लिनाथ - जन्म, तप
एकादशी - नमिनाथ - ज्ञान
चतुर्दशी - अरनाथ - जन्म
पूर्णिमा - संभवनाथ - तप

पौष माह कृष्णपक्ष

दूज - मल्लिनाथ - ज्ञान
एकादशी - चन्द्रप्रभ - जन्म, तप
एकादशी - पार्श्वनाथ - जन्म, तप
चतुर्दशी - शीतलनाथ - ज्ञान

पौष माह शुक्लपक्ष

दूज - मल्लिनाथ - ज्ञान
दशमी - विमलनाथ - ज्ञान
एकादशी - अजितनाथ - ज्ञान
एकादशी - शांतिनाथ - ज्ञान
चतुर्दशी - अजितनाथ - ज्ञान
चतुर्दशी - अभिनंदननाथ - ज्ञान
पूर्णिमा - धर्मनाथ - ज्ञान

माघ माह कृष्णपक्ष

छठ - पद्मप्रभ - गर्भ
द्वादशी - चन्द्रप्रभ - जन्म, तप
चतुर्दशी - आदिनाथ - मोक्ष
अमावस्या - श्रेयांसनाथ - ज्ञान

माघ माह शुक्लपक्ष

दूज - वासुपूज्य - ज्ञान
चतुर्थी - विमलनाथ - जन्म, तप
छठ - विमलनाथ - ज्ञान
नवमी - अजितनाथ - तप
दशमी - अजितनाथ - जन्म
द्वादशी - अभिनंदन- जन्म, तप
त्रयोदशी - धर्मनाथ - जन्म, तप

फाल्गुन माह कृष्णपक्ष

चतुर्थी - पद्मप्रभ - मोक्ष
छठ/सप्तमी - सुपार्श्वनाथ- मोक्ष
नवमी - पुष्पदंत - गर्भ
एकादशी - आदिनाथ - ज्ञान
एकादशी - श्रेयांसनाथ - जन्म, तप
द्वादशी - मुनिसुव्रतनाथ - मोक्ष
चतुर्दशी - वासुपूज्य - जन्म, तप

फाल्गुन माह शुक्लपक्ष

तृतीया - अरनाथ - गर्भ
पंचमी - मल्लिनाथ - मोक्ष
सप्तमी - चन्द्रप्रभ - मोक्ष
अष्टमी - संभवानाथ - गर्भ

अन्य पर्वों की तिथि और करने योग्य पूजा

1.	वीर शासन जयन्ती	श्रावण कृष्ण प्रतिपदा	श्री महावीर पूजा
2.	मुकुट सप्तमी पर्व	श्रावण शुक्ल 7	श्री पार्श्वनाथ पूजा
3.	सुगन्ध दशमी पर्व	भाद्र शुक्ल 10	श्री सिद्ध पूजा
4.	श्रुतपंचमी पर्व	ज्येष्ठ शुक्ल 5	श्री सरस्वती पूजा
5.	कलश दशमी पर्व	श्रावण शुक्ल 10	श्री ऋषभदेव पूजा
6.	अनन्त व्रत पर्व	भाद्र शुक्ल 14	श्री अनन्त नाथ पूजा
7.	ऋषि पंचमी पर्व	आषाढ़ शुक्ल 3	श्री पार्श्वनाथ पूजा
8.	त्रिलोक तृतीया पर्व	भाद्र शुक्ल 3	चौबीस तीर्थंकर पर्व पूजा
9.	मिर्दोष शील सप्तमी	भाद्र शुक्ल 7	दशलक्षण पूजा
10.	निःशल्य अष्टमी	भाद्र शुक्ल 8	श्री नेमीनाथ पूजा
11.	चन्द्र प्रभ निर्वाण पर्व	फाल्गुन शुक्ल 7	श्री चन्द्रप्रभ पूजा
12.	पुष्पांजलि पर्व	भाद्र शुक्ल 5 से भाद्र शुक्ल 9 तक	चौबीस तीर्थंकर पूजा अथवा पंच मेरु पूजा
13.	मुक्तावली पर्व	भाद्र शुक्ल 7	पंच परमेष्ठी पूजा
14.	अष्टमी पर्व	प्रत्येक मास की अष्टमी	सिद्ध पूजा
15.	चतुर्दशी पर्व	प्रत्येक मास की चतुर्दशी	अनन्त पूजा
16.	चन्दन षष्ठी पर्व	अश्विन कृष्णा षष्ठी	अकृत्रिमचैत्यालय पूजा
17.	मेघमाला पर्व	भाद्र शुक्ल 1 से अश्विन शु.1	पंचपरमेष्ठी विधान
18.	श्री श्रेयांस निर्वाण पर्व	श्रावण श्री पूर्णिमा	श्री श्रेयांस नाथ पूजन
19.	श्री आदिनाथ निर्वाण पर्व	माघ कृष्ण 14	श्री आदिनाथ पूजा
20.	मौनएकादशी पर्व	पौष कृष्ण 11	पंचपरमेष्ठी पूजन
21.	लब्धिविधान पर्व	भाद्र श्री 1 से 9 तक	श्री महावीर पूजन

22.	सोलह भावना पर्व	भाद्र कृष्ण 1 से आश्वि.कृ1	सोलह भावना पूजन
23.	नन्दीश्वर पर्व	का. फा.आ. के अन्त 8दिन	नन्दीश्वर पूजन
14.	दीपावली पर्व	कार्तिक कृष्ण15	वीर निर्वाण दीपावली पूजन
25.	श्री महावीर जयन्ती	चैत्र शुक्ला 13	श्री महावीर पूजा
26.	अक्षय तृतीया	वैशाख शुदी 3	अक्षय तृतीया पूजा
27.	श्री चन्द्रप्रभ निर्वाण	फाल्गुन शुक्ल 7	श्री चन्द्रप्रभ पूजा
28.	रक्षाबन्धन	श्रावण शुक्ल पूर्णिमा	रक्षाबन्धन पूजा
29.	क्षमावाणी	अश्विन कृष्णा 1	क्षमावाणी पूजा
30.	रत्नत्रय पर्व	भाद्र शुक्ल 13 से पूर्णिमा तक	रत्नत्रय पर्व पूजा
31.	दशलक्षण पर्व	भाद्र शुक्ल 4 से 14तक	दशलक्षण पूजा
32.	श्री आदिनाथ जयन्ती	चैत्र कृष्ण नवमी	श्री आदिनाथ पूजा
33.	रविवार पर्व	प्रति रविवार	श्री पार्श्वनाथ पूजा
34.	लघु पंचकल्याणक पर्व	चौबीस तीर्थंकरों की 120 तिथियाँ	चौबीस तीर्थंकर पूजा
35.	महा पंचकल्याणक पर्व	24 तीर्थंकरों की पंचकल्याणक तिथि 5 वर्ष तक	24 तीर्थंकर पूजा

❖ विनाश जिससे कीर्ति में वृद्धि हो और वह मृत्यु जिससे लोकोत्तर यश की प्राप्ति हो– ये दोनों चीजें महान् आत्मबलशाली पुरुषों के मार्ग में ही आती है।

❖ यदि मनुष्य को इस जगत् में पैदा ही होना है, तो उसको चाहिए कि वह सुयश उपार्जन करे। जो ऐसा नहीं करता, उसके लिए तो यही अच्छा था कि वह जन्म ही न लेता।

सूतक पातक में पीढ़ियाँ ऐसे गिने -1

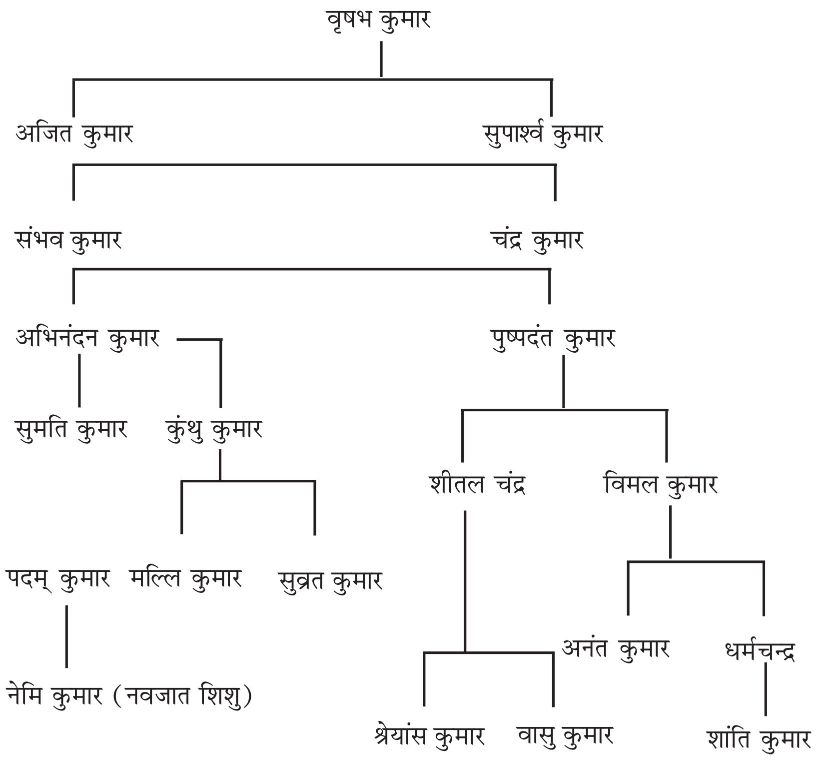

1. **पीढ़ियाँ वृषभ कुमार** से गिनना चाहिए। पीढ़ियाँ उसी की गिनना चाहिए जिसके घर प्रसूति (जन्म) हुई है। इस तरह वृषभ कुमार से नेमि कुमार (नवजात शिशु) तक सातवीं पीढ़ी होती है। ज्यादा सूतक पातक सातवीं पीढ़ी तक है।
2. **जब तक व्यवहार है,** विवाह आदि में जा रहे है दैनिक क्रियाओं में, कुटुम्ब के रूप में शामिल हो रहे है तब तक सूतक पातक लगेगा।
3. **पीढ़ी में सीढ़ी का उदाहरण** है – जैसे जन्म हुआ तो ऊपर चढ़ना है (यानि नीचे से ऊपर गिनना है) मरण हुआ तो ऊपर से नीचे उतरना है। (यानि ऊपर से नीचे गिनना है)
4. **पीढ़ी पता नही है तो** सूतक पातक नहीं लगेगा। (यदि कोई जानकारी नहीं मिल पा रही है तो)

5. **पीढ़ी समाधान**- 1 :- परिवार में जो ज्येष्ठ (दादा-दादी, माता-पिता आदि) जीवित हो, उसी पीढ़ी के प्रमाण से समस्त परिवार को सूतक-पातक पालना होगा। (धर्मोद्योत प्रश्नोत्तर माला)
6. **पीढ़ी समाधान -2** :- एक ही मटकी का पानी पीने वाली पीढ़ियाँ भिन्न-भिन्न असमान दिनों तक सूतक पाले, यह बात तब तक नही बन सकती जब तक ये अलग-अलग नही रहने लगें। एक संयुक्त परिवारी पिता, पुत्र को तो समान दिनों का सूतक तर्क बल से मानना न्याय संगत पड़ता है। यदि संयुक्त रूप से रहते है, परिवार में तो सूतक-पातक समान लगेगा। (जिनभाषित पत्रिका अक्टूबर 2008)
7. **पीढ़ी समाधान -3** :- पिताजी हैं, तब वह अपनी पीढ़ी को दादाजी से ही गणना करेंगे और जब तुम्हारा नम्बर आयेगा तो तुम भी दादा जी से गणना करोगे। पिताजी के दादा जी से नहीं, जिसके जो दादा जी कहलायेंगे उनसे ही गणना की जायेगी। (साभार- दाता स्वीकारो पृष्ठ 112)
8. **पीढ़ी समाधान - 4** :- लड़का अलग होने पर सूतक उसके परिवार को उसकी पीढ़ी के अनुसार लगेगा। परिवार के दादाजी जीवित हो या मृत हो गये हो पीढ़ी की गणना कर सकते है। (वर्तमान के प्रतिष्ठाचार्य का मत) जिस पीढ़ी का जो मुखिया होगा उसे जितनी पीढ़ी का सूतक लगेगा उतना ही सभी परिवार जनों को भी लगेगा। (अलग से गणना नही होगी)
9. **पीढ़ी कैसे गिनें -5** :- पहली पीढ़ी दादा जी की दूसरी पीढ़ी पिताजी की तथा तीसरी पीढ़ी स्वयं की कहलाती है। वे जीवित हों या न हो। यदि एक ही दादा जी के पुत्र एवं पौत्र की पीढ़ी में सूतक पातक हो तो उन्हीं से पीढ़ी ली जावेगी। यदि दादा जी के चचेरे भाइयों की पीढ़ी में सूतक पातक होता है तो दादा जी के पिताजी से पीढ़ी ली जावेगी। यदि परिवार में किसी का जन्म हुआ हो तो पीढ़ी नीचे से गिनी जाती है, और यदि किसी का मरण हुआ है तो, पीढ़ी का गिनना ऊपर से होता हैं। (संदर्भ - संस्कार संहिता पृष्ठ 165)
10. **पीढ़ी समाधान -6** पीढ़ियाँ ऋषभ कुमार से ही गिनी जायेगी। इस तरह आदिनाथ से नेमि कुमार सातवी पीढ़ी होती है। इस तरह पुष्पदंत कुमार को छठी पीढीं का सूतक लगेगा। चाहे संभव कुमार जीवित हो यदि संभव कुमार और पुष्पदंत कुमार संयुक्त परिवार के रूप में रहते हैं साथ-साथ रहते है, तो चौथी पीढ़ी का सूतक लगेगा।

11. **सूतक संबंधी विचारणीय बिन्दु पीढ़ी संबंधी चर्चा** - सूतक में जन्म और मरण में पीढ़ी के अनुसार सूतक संबंधी विषय क्रिया कोष ग्रंथ श्री किशनसिंह जी द्वारा रचित में मिला है जो 17वीं शताब्दी का है। इसके पहले किसी ग्रंथ में पीढ़ी का उल्लेख नहीं है। पीढ़ी का उल्लेख 'सूतक निर्णय भाष्य' में श्री सोमसेन सूरि ने किया है। पीढ़ी गिनने में कई तरह की मान्यताएं हैं। इस संबंध में लेख 'पीढ़ियाँ कैसे गिने' जो जिन भाषित पत्रिका अक्टूबर 2008 में प्रकाशित हुआ था पठनीय है। पीढ़ी गिनने में घर के मुखिया की जो पीढ़ी होगी वही सूतक परिवार जनों को लगेगा। जैसे शादी या अन्य कार्यक्रम में भी मुखिया का नाम लिखा जाता है। राशन कार्ड एवं वोटर लिस्ट में भी मुखिया का नाम ही लिखा जाता हैं। पीढ़ी संबंधी बटवारा कर लें कुटुम्ब परिवार मिलकर सूची बना लें जिससे हमेशा के लिए सुविधा हो जाये।

(साभार - विभिन्न माध्यम से प्राप्त बिन्दु)

सूतक पातक में पीढ़ियाँ ऐसे गिने -2

वृषभ कुमार

अजित कुमार	सुपार्श्व कुमार
1 संभव कुमार	A चंद्र कुमार
2 अभिनंदन कुमार	B पुष्पदंत कुमार
3 सुमति कुमार	C शीतल कुमार
4 पद्म कुमार	D श्रेयांस कुमार
5 धर्म कुमार	E वासु कुमार
6 शांति कुमार	F विमल कुमार
7 कुंथु कुमार	G अनंत कुमार

जन्म के विषय में तो स्पष्ट ही है कि जिस पक्ष में जन्म हुआ उसकी पीढ़ी गिनना है। मरण के विषय में भी जिस पक्ष में मरण हुआ है उसी की पीढ़ी गिनना होगी और वह भी ऊपर जहाँ एक के दो पुत्र रुप वृषभकुमार को 1

मानकर आगे जिसका मरण हुआ, मान लो 5 नम्बर को तो वह छटवीं पीढ़ी कहलायेगा। सुपार्श्व कुमार की तरफ के A से G तक के किसी भी व्यक्ति के लिए एक समान छटवीं पीढ़ी होगी। उसमें कोई भेद नहीं होगा।

अब घटना पक्ष में देखे तो अजित कुमार के क्रम में जब 5 नम्बर के मरण पर अन्य बाद में 2-3 पीढ़ी रहेगीं या ऊपर भी 2-3 पीढ़ी से अधिक जीवित नहीं रह सकती हैं, इसलिए अपने पक्ष में तो कोई विकल्प नहीं बनता है। क्योंकि दूसरे पक्ष वालों के लिए सूतक पातक का विकल्प होने पर पीढ़ियाँ तो जहाँ घटना हुई है उस पक्ष की गिनने पर पीढ़ी का निर्णय किया जा सकता है।

सूतक पातक में पीढ़ियाँ ऐसे गिने -3

वृषभ कुमार के दो पुत्र अजित कुमार व सुपार्श्व कुमार में जब घटना अजित कुमार के पक्ष में हुई हो तो सूतक को जानने के लिए पीढ़ी की गिनती तो हमेशा घटना पक्ष में ही करना होती है।

घटना पक्ष में संभव कुमार के लिए	घटना	दूसरे पक्ष सुपार्श्व कु. यहाँ विमल कुमार या अनंत कु. शांति कु. सभी को समान
पाँचवीं पीढ़ी	1. यदि नेमि कु. को शिशु हुआ तो	सातवीं पीढ़ी
चौथी पीढ़ी	2. मल्लि कुमार को शिशु हुआ तो	छटवीं पीढ़ी
तीसरी पीढ़ी	3. सुमति कुमार को शिशु हुआ तो	पाँचवीं पीढ़ी
पहलीं पीढ़ी	4. अभिनन्दन कु के मरण होने पर	चौथी पीढ़ी
चौथी पीढ़ी	5. नेमि कुमार के मरण होने पर	सातवीं पीढ़ी

सूतक - पातक समाधान चार्ट (पार्ट-1)

अवसर	जन्म/मरण
3 पीढ़ी तक	(जन्म 10 दिन)/(मरण 12 दिन)
4 पीढ़ी में	10 दिन
5 पीढ़ी में	6 दिन
6 पीढ़ी में	4 दिन
7 पीढ़ी में	3 दिन
8 पीढ़ी में	1 दिन-रात
9 पीढ़ी में	6 घंटा
10 पीढ़ी में	स्नान तक
पुत्री एवं अन्य रिश्तेदार (निज घर में)	3 दिन
अन्य व्यक्ति, दासी, दास एवं पालतू जानवर	1 दिन
गृह स्वामी, सन्यासी, संग्राम में गोत्री अन्य स्थान पर (विदेश में)	1 दिन खबर आने के पीछे शेष दिन में
गर्भस्राव होने पर (3 से 4 माह तक)	जितने माह का हो माता को उतने दिन
गर्भपात होने पर (5 से 6 माह तक)	जितने माह का हो माता को उतने दिन
मरा हुआ बालक जन्में	माता को 45 दिन
जीवित बालक उत्पन्न हो नाल छेदनें के पश्चात मर जावे	माता को 45 दिन
आठ वर्ष तक के बालक का मरण होने पर	तीन पीढ़ी तक 10 दिन
आत्महत्या, अपघात मृत्यु-गर्भपात कराने पर	6 माह

सूतक - पातक समाधान चार्ट (पार्ट-2)

विशेष/अन्य ग्रंथ के अनुसार
पहली पीढ़ी दादा जी की, दूसरी पीढ़ी पिताजी की तथा तीसरी पीढ़ी स्वयं की कहलाती है। (जीवित हो या न हो)
6 दिन (जैन व्रत विधान संग्रह, पूजन पाठ प्र.) (जन्म 3 दिन, मरण 6 दिन-श्र.स.)
5 दिन (जैन व्रत विधान संग्रह) (जन्म 4 दिन जिन भारती संग्रह, पूजन पाठ प्रदीप, श्रावकाचार संग्रह भाग-4) (मरण 5 दिन - श्रा.चा.)
जन्म 3 दिन मरण 4 दिन (श्रा.चा.)
1 दिन एवं सातवी पीढ़ी को आगे सूतक नहीं माना है। (जैन दर्शन पुस्तक) (जन्म 2 दिन मरण 3 दिन श्रा.चा.)
(संकेतः- श्रा. सं - श्रावकाचार संग्रह भाग - 4 प्रस्तावना)
स्नान तक (पूजन पाठ प्रदीप)
स्नान करने तक
घर से बाहर हो, तो नहीं लगेगा (गृह निवास से बाहर जन्म,मरण हो तो सूतक नहीं लगेगा)
घर से बाहर हो, तो नहीं लगेगा (गृह निवास से बाहर जन्म, मरण हो तो सूतक नहीं लगेगा)
घर का त्याग कर समाधिपूर्वक मरण हो तो परिवार को 1 दिन का सूतक लगेगा बटवारा, वैमन्यसता होने पर भी सूतक लगता है
परिवार जनों को नहीं लगेगा (जैन व्रत विधान संग्रह/भगवती आराधना, कल्याण कारकम)
परिवारजनों को 1 दिन का/10 दिन परिवार जनों को (जैन व्रत विधान) (पं. रतनचंद्र मुख्तार व्यक्तित्व कृतित्व)
10 दिन परवारजनों को (जैन व्रत विधान)/3 दिन का सूतक (जैन दर्शन) परिवार जनो को
12 दिन परवारजनों को (जैन दर्शन पुस्तक)/3 दिन का परिवारजनों को (जैन व्रत विधान) परिवारजनों को 5 दिन
अन्य पीढ़ी को उपर्युक्तानुसार/3दिन (जिनभारती संग्रह)
प्रायश्चित के पश्चात् ही शुद्ध होंगे। (जितनी पीढ़ी के लोगों का भोजन एक जगह एक साथ होता हैं उन्हें 6 माह का सूतक अत्महत्या (अपघात मृत्यु)का

विशेष बिन्दु :- (1) दाँत उगे बालक एवं जन्मा हुआ बालक 10 दिन के भीतर मरण को प्राप्त हो तो उन्हीं 10 दिन का सूतक होता है। (जैन दर्शन) (जै.व्र.वि.स.) (2) 3 वर्ष के बालक के मरण का सूतक 12 दिन/आसन्न को 1 दिन/अनासन्न को स्नान तक (3) 5 वर्ष के बालक का मरण सूतक कोई-कोई आचार्य पूर्ण भी मानते हैं। (4) 3 दिन के बालक का मरण होने पर 1 दिन का पातक लगता है एवं माता-पिता को 10 दिन का (जिन भारती संग्रह, पूजन पाठ प्रवीन) (5) आसन्न तीन पीढ़ी तक कहलाते हैं एवं अनासन्न चौथी पीढ़ी से 10वीं पीढ़ी तक (6) तीन दिन के बालक के मरण का सूतक नहीं लगता है। (प्रायश्चित संग्रह 353)। (7) गोत्र (कुटुम्ब) के लोगों को 5 दिन तक आहारदान, पूजन का निषेध है सूतक में। (विचारणीय बिन्दु) संदर्भ :- जैनेन्द्र सिद्धांत कोष भाग-4,❇ सूतक निर्णय भाष्य ❇ प्रतिष्ठा पराग,❇ क्रियाकोष,❇ धर्म संग्रह श्रावकाचार❇

सूतक-पातक

जन्म एवं मरण के पश्चात् कुछ समय के लिए धार्मिक कार्य अभिषेक, पूजन, स्वाध्याय, आहार दानादि नहीं करते हैं। उसे सूतक (जन्म के बाद) एवं पातक (मरण के बाद) का यहाँ है। तथा कहीं-कहीं जन्म के सूतक को शोर एवं मरण के पातक को सूतक भी कहते हैं।

सूतक-पातक का जैन आगम में ऐसा उल्लेख है?

जैन आगम के ग्रन्थ जैसे- मूलाचार, मूलाचार प्रदीप में उल्लेख मिलता है। मुनि सूतक वाले घरों में आहार के लिए न जाए तथा त्रिलोकसार ग्रन्थ में लिखा है सूतक वाले आहार दान देते है तो वे कुमानुषों में उत्पन्न होते हैं। धर्म संग्रह श्रावकाचार में लिखा है सूतक में धार्मिक कार्य करने से नीच गोत्र का बन्ध होता है। आगे किशनसिंह क्रियाकोश एवं राजवैद्य पण्डित बारेलाल जी ने संस्कृत में 'जैन व्रत विधान संग्रह' में उल्लेख किया है इन्हीं को मुख्य मानकर किस पीढ़ी वाले को कितना सूतक-पातक लगता है। उसका वर्णन क्रमशः किया जा रहा है।

सूतक इनको नहीं लगता- विवाहित बहिन, पुत्री को सूतक नहीं लगता। प्रतिष्ठा पाठ के अनुसार प्रतिष्ठा कार्य में सम्मिलित पात्रों का सकलीकरण एवं नान्दी विधान (जिसमें शुद्धि करके गोत्र परिवर्तन किया जाता है) होने पर सूतक

नहीं लगता है किन्तु वह घर नहीं जाएगा न वहाँ का भोजन करेगा।

- सूतक, पातक में दान, अध्ययन तथा जिन पूजनादि का निषेध किया गया है। इतना ही ग्रन्थ में लिखा है शेष के बारे में पिच्छी धारियों के, विद्वानों के अपने-अपने विचार है उन सभी के विचारों को यहाँ संकलित करके लिखा जा रहा है। पातक में तीन दिन तक तो मन्दिरजी में प्रवेश न करे। बाद में गर्भगृह के बाहर से दर्शन करें। वहाँ मन्दिरों के उपकरण जैसे चिटाई, पाटा आदि का स्पर्श न करें। कोई गन्धोदक देता है तो वह ले सकते हैं। शास्त्र सभा में बैठ सकता है। सन्त निवास में साधुओं के दर्शन करने जा सकता है। उनका पाटा, पिच्छी-कमण्डलु का स्पर्श न करे।
- अणुव्रती श्रावकों को भी सूतक पातक वाले घरों में भोजन नहीं करना चाहिए। (लाटी संहिता,4/251) किन्तु अणुव्रती श्रावक के यहाँ ही सूतक-पातक हो जाए तो वह भोजन कहाँ करेगा, वह तो भोजन अपने घर में ही करेगा।

रजस्वला स्त्री का सूतक इतने दिनों का होता है?

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करने पर पतिसेवा और भोजनपान बनाने के योग्य हो जाती है। किन्तु देवपूजा, आहारदानादि के योग्य पाँचवें दिन ही होती है।

विशेष- ऋतुकाल के बीत जाने पर 18 दिन के पहले यदि कोई स्त्री रजस्वला हो जाए तो वह स्नानमात्र से शुद्ध हो जाती है। (जैन व्रत विधान संग्रह)

सूतक-पातक का वैज्ञानिक कारण

वैज्ञानिक ब्रेतिस्लान के अनुसार इस बायोप्लाज्मा की रचना शरीर की कोशिकाओं से भिन्न है, इसका अपना अलग विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र है जो मनुष्य मृत्यु के पश्चात् तुरन्त नष्ट नहीं होता किन्तु यह धीरे-धीरे ब्रह्माण्ड में विलीन होता है। अब हम सूतक की स्थिति पर विचार करें। जब प्राणी का मरण होता है तब वह भय एवं पीड़ा से आतंकित होता है, जिससे वह आर्त, रौद्र परिणामों के कारण खोटी लेश्यामय हो जाता है। अति पीड़ा के इन क्षणों में शरीर की स्थिति अति उत्तेजित होती है, जिसमें मस्तिष्क, हृदय, श्वसन, नाड़ी तंत्र प्रभावित होने के साथ पसीना एवं मलमूत्र भी निष्कासित हो जाता है। इस प्रक्रिया में कई विकारी तत्त्व रोग के कीटाणु भी उत्सर्जित होते हैं। आभामण्डल विकृत होने के साथ बायोप्लाज्मा भी

विकृत हो जाता है। प्राणान्त के बाद व्यक्ति के मरण स्थान पर बायोप्लाज्मा विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा के रूप में विद्यमान रहता है जिसका अपघटन तीन दिन में होता है। इसलिए तीन दिन की विशेष अशुद्धि मानी जाती है।

परिणामों में खोटी लेश्या हो जाती प्रसव के समय शारीरिक उत्तेजना से विकारी पदार्थ पसीने के साथ उत्सर्जित होते हैं, विकृत आभामण्डल की विद्युत् चुम्बकीय ऊर्जा अपघटित होने में तीन दिन लगते हैं। अतः सोर (अशुद्धि) का कार्यकाल तीन दिन माना जाता है।

सूतक संबंधी शास्त्रों के प्रमाण

1ए हमारे प्रमुख आचार्य प्रणीत ग्रन्थों में सूतक-पातक का उल्लेख प्राप्त होता है, कुछ ग्रन्थों के सन्दर्भ निम्नाङ्कित हैं।

दुब्भाव असुचिसूदगपुप्फवई जाइसंकरादीहिं॥
कयदाणा वि कुवत्ते जीवा कुणरेसु जायंते॥ (त्रिलोकसार, 924)

अर्थ : जो दुर्भावना, अपवित्रता, सूतक आदि से एवं पुष्पवती स्त्री के स्पर्श से युक्त तथा जातिसङ्कर आदि दोषों से सहित होते हुए भी दान देते हैं और जो कुपात्रों को दान देते हैं वे जीव मरकर कुमानुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

सूतकं पातकं चापि यथोक्तं जैनशासने।
एषणाशुद्धिसिद्ध्यर्थं वर्जयेच्छ्रावकाग्रणी। (लाटी संहिता, 4/251)

अर्थ : एषणासमिति को शुद्ध रीति से पालन करने के लिए जैन शास्त्रों में बतलाए हुए सूतक-पातक का भी त्याग कर देना चाहिए।

1बी **बालत्रणशूरत्वाऽऽबलादिप्रदेशे दीक्षितैः** (प्रायश्चितसंग्रह/353)

अनशनप्रदेशेषु च मृतकानां खलु सूतक नास्ति-

तीन दिन का बालक युद्ध में मरण को प्राप्त, अग्नि आदि के द्वारा मरण को प्राप्त जिन दीक्षित? अनशन करके मरण को प्राप्त, इनका मरण सूतक नहीं होता।

2. त्रिलोकसार में श्रीमन्नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती कहते हैं। **असूचिसूदग .....। कयदाणा वि कुवत्ते जीवा कुणरेसु जायंते।** (924) अपवित्रता से अथवा मृतादिकका सूतक से संयुक्त जो कुपात्रों में दान करता है वह जीव कुमनुष्यों में उत्पन्न होता है। (924) मृतादिका

3ए अनगार धर्मामृत 5/34 **शर्वादिनापिक्लीवेन दत्तं दायकदोषभाक्। 34 उक्तं च- सूती शौण्डी तथा रोगी शवः षण्डः पिशाचवान्। पतितोच्चार-**

नग्नाश्च रक्ता वेश्या च लिङ्गिनी – शवको श्मशान में छोड़कर आये हुये मृतक सूतक से युक्त पुरुषों द्वारा दत्त आहार दोष से दूषित समझना चाहिए। 341 – जिसके सन्तान उत्पन्न हुई हो ....।

3बी. सूती शौण्डी तथा रोगी मृतकश्च नपुंसकः।
पिशाचो नग्न एवाज्ञ उच्चारः पतितस्ततः (मूलाचार प्रदीप,439)

अर्थ : जो बच्चों को खिलाने वाला हो, जो मद्यपान का लम्पटी हो, रोगी हो, जो मृतक के साथ श्मशान में जाकर आया हो, अथवा जिसके घर कोई मर गया हो, जो नपुंसक हो, जिसे वात की व्याधि हो गई हो, जो वस्त्र न पहने हो, जो मल-मूत्र करके आया हो, मूर्छित हो, पतित हो आदि आगे और भी दायक दूषण का वर्णन किया है। आहारदान के पात्र नहीं।

4. अष्ट पाहुड/बोध पाहुड टीका/48/112 पर लिखा है – **दीनस्य सूतिकायाश्च ..।** दीन अर्थात् दरिद्री, सूतक वाली स्त्री के घर का विशेष रूप से (साधु आहार ग्रहण न करें)।

5. सूतक पातक किसको कहाँ नहीं लगता –
प्रतिष्ठा पाठ/जयसेन/258
यद्वंशतीर्थकरबिंबमुदीर्यसंस्थमुख्यातदीय- कुलगोत्रजनिप्रवेशात्। संवृत्तगोत्रचरणप्रतिपातयोगादाशौचमावहतु नोद्यभवप्रशस्तम्। 2581
जिस वंश वाला यजमान बिम्ब प्रतिष्ठा करा रहा है, उसके वंश, कुल गोत्र में उस दिन से अशौच नहीं माना जाता अर्थात् जिस दिन नान्दी अभिषेक (नान्दी विधान से गोत्र परिवर्तन किया जाता है अनुष्ठान में) हो गया उस दिन से यजमान के कुल में सूतक तथा सूबा नहीं लगता। 258।

6. **अतिबाला अतिबुड्ढ़ा घासत्ती गब्भिणी य अंधलिया।**
अंतरिदा व णिस्सण्णा उच्चत्था अहव णीचत्था॥ मू.चा.469॥

अर्थ- मदय – मृतकं श्मशाने परिक्षित्यागतो यः स मृतक इत्युच्यते। मृतक सूतकेन यो जुष्टः सोऽपि मृतक इति उच्यते ....
श्मशान में मृतक को छोड़कर आया हुआ भी मृतक स्पर्श कहलाता है और जो मृतक के सूतक-पातक से युक्त है वह भी मृतक स्पर्श कहलाता है (लेकिन लोक में मृतक शब्द कहना अच्छा नहीं है)

अतिबाला अतिबुड्ढा घासत्ती गब्भिणी य अंधलिया।
अंतरिदा व णिसण्णा उच्चत्था अहव णीचत्था॥ (मूलाचार, 469)

अर्थ : अतिबाला, अतिवृद्ध, भोजन करती हुई, गर्भिणी (पाँच माह के बाद), अन्धी हो, दीवाल आदि की आड़ में खड़ी हो, बैठी हो, उच्च स्थान में बैठी हो, नीचे स्थान में बैठी हो आदि आहार देने के पात्र नहीं है। **गर्भिणी, गुरु भारा पंच मासिका** – गर्भिणी पाँच महीने के गर्भ वाली (अर्थात् पाँच महीने के पहले तक आहार दे सकती है। (मूलाचार भारतीय ज्ञानपीठ गाथा 569 की टीका पृष्ठ 364)।

7. **पञ्चतायां प्रसूतौ च दिनानि दशसूतकम्।**
एकादशाऽहे संशोध्य गृहं तनुं तथा॥ 257
मृद्धाघ्डानि पुराणानि बहिः कृत्य विधाय च।
शुद्धां पाकादिसामग्रीं पूजयेत्परमेश्वरम्॥ 258
श्रुतं च गुरूपादांश्च पूजयित्वा यथाविधि।
व्रतीद्योतनमादाय शुद्धो भूत्वा प्रवर्त्तताम्॥259
सूतके न विधातव्यं दानाऽध्ययनपूजनम्।
नीचैर्गोत्रस्य बन्धत्वादगोत्रिणां पञ्चवासरान् ॥260

अर्थ – मरण में तथा प्रसूति में दश दिन सूतक पालन करना चाहिए। इसके बाद ग्यारहवें दिन घर वस्त्र तथा शरीरादि शुद्ध करके मृतका (मिट्टी) के पुराने बर्तनों को अलग करके तथा पवित्र भोजनादि सामग्री बनाकर सर्वप्रथम जिनभगवान् की पूजा करनी चाहिए। ॥257-258॥ शास्त्रों की तथा मुनिराजों के चरणों की विधिपूर्वक पूजा करके तथा व्रत का उद्यापन करके शुद्ध होकर फिर कार्य में लगना चाहिए ॥260॥ सूतक में दान, अध्ययन तथा जिन पूजनादि शुभकर्म नहीं करना चाहिए, क्योंकि सूतक के दिनों में दान पूजनादि करने से नीच गोत्र का बन्ध होता है और गोत्र के लोगों को पाँच दिन पर्यन्त उक्त कार्य नहीं करना चाहिए। (धर्म संग्रह श्रावकाचार, पं. मेधावी 16वीं शताब्दी विक्रम संवत् 1541 कार्तिक कृष्ण 13, श्लोक 257 से 260, श्रावकाचार संग्रह भाग-2 पृष्ठ 174-175 सोलापुर, प्रकाशन।)

8. **मृतकश्च .....उत्सृष्टा गर्भिणी** –
जो किसी मृतक के साथ श्मशान में जाकर आया हो अथवा जिसके घर कोई मर गया हो तो ...
जो 5 महिने से अधिक गर्भिणी हो वह आहारदान नहीं दे सकती है। (मूलाचार प्रदीप द्वितीय अधिकार 436-442)

मृतजातसूतक युक्त गृहिजनेन दीयमाना बसतिर्दायक दृष्टा।

जिसे मरण अथवा जनन (जन्म) का शौच (सूतक) लगा है ऐसे गृहस्थ के द्वारा वसतिका दी गई हो तो वह दायक दोष से दृष्ट है।

शंका - वद सूतक चिन्हं किं वा तत्प्रयोजनं गुरो।

हे गुरुदेव! सूतक का चिन्ह क्या है तथा सूतक मानने का प्रयोजन क्या है, कृपाकर कहें -

समाधान - मृतस्थ देहसंसगति वस्त्रपातगृहादिकम्

स्याद् दुर्गन्धमयं हेयं लच्छुद्धयै सूतकस्य वा ॥55॥ (श्रावक धर्मप्रदीप)

कौ मिथौ मोहनाशाय तदेव क्रियते विधिः

नृणां वृत्तिः पशोर्भिन्ना बोधार्थमिति धार्मिकैः ॥56॥(श्रावक धर्मप्रदीप)

सतीनां सूतकं हत्या पापं षण्मासंक भवेत्।

अन्या सामान्यहत्यानां, यथा पापं प्रकाशयेत्।

अर्थ - अपने को अग्नि में जला लेवें, ऐसी सती होने का पाप (सूतक) छह मास का होता है और हत्याओं का पाप भी यथा योग्य जानना चाहिए।

दासी दासस्तथा कन्या जायते म्रियते यदि।

त्रिरात्रि सूतकं ज्ञेयं गृहमध्ये न दूषणम्।

महिष्यः पाक्षिकं क्षीरं, गौक्षीरं च दशेदिने।

अष्टमे दिवसे, क्षीरं शुद्धं न चान्यथा॥

10. सूतक पातक विषयक जुगुत्सां हेय। मू.आ/टी. 646

जुगुप्सा गर्हा द्विविधा द्विप्रकारा- लौकिकी लोकोत्तरा च।

लोकव्यवहारशोधनार्थ सूतकादिनिवारणाय लौकिकीजुगप्सा परिहरणीया तथा परमार्थ लोकोत्तरा कर्त्तव्येति जुगप्सा या गर्हा दो प्रकार ही है- लौकिकी व लोकोत्तर।

लोक व्यवहार शोधनार्थ सूतक आदि का निवारण करने के लिए जो लौकिकी जुगुत्सा की जाती है वह छोड़ने योग्य है और परमार्थ या लोकेत्तर जुगुप्सा करनी योग्य है।

भोजन शुद्धि में सूतक पातक के विवेक का निर्देश :

भगवती आराधना/वि./230/444/20 **मृतजातसूतकसुक्तगृहिजनेन .... दीयमाना वसतिर्दायकदुष्टा।**

जिसको मरणाशौच अथवा जननाशौच है, ऐसे दोष से युक्त गृहस्थ के द्वारा यदि वसतिका दी गई हो तो वह दायक दोष से दुष्ट है।

सूतक समाधान ''विशेष बिंदु''

1 (नोट :- हमारा प्रयास प्रत्येक गाँव, नगर, शहर में विवाद नहीं हो एवं विवाद सुलझाने का छोटा सा प्रयास है हमारी जिम्मेदारी किसी विवाद की नहीं है।)

सूतक में क्या करें क्या नहीं -

2. सूतक - पातक संबंधी मान्यताएँ प्रत्येक गाँव या नगर में भिन्न-भिन्न प्रकार देखी जाती है, अतः विभिन्न शास्त्रों तथा आचार्यों, मुनिराजों एवं विद्वानों से चर्चा करके निम्न विवरण दिया जा रहा है। ताकि पूर्व से चली आ रही जो परंपराएं हमको धर्म से दूर करती हैं, उनको शास्त्रानुसार बदला जा सके। (इसमें वैज्ञानिक कारण, लोक रीति, वर्तमान के प्रचलन का ध्यान रखा गया है।)

3. सूतक - पातक में देव, शास्त्र, गुरू का स्पर्श वर्जित है एवं अभिषेक, द्रव्यपूजा, आरती, गंधोदक का पात्र छूना, पूजन के बर्तन, माला एवं साधुओं की वैया वृत्ति एवं आहार दान वर्जित है एवं सिर्फ गर्भ गृह में प्रवेश वर्जित है, दर्शन करने में कोई बाधा नहीं है, भाव पूजा करने में कोई बाधा नहीं है, साधुओं के दर्शन भी संत निवास आदि में एवं कमरे में दर्शन करने में कोई बाधा नहीं है। मंदिर की दरी पर नहीं बैठ सकते लेकिन शास्त्र सभा में बैठकर स्वाध्याय सुन सकते हैं। जिस शास्त्र में श्लोक, गाथा, भगवान एवं साधुओं के चित्र हैं, मंत्र हैं, प्रथमानुयोग संबंधी विषय है वह ग्रंथ, पुस्तक नहीं छू सकते हैं, अन्य पूजा करने वालों के साथ खड़े होकर या बैठकर पूजा का वाचन कर सकते हैं। अन्य व्यक्ति से गंधोदक लेकर लगा सकते हैं। जन्म देने के बाद माँ भी गंधोदक लगा सकती है। 3 दिन में तेरहवीं कर लेते है तो सूतक तो 12 दिन का रहेगा, शांति विधान तो 13 वें दिन ही होता है।

4. बाल कटिंग का सूतक - लोक प्रचलन में 6 घंटे/3 घंटे/2 घंटे 30 मि. एवं दाढ़ी बनाने का 48 मिनट का मानते हैं। इसमें देव, शास्त्र, गुरू का स्पर्श, पूजन, अभिषेक, आहारदान का निषेध करते हैं। वैसे यह कहीं शास्त्रों में पढ़ने में नहीं आया है लेकिन धवला ग्रंथ में मुनियों को केश लोंच के 3 दिन तक सिद्धांत ग्रंथ छूने का निषेध किया गया है क्योंकि बालों का संबंध मांस से रहता है और जुँयें आदि की हिंसा भी हो सकती है और कटिंग करने वाले की जाति का भी कारण है। इसलिये समय टालकर आगे पीछे कटिंग एवं सेविंग कर सकते हैं। (सम्यग दृष्टि को गर्दन भी दूसरे के आगे झुकाना पड़ती है और साधुओं को तो उपवास भी करना पड़ता है।)

5. बटवारे वैमनस्यता में सूतक - सूतक पर सम्पत्ति के बटवारे, अन्य स्थान या विदेश में रहने, पारिवारिक वैमनस्यता होने का प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात विदेश में रहने वाले अलग-अलग निवास, व्यापार होने पर भी सूतक का दोष लगेगा। सूचना मिलने का काल सूतक के समय में शामिल रहेगा, सूचना मिलने पर जितने दिन सूतक शेष हों, उतने दिन सूतक मानना चाहिए।

6. सूतक किसे नहीं लगता - सूतक का प्रभाव वंश व गोत्र के अनुसार लगता है, यही कारण है कि विवाहिता पुत्री सूतक से अशुद्ध नहीं होती। प्रतिष्ठा पाठ के अनुसार प्रतिष्ठा कार्य में सम्मिलित पात्रों का सकलीकरण एवं नान्दी विधान के बाद (जिसमें शुद्धि करके गोत्र परिवर्तन किया जाता है) सूतक का दोष नहीं लगता है।

7. सकलीकरण के बाद सूतक नहीं - इसी प्रकार धार्मिक आयोजन में संलग्न पात्र जिसका सकलीकरण हो चुका हो, उनको भी सूतक नहीं लगता परंतु ऐसे पात्रों को सूतक स्थान में जाना, उस आयोजन में सम्मिलित होना, सूतक में अशुद्ध व्यक्तियों से सम्पर्क करना वर्जित है। यदि पात्र इन कार्यों को करता है तो वह अशुद्ध ही माना जावेगा अर्थात् सूतक का अशौच उसे मानना होगा।

8. गर्भवती महिला 5 माह तक आहारदान दे सकती है- (भगवती आराधना गाथा 582 पृ. 409 एवं मूलाचार पिण्ड शुद्धि अधिकार गा.469 की टीका पृ. 364 भारतीय ज्ञानपीठ) भगवती आराधना गाथा 1003 के अनुसार ''पाँचवे मास में उस मांस पिण्ड में दो हाथ, दो पैर और सिर के रूप में पाँच अंकुर उगते हैं। छठे मास में उस बालक के अंग और उपांग बनते हैं'' इसलिये आहारदान 5 माह के बाद मना है क्योंकि उठने-बैठने में भी परेशानी होती है। बड़े अनुष्ठानों, विधानों आदि में भी मना किया गया है। प्रत्येक महिला अनुभूत है। स्वाध्याय कर सकती है। गर्भवती महिलायें द्रव्य पूजा तो 9 महीने तक भी कर सकती हैं। दर्शन करते समय द्रव्य भी चढ़ा सकती हैं ऐसा आचार्यों एवं विद्वानों का मत है। (कल्याण कारकम ग्रंथ में भी शरीर बनने का वर्णन है) देखें धृति क्रिया :- गर्भाधान के 7 वें महीने में गर्भ की वृद्धि के लिए पूर्वोत्त विधान करना चाहिये, मोद क्रिया :- गर्भाधान के नवमें महीने में गर्भ की पुष्टि के लिए पुनः पूर्वोत्त विधान करके, स्त्री को गात्रिका बन्ध मंत्र पूर्वक बीजाक्षर लेखन आदि कार्य करना चाहिये। (महापुराण/ 38-70-310/73 से 84 तक) जब ''महापुराण'' में विधान करने का लिखा है 7वें, 9वें महीने में तो पूजन करने में कहाँ बाधा है। सीता, अंजना ने भी गर्भवती

अवस्था में भगवान की पूजा की (पद्मपुराण)। (S.P.S.V.-4 MD)

साधुओं को भगवती आराधना ग्रंथ में गर्भवती महिला से आहार लेने का निषेध- अपनी आलोचना निर्यापकाचार्य से करते हुए क्षपकराज कहते हैं कि पांच माह से अधिक गर्भधारण करने वाली या जिसे प्रसव किए एक माह भी नहीं बीता हो ऐसी स्त्री से मैंने आहार लिया हो । (भगवती आराधना / गाथा 582 पृष्ठ 409 सोलापुर प्रकाशक जीवराज जैन ग्रंथमाला मन् 2007)

9.पति का मरण होने पर (विधवा महिलायें) 12 दिन का ही सूतक मानें 13 वें दिन से द्रव्य पूजन, स्वाध्याय, आहारदान आदि करें। कई महिलायें 30-40 दिन तक धार्मिक कार्य नहीं करती हैं इस संबंध में आचार्यों मुनिराजों, विद्वानों से चर्चा हुई हैं।

10. रविवार, बुधवार को किसी के भी यहाँ मृत्यु के बाद बैठने नहीं जाते हैं यह मान्यता शास्त्रों के अनुसार ठीक नहीं है। इससे कोई फर्क भी नहीं पड़ता है। ऐसे ही पंचक का खारी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। मंगल, शुक्र, शनि, रविवार को मरण के बाद हड्डियों का संचय मना किया गया है। (ग्रंथों में)

11. जन्म या मृत्यु के दिन से तीसरे दिन तक मंदिर के बाहर जहाँ से प्रतिमा के दर्शन होते हों या मानस्तंभ के दर्शन होते हों तो अवश्य करें क्योंकि भगवान के दर्शन करने का किसी भी शास्त्रों में निषेध नहीं है, मंदिर में प्रवेश मना है। (प्रवेश द्वार से करें दर्शन) (प्रत्येक जगह जैसी स्थिति/परिस्थिति हो वैसा निर्णय लें)

12. 24 घंटे का सूतक नहीं लगता है अन्य के मरण पर -

(I) किसी के यहाँ मरण के बाद बैठने जाते हैं अथवा अंतिम संस्कार में शामिल होते हैं तो दूसरे दिन प्रातः काल पूजन एवं आहार दान कर सकते हैं।

(II) 24 घंटे का नहीं लगता है सूतक :- अन्य के मरण पर 24 घंटे का सूतक नहीं लगता है आचार्यों, मुनिराजों, विद्वानों से चर्चा हुई है जब 7वीं पीढ़ी के बाद सूतक नहीं लगता है (जैन दर्शन पुस्तक के अनुसार) और 9वीं पीढ़ी में 6घंटे लगता है जो गोत्र के हैं तब यहाँ रिश्तेदार, पड़ोसी, संबंधी को क्यों लगेगा विशेष देखें (जैन व्रत विधान संग्रह) का प्वाइंट।

यदि कोई डॉ. है और प्रसूति करवाता है अथवा आपरेशन करता है और प्रतिदिन पोस्टमार्टम करता है या अन्य डॉ. इसी प्रकार के कार्य करते हैं तो उनको तो फिर 365 दिन सूतक रहेगा इसलिये 24 घंटे का मानना ठीक

नहीं बैठता है। और कहीं शास्त्रों में अभी तक देखने में भी नहीं आया। जीवों के जल जाने का पातक मात्र अग्नि लगाने वाले पुरुषों को ही होता है अन्य को नहीं (जैन व्रत विधान संग्रह पृष्ठ 132)। शव वाहक की यथा काल शुद्धि होती है। (अन्य ग्रंथ में)

अशौच आने पर धार्मिक कार्यों में तत्काल शुद्धि हो जाती है। (अन्य ग्रंथ में)

(III) सूर्यास्त के पहले तक सूतक-पातक होता है तो वह गणना में प्रथम दिन माना जायेगा क्योंकि जैन दर्शन में प्रत्येक कार्य सूर्योदय से सूर्यास्त तक ही किये जाते हैं। जैसे-पूजन आहारदान, आदि और हम अष्टमी, चतुदर्शी आदि पर्व में भी तिथि से मनाते हैं और तिथि परिवर्तन सूर्योदय से ही प्रारंभ होता है अधिकांश। (इसलिए 24 घंटे का कोई औचित्य नहीं लगता)

13. सूतक-पातक में मुख्य रूप से भोजन और व्यापार यदि इकट्ठा है तो सूतक-पातक समान लगेगा, अलग-अलग है तो पीढ़ी के अनुसार या उपर्युक्त नियमानुसार लगेगा। सिर्फ भोजन भी होता है तो भी यही लागू होगा।

14. व्रती की समाधि होती है और घर का त्याग कर देता है और किसी साधु के पास संलेंखना लेता है तो 1 दिन का ही सूतक लगेगा परिवार जनों को।

15. गोद जाने वाले को वह जहाँ है वहीं का सूतक लगेगा।

16. सूतक-पातक वाले के यहाँ की पूजन,आहारदान आदि की द्रव्य रिश्तेदार इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं। वह द्रव्य सूतक समाप्त होने पर काल शुद्धि से शुद्ध हो जाती है।

17. ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मचारी, व्रती सूतक-पातक वाले के यहाँ भोजन नहीं करें।

18. (I) सूतक-पातक वालों का दान भी ग्रहण नहीं होता है।

18. (II) पिच्छीधारी साधु की अंतिम यात्रा में शामिल होने वाले को 1 दिन का सूतक मानना चाहिए एवं यात्रा से लौटकर सवस्त्र स्नान करना चाहिये।

19. सूतक-पातक शास्त्रों के अनुसार :-

❉ सूतक की अवस्था में श्रावक को आहार दानादि कार्य करने का निषेध किया गया है अर्थात अशुद्ध माना है। (भगवती आराधना अ.6, पृष्ठ 107)

❉ श्री मन् नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती : त्रिलोकसार ग्रंथ में (924) में कहते हैं कि- दुर्भावना, अपवित्रता, सूतक आदि में एवं पुष्पवती स्त्री के स्पर्श युक्त

श्री जिन गुणगान

अवस्था में आहार दान नहीं देना चाहिए।

❉ श्री राजमल्ल-लाटी संहिता ग्रंथ (5/251) में-भोजन शुद्धि बनाये रखने के लिए यथासंभव सूतक-पातक में त्याग जिनशासन में किया गया है अर्थात सूतक-पातक वाले गृहस्थ के घर में भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए।

❉ अष्टपाहुड, बोध प्राभृतम गाथा 48 की संस्कृत टीका का क्षेपक श्लोक-2 में कहते हैं कि-श्रावक होकर भी दीन भाषण करता है, सूतिका जो बालकों को जन्म कराती है, मद्य बेचता है, पान करता है तथा उनके संसर्ग में रहता है उसे सूतक युक्त अशुद्ध कहा जाता है।

❉ पं. आशा धर जी अनगार धर्मामृत में (5/34) में कहते हैं कि- शव को श्मशान में छोड़कर आये हुये, मृतक, सूतक से युक्त, व्याधियुक्त तथा क्लीब आदि के दोष से युक्त समझना चाहिए।

❉ सूतक के दिनों में दान, अध्ययन, पूजन आदि करने से नीच गोत्र का बंध होता है। (धर्म संग्रह श्रावकाचार पं. मेधावी अधिकार 6 श्लोक 257 से 261 तक)

20. सूतक बिन्दु - (नोट - यदि पीहर में है विवाहित लड़की तो) विवाहित लड़की यदि पिता के घर में न रहे, वस्त्र किसी के घर में शुद्धि संबंधी डाल देवे तो उसे पातक नहीं लगेगा, वह आहार आदि दे सकती है।

1. दस वर्ष से ऊपर वाले बच्चे को जलाना चाहिए।
2. आठ वर्ष तक के बच्चे का मरण होने पर परम्परानुसार दफनाना चाहिए।
3. व्रती-ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणी के माता-पिता के मरण होने पर पातक लगता है। दशमी प्रतिमाधारी यदि घर में रहता है तो उसको सूतक-पातक मानना चाहिए।
4. ऑपरेशन के द्वारा बालक हुआ तो 45 दिन का सूतक लगेगा। पीढ़ी के अनुसार कुटुंबी जन को लगेगा।
5. तलाकशुदा स्त्री यदि पिता के घर रहे तो उसे सूतक-पातक पूरा लगेगा।
6. खारी तीन दिन में ही उठानी चाहिए परम्परानुसार पंचक आदि में नहीं उठाते। अगर ऐसी मान्यता है तो भले देर हो लेकिन जल्दी नहीं करनी चाहिए। उसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। तीन दिन अग्नि की आयु है, इसलिए उससे पहले नहीं उठाना चाहिये।
7. खून में जो जर्म्स पाये जाते हैं। वह 9 पीढ़ी तक कुटुम्बियों में पाये जाते हैं। इसलिये सूतक 9 पीढ़ी तक लगता है। (वर्तमान के वयो वृद्ध प्रतिष्ठाचार्य

के अनुसार)

21. आत्महत्या से सम्बन्धित 6 माह का सूतक किसको और कब लगता है?

समाधान - विभिन्न श्रावकचारों एवं पूजा आदि की पुस्तकों में आत्महत्या का पातक 6 माह का लिखा हुआ मिलता है। इसके अलावा अन्य कुछ भी विस्तृत विवेचन नहीं मिलता। जबकि आत्महत्या से सम्बंधित परिस्थितियाँ अनेक प्रकार की होती है। अतः इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्धत्‌गोष्ठियों में साधुवर्ग एवं विद्धत्‌वर्ग से विचार विमर्श करने पर निम्नलिखित समाधान स्पष्ट होता है।

घटना - राजेन्द्र कुमार, देवेन्द्र कुमार दो भाई हैं। यदि राजेन्द्र कुमार दहेज न मिलने के कारण अपनी पुत्रवधु को जला देता है या उनकी पुत्रवधू, सास-ससुर से कहा सुनी के कारण स्वयं जलकर आत्महत्या कर लेती है, तो

(अ) राजेन्द्र कुमार के परिवार को 6 माह का सूतक लगेगा। यदि देवेन्द्र कुमार उसी घर में रहते हों और उसी रसोई में भोजन करते हों तो उनको भी 6 माह का सूतक लगेगा। यदि देवेन्द्रकुमार अलग रहते हैं और उनका इस घटना से कोई सम्बन्ध नहीं है, तो उनको मात्र 12 दिन का सूतक लगेगा।

(ब) यदि राजेन्द्रकुमार की पुत्रवत्रु ने किसी अन्य कारण से आत्महत्या की हो, और उसमें उनके पति या सास-ससुर द्वारा कोई परेशानी आदि न की गई, या वह अचानक खाना बनाते समय जलकर मरण को प्राप्त हो गई हो, तो पूरे परिवार को मात्र 12 दिन (विचारणीय बिंदू है यह) का सूतक लगेगा।

(स) यदि राजेन्द्र कुमार शेयर बाजार में घाटा हो जाने के कारण आत्महत्या करके मर गये हों तो पूरे परिवार को 12 दिन का सूतक लगेगा।

उपर्युक्त सूतक-पातक के सम्बन्ध में यदि किन्हीं विद्वान महोदय को कुछ भी कहना हो, तो अवश्य लिखने की कृपा करें। (जिज्ञासा-समाधान पृष्ठ 195-196) (विशेष देखें आत्महत्या सूतक (S.P.V.B.-5)

22. (I) आत्महत्या का सूतक -

आत्मघात (आत्महत्या) क्या है :- आग से, धुएँ से, शस्त्र से, विष से, जल से, पर्वत से गिरने से, श्वास के रूकने से, अतिशीत या अति गर्मी पड़ने से, रस्सी से, भूख से, प्यास से, जीभ उखाड़ने से और प्रकृति विरूद्ध आहार के सेवन से बालपुरुष मरण को प्राप्त होते हैं। इसे इच्छापूर्वक मरण कहते हैं। अर्थात् ऐसे उपाय स्वयं करके वे मरण करते हैं। (भगवती आराधना गाथा 25 पृष्ठ 54 की टीका सोलापुर प्रकाशन वी.नि.सं.2533)

❉ विष की वेदना, रक्त क्षय, भय, शस्त्र की चोट, संकलेश तथा आहार एवं श्वासोच्छवास के निरोध से आयु क्षीण हो जाती हैं उसे अकाल मरण कहते हैं। (अष्ट पाहुड/भाव पाहुड गाथा 25 आ.कुंदकुंद स्वामी)

❉ अनंतानुबंधी का काल 6 माह कहा गया है इसलिये आत्महत्या संबंधी सूतक 6 माह का लगता है। (प्रवचनांश वर्तमान के प्रसिद्ध सर्वमान्य आचार्य महाराज)

❉ आत्महत्या संबंधी सूतक यदि 6 माह लगता है तो यह भी विचारणीय है कि आज के बच्चे जो विदेशों में रहते हैं, बैंगलोर, पुणे, मुम्बई, दिल्ली, कलकत्ता जैसे शहरों में रहते हैं और वहां मंदिर नहीं जाते हैं तो 6 माह में वह जैन धर्म संबंधी सभी चीजें भूल जाएंगे इसलिए भावपूजा, स्वाध्याय दूर बैठकर सुनना, जाप हाथ से देना या माला से देते हैं तो सूतक के बाद में शुद्ध कर सकते हैं। सिर्फ द्रव्य से स्पर्श नहीं करना बाकी क्रियाएं तो कर सकते हैं।

❉ ग्रंथों के अवलोकन के बाद एक चीज और देखने में आयी है कि शायद सती होने का सूतक 6 माह लिखा हो और यही कारण रहा हो कि सती प्रथा पर रोक लगे। वैसे भी आत्मघात महापाप है क्योंकि मनुष्य जन्म और जैनकुल दुर्लभ हैं। और व्यक्ति यह कार्य करके समाज, परिवार को हानि पहुँचाते हैं। जैन समाज के लोगों का कर्तव्य है कि कोई कर्ज से परेशान है या स्टूडेंट के ऊपर पढ़ाई आदि का बोझ नहीं डाले परिवार में सामंजस्य बनायें जिससे यह घटनायें न हों।

भावना / विचारणीय बिंदु - ग्रंथों में प्रायश्चित का भी विधान है अतः समाज के लोग विचार करके ही निर्णय लें।

विशेष स्थिति में - 1,2,3,4,5,6 माह भी होना चाहिए। इस बारे में प्रमुख आचार्य, मुनिराज, विद्वान, प्रतिष्ठाचार्य आदि विचार करने की अनुकंपा करें।

समाधान नं.2 - (इस संबंध में वर्तमान के सर्वमान्य आचार्य महाराज का मत है कि जब शेयर बाजार अच्छा चल रहा था तब सभी परिवार के सदस्य उसी धन का उपयोग कर रहे थे इसलिये 6माह का सूतक लगेगा इसी प्रकार बच्चे के लिए प्रेशर डालते हैं पढ़ाई के लिये और वह फेल हो जाता है इसलिये पूरे परिवार को 6माह का सूतक लगेगा इसी प्रकार बच्चे के लिए प्रेशर डालते हैं पढ़ाई के लिये और वह फेल हो जाता है इसलिये पूरे परिवार को 6माह का सूतक लगता है। जैनेन्द्र सिद्धांत कोश भाग-4 में तो अपघात मृत्यु का सूतक 3 माह भी दिया है एवं नरेन्द्र सेनाचार्य ने सिद्धांतसार 10/120 में श्रावक घात 6माह, बालक घात 3 माह

भी दिया है, लेकिन यह विचारणीय है।) आत्महत्या संबंधी केसों में स्थितियों, परिस्थितियों एवं जैसे पुलिस देखती है कि किस-किस ने प्रताड़ित किया यह भी देखना पड़ेगा और किसी गाँव में दो ही घर हैं और दोनों को 6-6 माह का सूतक लग गया तो पूजन-अभिषेक कौन करेगा यह भी देखना पड़ता है।

22. मासिक धर्म विदेशों में अन्य धर्मों में, वैज्ञानिक आधार - क्यों ?, कैसे? (देखें S.P.S.V/MD I,II,III)

(1) मासिक धर्म हिन्दू धर्म, मुस्लिम, क्रिश्चियन, यहूदी, पारसी भी मानते हैं।

(2) अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, आयरलैण्ड, न्यूजीलेंड, लेबनान, जर्मनी, फ्रांस, सीरिया, इटली, नायका, साय गोन, इंग्लैंड, अमेरिका, जापान, नाइजीरिया, चाईना, नेपाल, भूटान, सिक्किम, तिब्बत कोचीन आदि देशों में भी मानते हैं।

(3) एम.सी. एक वैज्ञानिक विश्लेषण

(4) वैज्ञानिक एस.आई. यीसीफ (ई.स.1820) के प्रयोग का परीक्षण।

23. सूतक-पातक शुद्धि का सार

❇ रजस्वला स्त्री की उम्र के अनुसार शुद्धि मानी गई है। पूर्णतः शुद्धि होने के उपरांत ही देवदर्शन, पूजा, आहार, दानादि के कार्य हेतु ही शुद्ध होती है। उम्र के अनुसार शुद्धि होने के बावजूद भी चौथे दिन ही स्नान के योग्य होती है, दो या तीन दिन में नहीं। जरा भी अशुद्धि हो तो पृथक खड़े होकर मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, ऐलक का पडगाहन नहीं करना चाहिए। पूजा स्वाध्याय करने वालों को चौथे दिन स्पर्श नहीं करना चाहिए।

❇ कुंवारी कन्या जब तक घर में रहे तब तक उसको परिवार वालों के समान ही सूतक-पातक लगेगा।

❇ विवाहित होने पर गौत्र परिवर्तन होने पर सूतक-पातक का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

❇ दशहरा में रावण के पुतले आदि जलाते हो या उसमें शामिल होते हो या किसी नेताओं के पुतले जलाते हों तो कुछ घंटे का पातक लगता है। पुतला जलाना संकल्पी हिंसा है, इससे बचना चाहिए।

24. सूतक-पातक के मुख्य बिंदु

1. पंचक में मरण होने पर अंहिसात्मक क्रियाएँ करें।
2. मृत शरीर को धर्म मानकर 3 परिक्रमा देना आगम से उचित नहीं बैठता है।

3. सूतक का विधान सामान्य पुरुषों के लिए है। महान पुरुषों (चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण) को नहीं लगता। यह सब व्यवहार धर्म के अन्तर्गत है। जिसकी भूमिका का निर्वाह गृहस्थ करता है। जब तक व्यवहार धर्म है तब तक सूतक-पातक मानना चाहिये।
4. आत्महत्या से यदि मरण हुआ हो तो 6 माह का सूतक और यदि स्वयं अपने आप आग से जला हो तो उसका 12 दिन का कुटुम्बियों को सूतक लगता है।
5. गृहत्यागी प्रतिमाधारी को सूतक नहीं-व्रत प्रतिमा से लेकर किसी भी प्रतिमा में गृहत्यागी होने पर उसके कुटुम्ब संबंधी वृद्धि-हानि का सुआ-सूतक नहीं माना जाता क्योंकि अब उसके कुटुम्ब का संबंध नहीं रहा।

25. सूतक-पातक समाधान बिंदु (विचारणीय बिंदु)

1. सूतक संबंधी ग्रंथों के अध्ययन के पश्चात् निष्कर्ष निकला कि त्रिलोक सार, अनगार धर्मामृत, धर्म संग्रह श्रावकाचार, क्रियाकोष, मूलाचार, भगवती आराधना, अष्ट पाहुड, दर्शन पाहुड की टीका, लाटी संहिता आदि ग्रंथ में ही सूतक के बारे में अच्छा विवरण है। त्रिवर्णाचार, त्रैवर्णिकाचार, धर्म रसिक ग्रंथ, उपसकाध्ययन सारोद्वारा जो श्री सोमसेन श्री गुणभद्राचार्य, श्री ब्रह्मसूरि, श्री जिनसेन के हैं ''ग्रंथ परीक्षा'' में पं. जुगल किशोर जी मुख्तार ने प्रामाणिक नहीं माना है। इसी प्रकार ''चर्चा सागर'' एवं ''संयम प्रकाश'' ग्रंथ भी प्रमाणिक नहीं माने हैं। पं. मेधावी जी ने ही सर्वप्रथम ''धर्म संग्रह श्रावकाचार'' में सूतक कितना यह वर्णन किया है इसके बाद त्रिवर्णाचार में आया जो प्रमाणिक नहीं है फिर ''क्रिया कोष'' में पं. किशन सिंह जी ने वर्णन किया है और लिखा है कि ''मूलाचार'' के अनुसार वर्णन किया है जबकि टिप्पण में स्व.पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने लिखा है कि मूलाचार में यह वर्णन नहीं है।

2. सभी जिनवाणी एवं अन्य पुस्तकों में त्रिवर्णाचार का ही मिलता जुलता विषय है। अतः सूतक के विषय में पूरे भारत में भ्रांतियाँ हैं। हमें यह निर्णय करना कठिन हो रहा क्योंकि विवाद होने की संभावना रहती है। इसलिए शास्त्र प्रमाण, लोकरीति के अनुसार ही पालन करें जिससे धर्म से वंचित नहीं रहें पीढ़ी गिनने के संबंध में कहीं शास्त्र प्रमाण नहीं है इसका वर्णन (S.P.S.V.-5) में देखें। अभी हमारी खोजबीन जारी है।

3. रत्न करडंक श्रावकाचार के अनुसार यदि श्रावक सामायिक में मुनि के समान

हो जाता है। ऐसे ही यदि श्रावक कुछ समय को मोह राग-द्वेष त्याग दें और तीर्थ क्षेत्र पर रहे या तीर्थ यात्रा पर जाये तो परिग्रह, मोबाइल, फोन से कम्प्यूटर पत्र आदि से संपर्क छोड़ दें तो सूतक नहीं लगेगा (3 नं. चिंतन वर्तमान के प्रसिद्ध सर्वमान्य आचार्य महाराज ने स्वाध्याय में बताया)

इसके अलावा जहाँ जैसा रिवाज हो, वैसा करना चाहिये देश कालादि के अनुसार इन विषयों में अनेक विभेद होते हैं इसीलिए कहा गया है कि-

जो इस विषय में नहीं बताया गया हो, उसे लोक व्यवहार से जानना चाहिये (पं. रत्नचंद्रमुख्तार व्यक्तित्व कृतित्व पृष्ठ 652 शंका 21-11-1957)।

प्रगट रहे कि कहीं-कहीं देश भेद से सूतक विधान में भी भेद होता है इसलिये देश पद्धति तथा शास्त्र पद्धति का मिलान कर पालन करना चाहिये (श्रावक धर्म सं. पृ. 307)

26. सूतक - पातक नहीं मानना भी मिथ्यात्व है और ज्यादा मानना भी दोष है। सूतक-पातक में जो अशुद्धि होती है उसके कारण से पूजा, आहारदान, देव शास्त्र गुरू को स्पर्श के लिए मना किया गया है। इसलिये जन्म होता है तो राग के कारण पूजन आदि में मन भी नहीं लगता है और यदि मरण हो जाता है तो भी विषाद हो जाता है जिसके कारण भी मन नहीं लगता है। ऐसा आचार्यों, विद्वानों आदि का मत है इस प्रकार इस लेख को पढ़कर खुद सूतक-पातक पालन करें और करवायें तथा ज्यादा से ज्यादा प्रचार करें एवं सामाजिक विवादों से बचकर धर्म ध्यान में लगें और श्रावक मार्ग से क्रमशः मोक्षमार्ग को प्राप्त करें यही भावना है। इसमें कोई त्रुटि रह गयी हो तो आचार्य/मुनिराज/विद्वत जन अवगत करायें जिससे सुधार किया जा सके। इस संबंधी विवाद की जिम्मेदारी हमारी नहीं है हमारी कोशिश विवाद सुलझाने की है इसलिये यह प्रयास किया है।

27. जो कहने योग्य था वह सम्पूर्णतया कह दिया गया है इतने मात्र से ही यदि यहाँ कोई चेत जाये तो समझ ले अन्यथा वाणी का अतिविस्तार किया जायें तो भी निश्चेतन अर्थात् ना समझ को व्यामोह का जाल वास्तव में अति दुस्तर है। (प्रवचनसार चरित्र चूलिका गा.219 पृष्ठ 513 टीका का श्लोक नं. 14)।

❈ जो लोग दोषों से सर्वथा रहित नहीं हैं, वे स्वयं निज पर तो नहीं बिगड़ते, फिर वे अपनी निन्दा करने वालों पर क्यों कुद्ध होते हैं? अर्थात् स्वयं को ही दोषों से मुक्त होना चाहिए, किसी पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

जन्म मरण की क्रिया का कथन (S.P.S.V. -2)

मरण के समय आगम के विरूद्ध तथा मिथ्यादर्शन को पुष्ट करने वाली जो क्रियाएँ की जाती है उनका कथन करते हैं उसे सुनो ॥1285॥

इनके सिवाय और भी जो खोटी क्रियाएँ हैं, उन सबका ज्ञानी जनों को त्याग करना चाहिये ॥1291-1292॥

जब जीव अपनी पर्याय छोड़ कर दूसरी गति में चला जाता है और एक दो या तीन समय के भीतर नियम से आहार ग्रहण कर लेता है तथा गति के अनुसार - अन्तर्मुहूर्त में ही सब पर्याप्तियाँ पूरी कर लेता है एवं जिस गति में जाता है उसी गति में मग्न हो जाता है, तब पिछले भव में, मैं कौन था, इसका स्मरण भी नहीं करता ॥1293-1294॥

मृतक की भूमि पर जो परिक्रमा की जाती है वह मिथ्यात्व जनित बड़ी भारी भूल है। ग्रन्थकार कहते हैं कि विपरीत क्रियाओं के करने से पाप ही होता है, जो दुर्गति के दुःख और संताप का कारण होता है ॥1298॥ इसलिये जो जैनधर्म के पालने वाले हैं वे शुभ क्रियाएँ ही करें यही वास्तविक रीति है। जो आगम का दृढ़ श्रद्धानी है उसे भूल कर भी विपरीत क्रियाएँ नहीं करनी चाहिए। ॥1299॥

जब तीन दिन बीत जाते हैं और शोक कुछ कम हो जाता है तब स्नान कर जिनमंदिर जाते हैं और दर्शन कर अपने घर आते हैं। कुटुम्ब के जो लोग हैं वे उसके घर भोजन करते हैं। जब बारह दिन बीत जाते हैं तब जिनमंदिर में यह विधि करते हैं - अष्टद्रव्य से पूजा रचाते हैं, वाद्य यंत्र के माध्यम से भक्ति करते हैं, शक्ति के अनुसार उपकरण तथा चंदोवा आदि चढ़ाते हैं। इस तरह महोत्सव पूर्वक पात्रदान देकर अत्यंत हर्षित होते हैं। ॥1300-1305॥

हीन क्रिया सदा त्याग करना चाहिए। जैन धर्म के धारक पुरूष इस प्रकार की क्रिया करें, अन्य समस्त खोटी क्रियाओं का त्याग करें।॥1306-1307॥

अब यहाँ सूतक विधि मूलाचार के अनुसार हिन्दी भाषा में कही गयी है - जिनेन्द्र भगवान ने जन्म और मरण की अपेक्षा सूतक के दो भेद कहे हैं। इनमें जन्म का सूतक दश दिन का और मरण का सूतक बारह दिन का कहा गया है। कुटुम्ब के लोगों के लिए पाँच दिन का सूतक बताया है। सूतक के दिनों में द्रव्य चढ़ा कर जिन पूजन नहीं करना चाहिये। मरण संबंधी सूतक तीन पीढ़ी तक 12 दिन, चौथी पीढ़ी में 10 दिन, पांचवी पीढ़ी में 6 दिन, छठवीं पीढ़ी में 4 दिन, सातवीं पीढ़ी 3 दिन, आठवीं पीढ़ी में 1 दिन रात, नवमी पीढ़ी में दोपहर, 10वीं

पीढ़ी में स्नान मात्र। यदि कोई स्त्री पति के मोह से जल मरे अथवा आपघात कर मरे, अथवा कोई अपने ऊपर दोष देकर मरे तो इनका सूतक बारह पक्ष अर्थात् छह माह का होता है। जब छह माह बीत जाते हैं तब वह जिन पूजा का उत्सव करता है। ग्रन्थकार कहते हैं कि इस प्रकार की जो मर्यादा चली आती है उसे छोड़कर और भाँति की रीति नहीं चलानी चाहिए। जिनागम में जैसी रीति कही गई है वैसी ही मन में प्रीति धारण करनी चाहिए। ॥1321-1322॥

हमने यह वर्णन मूलाचार के अनुसार किया है। इसके अनुसार जो चलता है उसके समान और कोई दूसरा नहीं है। हमने यहाँ मूलाचार की भाषा की है। यदि मन में संशय उत्पन्न हो तो मूलाचार देखो जिससे मन का सब संशय दूर हो जावेगा। ॥1329-1330॥

(संदर्भ :- क्रियाकोष /पं. किशन सिंह जी 1285 से 1330 पृ. 203 से 209 संवत 1787 भाद्रमास शुक्ल पूर्णिमा)

टिप्पणी :- वट्टकेराचार्य विरचित मूलाचार में इस प्रकार कोई वर्णन नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि ग्रंथकार ने त्रिवर्णाचार को ही मूलाचार समझ लिया है क्योंकि यह सब वर्णन उसी में उपलब्ध है।

हिन्दीकार :- स्व. पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य सागर (म.प्र.)

सूतक क्यों लगता है?

❖ परिवार में किसी का देहान्त होने पर या किसी के जन्म होने पर पूरे परिवार को सूतक क्यों लग जाता है। इस स्थिति में प्रवेश करना क्यों गलत है?

❖ परिवार में किसी का देहान्त या जन्म होने पर पूरे परिवार को सूतक लग जाता है, क्योंकि जन्म या मरण के समय होने वाली अशुद्धि इसका कारण है। और जन्म या मरण के समय हमें ध्यान रहे कि हम जिसने रिश्ते बढ़ाते जायेंगे उतना ही धर्म से विमुख होते जाएंगे, यह इस बात का प्रायश्चित भी है। एक बेटा पैदा होना इस बात का सूचक है कि उसने जन्म लेते समय ही दस दिन हमें धर्म से विमुख कर दिया और मरण होने पर 13 दिन धर्म से वंचित रहेगें। जन्म के समय हमें बहुत खुशी होती है और मरण के समय बहुत अधिक दुःख होता है। दोनों अवसर में हम सुख और दुःख का अनुभव करते हैं इसलिये मन में स्थिरता नहीं रहती। धार्मिक कार्यों के लिये मन की स्थिरता जरुरी है इसलिए इन अवसरों पर धर्म कार्यो का निषेध किया गया है। हो सकता है सुख और दुःख की

अधिकता में मन स्थिर न होने से मंदिर का पवित्र वातावरण भी हमारे द्वारा दूषित होता हो, इसलिये भी शायद कुछ दिन के लिए मंदिर इत्यादि से हमें दूर रखा गया है। (साभार- चिर्पिंग स्परो पत्रिका

❖ सोर सूतक के विषय में कहा जाता है कि क्षत्रियों को महापुरुषों को सोर तक नहीं लगता है। भरत चक्रवर्ती की 96000 रानियां थी और जितने पुत्र थे उन सबको सोर लगना चाहिए। इनका एक दिन भी सोर के बिना नहीं जायेगा। भगवान ने भी नहीं कहा कि तुम पूजन को नहीं आओ ।

(दिव्योपदेश पृष्ठ 17)

दुःख आदि भी कर्म आस्रव के कारण है

पीड़ा रूप आत्मा का परिणाम दुःख है। उपकार करने वाले का संबंध टूट जाने पर जो विकलता होती है वह शोक है। अपवाद आदि के निमित्त से मन के खिन्न होने पर जो तीव्र पश्चाताप होता है वह ताप है। परिताप के कारण जो आंसू गिरने के साथ विलाप आदि होता है उससे खुलकर रोना आक्रान्दन होता है। आयु, इन्द्रिय, बल और श्वासोच्छ्वास को पृथक कर देना वध है। अत्यंत दुखी होकर ऐसा रुदन करना जिसे सुनकर सुनने वालों के हृदय द्रवित हो जाना परिवेदना है। ये दुःख आप स्वयं करे, दूसरों को कराये तथा आप व पर दोनों करें ये तीनों ही आस्रव के कारण है। यद्यपि शोक आदि दुःख के ही भेद हैं तथापि दुःख की जातियां बतलाने के लिए उन सबका ग्रहण किया है। (तत्वार्थ सूत्र अध्याय 6 के सूत्र 11 / सूत्रोदय पृष्ठ 152)

उपरोक्त प्रकरण को पढ़कर हमें ध्यान रखना चाहिए की किसी परिजन, रिश्तेदार, मित्र, पड़ोसी के मरण होने पर उसे धार्मिक वातावरण जैसे मेरी भावना, बारह भावना, वैराग्य भावना, रत्नाकर पंचविशतिका छहढाला, योगिभक्ति अन्य स्तुति पाठ वगैरह और स्वाध्याय सुनाना चाहिए।

- ❖ सूतक संबंधी दिगम्बर जैन ग्रन्थों में प्रमाणिक आचार्यों के प्रमाण मिलें तो हमारे पास अवश्य भेजें जिससे सुधार कर सकें।
- ❖ सूतक संबंधी कोई प्रश्न हो तो क्यू आर. कोड से देखकर सम्पर्क करें।

प.पू. आचार्य श्री 108 समयसागर जी पूजन

रचयिता : क्षुल्लक श्री 105 वर्धनसागर जी महाराज

(नरेन्द्र छंद)

श्रमणों की चर्चा को पालें, उनके श्री चरणों में नमन।
मौन साधना में नित रमते, जिनको हो मेरा वंदन॥
ज्ञान-लहर में गोता खाते, ऐसे साधक हैं पावन।
गुरु-विद्या के ज्येष्ठ शिष्य, श्री समय सिंधु को मेरा नमन॥

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय अत्र अवतर अवतर संवौषट् आवाहनाम्।
ॐ ह्रूँआचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः स्थापनम्।
ॐ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं पुष्पांजलि क्षिपेत्।

जल से धोया मल को मैंने, पर पावन न हुआ ये मन।
राग-द्वेष के परभावों से पिटता-मिटता यह जीवन॥
समयसार को नित हैं पीते, ऐसे साधक हैं पावन।
गुरु-विद्या के ज्येष्ठ शिष्य, श्री समय सिंधु को मेरा नमन॥

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन तन को शीतल करता, कैसे कम हो मन की तपन?
क्रोध-भाव के परिणामों को, समता से हम करें सहन॥
नियमसार में हैं खो जाते, ऐसे साधक हैं पावन।
गुरु-विद्या के ज्येष्ठ शिष्य, श्री समय सिंधु को मेरा नमन॥

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अस्त व्यस्त सा मेरा जीवन, कब पा जाऊँ अक्षय-धन?
अक्षय-निधि को निज में पाने, करता हूँ पल-पल मैं जतन॥
योगसार में हैं रम जाते, ऐसे साधक हैं पावन।
गुरु-विद्या के ज्येष्ठ शिष्य, श्री समय सिंधु को मेरा नमन॥

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पों की है महिमा न्यारी, जिनसे महके हर जीवन।
काम-मदन को मैं भी पटकूँ, पावन होवे आतम धन॥
प्रवचनसार में डूबे रहते, ऐसे साधक हैं पावन।
गुरु-विद्या के ज्येष्ठ शिष्य, श्री समय सिंधु को मेरा नमन॥

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्रायकामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुधा वेदना में मैं उलझा, कैसे सुलझे यह उलझन?
भव भव से मैं सहता आया, मिट जाये ये तन की तपन॥
मूलाचार में लेते हिलौरें, ऐसे साधक हैं पावन।
गुरु-विद्या के ज्येष्ठ शिष्य, श्री समय सिंधु को मेरा नमन॥

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

मोह-जाल की घनी निशा में, करता आया मैं तो रमण।
जड़-दीपक से अब तो उबरूँ, कैवल्य जोत में होवे भ्रमण॥
रयणसार में हैं सो जाते, ऐसे साधक हैं पावन ।
गुरु-विद्या के ज्येष्ठ शिष्य, श्री समय सिंधु को मेरा नमन॥

ॐ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अनंत काल से अब तक मैं तो, अठ कर्मों में हुआ मगन।
अब न इनको मन में बसाऊँ, मम आतम होवे पावन॥
अठ-पाहुड़ को नित हैं भजते, ऐसे साधक हैं पावन।
गुरु-विद्या के ज्येष्ठ शिष्य, श्री समय सिंधु को मेरा नमन॥

ॐ ह्रीं आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लौकिक फल की आशा में तो, डूबा उलझा मेरा मन।
मुक्ति-वधू से प्रीत लगाने, बनना है निर्ग्रंथ श्रमण॥

मोक्ष प्राभृत को गले लगाते, ऐसे साधक है पावन।
गुरु-विद्या के ज्येष्ठ शिष्य, श्री समय सिंधु को मेरा नमन॥

ऊँ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय महामोक्षफल प्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

दुनियाँ के इन सारे पदों में, करता रहा ये मनरंजन ।
अब तो अमोल सिद्धालय में, मम आतम का होवे गमन॥
जिनवाणी की गोद में पलते, ऐसे साधक हैं पावन ।
गुरु-विद्या के ज्येष्ठ शिष्य, श्री समय सिंधु को मेरा नमन॥

ऊँ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

विद्यासागर सम दिखें, समय सागर महान ।
योग सागर में लखें. उत्कृष्ट सागर जान॥
मल्लिसागर की कृति, समयमति-सा भान ।
ऐसी संत परंपरा को, वर्धन करे प्रणाम॥

दक्षिण से उत्तर में आये, ऐसे साधक मनभावन।
धन्य हो गई सदलगा माटी, मन में छाई शुद्ध पवन॥
माँ श्रीमंति की कोख में जन्मे, मल्लप्पा श्री के नंदन।
शांता, सुवर्णा बहिनों के संग, जिनका बीता है बचपन॥
विद्याधर जी लोरी सुनाते, जैन धर्म की नित-प्रतिदिन।
ऐसे समय सागर जी को, हम सब करें कोटि-वंदन॥१॥
अल्प उम्र में घर को छोड़ा वर्ष बाईस में बने श्रमण।
द्रौणगिरी जी सिद्धक्षेत्र में, आचार्य श्री से कर मंथन।
8 मार्च 80 की सुबहा प्राप्त कर लिए तीन रतन।
पर्वतराज की पावन भूमि, धन्य धन्य हो गई पवन।
एक नहीं अब दो श्रमणों से पावन हो गये सबके नयन।
ऐसे समय सागर जी को, हम सब करें कोटि-वंदन॥२॥
वर्षों की है मौन-साधना, करते रहते आत्म-मनन ।

आगम-अध्यातम में रमते, पा जाते स्व का अध्ययन।
खुद पढ़ते औ सबको पढ़ाते, जिनवाणी के लघु नंदन।
बाहर में हैं सब कुछ करते, पर रहते हैं आत्म मगन।
प्रथम निर्यापक पद पाकर, छू सका न मान-मदन।
ऐसे समय सागर जी को, हम सब करें कोटि-वंदन॥३॥
समता के तो पूर्ण धनी हो, भजते नित निज आतमधन।
ममता मन को छू न पाती, अंतर में हैं पूर्ण नगन।
यम नियमों में पूर्ण दक्ष हैं, शुद्ध दशा में रहते मगन।
सागर सम गंभीर हृदय हैं, नित पाते अनमोल रतन।
रमते निज में भजते निज को, उपमातीत हैं मेरे मुनिन।
ऐसे समय सागर जी को, हम सब करें कोटि-वंदन॥४॥
कभी ना चाहा, कभी ना मांगा, कर्तव्यों का किया वहन।
निर्मलतम पद की गरिमा का, होवे नित निज पल्लवन ।
गुरुजन का आशीष समय को, दिलवायेगा संबल-धन।
पंचाचार सदा पालन कर, आराधन में रहें मगन।
अंत समय में लक्ष्य साधकर, पा जायें सब मोक्ष-सदन।
ऐसे समयसागर जी को, हम सब करें कोटि-वंदन ॥५॥
विद्या गुरु की प्रथम लहर, श्रमणों के सरताज।
समय सिंधु के पाद में, झुकता माथा आज।
हम सबको दो श्रमण पद, तारण-तरण महान।
'वर्धन' करे ये कामना, होवे जग कल्याण॥६॥

ऊँ ह्रूँ आचार्य श्री समयसागर जी मुनीन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

श्रमण बनें हम सभी, आतम में हो रमण ।
वर्धन की ये कामना, बनूँ मैं भाव-श्रमण॥

॥पुष्पांजति क्षिपेत्॥